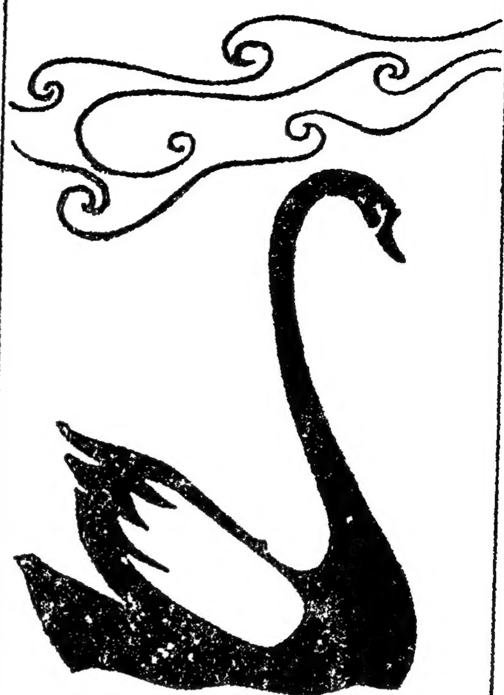




राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

अमृतलाल नागर

मानस का हंस

मूल्य : अस्सी रुपये (80.00)

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006 द्वारा प्रकाशित
MANAS KA HANS (Hindi Novel), by Amrit Lal Nagar

अनुज-सम प्रिय
धर्मवीर भारती
को

आमुख

गत वर्ष अपने चिरंजीवी भतीजों (स्व० रतन के पुत्रो) के यज्ञोपवीत सस्कार के अवसर पर बम्बई गया था। वही एक दिन अपने परम मित्र फिल्म निर्माता-निदेशक स्व० महेश कौल के साथ बातें करते हुए सहसा इस उपन्यास को लिखने का संकल्प मेरे मन मे जागा। महेश जी बड़े मानस-प्रेमी और तुलसी-भक्त थे। बरसों पहले एक बार उन्होंने उत्कृष्ट फिल्म सिनेरियो के रूप में 'रामचरितमानस' का बखान करके मुझे चमत्कृत कर दिया था, इसीलिए मैंने उनसे मानस-चतुश्शती के अवसर पर तुलसीदास जी के जीवनवृत्त पर आधारित फिल्म बनाने का आग्रह किया। महेश जी चौंककर मुझे देखने लगे, कहा—"पंडिज्जी, क्या तुम चाहते हो कि मैं भी चमत्कारबाज़ी की चूहादौड़ में शामिल हो जाऊं? गोसाई जी की प्रामाणिक जीवन-कथा कहां है?"

यह सच है कि गोसाईं जी की सही जीवन-कथा नही मिलती। यो कहने को तो रघुबरदास, वेणीमाधवदास, कृष्णदत्त मिश्र, अविनाशराय और संत तुलसी साहब के लिखे गोसाईं जी के पांच जीवनचरित है। किन्तु विद्वानो के मतानुसार वे प्रामाणिक नही माने जा सकते। रघुबरदास अपने-आपको गोस्वामी जी का शिष्य बतलाते है लेकिन उनके द्वारा प्रणीत 'तुलसीचरित' की बातें स्वयं गोस्वामी जी की आत्मकथा-परक कविताओं से मेल नही खाती। संत वेणीमाधवदास लिखित 'मूल गोसाईं चरित' में गोसाई जी के जन्म, यज्ञोपवीत, विवाह, मानस-समाप्ति आदि से संबंधित जो तिथि, वार और संवत् दिए गए है वे भी डॉ० माताप्रसाद गुप्त और डॉ० रामदत्त भारद्वाज की जांच-कसौटी पर खरे नही उतरते। इसी प्रकार गोस्वामी जी के अन्य जीवनचरित भी सच से अधिक झूठ से जड़े हुए है। परन्तु यह मानते हुए भी 'कवितावली', 'हनुमान बाहुक' और 'विनयपत्रिका' आदि रचनाओ मे तुलसी के संघर्षों-भरे जीवन की ऐसी झलक मिलती है कि जिसे नज़रअन्दाज़ नही किया जा सकता। किंवदंतियों मे जहा अन्धश्रद्धा-भरा झूठ मिलता है वहां ही ऐसी हकीकते भी नज़र आती हैं जिनसे गोसाई जी की आत्मा-परक कविताओ का ताल-मेल बैठ जाता है। इसके अलावा मेरे मन मे तुलसीदास जी का 'ड्रामा प्रोड्यूसर' और कथावाचक वाला रूप भी था, जिसके कारण मैं मित्रवर महेश जी की बात के विरोध मे चमत्कारी तुलसी से अधिक यथार्थवादी तुलसी की वकालत करने लगा।

लगभग पाच-छ. वर्ष पहले एक दिन बनारस में मित्रमण्डली में गोसाईं जी द्वारा आरम्भ की गई रामलीला से संबंधित बातें सुनते-सुनते एकाएक मेरे

मन मे यह प्रश्न उठा कि तुलसी बाबा ने किसी एक स्थान को अपनी रामलीला के लिए न चुनकर पूरे नगर मे उसका जाल क्यों फैलाया—कही लंका, कहीं राजगद्दी, कही नक्कटैया—अलग-अलग मुहल्लों में अलग-अलग लीलाएं कराने के पीछे उनका खास उद्देश्य क्या रहा होग। ? शौकिया तौर से रंगमंच के प्रति कभी मुझे भी सक्रिय लगाव रहा है। एक पूरे शहर को रंगमंच बना देने का खयाल अपने-आप में ही बड़ा शानदार लगा, लेकिन मेरा मन यह मानने को तनिक भी तैयार नही होता था कि तुलसीदास जी ने 'प्रयोग के लिए प्रयोग' वाले सिद्धात के अनुसार ऐसा किया होगा। खैर, तभी यह भी जाना कि रामलीला कराने से पहले गोसाईं जी ने बनारस मे नागनथैयालीला, प्रह्लादलीला और ध्रुवलीलाएं भी कराई थी। इनमे ध्रुवलीला को छोड़कर बाकी लीलाएं आज तक बराबर होती हैं। यह तीनों लीलाएं किशोरों और नवयुवकों से संबंधित हैं। यह बात भी उसी समय ध्यान मे आई थी। अपने प्रियबंधु अशोक जी, जो इन दिनों लखनऊ से प्रकाशित होनेवाले दैनिक समाचारपत्र 'स्वतंत्र भारत' के संपादक हैं, से एक बार प्रसंगवश यह जानकारी मिली कि बनारस की रामलीला मे केवट, अहिर, ठठेरे, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सभी जातियों के लोग अभिनय करते हैं। काशी में अनेक हनुमान मंदिरों के अलावा जनश्रुतियों के अनुसार कसरत-कुश्ती के अखाडों में भी बाबा की प्रेरणा से ही हनुमान जी की मूर्त्तियां प्रतिष्ठापित करने का चलन चला। मुझे लगा कि तुलसी और तुलसी के राम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सुझाए शब्द के अनुसार निश्चय ही 'लोकधर्मी' थे। 'सियाराम मय जग' की सेवा करने के लिए गोस्वामी तुलसीदास संगठन-कर्ता भी हो सकते थे। रूढिपंथियों से तीव्र विरोध पाकर यदि ईसा आर्त जन-समुदाय को संगठित करके अपने हक की आवाज बुलन्द कर सकते थे तो तुलसी भी कर सकता था। समाज संगठन-कर्ता की हैसियत से सभी को कुछ न कुछ व्यावहारिक समझौते भी करने पड़ते हैं, तुलसी और हमारे समय में गांधी जी ने भी वर्णाश्रमियों से कुछ समझौते किए पर उनके बावजूद इनका जनवादी दृष्टि-कोण स्पष्ट है। तुलसी ने वर्णाश्रम धर्म का पोषण भले किया हो पर संस्कारहीन, कुकर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि को लताडने मे वे किसी से पीछे नही रहे। तुलसी का जीवन संघर्ष, विद्रोह और समर्पण-भरा है। इस दृष्टि से वह अब भी प्रेरणादायक है।

महेश जी की बात के उत्तर मे यह तमाम बातें उस समय कुछ यों भंवर के उतरी कि खुद मेरा मन भी उपन्यास लिखने के लिए प्रेरित हो उठा। महेश जी भी ऐसे जोश मे आ गए कि अपनी लाटसाहबी अदा मे मुझे दो महीनो मे फिल्म-स्क्रिप्ट लिख डालने का हुक्म फरमा दिया। मैंने कहा, "पहले उपन्यास लिखूंगा। तब तक तुम अपनी हाथ लगी पिक्चर 'अग्निरेखा' पूरी करो।" किन्तु नियति ने महेश जी को 'अग्निरेखा' लांघने न दी। गत २ जुलाई को उनका देहावसान हो गया। किताब के प्रकाशन के अवसर पर महेश कौल का न रहना कितना खल रहा है, यह शब्दों मे व्यक्त नही कर पाता।

इस उपन्यास को लिखने से पहले मैंने 'कवितावली' और 'विनयपत्रिका'

को खास तौर से पढ़ा। 'विनयपत्रिका' मे तुलसी के अतर्सघर्ष के ऐसे अनमोल क्षण सजोए हुए है कि उसके अनुसार ही तुलसी के मनोव्यक्तित्व का ढाचा खड़ा करना मुझे श्रेयस्कर लगा। 'रामचरितमानस' की पृष्ठभूमि मे मानसकार की मनोछवि निहारने मे भी मुझे 'पत्रिका' के तुलसी ही से सहायता मिली। 'कवितावली' और 'हनुमानबाहुक' मे खास तौर से और 'दोहावली' तथा 'गीतावली' मे कही-कही तुलसी की जीवन-झाकी मिलती है। मैने गोसाई जी से सबधित अगणित किवदतियो मे से केवल उन्ही को अपने उपन्यास के लिए स्वीकारा जो कि इस मानसिक ढाचे पर चढ सकती थी।

तुलसी के जन्म-स्थान तथा सूकरखेत बनाम सोरो विवाद मे दखलंदाज़ी करने की जुरअत करने की नीयत न रखते हुए भी किस्सागो की हैसियत से मुझे इन बातों के सम्बन्ध मे अपने मन का ऊट किसी करवट बैठाना ही था। चूकि स्व० डॉ० माताप्रसाद गुप्त और डॉ० उदयभानु सिह के तर्को से प्रभावित हुआ इसलिए मैने राजापुर को ही जन्म-स्थान के रूप मे चित्रित किया है।

उपन्यास मे एक जगह मैने नवयुवक तुलसी और काशी की एक वेश्या का असफल प्रेम चित्रित किया है। वह प्रसग शायद किसी तुलसी-भक्त को चिढा सकता है लेकिन ऐसा करना मेरा उद्देश्य नही है। 'तन तरफत तुव मिलन बिन' आदि दो दोहे पढ़े, जिनके बारे मे यह लिखा था कि यह दोहे तुलसीदास जी ने अपनी पत्नी के लिए लिखे थे। जनश्रुतियों के अनुसार गोसाई बाबा अपनी बीवी से ऐसे चिपके हुए थे कि उन्हे मैके तक नही जाने देते थे, फिर बाबा उन्हे यह दोहेवाली चिट्ठी भला क्यो भेजने लगे ? खैर, यो मान ले कि जवानी की उमग मे तुलसी ने अपने बैठके मे यह दोहे रचकर किसी दास या दासी की मार्फत किसी बात पर कई दिनो से रूठी हुई पत्नी को मनाने के लिए खुशामद मे लिखकर अन्त.पुर मे भिजवाए थे पर एक दोहे में प्रयुक्त 'तरुणी' शब्द मेरी इस कल्पना के भी आड़े आया। पत्नी के लिए लिखते तो शायद 'भामिनी' शब्द का प्रयोग करते, 'तरुणी' शब्द थोड़े अपरिचय का बोध कराता है। वैसे भी पंडित तुलसीदास ने, बकौल बधुवर डॉ० रामविलास शर्मा, कालिदास को खूब घोटा होगा। वे कभी रसिया भी रहे होगे। 'विनय पत्रिका' मे वे अपनी 'मदन बाय' से खूब जूझे है। कलियुग के रूप मे उन्हे पद और पैसे का लोभ तो सता ही नही सकता, सताया होगा कामवृत्ति ने। मुझे लगता है कि तुलसी ने काम ही से जूझ-जूझ कर राम बनाया है। 'मृगनयनी के नयन सर, को अस लागि न जाहि' उक्ति भी गवाही देती है कि नौजवानी मे वे किसी के तीरे-नीमकश से बिंधे होगे। नासमझ जवानी मे काशी निवासी विद्यार्थी तुलसी का किसी ऐसे दौर से गुज़रना अनहोनी बात भी नही है।

सत बेनीमाधवदास के सम्बन्ध मे भी एक सफाई देना आवश्यक है। सत जी 'मूल गोसाई चरित' के लेखक माने जाते है। उनकी किताब के बारे मे भले ही शक-शुब्हे हो, मुझे तो अपने कथा-सूत्र के लिए तुलसी का एक जीवनी-लेखक एक पात्र के रूप मे लेना अभीष्ट था इसलिए कोई काल्पनिक नाम न रखकर सत जी का नाम रख लिया। तुलसी के माता, पिता, पत्नी, ससुर आदि

के प्रचलित नामो का प्रयोग करना ही मुझे अच्छा लगा।

यह उपन्यास ४ जून सन् १९७१ ई० को तुलसी स्मारक भवन, अयोध्या मे लिखना आरभ करके २३ मार्च' ७२, रामनवमी के दिन लखनऊ मे पूरा किया। चि० भगवतप्रसाद पाण्डेय ने मेरे लिपिक का काम किया।

इस उपन्यास को लिखते समय मुझे अपने दो परमबधुओ, रामविलास शर्मा और नरेन्द्र शर्मा के बड़े ही प्रेरणादायक पत्र अक्सर मिलते रहे। उत्तर प्रदेश राजस्व परिषद् के अध्यक्ष श्रीयुत जनार्दनदत्त जी शुक्ल ने अयोध्या के तुलसी स्मारक मे मेरे रहने की आरामदेह व्यवस्था कराई। बधुवर ज्ञानचद जैन सदा की भाति इस बार भी पुस्तकालयो से आवश्यक पुस्तकें लाकर मुझे देते रहे। इन बधुओ के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हू।

डॉ० मोतीचन्द्र लिखित 'काशी का इतिहास' तथा राहुल सांकृत्यायन लिखित 'अकबर' पुस्तको ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि संजोने मे तथा स्व० डॉ० माताप्रसाद गुप्त की 'तुलसीदास' और डॉ० उदयभानु सिह कृत 'तुलसी काव्य मीमांसा' ने कथानक का ढाचा बनाने मे बड़ी सहायता दी। प्रयाग के मित्रों ने 'परिमल' सस्था मे इस उपन्यास के कतिपय अंश सुनाने के लिए मुझे साग्रह बुलाया और सुनकर कुछ उपयोगी सुझाव दिए। मैं इन सबके प्रति कृतज्ञ हूं।

अन्त मे मित्रवर स्व० रुद्र काशिकेय का सादर सप्रेम स्मरण करता हूं। वे बेचारे 'रामबोला बोले' अधूरा छोडकर ही चले गए। रुद्र जी काशी के चलते-फिरते विश्वकोष थे। स्व० डॉ० रागेय राघव भी 'रत्ना की बात' लिखकर तुलसी के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त कर गए है। मानस चतुश्शती मनाने का सुझाव सबसे पहले 'धर्मयुग' मे देनेवाले डॉ० शिवप्रसाद सिह और समारोह के आयोजक, काशी नागरी प्रचारिणी सभा के प्रधान मंत्री श्री सुधाकर पाडेय तथा वे परिचित-अपरिचित लोग जो गोस्वामी जी के सबल व्यक्तित्व को अन्ध श्रद्धा के दलदल से उबार कर सही और स्वस्थ रीति से जनमानस मे प्रतिष्ठित कराने के लिए प्रयत्नशील है, चाहे आयु मे मुझसे बड़े हो या छोटे, मेरी श्रद्धा के पात्र है।

१७, कैनिंग लेन
नई दिल्ली। (प्रवास)
२६ अगस्त, १९७२ ई०

अमृतलाल नागर

मानस
का
हंस

१

श्रावण कृष्णपक्ष की रात। मूसलाधार वर्षा, बादलो की गडगडाहट और बिजली की कडकन से धरती लरज-लरज उठती है। एक खण्डहर देवालय के भीतर बौछारों से बचाव करते सिमटकर बैठे हुए तीन व्यक्ति बिजली के उजाले मे पलभर के लिए तनिक से उजागर होकर फिर अंधेरे मे विलीन हो जाते है। स्वर ही उनके अस्तित्व के परिचायक है।

"बादल ऐसे गरज रहे हैं मानो सर्वग्रासिनी काम क्षुधा किसी सत के अतर आलोक को निगलकर दम्भ-भरी डकारे ले रही हो। बौछारे पछतावे के तारो-सी सनसना रही हैं।·· बीच-बीच मे बिजली भी वैसे ही चमक उठती है जैसे कामी के मन मे क्षण-भर के लिए भक्ति चमक उठती है।"

"इस पतित की प्रार्थना स्वीकारे गुरू जी, अब अधिक कुछ न कहे। मेरे प्राण भीतर-बाहर कही भी ठहरने का ठौर नही पा रहे हैं। आपके सत्य वचनो से मेरी विवशता पछाड़े खा रही है।"

"हा ऽ, एक रूप मे विवशता इस समय हमे भी सता रही है। जो ऐसे ही बरसता रहा तो हम सवेरे राजापुर कैसे पहुच सकेगे रामू ?"

"राम जी कृपालु है प्रभु। राजापुर अब अधिक दूर भी नही है। हो सकता है, चलने के समय तक पानी रुक जाय।"

तीसरे स्वर की बात सच्ची सिद्ध हुई। घड़ी-भर मे ही बरखा थम गई। अंधेरे मे तीन आकृतिया मन्दिर से बाहर निकलकर चल पड़ी।

··· · · ···

मैना कहारिन सवेरे जब टहल-सेवा के लिए आई तो पहले कुछ देर तक द्वारे की कुण्डी खटखटाती रही, सोचा नित्य की तरह भीतर से अर्गल लगी होगी, फिर औचक मे हाथ का तनिक-सा दबाव पडा तो देखा कि किवाड़े उढके-भर थे। भीतर गई, 'दादी-दादी' पुकारा, रसोई वाले दालान मे झाका, रहने वाले कोठे मे देखा पर मैया कहीं भी न थी। मैना का मन ठनका। बाकी सारा घर तो अब धीरे-धीरे खण्डहर हो चला है और कहा देखे! पुकारे से भी तो नही बोली। कहा गई ? मैना ने एक बार सारा घर छानने की ठानी, तब देखा कि वे ऊपरवाले अध-खण्डहर कमरे मे अचेत पड़ी तप रही है।

मैना दौड़ी-दौड़ी श्यामो की बुआ के घर गई। श्यामो बरसो पहले अपने घर-बार की होकर दूसरे गाव गई, श्यामो के पिता भी पत्नी के मरने और उसके हाथ पीले करने के उपरात कई बरसो से सन्यासी होकर चित्रकूट मे गाजा पिया

करते हैं, पर उनकी विधवा बहन अब तक गांव मे श्यामो की बुआ के नाम से ही सरनाम है। सोमवशी ठाकुर है पर धरमसोध मे गांव की बड़ी-बड़ी ब्राह्मणियो के भी कान काटती है। ७५ के लगभग आयु है और रतना मैया को भौजी कहती है, उन्हे अपना गुरु मानती है।

"अरे बुआ, गजब हुइ गवा। दादी तो चली।"

"हाय-हाय, का कहती हौ मैनो। अरे कल तिसरे पहर तौ हम उन्है अच्छी-भली छोड़ के आये रहे।"

"कुछ पूछौ ना बुआ, एकदम अचेत पड़ी हे, लक्कड जैसी सुलग रही है। राम जाने ऊपर खण्डहरे मे का करै गई रही। वही पड़ी है।"

"अरे तौ हम बूढी-ठूढी अकेले क्या कर सकेगी। गनपती के बड़कऊ और मुल्लर होरन को लपक के बुलाय लाओ। हम सीधे भौजी के घरे जाती है।"

बादल करीब-करीब छट चुके थे परन्तु सूर्य नारायण का रथ अभी आकाश मार्ग पर नही चढा था।

रतना मैया की बहिर्चेतना लुप्तप्राय हो गई थी। सासे उल्टी चल रही थी। श्यामो की बुआ ने मैया की दशा देखकर मैना को नीचे के कमरे मे झटपट गोबर से लीपने का आदेश दिया और आप द्वारे पे जाके आसपास के बन्द-खुले द्वारो की ओर मुह करके गोहारने लगी, "अरे, गनपती की बहू, रमधनिया की अम्मा, अरी बतासो, अरे जल्दी-जल्दी आओ सब जनी। भौजी को धरती पर लेने का बखत आय गया।"

"है। ये क्या कहती हो स्यामो की बुआ ? अरे कल तो अच्छी भली रही।" सुमेरू की अम्मा, मुल्लर की महतारी, बतासो काकी देखते-देखते ही अपने-अपने द्वारे पै आके हाल-चाल पूछने लगी, पर आने के नाम पर बाबा और मैया के पुराने शिष्य गणपति उपाध्याय की पत्नी, उनकी बड़ी पतोहू और रामधन की अम्मा को छोड़कर और कोई न आया। किसी की झाड़ू-बुहारू अभी बाकी थी, किसी की जिठानी अभी जमना जी से नही लौटी थी। औरते अपने-अपने घरो मे सबेरा शुरू कर रही थी। घर-गिरस्ती के नाना जंजालो का मकड़जाल बुनने का यही तो समय था। अभी से चली जाय और मैया सुरग सिधारे तो उनकी मिट्टी उठने तक छूतछात के मारे घर के सारे काम ही अटके पड़े रहेगे। फिर भी इतनी स्त्रिया तो आ ही गई। उन्होने और श्यामो की बुआ ने मिलकर मैया को ऊपर से उतारा और गोबर-लिपी धरती पर लाकर लिटा दिया। राम-राम-सीताराम की रटन आरभ हो गई।

थोड़ी ही देर मे कुछ मरद-मानुस आ पहुचे। अंतिम क्षण की बाट मे मैया के जीवन-वृत्त का लेखा-जोखा चार जनो की जबानो के बहीखातो पर चढने लगा।

"बड़ी तपिस्या किहिन बिचारी।"

"हम जानी, साठ-पैंसठ बरिस तो हो गए होगे बाबा को घर छोड़े।"

"अरे जादा, तीन बीसी और पाच बरिस की तौ हमारी ही उमिर हुइ गई। सम्मत् १४ मे भये रहेन हम। उसके पांच-सात बरिस पहले बाबा ने घर छोड़ा रहा।"

"हम तौ कहते है कि ऐसी धरमपतनी सबको मिलै । औरो की तौ फंसाय देती है पर दादी ने तो बाबा की बिगडी बनाय दी । हमरी जान मे अब गाव मे बाबा की उमिर के..."

"काहे, बकरीदी बाबा और रजिया बाबा हे । बकरीदी बाबा बताते तो है कि बाबा से चार दिन बड़े हैं । और राजा अहिर इनसे एक दिन छोटे है ।"

"रजिया कक्का, बकरीदी चच्चा हम जानी सौ बरस के तो जरूर होयगे ।"

"नाही, बप्पा से दस बरिस बड़े है । अरे बुआ, क्या हाल है दादी का ?"

"वैसने परी है अबही तो । बोल-बोल तौ पहले ही बन्द होइ चुका है । जाने काहे मां परान अटके है ।"

"कुछ भी कहौ, बाकी एक पाप तो इनसे भया ही भया । पती देवता से कुवचन बोली, तौन वह घर से निकरि गए ।"

"राम-राम, अनाड़ी जैसी बात..."

अचानक बकरीदी दर्जी का छोटा बेटा बूढा रमजानी दौड़ता हुआ आता दिखलाई दिया । निठल्ले शास्त्रार्थ मे कौतूहलवश विघ्न पड़ा । ६१-६२ वर्ष के बूढे रमजानी का दौड़ना आश्चर्यकारी था । दूर से ही बोला—"ककुआ, ककुआ, होसियार । बाबा आय रहे है ।"

"अरे कौन बाबा ?"

"गुसाई बाबा ! गुसाई बाबा ! अरे अपनी रतना काकी के..."

दो शिष्यो, राजा अहिर, अपने जवान पोते की पीठ पर लदे बकरीदी दर्जी, शिवदीन दुबे, नन्हकू, मनकू आदि गाव के कई लोगो के साथ गोस्वामी तुलसीदास जी धीरे-धीरे आ रहे थे । बाबा के शिष्यो मे से एक रामू द्विवेदी उनके साथ काशी से आया था । उसकी आयु तीस-बत्तीस के लगभग थी । दूसरे शिष्य वाराह क्षेत्र निवासी एक संत जी थे । आजानुबाहु, चमकते सोने-सी पीत देह, लम्बी सुतवां नाक, उभरी ठोड़ी, पतले होठ, सिर और चेहरे के बाल घुटे हुए, माथे, बाहो और छाती पर वैष्णव तिलक था । काया कृश होने पर भी व्यायाम से तनी हुई भव्य लगती थी । लगता था मानो मनुष्यो के समाज मे कोई देवजाति का पुरुष आ गया है । बाये हाथ मे कमण्डलु, दाहिने हाथ मे लाठी, गले मे जनेऊ और तुलसी की मालाये पड़ी थी । वे जवानी की तरह से तनकर चल रहे थे ।

"भैया तुम बहुत झटक गए हो । कैसा राजा इन्नर-सा सरीर रहा तुम्हारा ।" सत-गृहस्थ राजा जो बाबा से आयु मे केवल एक दिन छोटे पर स्वस्थकाय थे, स्नेह से बाबा को देखकर बोले ।

बाबा ने कहा—"पिछले आठ-नौ बरसो से वात रोग ने हमको ग्रस लिया है । बाह मे पीड़ा हुई, फिर सारे शरीर मे होने लगी । बस हनुमान जी और व्यायाम ही जिला रहे है हमको । बाकी बकरीदी भैया से हम बहुत तगड़े है । चार ही दिन तो बड़े है हमसे । और तुम्हारा जी चाहे तो तुम भी हमसे पंजा लड़ाय लेव राजा ।"

एक हंसी की लहर दौड़ गई । उसी समय अपने घर से मुगटा पहने बाबा के पुराने शिष्य, अड़सठ-उनहत्तर वर्षीय पण्डित गणपति उपाध्याय नंगे पैरों दौड़ते

हुए आए, भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। बाबा ने पहचानकर गले लगाया। गणपति ने मैया की गम्भीर दशा बतलाकर अचानक आगमन को चमत्कारी बखाना।

बाबा कहने लगे—"जेठ महीने मे ही हम बाराह क्षेत्र में आ गए थे। चातुर्मास वहीं बिताने का विचार था। परन्तु कुछ दिन पहले हमे स्वप्न मे हनुमान जी से ऐसी प्रेरणा मिली कि राजापुर होते हुए हम चित्रकूट जाएं और वहीं चातुर्मास पूरा करें।"

राजा प्रेम से उन्हे एक बाहु मे भरकर बोले—"अरे अब भगवान ने तुमको अंतरजामी बनाय दिया है। बहुत ऊंची तपस्या भी किए हौ।"

श्यामो की बुआ देखते ही 'अरे मोर भैया' कहकर पुक्का फाड़कर रोती हुई दौड़ी और कहा—"भौजी के परान बस तुमरे बदे अटके हं।" फिर उनके पैरो पर गिरकर और जोर-जोर से रोने लगी।

वृद्ध संत ने उनके सिर पर दो बार हाथ थपथपाया और राम-राम कहा। रतना मैया के मरने की बाट जोहते खड़े हुए बूढो, अधेड़ो और लड़को ने बाबा के चरण छूने मे होड़ लगा दी। अगल-बगल के घरो की औरते चुटकी से घूंघट थामे एक आंख से उन्हे देखने लगी। बच्चो की भीड़ भी बढ़ आई। श्यामो की बुआ गरजी—"चलौ, हटौ, रस्ता देव। पहले भौजी से मिलै देव, जिनके परान इनके दरसन मे अटके हैं।"

परम संत महाकवि गोस्वामी तुलसीदास उनसठ वर्षो के बाद अपने घर की देहरी पर चढ रहे थे। उनका सौम्य-शांत-तेजस्वी मुख इस समय अपने औसत से कुछ अधिक गम्भीर था। उनके पीछे भीड भी भीतर आने लगी। चेहरे पर भीनी मुस्कान के साथ उनका कमण्डलुवाला हाथ ऊपर उठा, अंगूठे और तर्जनी के घेरे में कमण्डलु अटका था और तीन उंगलियां ठहरने का आदेश देते हुए खड़ी थी। बाहरवालो ने एक-दूसरे को पीछे ढकेला। बाबा अकेले अन्दर गए। वही दहलीज, वही दालान, आंगन के पारवाली कोठरियो और दालान का अधिकांश भाग अब ईंटो का ढेर बना था। जगह-जगह बरसाती घास और वनस्पति उग रही थी। परन्तु बाबा का मन इस समय कहीं भी न गया। ध्यान-मग्न सिर झुकाए हुए उन्होंने दालान मे प्रवेश किया। मैना हाथ जोड़कर झुकी और उनके चरणो के आगे भूमि पर सिर नवाया, फिर कहना चाहा कि इसी कमरे में हैं, किन्तु अ आतंक के मारे बेचारी बाईस वर्षीया दासी के मुह से बोल न फूट सके, केवल हाथ के संकेत से कमरा दिखला दिया। इसी बैठके वाले कमरे मे कथावाचस्पति पण्डित तुलसीदास शास्त्री ने अपने गार्हस्थिक जीवन मे अध्ययन और शास्त्रार्थ से भरे-पुरे नौ वर्ष बिताए थे। कमरे के भीतर जाकर ताजी लिपी भूमि पर निश्चेष्ट पड़ी हुई पत्नी को देखा, फिर बाबा ने किवाड़ो को थोड़ा उढ़काकर मानो मैना को भीतर न आने के लिए कहा। दाहिनी ओर चौकी पर रामचरितमानस का बस्ता रखा था। उस पर बासी फूल रखे हुए थे। दीवट मे मोटे बत्तेवाला दिया जल रहा था।

बाबा एक क्षण तक खड़े रहे, फिर पत्नी के सिरहाने बैठ गए। छाती के बीच में प्राणो की धुकधुकी खरगोश की कुलाचो-सी रुक-रुककर चल रही थी।

चेहरा शांत किन्तु कुछ-कुछ पीड़ित भी था। बाबा ने अपने कमण्डलु से जल लेकर मैया के मुख पर छीटा दिया। उनके सिर पर हाथ फेरकर, उनके कान के पास अपना मुख ले जाकर उन्होंने पुकारा—"रतन!" चेहरे पर हल्का-सा कम्पन आया पर आंखें न खुली। फिर पुकारा—"रतन!"

लगा कि मानो कमल खिलने के लिए अपने भीतर से संघर्ष कर रहा हो। बाबा ने राम-राम बुदबुदाते हुए उनकी दोनों आंखों पर अंगूठा फेरा। मैया की आंखें खुलने लगी। पुतलिया दृष्टि के लिए भटकी, फिर स्थिर हुई और फिर क्रमश. चमकने लगी। मुरझाया मुख-कमल अपनी शक्ति-भर खिल उठा। होठों पर मुस्कान की रेखा खिच आई। शरीर उठना चाहता है किन्तु अशक्त है। होठ कुछ कहने के लिए फडकने का निर्बल प्रयत्न कर रहे हैं किन्तु बोल नही फूट पाते। केवल चार आखे एक-दूसरे में टकटकी बाधे बडी सजीव हो उठी हैं। पति की आंखो मे अपार शांति और प्रेम तथा पत्नी की आखो मे आनन्द और पूर्ण कामत्व का अपार सतोप भरा है।

"राम-राम कहो रतना! सीताराम-सीताराम!"

होठों ने फिर फडकना आरम्भ किया। कलेजे की प्राण कुलाचें कण्ठ तक आ गई।

"सीताराम! सीताराम!" बाबा के साथ-साथ मैया के कण्ठ से भी क्षीण अस्फुट ध्वनि निकली। बोलने के लिए जीव का सघर्ष और बढा। बाबा ने मैया का हाथ अपने हाथ से उठाकर और प्रेम से दबाकर धीरे से कहा—"बोलो, बोलो, सीताराम।" "सी···ता···रा···।" एक हिचकी आई, मैया की आंखें खुली की खुली रह गई और काया निश्चेष्ट हो गई। मृत देह पर जीवन की एक छाप अब तक शेप थी। विरह से सूनी रतना मैया सुहागिन होकर परम शांति पा गई थी।

बाबा थोड़ी देर वैसे ही मैया का हाथ अपने हाथ मे लिए बैठे रहे, फिर उठे और भीतरवाले द्वार की ओर जाने के बजाय सडक-पड़ते तीन द्वारों मे से बीच वाले का बेड़ना सरका कर उसे खोल दिया। बरसों बाद खुलने के कारण जड़काष्ठ ने भी खुलने में वैसा ही संघर्ष किया जैसा मैया ने सीताराम शब्द उच्चारण करते हुए किया था। बाबा शात भाव से बाहर चबूतरे पर आकर खड़े हो गए।

२

मैया की मौत से कुछ पलों पहले बाबा का अचानक आना गांववालों के लिए एक चामत्कारिक अनुभव तो बना ही साथ ही बड़े गर्व का विषय भी बन गया था। गोसाईं महात्मा इस समय चांद-सूरज की तरह लोक उजागर थे। उनके गांव मे पैदा हुए थे। जब हुमायूं और शेरशाह की लड़ाई के पुराने दिनों को

भगदड़ मे इधर-उधर छितराके भागने वाले मुगल लड़वैये डाकू बनकर लूटपाट और आतंक मचाने लगे, तब यह विक्रमपुर गांव पूरी तरह से लुट-पिट और खण्डहर बनकर सभ्यता के मानचित्र से मिट गया था। बस, दो-चार गरीब-गुरबे छोटे काम करनेवाले हिन्दू और पन्द्रह-बीस मुसलमानों के घर ही बच रहे थे। उस समय बाबा ने यहा आकर तपस्या की और संकटमोचन हनुमान को स्थापित किया। उन्ही के आशीर्वाद से राजापुर नाम पाकर यह गाव फिर से बसा था। उनके साथी-सगियो मे दो लोग अभी मौजूद हैं। इसलिए लोगों में जोश था कि मैया की अर्थी बडी धूम-धाम से उठनी चाहिए, जरा सात गाव लोग देखे और कहे कि बाबा सबसे अधिक उन्ही के है। उनकी जन्मभूमि यही, घर यही, घरैतिन यही और आज इतने बड़े विरक्त महात्मा होकर भी वे अपने हाथो अपनी अर्द्धांगिनी का दाह संस्कार करेंगे। विक्रमपुर उर्फ राजापुर के लिए यह क्या मामूली घटना होगी।

जवानो मे ही इस बात का सबसे अधिक जोश था, गाव के करीब-करीब सभी बडे-बूढे स्त्री-पुरुष भी लडको के इस जोश का जोशीला समर्थन करने लगे। तय हुआ कि रजिया कक्का और बकरीदी कक्का से कहलाया जाय। इनमे भी राजा भगत बाबा के विशेष मुहलगे थे। बाबा अपनी जवानी मे जब सोरो से आए थे तो राजा के घर ही ठहरे थे। उन्होने ही गांव-गाव इनकी कथावाचन कला का माहात्म्य फैलाया था। जब दान-दक्षिणा अच्छी मिलने लगी और इनके व्याह की बात चली तो राजा ही की सलाह मानकर बाबा ने बकरीदी से यह ज़मीन खरीदी। राजा ने ही बाबा का यह घर बनवाया था। व्याह-बरात का सारा प्रबध भी उन्होने ही किया और अब तक अपनी रतना भौजी के साथ उनका वैसा ही निभाव रहा था।

सबके आग्रह से राजा और बकरीदी बाबा के पास गए। बाबा चबूतरे पर कुशासन बिछाकर बैठे थे, पालथी मारे, मेरुदण्ड सहज तना हुआ, आखें कही दूर अलक्ष्य मे लगी हुई थी, सुमिरनी अपने क्रम से चल रही थी। सूकरखेत निवासी शिष्य सत बेनीमाधव और काशी से साथ आए हुए शिष्य रामू द्विवेदी अगल-बगल बैठे बाबा को पखा झल रहे थे। बकरीदी को सहारा देकर उनके सामने से ही चबूतरे पर चढाकर लाते हुए राजा पर बाबा की दृष्टि बरबस पडी। चार दिन बडे होने के कारण बाबा बकरीदी दर्जी को भैया कहकर पुकारते है, इसलिए उनके सम्मान मे वे खडे हो गए। बकरीदी दोनों हाथ उठाकर अपनी कमजोर आवाज मे सास का अधिक जोर लगाकर बोले—"रहै देव, रहै देव, गमी-जनाजन मे सील-सिट्टाचार का विचार नही होता।" कहते-कहते सांस फूल आई, खासी का दौरा पडा और वे बैठा दिए गए।

"राम-राम। (राजा से) इन्हे क्यों लाए ?"

"अरे गाव के सब पंचो ने मिलके हमे और इन्हे तुम्हारे पास भेजा है।"

"क्या बात है ?"

एक हाथ से दमफूलते बकरीदी की पीठ सहलाते हुए होठो पर व्यंग की हल्की-सी हसी लाकर राजा बोले—"अरे तुम इस गांव के महतमा हो न, तो

तुम्हारी अवाई को सब पंच मिल कै क्यों न भुनावें ?"

बावा के चेहरे पर भी फीकी मुस्कान आ गई। तभी बकरीदी फिर जोश में बोल उठे—"यह बात नहीं है। हमारी भयेहू क्या कम महतमा रही। (खों-खों) तुम तौ हम पंचन को छोड़ि के चले गए, ऊ तौ जनम-भर हमारे ही साथ रही। सब लोग बाजे-गाजे से बिमान-उमान बनाय के जनाजा लै जैहै। देर-सवेर होय तौ बोलना मत। यह हमार अरदासौ है और हुकुमौ है।"

"तुम्हारा हुकुम हमारे लिए रामाज्ञा है। रामू !"

"आज्ञा, प्रभु !"

"समय का सदुपयोग करौ। राम-नाम सुनाओ, जिससे भीतर का मिथ्या क्रन्दन-कोलाहल बन्द हो।"

बावा की अवाई सुनकर भीतर गांव-भर की स्त्रिया जुट आई थी, 'हाय अजिया. हाय मोर मैया' कहकर मैया से सम्बंधित अपने-अपने संस्मरणों को सूत्रवत् बट-बट कर लुगाइया आपस मे रोने का दंगल चला रही थी : "अरे नन्हुआ का जव जर चढा रहा तव तुम्है बचायो, अब को बचाई ?···हमार सोना और रूपा के बियाहन मां सब भम्भड तुमहे निवटायो। अव हमार मोतिया का को पार लगाई ? हाय मोर अजिया। हाय तुम हमका छाड़िकै कहा चली गई ऽऽ।" इस तरह गांव-भर के दुख-सुख का इतिहास रतना मैया से जुड़कर कोलाहल की ऊंची मीनार बना रहा था। उत्सुक स्त्रियो को मैना कभी रो-रोकर और कभी आंसू-सोख स्वर मे वतलाती थी कि कैसे बावा के कमरे मे घुसते ही उजाला हुआ और [illegible] ने दादी से सीताराम-सीताराम बुलवाया। श्यामो की बुआ को यह कचोट [illegible] कि अपनी भौजी की असल चेली तो जनम-भर वह रही और अंतिम चमत्कार [illegible]ने का सौभाग्य निगोडी मैना को मिला। इसी दुःख को दुहराकर रोती रही।

रामू द्विवेदी ने बड़े ही सुरीले और मधुर ढंग से गाना आरंभ किया—

ऐसो को उदार जग माँही।
बिन सेवा जो द्रवै दीन पै राम सरिस कोउ नाही।···

राम शब्द का 'रा' मात्र सुनते ही उनका मुखमण्डल खिल उठा। धीरे-धीरे ताली बजाते हुए उन्होने आखें मूंद ली। ध्यान-पट की श्यामता मन की तेजी से सिमटकर वीच मे आने लगी। ध्यान-पट अरुण-पीत हो गया, जैसे किसी रंगमंच की काली जवनिका उठा दी गई हो। और जवनिका चारों ओर से गोलाकार होकर सिमटती हुई पीतपट के बीचोबीच अधर मे लटककर नाचने लगी। वह पीतपट ऐसा है जैसे विद्युत रेखा चौडी होकर फर्श की तरह फैल जाय और उसका अणु-अणु निरंतर कौधने लगे। यह चमक श्याम बिन्दु के चारो ओर आ-आकर यो पछडती है जैसे तट पर सागर की लहरे पछाड खाती है। लहरो के छीटो से श्याम बिन्दु मे एक आकार निर्मित होने लगता है। बिन्दु की श्यामता को वह आकार अपने आप मे तेजी से समोने लगता है। अरण पट के मध्य मे कोटि मनोज लजावन हारे, सर्वशक्तिमान परम उदार सीतापति रामचन्द्र का आकार इस तरह झलकने लगा कि जैसे ब्राह्म वेला मे दुनिया झलकती है। इस दृश्य का आनन्द हृदय में

भरने लगता है, और अधिक स्पष्टता से दर्शन कर पाने का आग्रह ध्यान को और एकाग्र करता है। बाबा को लगता है कि गंगा मानो उलटकर अपने उद्गम स्रोत श्रीरामचन्द्र के कंजारुण पद-नख मे फिर से समा रही हों।

फिर और कुछ ध्यान नही रहा। भीतर-बाहर केवल भाव भगवान है, तुलसीदास की कंचन काया एकदम निश्चेष्ट है। वे समाधिलीन है।

दोपहर तक राजापुर गाव में कही तिल रखने की भी जगह नही बची थी। हर व्यक्ति बाबा के दर्शन पाना चाहता था। धकापेल मच रही थी। 'तुलसी बाबा की जय, रतना मैया की जय, जय-जय सीताराम' के गगनभेदी नारों से किसीकी बात तक नही सुनाई पड रही थी। गोस्वामी जी महाराज का आगमन सुनकर आस-पास के अनेक छोटे-बडे जमीन्दार और सेठ-साहूकार भी आए थे। मखाने, तावे के टके, चांदी के दिरहम, सोने के फूल, पंचमेल रत्नों की खिचडी, जो जिससे बन पडा, अर्थी पर लुटाया। गरीबो-मंगतो की झोलिया भर गईं। विमान के आगे ढोल-दमामे, नरसिंहे, घंटा-शंख-घडियाल बजाते कोस-भर का रास्ता चार घंटे में पार हुआ। सूर्यास्त के लगभग बाबा ने मैया की चिता मे अग्नि दी। उस समय विरक्त महात्मा की आखों से आंसू टपकने लगे। यह देखकर आस-पास खडे उनके भक्तगण भाव विगलित हो गए। जन समाज 'सीताराम-सीताराम' की रटन मे लीन हो गया।

सीताराम की गुहार बाबा के कानों में ऐसे पडी जैसे कोई अधा बन्द गली में चलते-चलते दीवार से टकराकर अपना सिर चुटीला कर ले। मन को पछतावा हुआ, 'हे प्रभु, तुम्हारी यह माया ऐसी है कि जन्म-भर जप-तप साधन करते-करते पच मरो तब भी इससे पार पाना उस समय तक महा कठिन है जब तक कि तुम्हारो ही पूर्ण कृपा न हो। सुनता हूं, विचारता हूं, समझता भी हूं, यहां तक कि अब तो दूसरों को विस्तार से समझा भी लेता हूं पर मौके पर यह सारा किया-धरा-चौपट हो जाता है। हे हरि, वह कौन-सी अनुभूति है जिसे पाकर मैं इस मोह-जनित भव-दारुण विपत्तियो के संत्रास से मुक्त हो सकूगा। मेरे मन को वह ब्रह्म-पीयूष मधु शीतल रस पान करने का कब अवसर मिलेगा कि जिससे वह झूठी मृग-जल-तृष्णा से मुक्त हो सके।···अगले शुक्ल पक्ष की सप्तमी को आयु के नव्वे वर्ष पूरे हो जायगे। अब भला मैं और कितने दिन जिऊंगा जो तुम मुझे आशा-निराशा की चकरघिन्नी मे नचाते ही चले जाते हो। दया करो राम, अब तो दया कर ही दो।' आखें फिर भर गईं।

पीछे भीड मे 'सीताराम-सीताराम' हो रहा था, कही-कही बाते भी हो रही थी।

"चुपाय रहो, शास्त्री, अवसर देखो, यह प्रेमाश्रु है।"

"प्रेमाश्रु और ज्ञानी बहावे ? अरे, भरी जवानी मे हमारी दुइ-दुइ पत्नियां मरी, और कैसी रही कि रस की गगरिया, मदनमोहिनी, जिन पर आठो पहर हम प्रेम मे अपने प्राण निछावर करते रहे पर हम तो एक्को आसू न बहाया। चट से तीसरी व्याह लाए और आत्मसंयम के बदे गर्ग संहिता का उपदेश याद करै लगे कि—

दुर्जना शिल्पिना दासा दुष्टस्य पटहा: स्त्रिय
ताडिता मार्दव यान्ति नते सत्कार भाजनम् ॥

"तो इन्होंने भी लिखा है कि 'शूद्र, गंवार, ढोल, पशु, नारी, ये सब ताडन के अधिकारी'।"

"लिखने से क्या होता है। जो अमल में लावै सो ज्ञानी।"

"पण्डितवर, अपने गाल बजाने के लिए क्या यही अवसर मिला है आपको?" उत्तेजनावश रामू का स्वर तनिक ऊंचा उठ गया।

"रामू!" बाबा ने पीछे घूमकर देखा। रामू और बेनीमाधव बाबा के पीछे खड़े थे। उनसे दस कदम पीछे कोने में अधेड वय के वैष्णव तिलकधारी शास्त्री और त्रिपुण्डधारी सुमेरु जी थे। बाबा की गर्दन पीछे मुडते ही वे दोनो चोर की तरह पीछे दुबक गए, यद्यपि उन्होने उनकी ओर देखा तक न था। बाबा का आदेश पाते ही रामू का क्रोध से तमतमाया हुआ चेहरा विवश भाव से नीचे झुक गया।

श्मशान से लौटने पर बाबा की इच्छा थी कि संकटमोचन हनुमान जी के चबूतरे पर सोएं, पर बड़े-बडे लोग उनके विश्राम के लिए राजसी सुख प्रस्तुत करने को आतुर थे। हर एक उन्हे अपने शिविर में ठहराना चाहता था। राजा अहिर इन बडो की बातों से बिगड गए, बोले—"भैया अंते काहे सोवैं? अरे, हिया उनका घर है, गांव है, जलमभूमी है।"

घर, गांव, जन्मभूमि, यह शब्द बाबा के मन में तीन फांसों से चुभे, व्यंग फूटा, हंसी आई, कहा-—"घर घरैतिन के साथ गया। गाव तुम्हारे नाम से बजता है और रही जन्मभूमि···वह तो सूकर खेत में है भाई···यहां से तो कुटिल कीट की तरह माता-पिता ने मुझे जन्मते ही निकाल फेंका था।"

राजा के चेहरे पर ऐसी झेंप चढी कि मानो बाबा को घर-गाव से निकाल फेंकने का अपराध उन्ही से हुआ हो, किन्तु उनका मन बचाव के लिए तुरंत ही एक सूझ पा गया, मुस्कराये, फिर कहा—"तो उसमे बुराई क्या भयी? गाव से निकले तो राम जी की सरन मे पहुंच गए।"

तुलसी बाबा भीतर ही भीतर कट गए, सिर झुकाकर कहा—"नीकी कही। तुम खरे गोस्वामी हो रजिया, मेरा बहका पशु पकड लाए। ठीक है, मैं उसी घर मे रहूंगा जिसे तुम मेरा कहते हो।"

राजा और बाबा की बातो में ऐसी पहेली उलझी थी कि जिसे सुलझाए बिना न तो बेनीमाधव जी को चैन पड सकता था और न रामू द्विवेदी को। संत बेनीमाधव जी की आयु पचास-पचपन के बीच में थी और रामू पण्डित अभी इकतीस के ही थे। बेनीमाधव गत सात-आठ वर्षों से अपने-आपको बाबा का शिष्य मानते है। कुछ महीनों तक वे काशी मे उनके पास ही रहे थे किन्तु उनके बेलगाम मन को बाबा के सिद्ध गोस्वामीत्व से इतना भय लगता था कि उनमे प्रतिक्रियाएं उठने लगी थी। तब बाबा ने उनसे कहा—"वटवृक्ष के नीचे दूसरा पौधा नही उगता, बेनीमाधव, तुम वाराह क्षेत्र में रहो और मन को कमाओ। बीच-बीच मे जब जी चाहे यहा आ जाया करो।" तबसे वे प्रति वर्ष अपना कुछ समय गुरु सेवा मे बिताते है।

रामू बचपन से ही उनके साथ है। काशी की महामारी के दिनों मे उसने बाबा के आदेशानुसार किशोरो का सेवकदल सगठित करके काशी मे बड़ा काम

किया, फिर अपने पितामह के देहान्त के बाद वह उन्हीं के पास रहने लगा। बाबा ने ही उसे संस्कृत पढाई है। अब वही उनकी देखभाल करता है, हरदम बाबा का मुखारविन्द ही निहारता रहता है। वह उनकी एक-एक भाव-भंगिमा को पहचानता है। उसकी अचूक और निष्कपट सेवा-भावना, अध्ययनशीलता और गायन तथा काव्य-प्रतिभा से प्रसन्न होने के कारण बाबा उसे पुत्रवत् चाहते है।

इन दोनो शिष्यो के साथ बाबा जब घर पहुचे तो देखा कि लेटने के लिए उनकी चौकी बाहर चबूतरे पर लगाई गई है और गणपति उपाध्याय पास ही मे खडे उनकी बाट देख रहे है। घर का द्वार खुला देखकर वे भीतर चले गए। दालान से बैठके मे झांककर देखा तो जहा उनकी पत्नी ने प्राण तजे थे वही श्यामो की बुआ दिये की बत्ती ठीक कर रही थी। बाबा रात मे पहचाने नही, पूछा—"कौन है माई।"

"अरे हमको चीन्हे नाही भैया, हम है सिउदत्त सिंह की बहिन गंगा।"

"भला-भला, यहां सोएगी तू ?"

"हम न सोवैंगे तो दिया कौन देखी ?"

"हम।"

"अरे इत्ते बडे महात्मा हइकै तुम हियां पौढियौ ? बडी ऊमस है।"

"और तेरे लिए ऊमस नही है ?"

"हम तौ भैया, तुम जानौ कि जबते तुम सन्यासी भये तब से यही पर भौजी की सेवा मे ही रही है। भौजी कहै, स्यामो की बुआ, तुम्हारी ऐसी सेवा कोई नही कर सकत हैं। हमही तो आज भिनसारे मैंनो को हिया बैठाय के बाहर लोगन का बुलावैं की खातिर गई रही। इत्ते मे तुम आय गयौ, औरन को भीतर आवै न दियौ, मना किहैव। हम आवैं लागे तो सब पच हमैं रोकि लिहिन। कहार की पतोहू निगोडी अंतकाल के दरसन पाय गई। औ हम जो जनम-भर उनकी असल चेली रही सो बाहरैं रह गई।" श्यामो की बुआ पछतावे के मारे रो पडी।

भोले मन की शिकायत और रोना सुनकर बाबा को मन ही मन मे हंसी आ गई, समझाते हुए कहा—"अच्छा, अच्छा, सोच न करो। तुम्हारी सेवा राम जी के खाते मे लिखी है।"

श्यामो की बुआ आसू पोछते हुए बोली—"अरे उनके खाते से हमारा कौन परोजन। भला-बुरा कहै वाले तो सब पंच हिया रहते है। मैंनो निगोडी दिन-भर सबते कहत फिरी कि उसने तुमरा चमत्कार देखा। सब जनी हमते कहै कि बुआ, मैंनो भागमान है, पुन्न लूट लै गई। तुमरे चरनन की सौह भैया, आज दिन-भर हमको ऐसी रुवाई छूटी है ऐसी छूटी है कि (रोने लगी, फिर रोते-रोते ही कहा) एक तो हमार भौजी चली गईं दूसरे राम जी ने हमरा भाग खोटा कर दिया।" बुआ फूट-फूटकर रोने लगी।

बाबा थके हुए थे। एक तो अर्द्धांगिनी के अवसान से उनका मन एक सीमा तक अवसन्न था और फिर दिन-भर अपने भक्तो की श्रद्धा के अंधाक्रमणो का त्रास भी सहा था। इसके अलावा आज उन्हे चलना भी अधिक पडा था। बाबा

के आदेश से गणपति अपने घर चले गए। रामू चाहता था कि गुरू जी विश्राम करें और वह पैर दाबे। आज उन्हे सोने में भी अबेर हो गई थी। रामू को गुरु का कष्ट सदा असह्य था। वह उन्हे श्यामो की बुआ के व्यर्थ क्रन्दन से मुक्त कराना चाहता था।

बेनीमाधव जी भी पहली बार गुरू जी की जन्मभूमि में आए थे। गुरु के संबंध मे कुछ बाते आज वे अकस्मात् ही जान गए थे और बहुत कुछ जानने के लिए उत्सुक थे। उनका संघर्षशील मानस एक महापुरुष के संघर्षशील जीवन से अपने लिए बल ग्रहण करना चाहता था। थोडी देर पहले ही गुरू जी महाराज ने अपने बालमित्र की बात का उत्तर देते हुए बड़ी कचोट और व्यंग के साथ कहा था कि जन्मते ही घर से कुटिल कीट की तरह निकाल फेंके गए थे। इस बात का क्या रहस्य है? उनका जीवन-वृत्त क्या है? बाराह क्षेत्र इनकी गुरुभूमि है। कौन थे इनके गुरु? बाराह क्षेत्र मे बेनीमाधव बाबा ने जब एक दिन उनसे पूछा था तो उत्तर मिला था कि नररूप में नारायण मेरी बांह गहने के लिए आ गए थे। फिर प्रश्न किया तो कहा कि अवसर आने पर सुनाएंगे। इसके कुछ ही दिनों बाद अचानक राजापुर आने का कारण बतलाए बिना ही वे ऐसा संयोग साधकर यहां के लिए चले कि अपनी जीवनसंगिनी का अंतिम क्षण मोक्षकारी बना दिया। क्या महाराज पहले ही से जान गए थे? ··इस प्रकार बेनीमाधव जी अपने भीतर अनेक प्रश्नों से पीडित थे और उनका समाधान पाने को आतुर भी। पर यह बुढिया तो पीछा ही नही छोड रही, क्या किया जाय।

श्यामो की बुआ बाबा के चरण पकडकर बैठ गई थी। वह रोए ही जा रही थी, हठ साधकर अपनी ही कहती चली जा रही थी। बाबा के दोनों चेलों ने उनसे विनती करनी चाही पर वे और भी चढ गईं, रामू के पैर को एक हाथ से ढकेलने का आवेश दिखलाकर क्रोध मे बोली—"दूर हटो। तुम कौन हो हमको समझावै वाले? यह हमारे भैया हे। हजारन को राम जी के दरसन कराइन हैं, मरती बिरिया हमारी भौजी को भी कराए। निगोड़ी मैनो हमको धोखा देके पुन्यात्मा बन गई। (रोकर) हम अपनी भौजी की असल चेली, और हमही दरसन न कर पाईं। हम अब इनके चरन न छोड़ैंगे। इन्हे हमारा उद्धार करना ही पड़ेगा। भौजी कह गई है हमसे कि स्यामो की बुआ, तुमही असल चेली हो।" श्यामो की बुआ ने बाबा के पैर पकड़कर क्रंदन ताण्डव मचा डाला।

बाबा बेचारे उन्हे कैसे मना करे। काल, समाज अथवा अपने ही मन से आघात खाकर वे भी तो अपने आराध्य से ऐसा ही हठ करते है। ऐसी ही विनय, ऐसा ही विलाप, अश्रुवर्षण उन्होने भी बार-बार किया है। अपने भीतर राम-भरोसा पाने से पूर्व वे भी श्रद्धावश ऐसे ही अनेक साधु-संतो के पैर पकडकर राम जी का दर्शन कराने के लिए गिड़गिड़ाते थे। उन्होने भी गहरी उपेक्षा, तीखे-कडवे वचन, भूख-दारिद्र्य क्या नहीं सहा? आज राम-नाम के प्रताप से वे यह दिन भी देख रहे है कि राव-रंक सब उनके आगे भिखारी बनकर चिरौरिया करते है। फिर भी उन्हे लगता हे कि श्रीराम के चरणो मे उनकी प्रीति-प्रतीति अभी पूरी नही हुई। परन्तु दुनिया समझती है कि वे श्रीराम सरकार के दर्शन करा सकते

हैं। 'हे राम, तुम्हारे नाम की महिमा और तुम्हारे ही शील से आज मुझे तो यह गौरव देखने को मिला है उसे देखकर मैं बहुत सकुचित हो रहा हूं।'

भावो ने उद्वेलित होकर अपनी अन्तर्लय का स्पर्श पाया, मन मे चलते हुए शब्द अब लयात्मक गति पाने लगे—

"द्वार द्वार दीनता कही काढि रद, परि पाहूँ।
हे दयालु दुनी दस दिसा दुख दोष दलन छम···"

"भैया।"

"··· कियो न संभापन काहू। द्वार द्वार—"

"भैया, हमार ··"

"जा वहिनी जा। राम-राम रटती आगन मे सो जा। राम जी तुझे सपने मे दर्शन देंगे।"—फिर गाते हुए वैठक मे प्रवेश कर गए। मृतक के रिक्त स्थान पर दिया जल रहा था। एक क्षण उसे देखते खड़े रहे, फिर बाहर का द्वार खोला और चबूतरे पर आ गए।

रामू की एक आदत पड गई है, गुरु जी जब बिना कागद-कलम लिए ही भाव-वश होकर गुनगुनाने लगते है तो उनके पीछे-पीछे वह आप भी उन्ही शब्दो को उसी गायन पद्धति से दोहराने लगता है। उसे एक बार का सुना याद हो जाता है।

वावा चौकी पर बैठ गए। पद गुनगुनाते दोहराते हुए रामू झट से अपने कंधे पर रखा अंगौछा उतारकर गुरु जी के चरण पोंछने लगा। गुरु के चलित अन्तर्भाव का झटका बाहर पैरो मे प्रदर्शित हुआ। एक चरण का झटका रामू के हाथों को और दूसरा घुटने को लगा। बहते भाव को अपनी इस बाहरी हरकत से ठेस न पहुचे इसलिए उसने बड़ी फुर्ती और मुलायमियत से गुरु का लटका हुआ बाया चरण अपने दाहिने हाथ से दवा लिया और गुनगुनाहट को तनिक ऊंचा उभार देकर गुरुमुख की ओर आदतवश देखने लगा, यद्यपि अधेरे पाख की रात मे इतनी दूर से उसे बारीकी से कुछ सूझ नही सकता था। बावा की भाव-धारा, अवाध गति से बढ रही थी, किन्तु अब स्वर मे रोष भी प्रकट हो रहा था ·

तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यो तज्यो मातु पिताहूँ।
(स्वर का रंग बदला)· ·काहे को रोष ?· ·
काहे को रोष दोष काहि धौ मेरे ही,
अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाहू।···

रोष का शमन होते ही शेष सारी पक्तियां धाराप्रवाह गति से गाई गईं। रामू को एक बार भी अपना स्वर उठाकर बाबा की सहायता नही करनी पडी। बाबा का स्वर आत्म-निवेदन-रस में भीगता ही चला गया। अत तक आते-आते इतना कोमल हो गया था कि करुणा और आनन्द मे भेदाभेद करना ही कठिन था।

गुरुमुख गगा मे दोनो शिष्य भी तैरते और डुबकिया मारते हुए छक रहे थे। लेकिन सबसे अधिक सुख तो भौजी की असल चेली ने पाया। बैठक के द्वारे वे चौखट से टेक लगाए बैठी थी। बडी ठसक-भरे सतोष के साथ अपने उठे हुए घुटनों पर मुट्ठी बधी बाहे टेककर उनपर अपनी ठोढी टिकाकर सुन रही थी।

संत वेनीमाधव ने उठकर गुरू जी के चरणस्पर्श करके कहा : "कृतार्थ भया महाराज। आपके जन्म-काल के त्याग वाली बात हमारे मन मे चल रही थी। उसे आपने कृपापूर्वक अपनी वाणी से और उत्तेजित कर दिया है। और जब इतनी ऊमस बढाई है तो कृपापूर्वक मेह भी अवश्य ही बरसाइयेगा। मेरे और लोक-कल्याण के लिए अनुचर की झोली मे आपका जीवन-वृत्त पड जाय तो सेवक का यह जन्म सफल हो जाय। वे सत कौन थे जिन्होने···"

श्यामो की बुआ खुद भी अपने भैया से कुछ निवेदन करना चाहती थी। उन्हे भय हुआ कि एक शिष्य जब इतनी लम्बी बकवास कर रहा है तो निगोड़ा दूसरा भी कही न लपक पड़े, इसलिए झट से उठी और चलती बात मे भैया के पैरों पड़कर कहना चालू किया—"भैया, तुम पूरे अन्तरजामी हो। हमार जिउ जुडाय गया। अरे हम अपनी भौजी की असल चेली और चमत्कार देखिस निगोड़ी मैनो। अब हम कहैगी कि हमरी खातिर भैया ऐसा भजन रचि के सुनाइन कि सुनतै एकदम से हमार मोच्छ हुइ गई। अरे, हम तो तुम्हारी दया से तर गई भैया। चलती बिरियां भौजी हमैं इन चरनन की सरग-सीढी दै गई।" भावावेश में आकर श्यामो की बुआ रोने लगी।

बावा ने बुआ की झुकी पीठ पर हल्की उंगली कोचकर छेड़ा—"अरी तू तौ यहा तर के बैठ गई, वहा तेरी भौजी का दिया बुझ गया।"

"हाय राम।" कहके बुआ उठने को हुई कि बावा ने उनके सिर को अपने हाथ से थपथपाकर कहा—"रहने दे, हमने तो ऐसे ही छेड दिया। रतना का दीपक तौ हमारे हिरदै मे दीपित है। जा, सो जा। और अब भौजी-भैया रटना छोड़कर सीताराम-सीताराम रट। जा।"

पद-रचना के समय पैर पोछने का काम रुक गया था, वह रामू ने बुआ-बाबा संवाद की अवधि मे कर डाला। अब इस प्रतीक्षा मे था कि बावा लेटे और वह चरण चापना आरंभ करे, किन्तु बावा पैर पर पैर रखे वैसे ही बैठे रहे।

रामू ने गद्गद स्वर मे कहा—"विनय के २७५ पद आज रच गए प्रभु।"

खोई हुई हा कहकर बावा मस्ती मे आकर धीरे-धीरे गाने लगे—

साथी हमरे चलि गये, हम भी चालनहार।
कागद मे बाकी रही ताते लागत बार॥

बावा ने इतने करुण स्वर मे गाया कि शिष्यो की आंखे भरने लगी। वेनी-माधव बोले—"हम तो आपका ग्रथावतार कराने के लिए आतुर हो रहे है और आप कबीर साहब के शब्दो की आड लेकर मरण कामना कर रहे है। अपने अनुचरो पर इतना अन्याय न करे गुरू जी।"

"अवतार धारण करने पर अविनाशी ईश्वर को भी मृत्यु के माध्यम से ही अपनी लीला सवरण करनी पड़ती है। मैं तो प्रभु का एक तुच्छ सेवक मात्र हू।"

"तो क्या मेरी इच्छा पूरी न होगी, महाराज ?"

"रामभद्र जाने। सब कुछ उन्ही की इच्छा से होता है। किन्तु हमारे जीवन-वृत्त में धरा ही क्या है। जन्म-काल से लेकर अब तक केवल अपार दुःख-दुर्भाग्य

ही मेरे साथ रहा है। लोक मे कही ठौर-ठिकाना न मिला, परलोक को जानता नही। मेरे जीवन मे जो सारतत्त्व है वह केवल राम-नाम ही है।"

"वही तो दर्शाना चाहता हू, गुरू जी।"

"चरितो मे रामचरित ही श्रेष्ठ है।"

रामू बोला—"आप ही ने बताना है प्रभु, कि राम के नाम का महत्त्व राम से भी अधिक होता है। सत जी की इच्छा लोक की इच्छा है।"

"मानस मे, विनय के पदो मे, कवितावली और दोहो मे अपनी अनेक रचनाओ मे मैंने अपने जीवन की अनुभूतिया ही तो समर्पित की है।...आज श्मशान मे उस पण्डित ने दम्भ वश मुझपर यह लाछन लगाया कि नारी के प्रति मेरे मन मे घृणा और उपेक्षा का भाव है।"

"यदि हो भी तो इसमे अनुचित क्या है प्रभु? विरक्त को सासारिक राम-नाओ और कामिनियो से मन मोडने के लिए उनकी उपेक्षा करनी ही पड़ती है।"

"सत्य है महाराज, भगवान शकराचार्य भी कह गए है कि नारी नरक का द्वार है। इस वासना के ..."

बाबा ने टोका—"यह चर्चा फिर कभी हो सकती है। विश्राम करो बेनीमाधो। रामू, भीतर का दीप जला दे पुत्र, मैं यही सोऊगा।"

"जो आज्ञा प्रभु, किन्तु भीतर तो बडी गर्मी है।"

"भीतर की गर्मी बाहर की गर्मी को दबा देती है।"

रामू को फिर कुछ कहने का साहस न हुआ। वह भीतर वाले दालान के आले से दिया उठा लाया, कमरे का बुझा दीप आलोकित किया फिर मृतक के स्थान का दीप भी जलाने चला तो बाबा बोले—"उसे रहने दे। दालान का दिया यही रख दे और विश्राम कर।"

"आप अकेले रहेगे, प्रभु?"

"अकेला क्यो, मेरी बुढिया मेरे साथ रहेगी, भाई।"

"तो चौकी ..."

"चौकी-बिछावन की दरकार नही। उसके धरती पर छूटे हुए प्राण मुझे यही मिलेंगे। जा।"

३

रामू आधे क्षण तक स्तब्ध खडा रहा। फिर कुछ कहने-पूछने का साहस न बटोर सकने के कारण दिया बालकर द्वार बन्द कर दिए। चबूतरे वाले द्वार के सामने बेनीमाधव खडे थे। बाबा ने उधर के द्वार भी बन्द कर लिए और उस स्थान पर जा बैठे जहा उनकी पत्नी ने अपनी देह त्यागी थी। थोडी देर सिर झुकाए बैठे अपने दाहिने हाथ से उस जगह की मिट्टी सहलाते रहे, जहा रत्ना का मस्तक था। ध्यान मे प्रिया का अन्तिम रूप-दर्शन था और मनोदृष्टि मे चार

आखे एक-दूसरे मे लीन होकर आनन्दमग्न थी।

"सीताराम ! सीताराम !"—रत्ना का स्वर है। कहा से आ रहा है ? सवेरे धरती पर दिखलाई पड़ती अर्द्धांगिनी अब माया की तरह विलुप्त है। "सीताराम ! सीताराम !" कहां है ? मन के झरोखे से झाक रही है—दिये की लौ मे झलक रही है। धरती पर टिकी हथेली उठकर गोद मे बाये हाथ की खुली हथेली पर आ जाती है, काया मे सधाव आता है, आखे दिये की लौ पर टिक जाती है। दोनो भौहो के बीच बाबा के ध्यान-बिन्दु से उनका सूक्ष्म मन जुगनू-सा उड़ता हुआ प्रकट होता है और सीधा दिये की लो मे समा जाता है। उनकी अर्न्तदृष्टि मे लौ लघु से विराट होती जाती है। उनकी कल्पना म पूरा कमरा अनत विद्युत प्रकाश से ऐसा जगमगा जाता है, मानो कमरे का फर्श और दीवारे ईंट-चूने की न होकर मणिजटित हो।

"सीताराम ! सीताराम !"—कानों मे गूज समाई है, जिसमे अपना और रत्ना का स्वर गंगा-यमुना के समान एक मे घुला-मिला है। गूज की गति तीव्र से तीव्रतर हो रही है, शब्द शब्द न रह मधुर वाद्यध्वनि से गुजरित हो रहे हैं। मणि-मणि मे धनुषधारी राम और जगदम्बा सीता प्रसन्नवदन अभय मुद्रा मे खड़े हैं। बाबा का मुख-मण्डल आनन्दलीन है। छोटे-छोटे अनत विद्युत् कण तीव्र गति से घुलते-मिलते एकाकार धारण करते इतने बढ जाते है कि अर्न्तदृष्टि मे केवल युगल चरण ही दिखलाई दे रहे है—और फिर दृष्टि को एक मीठा झटका लगता है, रत्ना मा के चरणो मे झुकी बैठी है—"पर मै कहा हू ?"

नई व्याहुली-सी अलकृत रत्ना तनिक चेहरा घुमाकर इन्हे देखती है, फिर नटखट गुमानी मुद्रा मे पूछती है—"मुझे साथ लाए थे ?"

प्रश्न मन को सकुचाता है, फिर किंचित उत्तेजित होकर स्वर फूटता है। "तुम कब मेरे साथ नही रही ?"

"तुम मुझे भला क्यो रखोगे, नारी-निन्दक !" रत्ना ने मीठी आखे तरेरी।

"कौन कहता है ?"

"सारा जग !"

"पर क्या यह सत्य है ?"

"शूद्र, गंवार, ढोल, पशु, नारी ·"

"मात्र यही क्यो और भी अनेक वाक्य है, परन्तु वे कथा-प्रसंग मे आए हुए पात्रो के विचार है ?"

"और तुम्हारे ?"

"जिनके श्रीचरणो मे मेरी आसक्ति है उन्ही के श्रीमुख से वे विचार भी प्रकट हुए है। तुम्हारे विरह और प्रेम के उद्गार इतने शुद्ध थे कि वे राम के उद्गार बनकर जानकी माता के प्रति अर्पित हो गए—

देखहु तात बसत सुहावा,
प्रिया हीन मोहि भय उपजावा।

'देखहु' शब्द की ध्वनि मात्र से नया बिम्ब जाग्रत् हो उठता है—वन मे

तापस राम तुलसी के स्वर मे लक्ष्मण से कह रहे हैं—

लछिमन देखत काम अनीका।
रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका।
एहिके एक परम बल नारी।
तेहिं ते उबर सुभट सोइ भारी।

"उबर कर अपना पल्ला छुडा तो लिया मुझसे। फिर मैं कहा ?"

"तुम्हारी वासना से उबरा किन्तु तुम्हारे प्रेम मे डूब भी गया, और ऐसा डूबा कि···"

"पता ही न चला।" (हसती है)

"प्रेम हो और पता न चले ?" अशोक वाटिका मे राम-विरहिणी सीता के पास कपीश्वर श्रीराम का सदेश लेकर पहुचते हैं—मन के सकेत मात्र से कल्पना का दृश्य उभर आता है। हनुमान के हृदय मे खडे राम अशोक वन मे बैठी सीता को देख रहे है और कपि कह रहे हैं—

कहेउ राम वियोग तव सीता। मोकहुँ सकल भये विपरीता॥
नवतरुकिसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू॥
कुवलय विपिन कुंतवन सरिसा। वारिद तपत तेल जनु वरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा॥
कहेहू ते कछु दुख घटि होई। काहि कहहुँ यह जान न कोई॥
तत्त्व प्रेम करि मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥

अशोक वाटिका ध्यान-पटल से ओझल हो गई है। एक ओर काशी के भदैनी क्षेत्र की एक कोठरी मे मानस लिखते हुए स्वय और दूसरी ओर इस घर के ऊपर वाले कमरे मे उदास रत्ना, जो मानो शब्द-प्रवाह मे बहकर आती है और लिखते हुए तुलसीदास के हृदय मे विराज जाती है। फिर बिन्दुवत् श्री सीताराम की इष्ट मूर्ति ध्यान-पट पर आती और क्रमशः इतनी विराट हो जाती है कि अब केवल युगल चरण ही दृष्टि के सामने है, उसमे प्रणत रत्ना है और वे हैं। विम्ब मे ठहराव आ गया है। विन्दु फिर विन्दु हो जाता है। बाबा की बाहरी काया आनन्द विभोर मुद्रा मे मूर्ति-सी निश्चल है।

बाहर बादलो की गड़गड़ाहट है, तेज़ तूफान और वर्षा की साय-साय है। बिजली का भयानक धमाका होता है। कमरा हिल उठता है, ध्यान भग हो जाता है। "मैया, भैया, प्रभु जी, गुरू जी," शब्दो की घबराहट और दालानवाले द्वार के किवाडो की भड़-भड़-सुनकर वे उठे और द्वार खोले। कमरे के भीतर तीन आकारो से पहले हवा के झोको ने प्रवेश किया और दिया बुझ गया।

"घर गिर रहा है, भैया, भागौ भागौ। ऊपर वाले कमरे पै गाज गिरी, सब भरभराय पड़ा।" कहकर श्यामो की बुआ छाती पीटती हुई 'राम-राम' बड़बड़ाने लगी।

बाबा कमरे से बाहर निकलकर दालान मे आ गए। तीखी बौछारो से वह

जगह भीग रही थी । दीवार से चिपककर खडे होने पर भी पानी से बचाव नही हो सकता था । आगन मे घना अधेरा होने के कारण ठीक तरह से यह अनुमान ही नही लग पाता था कि कितना भाग टूटा ।

बाबा बोले—"यहा कब तक खडे रहेगे, भीतर चलो ।"

"अरे भैया, जो यह भी भरभरा के गिर पडा तो क्या होयगा ?" श्यामो की बुआ घबराकर बोली ।

"तो हम सब ढोल बजाते भये एक साथ बैकुण्ठ पहुचेगे और कहेगे कि राम जी, इस डरपोक डोकरिया को लै आए ।"

रामू और बेनीमाधव हस पड़े । बिजली फिर चमकी, जल्दी-जल्दी दो बार उजाला हुआ, सारा आंगन ईटो से भरा पडा था । बाबा का ध्यान बीती स्मृतियो के स्पर्श से बच न सका । जब गृह-प्रवेश हुआ था कितनी धूमधाम थी ! पण्डितो की पूजा, ज्यौनार···फिर गाव की स्त्रियो ने मंगल-गीत गाते हुए नववधू को प्रवेश कराया था—गाय थी, दो दास थे, रत्ना सारे घर मे काम-काज करती-कराती व्यस्त डोला करती थी···पति-पत्नी हिंडोले मे सोते नन्हे तारापति को मुग्ध दृष्टि से देखकर फिर एक-दूसरे को देख रहे है···फिर कुछ ध्यान न आया, कलेजे मे सास भर आई और ठण्डी होकर बाहर निकल गई, भीतर जाते हुए बोले—"वाह रे भाग्य । कभी घर न बसने दिया मेरा ।"

"अरे प्रभु जी, आपका घर तो अब जन-जन के हृदय मे बस गया है ।"

"सुखी रहो बच्चे, तुमने मेरी भूल सुधारी । राम जी की उदारता को क्षण-भर के लिए भी बिसारना नमकहरामी है । इतना साधते-साधते भी मन मोह की कीच मे फिसल ही जाता है । राम-राम ।"

इतने ही मे गणपति और उनके कुछ बाद राजा के लड़के-पोते अपने साथ मे कुछ और लोगो को लिए हुए आ पहुचे । गाज-गाव मे ही गिरी है, कहा गिरी, इसका सही अनुमान न होने पर भी राजा ने अपने बेटो को बाबा की कुशल-मंगल पूछने के लिए भेजा । कुछ पास-पड़ौसी भी टाट के बोरे ओढ़ आ पहुचे, फिर पड़ोस से दो मशाले आई । कमरे-दालान की स्थिति देखी गई । यह भाग भी अधिक सुरक्षित न था ।

बाबा बोले—"जो भाग गिरना था वह गिर चुका । तुम लोग भी चिन्ता-मुक्त होकर अपने-अपने घर जाओ । तुलसी को एक रात शरण देने के लिए यह स्थान अभी सक्षम है ।"

बाकी सब तो बाबा की आज्ञा से लौट गए पर गणपति ने वही रात बिताने का हठ किया । ऐसे हठ से भौजी की असल चेली का हठ भी भला क्योकर न प्रेरित होता । बहुत कहने पर भी वह न गईं, रतजगा करने का निश्चय हुआ और कीर्तन होने लगा ।

४

दो दिनो तक बाबा भक्तो की भीड़ से इतने घिरे रहे कि उन्हे दिन मे तनिक भी विश्राम न मिला। सवेरे संकटमोचन पर कथा सुनाते और दिन-भर अपने घर पर रोग-शोकधारी नर-नारियो को धीरज और विश्वास देते हुए किसीको काशी विश्वनाथ की भभूत और किसीको मंत्र देकर अपनी बला प्रेम से हनुमान जी के चरणो मे फेंकते हुए उन्होने दो दिनो मे हज़ारो की भीड़ निबटाई। दूसरे दिन सायंकाल घोषित भी हो गया कि बाबा कल यहा से चले जायेगे। कहा जायेगे यह पूछने पर भी किसीको न बतलाया गया।

नब्बे वर्ष के तपस्वी के चेहरे पर रोग-जर्जरता की हल्की छाप तो थी पर थकावट का नाम न था। इसे देखकर गाववाले तो चकित हुए ही बेनीमाधव जी भी चकित हो गए। सूकर खेत मे भी बाबा के दर्शनार्थ बड़ी भीड़ आया करती थी, पर वहा हवा फैल गई थी कि बाबा चार महीने रहेगे इसलिए दर्शनार्थियो की दैनिक संख्या मे संतुलन आ गया था। उन्हे विश्राम करने का अवसर मिल जाता था। बेनीमाधव जी ने बाबा के प्रति काशीवालो की भक्ति-भावना के भी अनेक प्रदर्शन देखे है। काशी मे भीड़ तो नित्य ही रहती पर बाबा चूकि वही के निवासी है, गलियो-महल्लो मे प्राय. डोल भी आते है इसलिए वह दाल मे नमक की तरह उनके जीवनक्रम मे रमी हुई है। परन्तु राजापुर का यह विशाल जन-समूह तो बेनीमाधव जी के लिए अपूर्व था। हिन्दू, मुसलमान, अमीर, गरीब मे कोई भेद नहीं, सबकी जात और वर्ग एक है, वे आर्तजन है। उनके तन-मन नाना बाधाओ से पीड़ित होकर घबरा उठे है, उन्हे सहारा और प्रेम चाहिए। तुलसी, राम का खास गुलाम, अथक भाव से रामजनो की सेवा करता रहा। संयोग यह भी रहा कि बदली रही पर पानी न बरसा।

तीसरे दिन तड़के मुह अधेरे गणपति जी और रामू पण्डित अपनी नियम पूजा से खाली हो चुके थे किन्तु बाबा का ध्यान पूरा होने मे अभी देर थी। बेनीमाधव जी भी लम्बी माला जपते है पर उनका जप बाबा से पहले पूरा हो जाता है। उस समय तक स्नानार्थी आने लगते है। आज भी आने लगे थे। ध्यानमग्न बाबा की तनी हुई देह और शांत मुखमुद्रा को कुछ देर तक बड़े भाव से देखते रहने के बाद गणपति बोले—"यह आयु और उसपर भी जवानो की-सी फुर्ती! नियम से व्यायाम करना और बिना थकावट इतनी भीड़ से निपटना इन्ही का काम है। हम तो इनके बच्चे समान है पर इस उनहत्तर-सत्तर की आयु मे ही थक गए।"

रामू सोत्साह बोला—"अरे काशी के अकाल और गिल्टी की महामारी के दिनो मे इन्हे देखते आप। दसो दिशा डोल-डोल कर काशी का हाहाकार अपने भीतर के राम बल से रौंदते चलते थे।"

"सुना, उन दिनो यह आप भी गिल्टी से पीड़ित रहे थे?"

"वह तो बात रोग हुआ था। इन्होने बड़ा दुख झेला पर उसमे भी जब तक

शरीर चले तब तक दूसरो का दुख भी झेलते ही रहते थे। इन्ही के उत्साह से हम सैकडो जवान थककर भी न थक पाए। दिन-रात रोगियो की सेवा करते, शव ढो-ढो कर फूकते और आठो पहर सीताराम की गुहार लगाकर अपना मनोबल बढाया करते थे। और सचमुच हममे से दो लडको को छोड़कर कोई न मरा।"

तब तक बेनीमाधव जी भी आ पहुचे। बातो का रस गहरा हो चला। बेनीमाधव जी की कथा-जिज्ञासा अब बड़ी बेसबर हो चुकी थी। रामू से चिरौरी करने लगे कि किसी जुगत से बाबा को अपनी जीवन कथा सुनाने के लिए प्रेरित कर दो। गणपति जी को सहसा एक सूझ आई, बोले —"अच्छा, हम आपकी बात बनाय देगे। हम जाते है और रजिया काका, बकरीदी काका को लेकर पहुचते है। रजिया काका को साथ लेगे तो बात का प्रसग अपने-आप सध जायगा।"

बेनीमाधव उपकृत नयनो से उन्हे देखने लगे। गणपति जी तीव्र गति से दो डग चले फिर पलटकर रामू से कहा—"रामू जी, जाते समय गुरू जी के फलाहार के लिए हमारे घर पर एक आवाज़ लगाते जाइएगा। तैयार तो सब रहेगा ही।"

आधी-पौन घडी बाद ही बाबा का आधा आगन गुलजार हो गया, आधा गिरे मलबे से भरा था। चटाइयो पर बकरीदी, राजा भगत, सत बेनीमाधव, गणपति उपाध्याय तथा गाव के दो-एक सम्भ्रात लोग बैठे थे। तुलसी के गमले के पास बाबा का आसन लगा था, पास ही बायी ओर के दालान मे रतना मैया का ठाकुरद्वारा था। चौकी पर मैया द्वारा पूजित बाबा की चरणपादुकाए रखी हुई दिखलाई दे रही थी। उसी दालान के दूसरे छोर पर कोने मे चूल्हा बना था और रसोई के कुछ बर्तन रखे थे। चूल्हे से कुछ हटकर कोठरी का बन्द द्वार भी दिखलाई दे रहा था। बारिश और धूप से बचाव के लिए जिस ओर चूल्हा बना था उसके सामने वाले दालान का द्वार फूस की छपरी से ढंका हुआ था। दाहिनी ओर का सारा भाग ध्वस्त पड़ा था। बाबा का मुख और दूसरो की पीठ बैठकवाले दालान की तरफ थी।

बात राजा भगत ने आरभ की, बोले—"हमारा तो यह मन होता है कि दुइ दिन हमारी अमराई मे बिताओ। हम तुम्हारी मालिस करेगे। सग-सग कसरत करेगे, डोलेगे, आम खाएगे, दूध पिएगे औ मगन हुइकै भजन-भाव करेगे। यह लड़के, चेला-चाटी कोई वहा न रहेगा।"

"वाह काका, तुमने तो अपने ही स्वारथ की बात सोची।" गणपति जी ने मीठी शिकायत की।

राजा बोले—"हमारा यह स्वारथ भी बड़ा है पण्डित। जब तक भौजी की जिम्मेदारी रही तब तक तो हमारे मन मे कही चिन्ता नागिन जरूर रेगती रही पर अब दसो दिसा से मन मुकुत है। दुइ दिन इनके चरन औ सेइ ले तो हमारी सब साधै पुर जाय।"

बाबा प्रसन्न मुद्रा मे बोले—"ठीक है तो आज चलो।"

"आज तो भैया, हमारे घर मे तुम जूठन गिराओगे, बाल-बच्चो का यह

सुख हम न छीनेंगे।"

"आज यहा रहेगे तो कल तुमको हमारे सग चित्रकूट चलना पड़ेगा। वहं सतसग होगा।"

राजा भगत प्रसन्न होकर बोले—"यह तो और अच्छी बात है। अरे अब हम घर से मुकुत है। लडके-वाले घर-गिरस्ती सभालते हं। एक भौजी का बधन रहा तो वह रामपुर चली गईं, अब हम तुम्हारे संग-सग ही डोलेंगे भैया।···पर इन बातो से पहले अब हम गाव के मतलब की एक बात पूछ लें कि अब यह घर तुम किसे सौंप रहे हो ?"

अपनी काया की ओर इगित करके मुस्कराते हुए बाबा बोले—"हमार घर तो यह है, वह भी जब लग राम न छडावें।"

बकरीदी बोले—"यह घर तो भैया अब गाव भरे की अमानत है। हमारी तो फकत यह राय है कि ई मे मन्दिल अस्थापित कर दिया जाय। और तुलसीदास महाराज के बैठका मे लड़के पढ़ैं।"

सभी ने एक स्वर मे समर्थन किया। राजा बोले—"तो फिर हम एक बात और कहेगे। गनपती महराज को पुजारी बनाय के ई जगह सौंप देव। इनके घर-भर ने लगन ते भौजी की सेवा की है, और भैया के भी पुराने चेले है।"

"हा, रत्ना के लिए भेजी गई यह रामचरित मानस की प्रति और उनके व्यवहार की वस्तुए इसी के पास रहने से मुझे भी संतोष होगा। तारापति न रहा, गणपति तो है।"

वेनीमाधव जी के चेहरे पर भी अपने शिष्यत्व का फल प्राप्त करने की उतावली झलक उठी। बड़ी चतुराई से बात उठाई, पूछा—"यह घर आपका पैतृक निवास है ?"

"नही। वह पुराने विक्रमपुर गाव के खडहर तो आधे से अधिक जमना जी मे तभी समा गए थे जब हम पच नान्हे-नान्हे रहे। महराज की जलमभूम भी जमना जी मे समा गई। पुरखे बताते रहे कि तुलसी भैया को लैके मुनिया कहारिन जब गाव ते चली गई तो एक साधू आया और कहिसि कि आज ई गाव का सर्वनास होयगा, जिसे बचना होय वह गांव छोडि के चला जाय। उसके दुइ घडी बाद मुगलो की दौड आई। बड़े महराजा, भैया के पिता, मारे गए। सब गांव स्वाहा हुइगा। हम लोगो के पुरखे हम सबको लैके तारीगाव भागे रहै। बडी परलै मची रही। राम-राम।" राजा भगत ने बतलाया।

"वेनीमाधव, तुम्हारी इच्छा पूरी होने का अवसर आ गया है। मेरे राम जी का पावन जीवनचरित महादेव भोलानाथ ही उद्घाटित कर सकते थे किन्तु मुझ अकिंचन की जन्मकथा यह बकरीदी भैया और राजा भगत ही सुना सकते है।"

बाबा की बात पर राजा भगत भी बोल उठे—"बकरीदी भइया ने एक बार हमे-तुम्हे सुनाया भी रहा। तुमको याद है न, भइया ?"

"इसी ज़मीन का सौदा करने राजा के साथ इनके यहा गया था। तब इन्होने ऐसे रोचक ढग से पिछले समय की बाते सुनाई थी कि मेरी आखो के

आगे उनके सजीव चित्र उभर आए थे।"

गणपति जी भी उत्साह-भरे स्वर मे बोले—"बकरीदी काका, यह लोग बड़ी दूर से सुनने की खातिर आए है।"

बकरीदी काका ने एक बार अपनी झुकी कमर को तानकर सीधी करने का प्रयत्न किया, कहने का जोश छाती मे फूला, धुधली आखे दूर अतीत मे सधी पर वैसे ही खासी आ गई। बूढी काया के भीतर जागती जवानी का संघर्ष उनके चेहरे पर तमककर उभरा और खासी को रुकना पडा। कुछ क्षण अपने गले की खराश पर विजय पाने मे लगे, जिससे आवाज का जोश फिर कुछ थका-थका-सा हो गया। धीरे-धीरे बात उठाई, कहा—"अब हमारे भीतर वैसा जवानी का जोस तो रहा नही बच्चा, बाकी यह बात है कि हमारे अब्बा बताते रहे कि गोसाई महराज का जनम भया रहा तौने दिन, वही बिरिया अब्बा बड़े महराज के पास हमारे गिरौ-नछत्तर पूछने के बदे गए रहे···।"

"बकरीदी भैया, राजकुअरी और वेडनियो की बात बताओ पहले। तभी तो इन पंचों को गांव की विपदा का अजाद लगेगा।"

राजा भगत की बात पर बकरीदी मियां ने समर्थनसूचक सिर हिलाया और नये जोश मे कहना शुरू किया—"हा, तो ये भया कि हुमायू बास्साय रहे। तौन उनके बाप पठानो से दिल्ली फतह कर लिहिन और फिर चारो अलग देस मे कयामत आय गई। मुगल ऐसी जोर से आए कि कुछ न पूंछौ। कही रजपूतो से ठनी, कही पठानों से कटाजुज्झ हुआ। बस लूटपाट, मारकाट, आगजनी, यहै हाल रहा। हमारे राजा साहेब जैसपुर के पठानों के साथ रहे। तौन मुगल राजा साहेब की गढी घेरि लिहिन—आसपास के गावन मा गुहार पड गई। हमरे गांव की सरहद पर बाह्मन, छत्तरी, अहिर, जुलाहा सातो जात के सूरमा हरदम डटे रहे।" × × ×

पेडो के झुरमुट के पीछे छिपकर खडे हुए लगभग सौ-सवा सौ बहादुर उत्तर दिशा की ओर देख रहे है। उस दिशा मे लगभग कोस-भर की दूरी पर एक विशाल जंगल जल रहा है। लडवैयो की गरज हुंकार कानो के पर्दे फाड़ रही है और उससे भी अधिक हजारो मनुष्यो का आर्तनाद-भरा कोलाहल इन बहादुरो के चेहरो पर निराशा, क्षोभ और जोश की उड़न-परछाइया डाल रहा है। कोई किसी से बोल नही रहा। मिलने पर आखे प्रश्नो के उत्तर मे प्रति-प्रश्न ही झलकाती है। आवाजे सुन-सुनकर इन लडवैयो मे किसी-किसी का ध्यान बरबस अपने हथियार लाठियों-भालो और तीर-कमानो पर जाता है, कलेजो से हताश निसासे ढल पडती है।

गाव मे माई के थान पर कुछ बूढिया आपस मे खुसुर-फुसुर बाते कर रही है, "अरे ई दैउ के वज्जर अस जौन-जौन गरज रहे है उनसे कौन जीत सकत है भला।"

"हमे-तुम्हे तो आत्मा की बहुरिया ने अटकाय लिया। नही तो अपनी बिटि-यन-बहुरियन के साथ हम भी जमना पार हुइ जाती अब तलक।"

"अब भाई, जलम-मरन तो कोऊ के वस की बात है नाही। हुलसी विचारी

तो आपै दुखियाय रही है। कल संझा के वखत इत्ते-इत्ते दरद उठे पर फिर बन्द हुइ गए। रात से तौ बिचारी के जर भी चढि आया है। हमते रोय के कहै कि भौजी जाने कौन बरम-राकस हमरे पेट मे आयके बैठा है।"

"अरे, महराजिन, यू लडाई-झगडा, जीना-मरना तो रोज का खिलवाड़ है। हमरी जिठानी के भी बाल-बच्चा होय वाला है आजकल मे। हम भी तो अटके बैठे है, का करै। हुसैनी जोलहा आय रहा है। इसकी घरैतिन ने भी तौ परौ कि नरौ बेटा जना है।" सुकरू अहिर की घरैतिन बोली।

हुसैनी जुलाहा अपनी बगलो मे बैसाखिया लगाए इधर ही आ रहा है। चेहरे से खाता-पीता खुश और आयु मे ३५-४० के बीच का लगता है। भाई के चबूतरे पर बैठी महराजिनो मे से एक बूढी ने पूछा—"हुसैनी, लडाई का समाचार कुछ पायो ?"

"सलाम बुआ। धौकलसिंह गद्दारी कर गए। गढी टूट गई। राजा साहेब मारे गए। अब लूट मची है।"

"तब तो जानो कि हमारा गाव बचि गया। मुगल अब इधर न आवै साइत।"

"हां, कहा तो यही जाय रहा है, बाकी बुआ, लुटेरे-जल्लादन का कौन ठिकाना।"

माई-थान से लगे हुए घर के द्वार से एक कुरूप प्रौढा दासी निकली और हुसैनी द्वारा बुआ कही जाने वाली बूढी से हडबडाहट-भरे स्वर मे कहा—"पंडाइन भौजी, चलौ-चलौ, दाई बुलावत है, वखत आय गया।"

पंडाइन जल्दी से उठी। हुसैनी बोले—"हम भी महराज के पास आए है। चलौ।"

छोटी-सी कच्ची बैठक मे पचीस-तीस वरस की आयु वाले दुवले-पतले चिन्ताजर्जर ज्योतिषी आत्माराम चटाई पर छोटी-सी चौकी रखे कभी पोथी के पन्ने और कभी पचाग पर दृष्टि डालकर मिट्टी की वत्ती से पाटी पर कुछ गणित भी फैलाते जाते है। तभी हुसैनी की बैसाखिया दरवाजे पर खटकती है।

"सलाम महराज।"

"आशीर्वाद। बैठो-बैठो।"

"हमारे लडके के नछत्तर विचारे महराज ?"

"हू-हू, अभी बताते है।" हिसाव पूरा किया और आत्माराम ने हताश होके पाटी और वत्ती चटाई पर एक ओर सरकाकर निसास ढील दी।

"क्या कोई असगुन विचार मे आया महराज ?"

"तुम्हारे लडके की बात नही। राजा साहेब न बचेगे· ·"

"वहे तो जूझि गए, महराज।"

"क्या, खबर आ गई है ?"

"हा, इत्ती विरिया तो गढी मे लूटपाट चल रही है, कत्लेआम मचा है। अल्ला मिया की मरजी। अच्छा अब हमको आप बताय दे तो हम भी भागे। तारीगाव मे खाला के घर पर सब बाल-बच्चन को छोड आए है, वहीं

लौट जायं ।"

"तेरा बिटौना तो सौ बरस का आयुर्बल लैके आया है भागवान । जमीन-जैजाद पुत्र-कलत्र जावत सुख भोगैगा । हमने आज भोरहरे ही विचार किया था ।"

दासी ने दरवाजे पर आकर उत्साह से थाली बजाई । सुनकर हुसैनी और आत्माराम पण्डित के चेहरे चमचमा उठे । हुसैनी ने कहा—"मुबारक होय महराज, हम अच्छी साइत से आए ।"

पण्डित आत्माराम तब तक अपनी जलघडी वाली कटोरी के भीतर बनी रेखाओ को देखने मे दत्त-चित्त हो गए थे । जलघडी का बारीकी से परीक्षण करके पंचाग पर नजर डाली और उदास स्वर मे कहा—"हमारा बेटा बुरी साइत मे आया ।"

"है, महराज ?"

"अभुक्तमूल नक्षत्र ! महतारी-बाप के लिए तो काल बनि कै आवा है, काल ।"

द्वार पर खडी दासी का चेहरा भय से जड़ हो गया । वह भीतर भागी । कोने की कोठरी के आगे पडाइन दीवार से टिकी बैठी हुई जोर-जोर से पंखिया झल रही थी । उन्हे देखकर दासी वही आकर धम्म से यो बैठ गई मानो उसका दम निकल गया हो ।

"क्या भया, मुनियां ?"

"का कही । महराज कहत है कि महतारी-बाप के बदे काल आया है ।"

उसी समय सुकरू अहिर की अम्मां झपाटे के साथ घर मे घुसी और दरवाजे मे ही चिल्लाकर कहा—"राजकुंवरी को पकड लइ-गए भौजी ।"

"है ? और रानी जू ?"

"कुयें में फांदि परी । महल की औरतो का बडा बुरा हाल हुइ रहा है ।"

जंगल मे लगी आग की पृष्ठभूमि मे बंधी हुई राजमणियो के साथ छकडो और ख़च्चरो पर लदा हुआ लूट का माल लेकर मुगल सिपाही जीत और लूट की मस्ती मे गाते, बीच-बीच मे एकाध बन्दी अथवा बदिनी पर चाबुके बरसाते अपने पडाव के सामनेवाले बड़े तंबू की तरफ बढ रहे है । तम्बू मे सरदार मसनद पर बैठ बेडिनो का नाच देख रहा है ।

सिपाही तम्बू मे लूट की मूल्यवान वस्तुएं लाकर सामने रखते है । फिर औरतें लाई जाती है और अंत मे एक अति सुन्दरी नवयौवना । उसे देखते ही नाचना भूलकर बेडिन के मुह से बेसाख्ता निकल गया—"कुवरीजू !"

सरदार ने राजकुमारी के सौन्दर्य को उपेक्षा-भरी दृष्टि से देखा, पूछा—"तू कौन है ?"

"राजकुवरी, सरकार ।" बेडिन ने राजकुमारी का परिचय दिया ।

"खामोश, इसे बोलने दे । नाम बतला !"

राजकुमारी तमतमाया मुख झुकाए मौन खडी रही । सरदार ने नाचनेवाली से कहा—"झोटा खीचकर इसका सिर उठा ।"

वेडिन झिझकी, फिर कुवरी की ओर बढी ही थी कि उसने हाथ बढ़ाकर वेडिन के गाल पर जोर से एक थप्पड मारा। वेडिन चकराकर गिर गई।

सरदार ने दूसरी वेडिन से कहा—"देखती क्या है, शाहजादी साहबा को लातो से खातिर कर, ये बातो से नही मानेगी।"

दोनो वेडिने राजकुमारी पर टूट पडी। सरदार सोने के गगरे से जवाहरात निकालकर देखने लगा।

राजकुमारी के अपमान की खबरें गाव मे पहुची। बरगद तले इस समय अधिक लडवैयो की भीड थी। आस-पास के दो-तीन गावो के लोग जुट आए थे।

"सुना है मुगल लोग धौकलसिह को राजगद्दी देंगे।"

"ये धौकल और अब्बू खा पठान तो बडे दगाबाज निकले। बिचारे राजा साहेब को लडवाय दिया और आप आयके वैरियो मे मिल गए।"

"कोऊ इनें गद्दारन की गरदनैं काट लावैं तो हम वहिके चरन धोय-धोय कै पियब। सारे हमार कुंवरीजू का वेडनिन ते पिटवाइन!"

"पिटवाया ही नही, उन्हे वेडनियो के हाथो सौप भी दिया है। इस अपमान का बदला जरूर लिया जाएगा। हम लोगो मे तो कौल-करार हुइ चुका है। आज रात मुगलो की छावनी पे हमारा धावा होगा। जिसमे अपनी मर्दानगी का मान होय वो हमारे साथ आवै। औ हम जो आज धौंकलवा सारे का मूड अपने हाथ से न काटा तो असल छत्री के बेटा नही।"

"औ राजकुवरी कहा है?"

"धौकल सिह के कब्जे मे है। सुना है वेडनियो को दुइ सौ मोहरैं दै के उनको खरीद···"

"क्या? ये धौकलवा अब इतना गिर गवा है? हम तुमरे साथ हैं चंदनसिह। आज विकरमपुर के सूर-वीरो की तलवार का पानी देखना।

बहुत दूर नही, गाव की सीमा के भीतर ही कही झाझ-ढोलक-मजीरो और बधावे के गीतो की आवाज आने लगी।

"है, मरघट मे दीवाली! ये बधावे कौन बजवाय रहा है?"

"अरे, अब कलजुग है चन्दनसिह। परमेसरी पडित अब्बू खां पठान के जोतसी भये है। आत्माराम महराज के घर बेटा हुआ है न, इसीलिए पंडिताइन ने भाई के घरै बधावा भेजा है।"

"अरे, तो आज का मनहूस दिन ही मिला रहा इन्हे?"

"परमेसुरीदीन के लिए मनहूस थोडे है। अब्बू खा पठानो से गद्दारी करके मुगलो मे मिल गए और परमेसुरी अपने साले आतमा महराज को धोखा देके, अब्बू खां के जोतसी बन गए, लवी भेट पाय गए।"

आत्माराम जी के बैठके मे पंडाइन भौजो आसू पोछती सिर झुकाए खड़ी थी। उकडू बैठे हुए आत्माराम जी का मुखमण्डल क्रोध और क्षोभ से विफर रहा है। उनके बहनोई ने उनसे ही अब्बू खा जमीदार के भविष्य की खैर-खबर पूछी और उन्हे कोरा सवा टका देकर बाकी दक्षिणा आप हडप गए। अब अपनी सम्पन्नता और उनकी विपन्नता का ढोल पीटने के लिए इतनी धूम-धाम से

वधावा भेज रहे है। आत्माराम की आंखें क्रोध के मारे छलक पडी. कहा—"सत्यानाश जाय इस दुष्ट का। हमारे दुर्भाग्य पर हंसने के लिए यही अवसर मिला था उसे ? वह सन्निपात में पडी है, गाव शोक-मग्न है और यह गद्दारो का हिमायती बाजे बजवा रहा है।"

"अरे परमेसुरी को तो सात गात्र के लोग जानते हे। भूलो उस नासपीटे को, भीतर आओ। हुलसिया हमार अब जाय रही है। ऐसा हत्यारा जनमा है कि बिचारी को न बैद मिला न दवा-दारू हुइ सकी। हाय राम जी, यह क्या गजब कर डाला है ईसुरनाथ।" पंडाइन फिर रो पडी और पल्ले से आखे ढंक ली।

"जाय के क्या करूगा भौजी ? (आकाश की ओर दृष्टि-संकेत करके) अब तो वही भेट होगी।" कहते हुए आखे फिर छलछला उठीं। बाजे और पास सुनाई पडने लगे थे।

"जाओ, तुम्हे हमारी सौह। चमेली जिजिया, तुम इनको भीतर लिवा ले जाओ। हम इनको भगाय के आती है।" पड़ाइन भौजी क्रोधावेश मे बैठक से बाहर निकल आई। घर के उढके हुए द्वार खोलकर माई के चबूतरे पर चढकर खेत के पार बरगद के नीचे जुटे हुए पुरुष समाज को गुहारा—"ए भैरोसिंह, सुकरू, बचवा के बप्पा! अरे दुइ-तीन जने हिया आवौ हाली-हाली!—ए बचवा के बप्पा ऽ ऽ!"

उधर से भी गुहार का जवाब सुनकर पंडाइन चबूतरे से उतरी और सीढियो पर मत्था टेककर कहा—"हे मैया, अब अपना कोप बाधि लेव महतारी। गाव की ये विपदा हरौ जगदवा। अब तो करेजा काप उठा है हमार। का होई महरानी ?"

बाजे बहुत पास आ चुके थे और उसकी प्रतिक्रियावश पंडाइन का भय-कम्पित अश्रु-विगलित स्वर क्रोधावेश मे सहसा प्रचण्ड हो गया। वे कोसने कोसती हुई बाजेवालो की तरफ लपकी—"अरे सत्यानास जाय, गाज गिरे तुमरे ऊपर और तुमको भेजनेवाले के ऊपर। चुपाओ सबके सब, हुआ त्राह-त्राह मची है और तुम ··"

घर के अन्दर से दो-तीन नारी-कण्ठो के कल्हाटे सुनाई पडने लगे। पंडाइन डाटना भूल गई। "हाय मोर हुलसिया। अरे मोर मुबोली-ननदिया! अरे हमको छोड़के तुम कहा गईं, रा ऽ ऽ म!" पंडाइन वही की वही धम्म से बैठ गईं और दोनो हाथ अपनी आखो पर रखकर विलाप करना आरम्भ कर दिया। मंगने बाजा बजाना बन्द करके किंकर्तव्यविमूढ से खड़े-खड़े कभी पंडाइन और कभी आपस मे एक दूसरे को मुंह बाये ताकने लगे। इसी समय पंड़ाइन के पति यानी बचवा के बप्पा और भैरोसिंह भी दौडते हुए आ पहुंचे। पण्डित आत्माराम भी उसी समय अपने घर के द्वार पर दिखलाई दिए। दोनो हाथो से किवाड़ो का सहारा लेकर वे ऐसे खड़े हुए मानो कोई बेजान मूर्ति खडी हो। आंखें शून्य मे खोते-खोते सूज गई थी। पुरुषो का साहस न हुआ कि मुंह से कुछ कहे, नारी-क्रंदन बाहर-भीतर एक-सी ऊंची गति पर चढ रहा था।

अधेड़ आयु के हट्टे-कट्टे पाडे यानी बचवा के बाप, आत्माराम जी के पास

जाकर खडे हो गए। भैरोसिंह उनके पीछे-पीछे चले आए। बधावा बजाने वाले चुपचाप सिर लटकाकर उल्टे पावों लौट चले। पंडाइन धरती पर हाथ पटक-पटककर विलाप करती रही। पांडे की आखे कटोरियो-सी भर उठी, भरे कण्ठ से कहने लगे—"चार बरसों मे 'भैया-भैया' पुकार के मोह लिया और अब आप चली गई निगोडी ! अब कौन राखी बांधेगा मुझे ? हुलसिया, तू कहां गई री ! हाय, ये क्या हो गया राम !" दीवार से सिर टिकाकर पांड़े फूट-फूटकर रोने लगे। आत्माराम वैसे ही खडे रहे।

दो-तीन और लोग भी आए ··

"हरे राम। आज तो गांव की विपदा का अंत नहीं है।"

"पांडे जी, यह रोने-धोने का समय नही है। वेडिनें कुवंरीजू को लेके मसान की राह से ही जमनापार जाएंगी। अभी पता लगा है कि चार नावें रोकी गई है। हम सबको लेके उधर ही जाते हैं। चार-पांच जने यहा हैं। जल्दी-जल्दी अर्थी लेके पहुंचो। और मेहरारू सब जमना जी नहाय के वही कोनेवाले टुटहे सिवाले मे जायके वैठें, जरूरत पडे तो सिवाला के नीचे जोगी बाबा की गुफा है, चमेलिया जानती है, वहां छिपके वैठ जाना। अच्छा तो हम·· आतमा··· क्या कहैं भैया ? ऐसा अभागा जन्मा तुम्हारे घर कि घर ही उजड़ गया।"

पंडाइन उठकर रोती-बिलखती भीतर चली। आत्माराम एक ओर सरक गए और उनसे कहा—"भौजी, मुनियां को भेज देना।"

बाहर खडा पुरुषवर्ग टिकठी बनाने के लिए बांस काटने चला गया। आत्माराम दरवाजे से बाहर आकर खडे हो गए। गांव एकदम सूना, घर सूने और आत्माराम के लिए तो बाहर-भीतर सब सूना ही सूना था, सब मनहूस था।

मुनिया दासी आंसू पोंछती हुई बाहर आई। आत्माराम ने उसे एक बार देखा फिर मुंह घुमाकर दूसरी ओर देखते हुए कहा—"उस अभागे को गाव से बाहर फेंक आव मुनियां।"

"कहा फेंकब महराज ?"

"जहा जी चाहे। उसकी महतारी का कहा कर !"

"जमना पार हमारी सास रहती हैं। आप कहो तो उनकी · "

"जौन उचित समझ वही कर। हम तुझे चांदी के पाच सिक्के देंगे। अपनी सास को दे देना। जा, उसकी महतारी की मिट्टी उठने से पहले ही उस अभागे को दूर ले जा, जिससे उसकी पाप छाया अब किसी को न छू पावे।"

× × × नव्वे वर्षीय महामुनि महाकवि गोस्वामी तुलसीदास के शान्त-सौम्य मुखमण्डल पर बकरीदी द्वारा कहे गए अपने पिता के इन शब्दो को सुनकर पीडा की लहराती छाया पडने लगी। वे आखे मूदे ध्यानावस्थित मुद्रा मे वैठे थे। रामू उन्हे पंखा झल रहा था। बकरीदी मिया सुना रहे थे—"बडे महराज तो मसान ही से क्या जाने कहा चले गए। बुजुरगन का कहना रहा कि संन्यासी हुइ गए औ मुनियां जब इन महराज को अपनी सास के पास छोडके गाव लौटी तब तलक हियां तो कयामत आय चुकी रही। मुगल और अब्बू खा के सिपाहियो ने मिलके

विकरमपुर गांव को मिट्टी मे मिला दिया। राजकुंवरी ने जमना मे डूबके अपनी इज्जत बचाय ली और जो महराज तब अभागे बताए गए रहें उनके दरसन करके अब सारी खिलकत अपना भाग सराहती है।"

बाबा सुनकर मुस्काए, मस्ती में दाहिना हाथ बढाकर सुनाने लगे—

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो, सुनि
भयो परितापु पापु जननी-जनक को।
बारेते ललात-बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हो चारि फल चारि ही चनक को।
तुलसी सो साहेब समर्थ को सुसेवकु है,
सुनत सिहात सोचु बिधिहू गनक को।
नामु राम, रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरीते गरु तृन तें तनक को।

सुनकर सभी गद्गद हो उठे। राजा भगत ने कहा—"खरे सोने-सी बात कही भैया, जिसके राम रखवारे हो उसका ग्रह-नछत्र भी कुछ नही बिगाड सकते है।"

५

चित्रकूट क्षेत्र मे प्रवेश करते ही बाबा के जरा-जीर्ण गात मे मानो फिर से तरुणाई आ गई। उनके मानस-लोचनो में सीता सहित तापस-वेषधारी धनुर्धर राम-लक्ष्मण ललक-ललककर उभरने लगे। दूर हरे-भरे पर्वतो की चोटिया, जगह-जगह झरते हुए मनोरम झरने, धनुष की कमान-सी बहती हुई पयस्विनी नदी··· बाह्य दृष्टि को जिधर भी सौन्दर्य लुभाता था उधर ही उन्हे अपने आराध्य दिखलाई पड़ने लगते थे।

राम सौन्दर्य-पुज है। बाबा ने जब-जब जितनी सुन्दरता देखी है तब-तब उनकी कल्पना का राम-सौन्दर्य अवचेतना के कुहासे से और अधिक निखरकर प्रकट हुआ है। यह भाव-विकास का क्रम पिछले ४०-४५ वर्षों मे आगे बढा है। सारा चित्रकूट क्षेत्र राम मे रमा हुआ आत्मविस्मृतिकारी लग रहा है। बाबा चल रहे है पर बाहरी गति मे उनका ध्यान इस समय तनिक भी नही है। वह खुली आखो देख भी रहे है पर दृष्टि बाहर से भीतर तक प्रशस्त राजमार्ग-सी दौड रही है···। हरीतिमा है, कालिमा है, अनन्त प्रकाशमय नीलिमा है जो स्मृति के क्षेत्र मे साकार होते हुए भी विस्मृति का छोर छूकर निराकार हो जाती है। कुछ बखानते नही बनता। गूगा गुड खाए पर बताए कैसे। यह सौन्दर्य नदी-सा तरल, फूल-पत्तो-सा कोमल, झरनो-सा प्रवहमान और पर्वतो-सा अडिग वज्र-कठोर है। वह कुसुम और वज्र दोनो के छोर छूकर सर्वशक्तिमान-सा आभासित हो रहा है।

सैलाव-सा उमडकर भाव अपनी उमडन मे अव सहज हो चला। पशु-पक्षियों से भरा-पुरा वन जिसमें यत्र-तत्र सिद्धो और साधकों की पर्णकुटिया बनी हैं, वावा को प्रगाढ श्रद्धा के नशे मे अपने वृक्षो की तरह झुमाने लगा। पर्वत की ओर देखते हुए वे हाथ वढाकर अपनी ही कविता की पंक्तिया सुनाने लगे—

चित्रकूट अचल अहेरी वैठ्यो घात मानो,
पातक के व्रात घोर सावज सहारिहै।

ऐसा लगता है कि मानो कलियुग आज तक यहा प्रवेश करने का साहस भी नही कर पाया है। यहां अव भी जगदम्वा सहित रामभद्र निवास करते है और लखनलाल सदा वीरासन पर वैठकर पहरा दिया करते हैं।

रामू ने पूछा—"क्या अयोध्या मे भी आपको ऐसा ही अनुभव होता है प्रभु ?"

वावा क्षण-भर के लिए मौन हो गए। फिर गंभीर स्वर में कहा—"सियाराम तो हिये मे समाए है, जहा जाता हूं वही वे ही वे दिखलाई पडते है। फिर भी अयोध्या सदा मुझे अगम कूप के समान लगी जिसमे वूडकर वैठ रहने को जी चाहता है। अयोध्या का अनुभव मूक, पर चित्रकूट सदा मुखर है। (भाव-विभोर होकर गाने लगे)—

"राम कथा मंदाकिनी चित्रकूट चितचारु।
तुलसी सुभग सनेह वस सिय रघवीर विहारु॥"

रामघाट पर पहुचते ही राजा भगत को तो वहुत-से लोग पहचान गए परन्तु वावा को अपना कोई पूर्व परिचित न दिखाई दिया।

"अरे भगत है, आओ-आओ, जै सियाराम।" एक अधेड वय के घटवाले ने राजा भगत से रामजुहार करते हुए गोसाई वावा और उनके दोनो शिष्यो की ओर देखा, चन्दन घिसते हुए उनसे भी जै सियाराम की। फिर वावा को देखा, फिर देखा, दृष्टि हटती भी नही और मिलती भी नही। कौन महात्मा है ?

"जै सियाराम, जै सियाराम। रामजियावन महराज, तुमरे वप्पा कहा है ?" राजा भगत ने अपने कंधे पर पडी हुई चादर उतारकर तखत झाडना आरम्भ कर दिया।

"वप्पा तो राम जी के घर गए। यह तीसरा महीना चल रहा है।"

"अरे !" वावा से कहकर राजा भगत रामजियावन घटवाले से वोले—"भैया, विराजो।"

"यह तो ब्रह्मदत्त का तखत है।" वावा ने पहचानते हुए कहा, फिर घटवाले को ध्यान से देखकर वोले—"रामजियावन "

"अरे वावा! आपकी जटा-दाढी न रहै से पहिचान न पाए।" कहते हुए गद्गद भाव से झपटकर रामजियावन उनके पैरो पर गिर पड़ा। आशीर्वाद पाकर फिरे रोते हुए वोला—"इत्ती वेला वप्पा होते तो ··" गला भर आया, कुछ कह न सका। आसू पोछने लगा।

"क्या कुछ मादे हुए थे ?" राजा भगत ने पूछा ।

"नही, अरे भले-चगे, दरसन करिकै आए, हिया बैठे, सबसे बोलते-बतियाते रहे । फिर बोले कि जी होता है कासी जी जाए, बिस्वनाथ बाबा के दरसन करे, औ बाबा का नाम लिया कि इनके आसरम मे अपना अंत समय बितावें । अरे, बोलते-बोलते उनका दम घुटै लाग । हम पूछा, बप्पा का भवा । तब तक उइ लुढकि पड़े ।"

"राम-राम ।"

"बड़े भले रहे बरमदत्त महराज । तुमरे बड़े भगत रहे भैया ।"

"ब्रह्मदत्त मेरे परममित्र और उपकारी थे । जब यहा आया तब उन्ही के घर पर रहा ।" बाबा ने कहा ।

गद्गद स्वर मे जियावन बोला—"आपकी कुठरिया तो महराज हमारे घर मे अब दरशन का अस्थान बन गई है । रामनौमी को भीड की भीड आती है । आपकी चौकी, पूजा का आसन, पंचपात्र, सब जहा का तहा धरा है ।"

"ठीक है, वही रहूंगा ।"

"अरे बाबा, हम सब पचो का भाग जागा जो आप पधारे ।"

घटवाले के घर के बाहरी भाग मे एक बड़ा-सा कच्चा आगन था । उसी मे कुछ कोठरिया भी बनी थीं जो सम्भवत. यात्रियो के ठहरने के लिए ही बनवाई होगी । बाबा की कोठरी कोने मे थी । भीतर कच्चे अहाते की ओर भी उसका एक द्वार खुलता था इसलिए हवादार थी । बाबा की चौकी, पूजा का स्थान आदि सब वैसा का वैसा ही था, स्वच्छ और सुव्यवस्थित । वहा प्रतिदिन प्रात.काल राम जियावन की बेटी गौरी और भतीजी सियादुलारी सस्वर रामायण पाठ करती है । दो तीर्थवासिनी विधवा रानिया तथा चित्रकूट के सेठ परिवार की स्त्रियां, सब मिलाकर आठ-दस सम्भ्रात महिलाओ का जमाव होता है । राम-जियावन के परिवार को उससे अच्छी वार्षिक आय भी हो जाती है । लड़किया आठ-नौ साल की है, कण्ठ बड़ा ही मधुर है । स्व० ब्रह्मदत्त ने अपनी पोतियों को बचपन से ही रामायण रटाना आरम्भ करा दिया था । किसी राम-भक्त धनी यजमान से दक्षिणा लेकर उन्होने राजा भगत की मार्फत ही रत्नावली जी की प्रति से मानस की एक प्रतिलिपि तैयार कराई थी । मानस-पाठ की कृपा से उन्होने बहुत कमाया । वे राम से अधिक तुलसी भक्त थे । सोरो से विक्रमपुर आकर बसने पर बाबा जब पहली बार राजा के साथ चित्रकूट आए थे तभी से उनका नेह-नाता बंध गया था । रामघाट पर ही उन्होने वाल्मीकीय रामायण बाची थी । संसारी होने के बाद एक बार फिर कथा बाचने के लिए यहा बुलाए गए थे । तब पत्नी के साथ आए थे और ब्रह्मदत्त के यहा ही टिके थे । ससार-त्याग करने के बाद बाबा जब यहा आए तब पहले तो गुप्तवास किया परन्तु ब्रह्मदत्त ने एक दिन उन्हे देख लिया और घेरकर अपने घर ले आए । तदुपरान्त मठ का गोस्वामी पद ग्रहण करने से पहले एक बार फिर आए । ब्रह्मदत्त के घर पर ही टिके और रामघाट पर रामचरित मानस सुनाया था । अपनी इस यात्रा मे बाबा चित्रकूट के जन-मानस मे ऐसे बस गए थे, कि उनके यहा से जाने के बाद भी

उनकी स्मृति रूपी पतंग को किंवदंतियो की लम्बी डोरी बांधकर लोग-बाग आज भी उड़ाया ही करते हे ।

रामजियावन ने बाबा के शुभागमन का समाचार जब अपने घर भेजा तब गौरी और सियादुलारी रामायण बांच रही थी और नियमित रूप से आनेवाली स्त्रिया सुन रही थी । स्त्रियो मे बात पहुची तो बिजली बनकर घर-घर पहुच गई । घाट पर कानोकान उडी तो दम-भर मे जनरव बन गई । हाट-बाट, गली-गली, जहा देखो वही यह चर्चा थी कि गोसाईं जी पधारे हैं । पिछली पीढ़ी वालो का पुराना नेह और नई पीढी का कौतूहल उमडा । बहुत-से लोग तो अपना काम-धाम छोड़कर रामघाट की ओर लपके । जिस समय बाबा स्नान करने के लिए नदी मे पैठे उस समय घाट पर पचासो जन जुट आए थे । इधर-उधर से भीड बराबर आती ही जा रही थी । "वो रहे महाराज—वो ! इन्हे राम जी साच्छात दरसन देते है । यहा बहुत दिनो तक रह चुके हैं । बरसो बाद आए है । अहा, कैसा तेज है !" ··और इस हल्ले-हुल्लड मे रामजियावन का स्वमहत्त्व भाव जो उमड़ा तो ऊंचे स्वर मे लहककर गाने लगे—

चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाय ।
आइ नहाये सरितवर सिय समेत द्वौ भाय ।।

किसी का भाव से राम-महिमा को छेड़-भर देना ही बाबा को बहिर्लोक से अंतर्लोक मे ले जाने के लिए यथेष्ट होता है । पयस्विनी की धारा मे राम-लक्ष्मण उन्हें तैरते हुए अपने पास आते दिखाई देने लगे । गद्‌गद होकर हाथ जोडे हुए उन्हे मार्ग देने के लिए वे जो हड़बड़ाकर पीछे हटे तो पैर लड़खड़ाया और वे जल मे ही फिसल पड़े ।

घाट पर हाहाकार मच गया । नदी गहरी नहीं; डूबने का भय नही, पर चोट लगने का तो है । कई लोग उन्हे बचाने के लिए जल मे कूद पड़े, किन्तु बाबा के पास ही खड़े रामू ने चट से उन्हे थाम लिया । तब तक और लोग भी पहुच गए थे । उसी समय चित्रकूट नगर के महासेठ भी तामझाम पर बैठकर आ पहुचे । बाबा थोडा पानी पी गए थे और एक पैर मे मोच भी आ गई थी, वैसे वे मन से स्वस्थ थे । लगभग सत्तर वर्ष की आयु के रौबीले सेठ जी ने घटवाले के तखत तक सहारा देकर लाए जाते ही बाबा को घुटने टेककर प्रणाम किया । पहचानने की मुद्रा के साथ बाबा ने पूछा—"जगन्नाथ साहु के पुत्र है ?"

"जी हा महाराज, वैदेहीशरण मेरा नाम हैं । आप ही का दिया···"

"हा, याद आया । आपके विवाह के समय की बात है, पहले आपका नाम···"

सेठ जी हसकर बोले—"अरे अब उसकी याद भी न दिलाइए महाराज जी, नाम का बड़ा प्रभाव होता है । चलिए आपको लेने आया हू । घटा बड़ी जोर से घिर आई है, जाने कब बरस पड़े ।"

बाबा मीठे भाव से बोले—"आपके घर फिर कभी अवश्य आऊंगा । इस समय तो मैं अपने स्वर्गवासी मित्र ब्रह्मदत्त के घर जाकर अपनी राम कोठ-

रिया मे ही विश्राम करूगा ।"

"जहा महराज जी की इच्छा हो, रहे । इनके यहा भी सब प्रबन्ध हो चुका है । (आकाश की ओर देखकर) घटा घिरी है, दिन भी चढ़ रहा है, भोजन-विश्राम की बेला हुई । आपके वास्ते तामझाम आया है ।"

मोच के कारण गोस्वामी जी ने सेठ जी की यह सेवा स्वीकार कर ली । गगाजमुनी तामझाम पर विराजमान, भीड़ से घिरे हुए बाबा प्रसन्न मुद्रा मे भी ऐसे अलिप्त भाव से चले जा रहे थे कि मानो वह अपनी काया मे रहते हुए भी उससे बाहर हो । चामत्कारिक रूप से अपनी ख्याति के बढ़ने पर बाबा को प्राय. अपने ऊपर गर्व हो जाया करता था । इस खोखले अभिमान के नशे से वे बहुत जूझे हे, और सधते-सधते अब मन ऐसा हो गया है कि जप की गुफा मे बैठकर उनका मन बेहोशी का पत्थर ढाक लेता है । फिर बाहर सड़क चलती रहे, या हजारो के मजमे मे रहे लेकिन उससे मन के निरालेपन को कोई आच नही आती । वह अपने मे मगन रहता है, न देखता है, न सुनता है । केवल गगन शब्द सुनता है । सधते-सधते नाम-जप अब बाबा का विश्राम बन गया है ।

घर पहुचते-न पहुचते तक बादल गड़गड़ाने लगे थे । रामजियावन के घर के लम्बे चबूतरे पर, छतो पर स्त्रिया ही स्त्रिया खड़ी थी । रामजियावन की ओर देखकर बाबा हसते हुए बोले—"आज तो तेरे घर पर धावा हुआ है रे ! महात्माओ को ठहराने का यही फल मिलता है ।" बाबा के इस कथन पर रामजियावन समेत आस-पास के सभी लोग हस पड़े ।

तामझाम जमीन पर उतारा गया । राजा भगत बोले—"अरे, अभी भीड़ कहां भई है भैया । कल-परसो से देखना, धरती पर तिल रखने को भी जगह न मिलेगी ।"

बाबा उतरने लगे । सेठ जी ने आगे बढ़कर सहारा दिया । भीड़ और निकट खिच आई, चरणरज के भूखे भिखारी झपटे । रामजियावन ने अपने भाई को ललकारा । बीस-पच्चीस जवानो ने भीड़ से जूझते हुए बाबा को अपने घेरे मे ले लिया । वे चबूतरे की ओर बढ़े । छाया की भाति साथ रहनेवाला रामू पण्डित, सेठ, राजा भगत, रामजियावन आदि भक्तों की सेवा-उमग का मान रखते हुए भी बाबा की सुविधा-असुविधा पर पूरा ध्यान रखे हुए था । सेठ जी-सहारा तो दे रहे थे परन्तु घेरा तोड़ने के लिए निकट आती भीड़ के रेलो से चौक-सहमकर आगे-पीछे भी हो जाते थे । इससे बाबा के कंधे को झटका लगता था। रामू ने बड़ी विनम्रता के साथ सेठ को अलग करके बाबा का भार ले लिया । वे सुख से सीढ़िया चढ़ गए । सैकड़ो कण्ठो का जयघोष जैसे ही निनादित हुआ वैसे ही बादल भी गरज उठे । बाबा चबूतरे पर खड़े हो गए और दोनो हाथ ऊपर उठाकर जनता को शात किया, फिर कहा—"देखो, चित्रकूट वालो की रामगुहार सुनकर गगन भी गूज उठा । अब आप सब अपने-अपने घर जाओ । परसो से हम रामायण सुनाएगे । और कल हम यहा दिन-भर रहेगे नही, इसलिए कोई न आए । जै-जै सीताराम ।"

भीड़ का पिछला भाग रामघोष करता हुआ बिखरने लगा, लेकिन आगे के

लोग अब अपने-आपको चरणरज पाने का अधिक हकदार समझकर चबूतरे पर चढने का प्रयत्न करने लगे। सन वेनीमाधव, रामजियावन आदि ने तुरन्त घेरा कसने के लिए ललकारा। बाबा ने फिर सबको थामा, जोर से कहा—"हमारे पैर मे मोच आ गई है। आज सब जने हमे क्षमा करें। जै-जै सियाराम।" बाबा ने स्त्री-पुरुषो की भीड को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। इस समय जप-विश्राम और विम्वसिद्धि का कर्म दोनो ही गतिशील थे। बाबा के सामने अनेक सीताये और अनेक राम थे—एक रूप रूपाय—मानो मन का एक-एक अणु धरती-आकाश के ओर से छोर तक अपनी विम्वशक्ति से जाग्रत् और सक्रिय हो उठा था। दृष्टि बाहर से भीतर तक एक सीधे राजपथ जैसी हो गई थी। जुडे हुए हाथ भीतर नाम-जप से जुडकर मानो मन का प्रतीक बन गए थे।

कोठरी मे प्रवेश किया। वही-पुरानी जगह, वही कुशासन विछा पीढा और सामने रखी हुई चौकी। उसपर उनकी मिट्टी की पुरानी दवात और सरकंडे की कलम भी वैसे ही रखी थी, लेकिन उसके पास ही चादी का पीढा, चौंकी, चादी की दवात और नई कलम भी रखी थी। पीढे पर रखी पुरानी खड़ाउएं एक ओर रखी हुई थी। चौकी के सामनेवाली दीवाल पर चूने से सूर्य का गोला बनाकर बाबा ने कभी गेरू से सीताराम लिख दिया था। फीके पड़ने से बचाने के लिए बार-बार पोते जाने से लिखावट और गोला तनिक विरूप तो अवश्य हो गया था किन्तु मोजूद था। चौकी पर रेशमी चादर और गद्दा विछा था। बाबा सतुष्ट मुद्रा मे चारो ओर देखकर चौकी की ओर बढ़े। चादर-गद्दे को एक कोने से उठाकर देखा। नीचे विछी हुई अपनी पुरानी चटाई को देखकर प्रसन्न हुए।

"रामू, ये गद्दा इत्यादि ठाठ-बाट हटाओ।"

सेठ जी के चेहरे पर फीकापन भापकर राजा भगत बोले—"अब विछा है तो विछा रहने देव। तुम्हारी बूढी हड्डियो को सुख मिलेगा।"

बाबा ने बच्चो की तरह से मचलकर कहा—"नही, अतकाल मे अपनी आदत क्यो विगाड़ू।"

रामजियावन के घरवालों ने तव तक गद्दा-चादर उठा डाला था। चौकी पर बैठकर बाबा अपनी पुरानी चटाई पर हाथ फेरते हुए बोले—"ब्रह्मदत्त दमडी-दमडी की दो लाए थे। बारीक बुनी है। एक हमको दी और एक घाट पर विछाई। हमारी तो जस की तस धरी है।"

"हा, हमे याद है महराज, घाट पर ऐसी ही चटइया रही, मुदा वह तो कई बरस भए, टूट गई।"

"दास कबीर जतन ते ओढ़ी, ज्यो की त्यो धरि दीनी चदरिया।" कहकर बाबा हसने लगे। उन्हे हसते देखकर सभी खिलखिला पड़े।

बरसाती मक्खियो-सी चिपकी भीड़ बड़े मनुहावन के बाद गई। सेठानी जी चाहती थी कि उनके द्वारा रखी हुई पादुकाओ को गोसाई जी यदि यहा रहते हुए निरतर न पहनें तो कम से कम एक बार उसमे पैर ही डाल दे जिससे कि वे सेठानी की पूजा की वस्तु हो सके। रानी साहवा का मन रखने के लिए नई

कलम और चादी की दवात भी रखनी ही पडी। इस प्रकार कुछ देर के बाद सन्नाटा हो सका, बाबा तथा उनकी मण्डली के भोजन करते-न करते ऐसी मूसलाधार वर्षा आरभ हुई कि थोड़ी ही देर मे पनाले बह चले।

भोजन करके बाबा फिर अपनी कोठरी मे आ गए। वेनीमाधव जी तथा राजा भगत दूसरी कोठरी मे टिकाए गए थे। रामू बाबा के साथ था। उससे पैर दबवाते हुए बाबा को झपकी आ गई। थोड़ी देर बाद रामू का ध्यान बाबा के सिरहाने दीवार के कोने पर गया। दीवार के सहारे छत से पानी की लकीर बह रही थी। इससे रामू को विशेष चिन्ता व्यापी और वह अपने गले से तुलसी माला उतारकर कन्धे पर पड़े अगौछे मे हाथ छिपाकर जप करने लगा। थोड़ी देर मे 'खल-खल' की आवाज कानो मे पड़ी। आखे खोलकर पहली दृष्टि सोते हुए गुरू जी पर और दूसरी बहती दीवार पर डाली। पानी अब अधिक तेजी से बह रहा था। धन्नी के कोने से मटियाला पानी मोटी धार मे वह रहा था और उसी से 'खल-खल' की ध्वनि हो रही थी। रामू की आखे अब उधर ही टिक गई। सहसा धन्नी के सिरे से एक बडा मिट्टी का लोंदा पानी के साथ धप्प-से फर्श पर गिरा। ऊपर से आनेवाले पानी की धार और मोटी हुई। द्वार से आगन मे झाका, पानी बहुत जोरो से बरस रहा था। आकाश मे बिजली ऐसे कड़क रही थी मानो इसी छत पर टूटकर गिरेगी। अब रामू से बैठा न रहा गया। बिना आहट किए चौकी से उठा और सोते हुए महापुरुष के चेहर पर एक दृष्टि डालकर फिर द्वार से बाहर निकलकर, छप्पर पडे, जगह-जगह से चूते हुए दालान से होकर आगे वाली कोठरी के द्वार पर पहुचा। देखा कि राजा भगत सो रहे है और वेनीमाधव जी आगन की ओर मुह किए बैठे सुमिरनी के घोड़े दौड़ा रहे है। रामू ने सकेत से उन्हे बाहर बुलाया और कहा—"ब्रह्मचारी जी, आप तनिक प्रभु के पास बैठ जाय। वे सो रहे है और कोठरी मे पानी चूते-चूते अब पनाला बह चला है। मै भीतर कहने जा रहा हूं।"

वेनीमाधव जी तुरन्त बाबा की कोठरी की ओर चल पड़े। जाकर देखा कि दीवार से बहकर आते हुए पानी से कोठरी के गोबराये हुए फर्श पर तलैया बन रही है। वे द्वार के पास ही खड़े हो गए। गुरू जी गहरी नीद मे थे। कुछ देर बाद वे अचानक बड़बड़ाए—"राम-राम", फिर बेचैनी से करवट बदली। 'खल-खल खल-खल' ध्वनि से आखे खुल गई। तकिये से सिर उचकाकर बहता कोना देखा, फिर छत देखी, फिर वेनीमाधव की ओर ध्यान गया, बैठ गए, कहा—"रामू इसी के उपचार की चिन्ता मे गया होगा।"

"हा गुरू जी, मिट्टी की दीवार है, कही अधिक पोल हुई तो ये झापे फिर रोक न पाएगी। पानी बड़ी जोरो से पड़ रहा है।"

"हा, जब स्वप्न मे उत्पात हो रहा था तो जाग्रतावस्था मे भी उसका कुछ न कुछ प्रमाण तो मिलना ही चाहिए। राम करे सो होय।"

"क्या कोई बुरा स्वप्न देखा था आपने?"

"स्वप्न मे हम काशी मे थे। विश्वनाथ जी के दर्शन करके गली मे आए तो सहसा उनका नदी हमे सींग मारने के लिए झपटा। हम राम-राम गोहराने लगे,

तभी नीद खुल गई। ऐसा लगता है कि अब हमारी आयु शेष हो चली है।"

सुनते ही बेनीमाधव जी सहसा भावुक हो गए। आखे छलछला उठी, हाथ जोडकर बोले—"अपने श्रीमुख से ऐसे अशुभ वचन न कहे गुरू जी। आपका जीवन हमारी छत्रछाया है।"

तब तक रामू, रामजियावन और उनके छोटे भाई रामदुलारे आ पहुचे। बहती दीवार के कोने का निरीक्षण करके रामदुलारे बोला—"ई मूसन की करतूत है। ऊपर नाज सुखावा गवा रहै ना। अबही ठीक होत है दादा, महराज जी का दूसर कोठरी मा लै जाव।"

रामू और बेनीमाधव जी उन्हे सहारा देकर उठाने के लिए झुके, सरककर आगे आते हुए बाबा ने हसकर कहा—"अरे बेटा, बालपने मे तो हम ऐसी झोपड़ी मे रहे हैं कि पानी गलावे और धूप तपावे। हमारी पार्वती अम्मा कहे कि जिससे राम जी तपस्या कराते है उसे ऐसा ही महल देते है।" हसते हुए यह कहकर वे सहारे से उठे।

कोठरी मे भीड़-भाड होने से राजा भगत की आख खुल गई। उन्हे इस कोठरी मे अचानक आने का कारण बतलाया गया। तब तक बेनीमाधव जी भी चौकी पर बैठ गए। बेनीमाधव जी ने छूटा हुआ प्रसग फिर उठाया—"पार्वती मा कौन थी गुरू जी?"

"मेरी शरणदायिनी, जगदम्बारूपिणी बूढी भिखारिन।"

"आपके घर की मुनिया दासी की सास?"

"हा, ऐसी झोपडी मे रहती थी जिसमे वह सीधी खडी भी नही हो सकती थी। पेडो की टूटी हुई टहनियो को जस-तस बाधकर सरपत घास और ढाक के पत्तो से बनाई गई, और वह भी अनपढ हाथो की कला। आधी या लू चले तो पत्ते उड-उड जाएं, कभी चरमरा कर गिर भी पडे। आए दिन उसकी मरम्मत करनी पडती थी, फिर भी उसकी दीन-हीन दशा कभी सुधर न पाई। बरसात-भर भीगी-धरती पर वह हमे कलेजे से लगाकर और अपने आचल से ढांककर बौछारो से बचाने का निरर्थक प्रयत्न करती थी।"

"तब तुम बहुत नान्हे-से रहे होगे भैया?" राजा भगत ने पूछा।

"चार-पाच बरिस की आयु से तो हमको याद है, फिर वे बिचारी मर गई। ·· ऐसे ही एक बरसात के दिन हम भिक्षा मागकर लौट रहे थे कि एकाएक बडी जोर से आधी और पानी आ गया।" × × ×

६

मन-पटल पर बीते दृश्य सजीव हो उठे। चार-पाच वर्ष का नन्हा-सा बालक कधे पर झोली लटकाए आधी-पानी मे बढा चला जा रहा है। भागने का प्रयत्न करे तो फिसलने का भय लगता है और धीरे चले तो आधी-पानी के तेज झोंके

उसे डगमगा देते है। सहसा देर से कड़कड़ा रही बिजली बच्चे से, दो-तीन सौ कदम दूर एक पेड़ पर गिरी। बच्चा भय के मारे दौड़ने लगता है और चार-पाच कदम के बाद ही फिसल के गिर पड़ता है। झोली का अन्न बिखर जाता है। बच्चा उठता है। हवा-पानी और कीचड़ उसे उठने नही दे रहे है। झोली की टोह लेता है, वह कुछ दूर पर छितरी पड़ी है। उसकी बड़ी मेहनत की कमाई, दिन-भर की भूख का सहारा पानी मे बहा जा रहा है। वह उठने की कोशिश मे बार-बार फिसलता है। भीख मे पाया हुआ आटा गीला और बहता हुआ देखकर वह रो पड़ता है। 'हाय-हाय-हाय' बिलखता हुआ फिर सरक-सरककर तेजी से अपनी झोली के पास जाता है और उसे उठाकर झटपट कधे पर टागता है। कीचड़-सनी थैली से आटे का पानी चू-चूकर उसकी पसली पर बह रहा है। आकाश फिर गरजता है। सहमा बच्चा उठकर चलने के लिए खड़ा होने का प्रयत्न सावधानी से करता है और अपने-आपको घर की ओर बढ़ाने मे सफल भी हो जाता है। घर बहुत दूर नही। पर घर है कहा ?

झोपड़ियो के मानदण्ड से भी हीनतम आठ-दस छोटी-छोटी झोपड़ियो की बस्ती के लिए यह तूफान प्रलय बनकर आया था। अधिकाश झोपड़िया या तो उड़ गई थी या फिर ढही पड़ी थी। भिखारियो के टोले मे सभी अपने-अपने राजमहलो की रक्षा करने के लिए जूझ रहे थे। उन्ही मे से एक कोने पर बना पार्वती अम्मा का घास-फूस और ढाक के पत्तो का राजमहल भी ढहा पड़ा था। बहुत-से ढाक के पत्ते और गली हुई फूस टट्टर मे से निकल चुकी थी। उसके बचे-खुचे भाग के नीचे पार्वती अम्मा कराह रही थी। उनकी गृहस्थी के मटके, कुल्हड़ फूटे पड़े थे।

बच्चा 'अम्मा' कहकर झपटता है। टट्टर के नीचे दबी पड़ी हुई बुढ़िया का आगे निकला हुआ हाथ पकड़कर खीचने का निष्फल प्रयत्न करता हुआ रो उठता है। बुढ़िया ने कराहकर आखे खोली, बुझे स्वर मे कहा—"किसो को बुलाय लाओ, तुमसे न उठेगी।"

बच्चा बस्ती-भर मे दौडता फिरा—"ए मंगलू काका, तनी हमारी अम्मा को निकाल देव। उनके ऊपर छप्पर गिर पड़ा है—ए भैसिया की बहू, ए सलौनी काकी, ए झबुआ की आजो, ए फेकवा भैया…" परन्तु न काका ने सुना, न भैया ने, न आजी न। पूरी बस्तो इस प्रलय प्रकोप के कारण त्रस्त है। गोदी के बच्चे और अधे-लगंड़े-लूल असहायजन हर जगह रिरिया रहे-है। बहुत-से भिखारी इस समय आसपास के गावो मे अपनी कमाई करने गए हुए है। अत्यंत अशक्त जन ही पीछे छूट गए हे। जैसे-तैसे करके वे अपने ही ऊपर पड़ी निबट रहे है, फिर कौन किसकी सुने।

मूसलाधार पानी मे भीगता निराशा मे डूबा हुआ रामबोला कुछ क्षणो तक स्तब्ध खड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे अपनी गिरी हुई झोपड़ी के पास आया। देखा, पार्वती अम्मा का हाथ वैसे ही बाहर निकला भीग रहा था। उनके मुह और शरीर पर भीगते छप्पर का बोझ भी यथावत् ही था। रामबोला की मनोपीड़ा कुछ कर गुजरने के लिए चचल हो उठी। इधर-उधर सिर घुमाकर काम की खोज

की। छप्पर का जो भाग फूस-पत्ते विहीन होकर पडा था, उसके एक सिरे पर वास का एक छोटा टुकड़ा वडे वांस से जुडा हुआ वधा था। वालक को लगा कि यही काम है…'वांस के इस टुकडे को खीच लिया जाए, फिर इससे अम्मा की देह पर पड़े हुए छप्पर को ऊचा उठा दिया जाय जिससे कि अम्मा उसके नीचे सरक कर पौढे।' उपाय सूझते ही काम चल पडा। वास का टुकडा खीचना शुरू किया तो टट्टर की पुरानी सुतली ही टूट गई। टूटने दो, अभी तो इस सिरे का छप्पर उठाना है। छप्पर के एक सिरे के नीचे वास का टुकड़ा अड़ाकर उसे उठाना आरम्भ किया। छप्पर का कोना तो तनिक-सा ही उठ पाया पर जोर इतना लगा कि कीचड़ मे पाव फिसल गया। गिरा, फिर उठा, अवकी वार घुटने टेककर वैठा और फिर वास अड़ाया। छप्पर कुछ उठा सही पर नन्हे हाथ वोझ न सभाल पाए। वालक को अपनी पराजय तो खली ही पर अम्मा ऊपर का वोझ तनिक-सा उठकर फिर मुह पर गिरने से जव कराही, तव उसे अनचाहे अपराध की तरह और भी खल गया। ताव मे आकर, 'जै हनुमान स्वामी, जोर लगाओ' ललकार कर दूसरी वार छप्पर उठाने मे रामवोला ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी। छप्पर लडखडाया, पर उसे गिरने न दिया, और भी जोशीले हुकारे भर-भर-कर वह अन्त मे एक कोना उठाने मे सफल हो ही गया। फिर दूसरे कोने को उठाने की चिन्ता पड़ी। 'इसे काहे से उठाएं?' कोई मतलव की चीज दिखलाई न पड़ी। पडोसी के यहा कुछ खपाचिया पड़ी थी, एक वार मन हुआ कि उठा लाए पर कुछ ही देर मे गाली-मार के भय से वह उत्साह उड़नछू हो गया। टहनी काम के योग्य सिद्ध न हुई। छप्पर के नीचे अम्मा की लठिया झाकती नजर आई। उसे लपककर खीच लिया और उसके सहारे से किसी प्रकार दूसरा सिरा भी ऊचा उठा ही लिया। दो-एक क्षणो तक अपने श्रम की सफलता को विजय-पुलक-भरे-सतोष से निहारता रहा, फिर पार्वती अम्मा के सिरहाने की तरफ वढा।

भीगते हुए भी अम्मा निर्विकार मुद्रा मे काठ-सी पडी थी। उनके कान से मुह सटाकर रामवोला ने जोर से कहा—"अम्मा, वैसी सरक जाओ तो भीजोगी नही।"

"मोरि देह तो पाथर हुई गई है रे, कैसे सरकी?" सुनकर रामवोला हताश हो गया। एक वार शिकायत-भरा सिर उठाकर वरसते आकाश को देखा, फिर और कुछ न सूझा तो अम्मा से लिपटकर लेट गया। स्वय भीगते हुए भी उसे यह सतोष था कि वह अपनी पालनहारी को वर्षा से वचा रहा है। पर यह सतोष भी अधिक देर तक टिक न पाया। पार्वती अम्मा तव भी पानी से भीग रही थी।

आकाश मे विजली के कौंधे वीच-वीच मे लपक उठते थे। वादलो की गड़-गड़ाहट सुनकर रामवोला को लगा कि मानो चैनसिंह ठाकुर अपने हलवाहा को डांट रहे हैं। रामवोला अनायास ही ताव मे आ गया। उठा और फिर नये श्रम की साधना मे लग गया। दूसरे छप्पर के ढीले पड गए अजर-पंजर को कसने के लिए पास ही खलार मे उगी लम्वी घास-पतवार उखाड़ लाया। रामवोला ने

भिखारी बस्ती के और लोगो को जैसे घास बंटकर रस्सी बनाते देखा था वैसे ही बंटने लगा। जैसे-तैसे-रस्सियां बंटी, जस-तस टट्टर बाधा। अब जो उसकी आधी से अधिक उघडी हुई छावन पर ध्यान गया तो नन्हे मन के उत्साह को फिर काठ मार गया। घास-फूस, ज्यौनारो मे जूठन के साथ-साथ बाहर फेंकी गई पत्तलो और चिथडे-गुदडो से बनाई गई वह छोटी-सी छपरिया फिर से छाने के लिए वह सामान कहां से जुटाए ? उडाया हुआ माल वह इस बरसात मे कहा-कहा ढूढेगा। दैव आज प्रलय की बरखा करके ही दम लेगे। हवा के मारे औरो के छप्पर भी पेगे ले रहे हैं। अभी तक अपनी-अपनी छावनों को बचाने के लिए सभी तो तूफान से जूझ रहे है 'नव हम अब का करी ? हमारै पेट भुखान है। हम नान्हे से तो है हनुमान स्वामी! अब हम थक गए भाई! अब हम अपनी पार्वती अम्मा के लगे जायके पौढ़ेगे। दैउ बरसै तो बरसा करै। हम क्या करै बजरगबली, तुम्ही बताओ! तुमसे बने भाई तो राम जी के दरबार मे हमारी गुहार लगाय आओ, औ न बने तो तुमहूं अपनी अम्मा के लगे जायके पौढौ।'

रामबोला खिसियाना-सा होकर रेंगकर अपनी छपरिया मे घुसा। उसने खीचकर पार्वती अम्मा का हाथ सीधा किया तो वे पीडा से कराह उठी, पर बडी देर से एक ही मुद्रा मे पडी हुई जड बाह सीधी हो गई। स्नायुकंपन हुआ, जिससे उनके शरीर का आधा भाग थोडी देर तक कापता रहा। बालक के लिए यह आश्चर्यजनक, भयदायक दृश्य तो अवश्य था पर उसे यह कंपित देह पहले की मृतवत् देह की स्थिति से कही अधिक अच्छी भी लगी। सूझ आई···

"पार्वती अम्मां! प्रार्वती अम्मा!!"

"हां, बचवा।" पार्वती अम्मा का वेदना मे बुझा स्वर सुनाई दिया।

"हम तुमको आगे ढकेलेंगे। तुम एक बार जोर से कराहोगी तो जरूर, मुल तुम्हारी ये जकड़ी देह खुल जायगी। बरखा से तुम्हारा बचाव भी हुइ जायगा।"

बुढिया माई 'ना-ना' कहती ही रही पर रामबोला ने उनकी बगल मे लेटकर कोहनी से ढकेलना आरम्भ कर दिया। 'जय हनुमान स्वामी' का नारा लगाकर, दात भीच और सिर झटकाकर रामबोला ने अपनी पूरी-पूरी शक्ति लगा दी। पार्वती अम्मा कराहती हुई पीछे सकिल गई। बालक अपनी जीत से खुश हुआ। गौर से देखा पर इस बार पार्वती अम्मा के किसी भी अग मे कंपन न हुआ। उन्हे खासी अवश्य आई और वे देर तक 'राम-राम' शब्द मे कराहती रही, बस। परन्तु अब वे भीग तो नही रही है। बरसात झेलने के लिए रामबोला की पीठ है। खासती-कराहती अम्मा की पीठ सहलाते हुए, विजयी पूत ने इठलाते स्वर में ऐसे चुमकारी भरे अन्दाज से पूछा कि मानो बड़ा छोटे से पूछ रहा हो—"पार्वती अम्मा, बहुत पिराता है ?"

"चुपाय रही बच्चा, राम-राम जपौ।"

"राम-राम ··" × × ×

"राम-राम राम-राम रटते ही मैंने दुखो के पहाड़ ढकेले है।" स्मृतियो मे खोकर बोलनेवाला बाबा का करुण स्वर अब वर्तमान की पकड़ लेकर बातें करने

लगा—"अपना-पराया दुख देखता हूं तो मन अवश्य ही भर उठता है। पर उस कोमलता मे भी मेरी सहनशक्ति राम के सहारे ही अडिग वनी रहती है···

" आपनें तो एक अवलम्बु अंब डिंभ ज्यो
समर्थ सीतानाथ सब संकट विमोच है।
तुलसी की साहसी सराहिये कृपाल राम
नाम के भरोसे परिनाम को निसोच है॥"

वातावरण वावा के ओजस्वी स्वर के जादू से वंध गया था। मत्र-मुग्धता के क्षणो को कथारस के आग्रह से भंग करते हुए वेनीमाधव जी ने विनयपूर्वक पूछा—"आप उन्हे अम्मा न कहकर पार्वती अम्मा क्यो कहते थे गुरु जी ?"

"उन्होंने ही सिखलाया था। वडे होकर एक वार हमने पूछा तो कहा कि व्राह्मण के बालक हो। हमे अम्मा कहते हो यही वहुत है, वाकी हमारा नाम भी लिया करो।"

"फिर उनका क्या हुआ प्रभु ? वे स्वस्थ हो गईं ?" रामू ने पूछा।

"अभागे का करम-खाता क्या कभी सरलता से चुकता है ? विना किसी औपधि के, विना खाए-पिए राम-राम करती वे फिर चगी हो गई। उस घटना के कदाचित् चार-छह महीनो के वाद तक वे जीवित रही थी। पर उन अन्तिम महीनो मे भीख मागने के लिए मैं ही जाया करता था। वीच मे कभी एक-आध वार कदाचित् वह मेरे साथ गई हो तो उसका कोई विशेष स्मरण अव नही रहा।"

"आपका रामवोला नाम उन्होंने ही रखा था ?" रामू ने फिर प्रश्न किया।

"राम जाने, वेटा। हा, पार्वती अम्मा से यहां अवश्य सुना था कि मैंने वोलना राम शव्द से ही आरम्भ किया था। भिखारिन की गोद मे पला, भीख के हेतु सहानुभूति जगाने का साधन वनकर अपना चेतनाक्रम पानेवाला वालक भला और वोल ही क्या सकता था ! कदाचित् पार्वती अम्मा ने या मेरी तोतली वाणी से राम-राम सुनकर किसी और ने इस विशेषण को मेरी सज्ञा वना दिया। जो हो, किन्तु इतना हमको याद है कि रामवोला नाम धारण करके कधे पर छोटी-सी गाठ वधी झोली लटकाए हाथ मे एक सटी लिए हुए हम ऐसे ठाठ के साथ भीख मागने के लिए पार्वती अम्मा के सग जाया करते थे कि मानो त्रैलोक्य विजय के लिए जा रहे हो। ·"

स्मृतिलोक की झांकी लेने के लिए आखे फिर मुद गई।

× × × एक गाव के एक घर के द्वार पर रामवोला और पार्वती अम्मा सुर मे सुर मिलाकर कह रहे है "राम के नाम पै कुछ मिल जाय—ए मा ऽऽ ईऽऽ।"

शिशु रामवोला अपने तोतले किन्तु मीठे स्वर मे भजन गाता है—

राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।

द्वार के भीतर से एक छोटी आयु की कुलवधू कटोरी-भर आटा लेकर आती

है। रामबोला गाना बन्द करके उसके सामने अपनी झोली फैला देता है। युवती मुस्कराकर कहती है : "गाना काहे बंद किया-रामबोला ?" बच्चा झोली फैलाए चुपचाप खड़ा रहा, पार्वती अम्मा ने अपना हाथ रामबोला के सिर पर प्यार से फेरते हुए युवती से कहा—"अभी इसे याद नही बहुरिया। अभी नन्हा-सा तो है।"

"पर बड़ा मीठा गाता है। तुम्हारा पोता है न, पार्वती।"

"हां जब पाला है तो जो चाहे समझो। बाकी ब्राह्मन पण्डित का पूत है। इसके जनमते ही इसकी महतारी मर गई। बाप बडे जोतसी रहे तो पत्रा विचार के बोले कि इसे घर से निकालो, यहां रहेगा तो सबका जिउ लेगा। हमारी पतोह उनके हिया टहल करती रही तो वह हमें दे गई। हम कहा कि हमे मरे-जिए की चिन्ता नहीं, अभागी वैसे ही है, पाल देंगे। बुढापा काटने का एक बहाना मिल गया।" × × ×

अतीत मे लीन होकर बाबा कह रहे थे—"पार्वती अम्मां हमें भजन याद कराती थी। महात्मा सूरदास, कबीरदास और देवी मीराबाई आदि संतों के भजन उस समय बड़े प्रचलित थे। मुझे सब याद हो गए। यद्यपि भिक्षा देनेवालों के आग्रह पर गाना मुझे प्राय. अच्छा नही लगता था। मेरे ब्राह्मण संतान होने और मेरे दुर्भाग्य की बाते सुना-सुनाकर वे मेरे प्रति सहानुभूति जगाया करती थी। यह बात आरम्भ ही से मेरे स्वाभिमान को धक्के मारती थी। बडी कठिन तपस्या थी यह। जब मैं अकेला जाने लगा तो यह अनुभव और भी अधिक तीव्र हुआ···।" × × ×

शिशु भिक्षुक गा रहा है···

हम भकतन के भक्त हमारे।
सुन अर्जुन परतिग्या मेरी यह ब्रत टरत न टारे।
टरत न टारे···टरत न टारे-रे-रे।

सिर में जोर से खुजली मची। 'टारे' शब्द की रे-रे ध्वनि भी सिर के साथ ही हिलने लगी। "भक्त काज साज···" नाक पर मक्खी बैठ गई। उसे उड़ाने मे गला बेसुरा हो गया और नाक भी खुजला उठी। कभी एक टांग उठाकर उसे सुस्ताने का अवसर दिया और कभी दूसरो को। चेहरे पर ऊब और क्षोभ की मचलती परछाइयो में, 'हे माई, दाया हुइ जाय। बड़ी देर ते ठाढे है।' की सदा भी लग जाती। बीच-बीच मे जुनुहाइयां भी आ जाती। धरती आकाश पर सूनी दृष्टि घूमने लगती। फिर किसी मक्खी के उत्पात से 'हम भकतन के भक्त हमारे' भजन की पुनरावृत्ति हो जाती, फिर 'ये मा ऽ ई दाया हुइ जाय।' इस उबा देनेवाली दीर्घकालीन तपस्या के बाद एक कर्कशा प्रौढा कटोरी मे चुटकी-भर आटा लेकर भीतर से आती है। उसका देनेवाला हाथ बित्ता-भर ही आगे बढता है मगर जबान गज-भर की हो जाती है : "मुह जला हमारी ही देहरी मे टें-टें करत है जब देखौ तो···। [illegible] बात हैं ई दहिजार का। ले मर।"

रामबोला का चेहरा [illegible] भर उठा। झोली आगे बढाने की

इच्छा तो न हुई पर बढानी ही पडी। यह रोज का क्रम है। इससे छुटकारा नही मिल सकता।

ब्राह्मणपाडे के नुक्कड़ पर पीपल के पेड के पास दो-तीन लडको के साथ रामबोला गुल्ली-डण्डा खेल रहा था। पीपल के चबूतरे पर उसकी झोली और मंटी रखी थी। रामबोला डण्डे से गुल्ली फेंक रहा था। तभी खेतो की ओर से विद्वान से अधिक पहलवान लगनेवाले पुत्तन महाराज पधारे। रामबोला को देखते ही वे अपने लडको पर बमके—"फिर ईके साथ खेलै लगे, एं। स्सुर नीच जात भिखारी, जिसकी देह मे बास आती है, उसके साथ ब्राह्मण-छत्री के बेटे खेलते हैं, जो है सो हजार बार मना किया ससुरो को।"

पुत्तन महाराज के आते ही रामबोला खेल छोडकर चबूतरे से अपनी झोली और मंटी उठाने लगा था, लडके घर के भीतर भाग गए थे। पुत्तन महाराज की बात रामबोला को अच्छी न लगी, कधे पर झोली टागते हुए उसने कहा—"हम रोज नहाते है महराज। हम भी ब्राह्मण के बेटा···"

"हा-हा साले, तू तो बाजपेई है बाजपेई। हमसे जबान लड़ाता है, जो है सो। ऐ!" पुत्तन महाराज रामबोला के पास आकर खड़े हुए उसे अपनी लाल आखे दिखला रहे थे। बच्चा उस क्रोध मुद्रा को देखकर सहम तो अवश्य ही गया पर मन का सत्य दबा न सका, उसने फिर कहा—"हम झूठ नाही बोलते महराज।"

"साले, सत्तवादी हरिश्चन्द्र का नाती बनता है (बच्चे के सिर और गालो पर दो-तीन करारे तमाचे पड गए। वह लडखडा गया) भाग। आर फिर जो तोको हियां खेलते देखा तो मारते-मारते हड्डी-पसली की चटनी बनाय देंगे। खबरदार, जो अब हमारे घर पे भीख मांगने आया।"

रामबोला रोता हुआ सरपट भागा। वह सीधे अपनी झोपडी पर आकर ही रुका और एक पडोसिन लडकी के सिर की जुये बीनती हुई पार्वती अम्मा से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगा।

"अरे क्या भया बचवा?"

रामबोला बिलखकर बोला—"अम्मा अब हम कब्भी-कब्भी भीख मांगने नही जाएगे।"

'अरे, तो पेट कैसे भरेगा बचवा?"

"हम खेती करेगे, जैसे और सब करते हैं।"

बुढिया पार्वती सुनकर हंसने का निष्फल प्रयत्न करती हुई रुककर बोली, "अरे बेटा, हम पचो को जमीन कौन देगा? खाने को तो मिलता नही है, हल-बैल कहा से मिलेगा?"

"पर हमको भीख मागना अच्छा नही लगता है, अम्मा। द्वारे-द्वारे रिरियाओ, गिडगिडाओ, कोई सुनै, कोई न सुनै, गाली दे। यह रोज-रोज का दुख हमसे सहा नही जाता है।"

बच्चे के सिर और पीठ पर प्रेम से हाथ फेरकर बुढिया बोली—"यह दुख नही, तपस्या है बेटा। पिछले जनमों मे जो पाप किए है वो इस जनम मे

तपस्या करके हम धो रहे है कि जिससे अगले जनम मे हमे सुख मिले ।"

"तो क्या सारे पाप हमने ही किए थे अम्मा ? औ ये सुखचैनसिंह ठाकुर, पुत्तन महराज, जो हम गरीबो को मारते-पीटते है; वो क्या पाप नही कर रहे है अम्मां ?"

बच्चे का तेहा देखकर अम्मा बोली—"बाम्हन के पूत ही ना ! ··अच्छा, एक कहानी सुनोगे रामबोला ?"

"इसी बात पर ?"

"हा।"

"सुनाओ।"

"एक आदमी रहा और एक कुत्ता रहा । तो कुत्ता किनारे पर सोता रहा और आदमी अपने रास्ते जा रहा था । तो ठलुहाई मे उस आदमी ने पत्थर उठाके कुत्ते को मार दिया । कुत्ता सीधा राम जी के पास गया और कहा कि राम जी हमारा न्याव करो । राम जी ने पूछा—हम तुम्हारा क्या न्याव करे ? कुत्ता बोला कि राम जी इस आदमी को खूब दण्डो । कैसे दण्डौ कुतवा ? राम जी ने पूछा । तो कुत्ता बोला कि इसे किसी बडे मठ का महत बनाय देव राम जी । राम जी बोले, अरे, तू तो इसे बडा सुख देने को कह रहा है रे ! कुत्ता बोला, नाही राम जी, पिछले जनम मे हम भी महंत थे तो खूब खा-खा के मोटाए और दीन-दुर्बलों को दबाने लगे । हमने सबके ऊपर अत्याचार किया, उसी का दण्ड भोग रहा हूं । तो राम जी बोलें कि अरे कुतवा, इसे दण्ड न कह, यह तेरी तपस्या है । इससे तुम्हे ज्ञान मिलेगा ।" × × ×

तुलसी बाबा बतला रहे थे, "मेरी आदि गुरु परम तपस्विनी पार्वती अम्मा ही थी । मानो शंकर भगवान ने मुझे जिलाए रखने के लिए ही जगदम्बा पार्वती को भिखारिन बनाकर भेज दिया था । दरिद्रता मे इतना वैभव, दुर्बलता मे इतनी शक्ति और कुरूपता मे इतनी सुन्दरता मैने पार्वती अम्मा के अतिरिक्त औरो मे प्राय कम ही देखी ।"

"तो क्या यही पार्वती जी तुम्हे पढ़ाइन-लिखाइन भैया ?" राजा भगत ने पूछा ।

"पार्वती अम्मा तो बेचारी मुझे इतना ही पढा गई कि जब-जब भीर पडे तब-तब बजरगबली को टेरो । कहो कि हे हनुमान स्वामी, तुम हमे राम जी के दरबार मे पहुचा दो जिससे कि हम अपनी भली-बुरी उनसे निवेदन कर ले । वर्षा मे भीगने के बाद मेरी पालनहार बहुत खीच-खाचकर भी कदाचित् पाच-छ. महीने से अधिक नही जी पाई थी । एक दिन जब मै भिक्षाटन से लौटकर आया तो···" × × ×

बच्चा रामबोला भीख-भरी झोली लिए अपनी कुटिया मे प्रवेश करता है और देखता है कि पार्वती अम्मा ठण्डी पडी है । उनके मुख पर मक्खियां आ-जा रही है और वह बुलाए से भी नही बोलती है । शिशु रामबोला घबराया हुआ

पडोस की झोपडी मे जाता है, वहा जाकर आवाज देता है—"फेंकुआ की अजिया, मेरी अम्मा को क्या हो गया ? बोलती ही नही है। आंख भी नही खोल रही है।"

फेंकुआ की आजी रामबोला के साथ उसकी झोपडी मे आती है। पार्वती अम्मा की देह टटोलती है फिर मुदी आखे खोलकर निहारती है और कहती है—"गईं तोरी पार्वती अम्मा, अब का धरा है !"

"कहा गईं ?"

"राम जी के घर और कहा ! जाओ बस्ती से सबको बुला लाओ।"

बस्ती के लोग आते है। फिर कही से बासो की भीख मागकर लाई जाती है। लकडियों का दान मागा जाता है। बुढिया फुकती है और शिशु रामबोला पत्थर होकर सब कुछ देखता है। बडे लोग जो कहते है वही करता है। अपनी पालनहारी को ठिकाने लगाकर अपनी कुटी मे आकर अकेला बैठ जाता है। 'अब हमारा क्या होगा बजरगी स्वामी ? राम जी के दरबार मे हमारी गोहार लगा दो। हे राम जी, अम्मा बिना अब हम क्या करे ?' बच्चा फूट-फूटकर रोने लगता है, धरती से चिपट-चिपटकर रोता है मानो धरती ही उसकी अब पार्वती अम्मा है। फिर वही रोज का भीख मागने का क्रम—राम जपाकर, राम जपाकर, राम जपाकर भाई रे।

"ए रामबोला, हिया आओ।"

"नही हमे काम है।"

"अब क्या काम है ! तेरी झोली मे इतनी तो भीख भरी है। आओ, हमारे साथ खेलो। हम तुम्हे अम्मा से कहके दो रोटी ला देंगे।"

"हम अब तुम्हारे यहा से भिक्षा नही लेते। तुम्हारे बप्पा ने हमको डांटा था।"

"अरे हमने तो नही डाटा था। आओ खेले।"

"नही। तुम्हारे बप्पा ने मना किया है। मारेंगे।"

"बप्पा है नही। दूर गए है। आओ खेले। आओ। आओ न।"

रामबोला झोली कन्धे से उतारकर पीपल के चबूतरे पर रखता है और लडके से डण्डा लेने के लिए हाथ बढाता है। वह गढे पर गुल्ली रखकर रामबोला से कहता है—"पहला दाव मेरा होगा।"

रामबोला कहता है—"नही भाई, तुम अपना दाव लेकर भाग जाते हो, मैं नही खेलूगा, जाता हूं।"

"अरे नही, हम तुम्हे दाव जरूर देंगे।"

"अच्छा खाओ सौंह।"

"तुम्हारी सौंह खाता हू।"

"हमारी सौह तुम क्या मानोगे, राम जी की सौंह खाओ तब हम माने।"

"राम जी की सौह, हम तुम्हे जरूर दाव देंगे।"

खेल होने लगा। एक बार हारकर भी उस लडके ने अपनी हार न मानी। रामबोला मान गया, फिर खिलाने लगा। लडका दुबारा हारा। उसने फिर हार न मानी और अपना गुल्ली-डण्डा उठाकर जाने लगा। रामबोला को ताव आ गया। उसकी शिकायत थी कि लड़के ने राम जी की शपथ खाकर भी धोखा

दिया, यह क्या भले घर के लोगो का कार्य है! रामबोला ने छीना-झपटी में गुल्ली और डण्डा दोनो ही उससे छीन लिया। लडका क्रोध मे बावला होकर उसे मारने झपटा। सामने से जाते हुए दो हलवाहों ने मना भी किया किन्तु वह और भी उलझ पडा। रामबोला ने उसकी बांह पकड ली और मरोडने लगा। लडके ने अपने बचाव के लिए रामबोला की बांहो पर अपने दात चुभो दिए। रामबोला पीडा से कराह उठा और साथ ही उसे ऐसा क्रोध आया कि बायें हाथ से काटनेवाले लडके के जबडे पर ही मुक्का मारा। हाथ मुक्त हो गया। अपनी बांह से बहते हुए लहू को देखकर रामबोला की आखो में खून उतर आया। लडके को पटककर उसने उसकी अच्छी तरह से कुन्दी बनानी आरम्भ की। पस्त होकर अपने बचाव के लिए जब वह जोर-जोर से डकराने लगा तभी उसे छोडा। चबूतरे से अपनी झोली उठाकर चल दिया।

उस दिन झुटपुटी शाम के समय रामबोला अपनी झोपडी पर तवा चढाकर कच्ची-पक्की रोटिया सेक रहा था। तभी उसे झोपड़ी के बाहर दो-तीन आवाजे सुनाई पडी। उसी बस्ती मे रहनेवाला भिखारी युवक भैंसिया किसी से कह रहा था—"अरे, यह रामबोला बडा चोर और बेइमान है। गाव-भर के लडकों से झगडा करता है।"

"आज हम साले की हड्डी-पसली तोडकर रख देंगे। फेंको इसकी झोपडी। निकल साले बाहर!"

रामबोला घबराकर बाहर निकल आया। उसने स्वर से पहचान लिया था कि दूसरा आदमी उस लडके का पिता पुत्तन महराज ही है। झोपडी से बाहर निकलते ही लडके के पिता ने उसे ऐसा करारा झापड मारा कि आखों के आगे तारे चमकने लगे। रामबोला धरती पर गिर पडा। उसपर लाते पडने लगी। बेचारा बच्चा 'राम रे' करके चीख उठा।

"साले, भिखारी की औलाद! भले घर के लडकों पर हाथ उठाता है? अरे हम तुम्हारा हाथ तोड डालेगे।" रामबोला की बाह पकडकर उस व्यक्ति ने उसे फिर उठाया और उसकी बांह मरोडते हुए धम्म से पटक दिया। बच्चे में रोने की शक्ति भी बाकी न रही। उस व्यक्ति ने बच्चे की उस टूटी शरणस्थली झोपडी को भी तहस-नहस कर दिया और कहा—"यह साला हमे गाव मे अब जो कही दिखाई पड़ा तो हम इसकी हड्डी-पसली तोड के फेंक देगे।"

गिरे हुए छप्पर ने चूल्हे की आग पकड ली। सूखी फूस मिनटो मे लपटे उठाने लगी, उस आग से अपनी झोपडिया बचाने के लिए आसपास के भिखारी भिखारिन निकल आए। जलते छप्पर के दूसरे सिरे का बास निकालकर एक भिखारिन आग को अपनी झोपडी की ओर से बचाने के लिए जलते हुए छप्पर को आगे ढकेलने लगी। फूस ने पूरे छप्पर के फूस-पत्तो मे भी लपटे उठा दी। तनिक-सी झोपडी कुछ पलों मे ही जल-भुनकर अपना अस्तित्व खो बैठी। झोपडी के अन्दर गठरी-मोठरी जो कुछ था, जलकर स्वाहा हो गया। रामबोला धरती से चिपका मुर्दे की तरह पडा रहा। पुत्तन महराज चलते समय उसे एक करारी ठोकर और लगा गए। बस्ती की अन्य भिखारिने और भिखारी जो

तमाशा देखने के लिए और अपने घरों को बचाने के लिए आ गए थे, चें-चें-में-में करने लगे। दो-एक स्त्रियों ने सहानुभूति भी प्रकट की। अधिकतर लोग रामबोला को ही दोष दे रहे थे कि भिखारी के बच्चों को भले घर के बच्चों के साथ खेलने की आखिर जरूरत ही क्या थी! एक लड़के ने कहा भी कि हम अपने मन से उन लोगों के साथ नहीं खेलते पर जब वह लोग हमें खेलने के लिए कहते हैं तो हम क्या करें? लेकिन जबरे का न्याय दीनों और दुर्बलों का पक्षपाती नहीं होता।

मार से पीड़ित रामबोला धरती में चिपका पड़ा रहा। उसमें उठने की ताब भी न थी। भैंसिया ने कहा—'अब इसको बस्ती में नहीं रहने देंगे, इसके कारण किसी दिन हम पंचों पर भी विपदा आ सकती है।"

एक भिखारिन ने दया विचारते हुए कहा—"अरे तो कहा जाएगा बिचारा? अभी नन्हा-सा तो है।"

"भिखमंगों के बच्चों को कौन निन्ता, कहीं भी जाके माग के खाएगा।"

भीड़ अपने-अपने घरों में चली गई। बच्चा वहीं पड़ा रहा। जब सन्नाटा हो गया तो आकाश की ओर देखकर बोला—'बजरंगबली स्वामी, राम जी क्या अपने दरबार में कुण्डी लटा के बैठे हैं? हमारी तरफ से बोलनेवाला क्या कोई भी नहीं है? तुम भी नहीं बोलोगे? अब हम कहां रहें बजरंगी?"

बदली में चांद निकल आया। दूर पर गांव के पेड़ राक्षसों की तरह खड़े दिखाई दे रहे हैं। अपनी झोंपड़ी राख बनी बिखरी पड़ी है। कुत्ते कहीं पास ही में जूझते हुए शोर मचा रहे हैं। बच्चा उठता है। अपनी जली पड़ी हुई झोंपड़ी को कुरेदकर सामान निकालना चाहता है, पर उसमें बचा ही क्या है! हताश बच्चे के मुंह से गर्म-गर्म सांसें निकलती हैं, जो चाहता है कि उसमें ऐसी शक्ति आ जाए कि वह भी उसी तरह इन दुष्ट गांव वालों के घरों में आग लगा दे जैसे कि बजरंगबली ने लंका फूंकी थी। वह नन्हा-सा है, नहीं फूंक सकता तो हनुमान स्वामी ही आके उनका बदला ले लें। 'आओ। इन दुष्टों से हमारा बदला लेओ। आओ भगवान।' पार्वती अम्मा ने हनुमान के द्वारा लंका फूंके जाने की कहानी कभी बच्चे को सुनाई थी। लेकिन इस समय बार-बार गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ा कर गुहारने के बावजूद हनुमान जी ने इस गांव की लंका न फूंकी। वह उत्तर की ओर गांव से लपटें उठने की बाट देखता ही रह गया पर कुछ न हुआ। हताश होकर रामबोला उठा और गांव की सीमा की ओर चल पड़ा। × × ×

गोस्वामी तुलसीदास जी के चेहरे पर भूतकाल, मानो वर्तमान बनकर अपनी छाया छोड़ रहा था। वे कह रहे थे—"पार्वती अम्मा सच ही कहती थीं कि जिससे राम जी तपस्या कराते हैं उसे ही दुख-दुर्भाग्य के अथाह समुद्र में भयंकर क्रूर तिमि-तिमिंगलों के बीच में छोड़ देते हैं। उनसे अपनी रक्षा करना ही अभागे की तपस्या कहलाती है। अब सोचता हूं कि राम जी ने मुझपर अत्यन्त कृपा करके ही यह सारे दुख डाले थे। इन्हीं दुखों की रस्सी का फंदा डालकर मैं

राम-नाम की ऊची अटारी पर आज तक चढता चला आया हू । दुख का भी एक अपना सुख होता है।"

वेनीमाधव जी वोले—"इसी घटना के वाद आप सूकर खेत पहुचे थे गुरु जी ?"

"हा, किन्तु इधर-उधर भटकते, भीख मागते, विललाते-विलखाते हुए ही उस पावन भूमि तक पहुच पाया था । घाघरा और सरयू के पावन स्थल पर महावीर जी का जो मन्दिर है न, मै अन्त मे वही का वन्दर वन गया । भक्त लोग बन्दरो के आगे चने और गुडधानी फेका करते थे । जाति-कुजाति, सुजाति के घरो से मागे हुए टुकडे खाते और अपमान सहते मैं उस जीवन से इतना चिढ उठा था कि अन्त मे किसी से भी भिक्षा न मागने का निश्चय किया ।" × × ×

रामवोला हनुमान जी के आगे नमित होकर वार-वार कह रहा है—"अब हम तुम्ही से मागेगे हनुमान स्वामी, अब किसी के पास नही जाएगे । तुम हमारा पेट भर दिया करो । हम तुम्हारा स्थान खूब साफ कर दिया करेगे ।"

बच्चा वही रहने लगता है । रोज सवेरे उठकर हनुमान जी का चवूतरा वुहारता है । फिर नहाने जाता है । लौटकर चवूतरे पर ही वैठ जाता है और भजन गाता है । वन्दरो के लिए फेके जानेवाले चनो को वीनता है और उन दानो के लिए उसे वन्दरो से सघर्ष भी करना पडता है । दोनो हाथो मे सटिया लेकर वह वन्दरो से जूझता है । "आय जावो जरा । आओ तो सही । अरे तुम्हरी यू खीसे न तोड डाली तो हमार नाम रामवोला नही । खौखियात है ससुर ? हम तुमसे जोर से खौखिया सकते हैं ।" वन्दरो की तरह ही खो-खो करता हुआ वालक रामवोला दोनो हाथो मे सटिया लेकर उनपर झपटता है । वन्दर जब दूर जाते हैं तो एक हाथ की सटी रखकर अपने अगौछे मे भुने हुए गेहू आदि रखता जाता है, वन्दरो को भी देखता जाता है, फिर हनुमान जी की दीवाल का सहारा लेकर बैठ जाता है और ठाठ से चने चवाता है ।

एक दिन रामवोला मुह अधेरे ही चवूतरे पर झाड़ू लगाता हुआ वडवडा रहा था—"हे हनुमान स्वामी, देखो अव तुम्हारा चवूतरा कितना साफ-सुथरा रहता है । हम बड़े मन से सेवा करते हे वजरगवली । अव तो तुम राम जी के दरवार मे हमारी अरदास पहुचा दो । हम भी और दूसरे लड़को की तरह अ-आ-इ-ई पढे और हमको दुइ रोटी का सहारा होइ जाय । ये चने-गुड़धानी चाभ-चाभ के कव तक पेट भरे ? रोटी खाए वहुत दिन हो गए । देखो कल तुम्हारे होठकटवा वन्दर ने हमको कैसा पजा मारा है ! खून झलझलाय उठा । हमारी बांह ऐसी पिराय रही है कि तुमसे क्या कहे । तव भी हम तुम्हारी सेवा कर रहे हे । अव तो तुम हमारी जरूर सुन लो नाथ । पार्वती अम्मा कहती रही कि दीन-दुर्वलो की गुहार तुम्ही सुनते हो । सुन लो वजरगवली हनुमान स्वामी । हम तुम्हारी हा-हा खाते है, चिरौरी करते हे । सुन लो नाथ । अरे सुन लो ।"

रामवोला अव कही भिक्षा मागने के लिए नही जाता । वह सवेरे उठकर हनुमान जी के स्थान को वुहारता हे और नहा-धोकर चवूतरे पर वैठे-वैठे भजन

गाया करता है। बच्चे के सरल कंठ-स्वर और हनुमान जी के प्रति उसकी सेवा-निष्ठा ने दर्शनार्थियों के मन में उसके प्रति थोड़ा-बहुत प्रेमभाव जगा दिया है। कुछ भगत-भगतिनिया बन्दरों के साथ-साथ रामबोला को भी चने और गुड़धानी दे दिया करते हैं। बन्दरों से रामबोला की दोस्ती भी हो गई है। ललकवा सरदार अब कभी-कभी रामबोला के पास चबूतरे पर आकर बैठ भी जाता है। बन्दरों के बच्चे स्वच्छन्दतापूर्वक उसके साथ खेलने लगते हैं। इससे रामबोला का मन अब आठों पहर सुखी रहता है।

जब कभी एकाध फल मिल जाता है तो रामबोला उसी में से आधा भाग सदा ललकऊ सरदार को देता है। यदि कोई उसके माता-पिता के सम्बन्ध में पूछता है तो उत्तर में वह उसे सीता और राम के नाम बतलाता है। बच्चे की इस हाजिरजवाबी से लोग प्रसन्न होते हैं। यदि कोई यह पूछता है कि दाल-भात-रोटी खाने को तुम्हारा जी नहीं करता, तो उसे चट से यह उत्तर मिलता है कि बजरंगबली हम जो कुछ खाने को देंगे वही तो खाऊँगा।

एक दिन रानी साहब ने ब्रह्मभोज दिया। उसकी धूम कई दिनों पहले से ही बंध गई थी। गोण्डा और अयोध्या के हलवाइयों की एक पूरी सेना बुलाई गई है। बड़ा शोर है कि राजमहलों में मिठाइयां पर मिठाइयां बन रही हैं। आस-पास के गांवों के हर ब्राह्मण परिवार को न्योता मिला है। भिखमंगों में उत्साह की लहर दौड़ गई है। चींटियों की तरह से रेंगते हुए जाने कहां-कहां से झुण्ड के झुण्ड भिखारी अभी से ही आने लगे हैं। बहुतों ने हनुमान जी के चबूतरे के आस-पास भी डेरा डाल दिया है। उनके कारण बन्दरों और रामबोला को अपना दैनिक भोजन भी नहीं मिल पाता। एक मुड़चढ़ा भिखारी कल से बराबर इसी घात में रहता है कि कोई भगत हनुमान जी की खोंची डाले और वह उसे हड़प जाय। रामबोला ने जब आपत्ति की तो मार खाई। कल सारा दिन रामबोला और बन्दर भूखे ही रहे। दूसरे दिन से ही बन्दर तो वहां से हट गए पर सवेरे जब दर्शनार्थी आए तो रामबोला ने गुहार लगाई—"देखो, ये पंच हमें मारते हैं। कल से न हमने ही कुछ खाया है और न हमारे बन्दरों को कुछ मिला है। यह सब पंच मिलके हनुमान जी का स्थान भ्रष्ट करते हैं। उनको आप सब यहां से हटा दें।"

अपनी शिकायत सुनकर भिखारी और भिखारिनें रामबोला को चें-चें करके कोसने लगती हैं। भिखारी दल किसी भी दर्शनार्थी के वश का नहीं था और हनुमान जी के नाम पर निकाले जाने वाले चने आदि को चबूतरे पर डाले बिना घर लौट आना भी उनकी धार्मिक भावनाओं के प्रतिकूल था। हनुमान जी की खोंची डाली गई और भिखमंगों ने उसे लूट लिया। यह देखकर रामबोला को बड़ा ताव आ गया। उसने बजरंगबली से शिकायत की, "हनुमान स्वामी तुम साखी हो, हम कल से इनके कारन बड़े दुखियाय रहे हैं। तुम्हारे बन्दरों को भी खाने को नहीं मिलता, औ ऊपर से ये हमको मारते हैं। अच्छा अब हम भी बदला लेंगे ।" लेकिन बदला लेने का कोई उपाय न सूझा। सारे दिन भिखारी-भिखारिनों से लड़ते-झगड़ते और खीखियाते ही बीत गया। नींद भी न आई।

सवेरे चबूतरे पर झाड़ू लगाने लगा तो भिखारी बच्चों ने उसे चिढ़ाने के लिए गदगी का अभियान चलाया। रामबोला तप गया—"बदला लेंगे। जरूर लेंगे। कैसे लेंगे, बताए ? अच्छा तो ठहरो, हम तुम्हे दिखाते है। अब या तो ये दुष्ट राक्षस लोग ही यहा रहेगे या फिर हम और हमारे बन्दर।"

बड़े ताव से रामबोला चबूतरे से उतरकर अनाज मण्डी की ओर चल पड़ा। परसो से बन्दर वही डेरा डाले पड़े है। मन्डीवाले अनाज की फटकन और थोड़े बहुत चने भी उनके आगे डाल देते है। रामबोला बन्दरो के ललकऊ सरदार को खोजता हुआ वहा पहुचा। पीपल के पेड़ के नीचे बानर परिवार को बैठा देखकर वह बड़े ताव से ललकऊ से बोला—"वाह, अच्छे साथी हो, हम वहा मार खायं और तुम हिया बैठे-बैठे माल खाओ ! वाह-वाह-वाह !" ललकऊ सरदार ऐसे चुप होकर बैठ गया कि मानो उसे रामबोला को शिकायत सुनकर लाज लगी हो। वह अपनी कनपटी खुजलाने लगा, फिर जल्दी-जल्दी दोनो हाथो से आसपास के पड़े दाने बीन-बीनकर रामबोला के आगे रखने लगा। वह बोला—"ये नही, तुम सब जने हमारे साथ चलो और राक्षसो को वहा से भगाओ। देखो ललकऊ, हम हनुमान स्वामी से बद कर आए है। हमारी नाक नीची न होय। आओ चलो।"

भारी-भरकम शरीर वाला ललकऊ रामबोला का मुह देखने लगा। वह फिर बोला—"हमे क्या देखते हो, आओ। हमारी बात की लाज रख लो भैया, नही तो ललकऊ, हम सच्ची कहते हैं कि हम आज ही तुम सबको छोड़कर यहा से चले जाएगे। आओ·· आओ · आओ न !" सरदार इस बार सचमुच चल पड़ा और उसके पीछे-पीछे चालिस-पचास बानरों की टोली भी दौड़ने लगी। आगे-आगे रामबोला और ललकऊ, उनके पीछे तथा आसपास बन्दरो की टोली दौड़ती चली। हनुमान जी के चबूतरे पर घमासान मचा हुआ था। रामबोला के हुस्काते ही बन्दर चबूतरे पर चढ़ी हुई भिखारिनो पर टूट पड़े। थोड़ी दर मे ऐसी लं-दे मची कि भिखारियो की टोली वहा से सत्रस्त होकर भागी। रामबोला बड़ा प्रसन्न हुआ। चबूतरे पर चढ़कर हनुमान स्वामी से बोला—"देख लियौ हनुमान स्वामी, अरे हमारे ललकऊ सरदार बड़े बीर है। और तुम देख लेना, ललकऊ अब किसीको यहा पैर तक न रखने देगा। (मुड़कर अपनी जुयें बिनवाते हुए ललकऊ को देखकर) ललकउनू सुना, हनुमान स्वामी क्या कह रहे हैं ! अब यहा कोई आने न पावे। परसो राजा के घर चलेंगे, मजे से माल उड़ाना। हम ? नही हम तो न जायगे भाई। हमे न्योता कहा मिला है ! फिर बिना बुलाए हम किसीके घर क्यों जाय ! राजा होगे तो अपने घर के होगे। हमारे राजा रामचन्द्र जी से बड़े तो हे नही। अरे, हमारे हनुमान स्वामी आज ही जाके राम जी से कहेंगे कि राम जी राम जी, तुम्हारा रामबोलवा कल से भूखा है। उसे ऐसी कसके भूख लगी है कि तुम उसे खाने को न दोगे तो वह रो पड़ेगा।"

रामबोला ने देखा नही था, उसके पीछे एक वयोवृद्ध सौम्य साधु आकर खड़े हो गए थे। वे हनुमान जी तथा ललकऊ सरदार से होनेवाली उसकी बाते सुन-सुनकर आनंदमग्न हो रहे थे। रामबोला की बात समाप्त होने पर वे

सहसा वोले—"वेटा, राम जी ने तुम्हारे लिए यह पेडे भेजे है। लो खाओ।"

इतने ही मे कुछ दूर पर एक पेड़ के नीचे जुएं विनवाते हुए ललकऊ ने साधु को देखा। वह आनद से चिचियाते हुए छलाग मारकर उनके पास आ पहुचा और उनकी टाग पकडकर खूव उमग से चिचियाने लगा। सरदार को यह करते देखकर कई वन्दर साधु के आसपास पहुच गए। साधु अपनी दाढी-मूछो मे मुस्कान विखेरकर वोले—"हा-हा, जान गए, तुम सवको आनन्द हुआ है। ठहरो-ठहरो, तुम सवको भी मिलेगा। पहले इस वाल सत को दे ले। तुम सव तो हनुमान जी के वन्दर हो, पर यह वालक तो साक्षात् राम जी का वन्दर है।" कहते हुए अपने झोले से अगौछा निकालकर उसके एक छोर पर वधे लगभग पाव-डेढ पाव पेडो मे से वावा ने कुछ तो वन्दरो के आगे डाल दिए और एक मुट्ठी रामवोला के हाथो मे देकर वोले—"लो खाओ; खतम करो तो और दे।"

रामवोला कृतज्ञ दृष्टि से साधु को देखने लगा। भूख वडी जोर से लगी थी, उसने जल्दी-जल्दी तीन-चार पेडे मुह मे भर लिए, फिर एकाएक उसे ध्यान आया, उसने साधु के पैर नही छुए। हडवड़ाकर उठा और साधु के सामने धरती पर अपना मस्तक टेककर उसने भरे मुह से कहा—"वावा-वावा, पाव लागी।" पेडो भरे मुह से शव्दो का अशुद्ध उच्चारण सुनकर तथा वच्चे का भाव देखकर साधु हस पड़े। पेडो से पेट भरा, फिर नदी से पानी पिया और जव लौटकर आया तो उसने देखा कि चवूतरा खाली था और मन्दिर के पासवाली वन्द कुटी के द्वार खुले हुए थे। वच्चे को लगा कि हो न हो कृपालु साधु इसी कुटी के अन्दर है। वह भीतर चला गया। साधु अपनी कुटी वुहार रहे थे। रामवोला आगे वढकर उनके हाथ की झाड़ू पकड़कर वोला—"आप वैठो वावा जी, हम सव साफ किए डालते हे।"

"रहे दे-रहे दे, तुझसे नही वनेगा। अभी नन्हा-सा ही तो है।"

"अरे, हम रोज हनुमान जी स्वामी का चवूतरा वुहारते हे। आप किसी से पूछ ले। आप खुद ही देख लेना कि हम कैसा वुहारते है।"

वच्चे के आग्रह को देखकर साधु ने उसे झाडू दे दी। रामवोला वड़े उत्साह से अपने काम मे जुट गया। वच्चा झाड़ू लगाते हुए एकाएक वोला—"हम रोज-रोज अपने मन मे सोचे कि कुटिया वन्द क्यो पड़ी है। यहा कौन रहता है। एकाध जने से पूछा तो उन्होने कहा कि नरहरि वावा रहते है। तो क्या आप ही नरहरि वावा हे?"

"हा, तू कहा से आया है रे?"

"हम वहुत दूर रहते रहे वावा! फिर हमारी पार्वती अम्मा मर गई और उसके वाद पुत्तन महराज ने हमे मारा-पीटा। हमारी झोपड़ी गिरा दी और खूव जोर-जोर से आखे निकालकर कहा कि अव जो तू कल से हमारे गाव मे दिखाई पड़ा तो हम ऐसे ही तेरी हड्डी-पसली भी तोड डालेगे।"

वच्चे ने पुत्तन महराज के क्रोध और अकड का ऐसे अभिनय किया कि नरहरि वावा दुखी होने पर भी हस पडे। कहा—"तुमसे कुछ अपराध अवश्य हुआ होगा, नहीं तो वे तुम्हे क्यो मारते!"

"अपराध हमारा नही, उनके अपने लडके का रहा। ससुर अपना ही खेले और दूसरे को दाव न देवे। तो हमने उसका हाथ पकड लिया और कहा कि दाव देव। तो वह हमको मारै-पीटै लगा। तब हमे भी गुस्सा आ गया। हमसे वह बडा रहा बाबा, लेकिन हमने उसको उठायकर पटक दिया और खूब मारा। जो अन्याय करे उसे तो दण्ड देना चाहिए, है न बाबा ? राम जी ने रावण को इसीलिए तो मारा था, है न बाबा ?"

नरहरि बाबा हस पड़े, कहा—"अरे, तू बडा विद्वान है रे ! तू तो खास राम जी का बन्दर है।"

कोने मे सिमटा हुआ कूडा अपनी नन्ही-नन्ही हथेलियो से समेटते हुए थमकर बच्चे ने साधु की ओर देखा। चार आखे दो दिलो के अन्दर बैठ गई। रामबोला खिलखिला कर हस पडा। पार्वती अम्मा के मरने के बाद रामबोला को ऐसी मुक्त हसी कभी नही आई थी।

बाबा नरहरिदास का उस क्षेत्र मे बडा मान था। वे कथा बाचा करते थे, और एकतारे पर ऐसे तन्मय होकर भजन गाते थे कि सुननेवाले आत्मविभोर हो उठते थे। उनकी जाति-पाति का किसीको पता न था। उनके भक्त उन्हे ब्राह्मण कहते थे और विरोधी उन्हे हनुमानवशी डोम बतलाया करते थे। बाबा नरहरिदास जी ने पूछने पर भी कभी अपनी जाति नही बतलाई। वे कहते थे कि पानी की कोई जाति नही होती, जो रग मिलाओ वह उसी रग का हो जाता है। बाबा नरहरिदास यद्यपि ब्रह्मभोज मे सम्मिलित होने के लिए राजमहल मे न गए पर रानी साहबा ने उनके लिए ढेर सारी भोजन-सामग्री भिजवा दी। रानी का विश्वास था कि नरहरि बाबा के आशीर्वाद से ही उन्हे ऊंची उमर मे पुत्र का मुख देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। बाबा ने रामबोला और अपने बन्दरो को छक-छक कर खिलाया, फिर स्वय सारी भोजन-सामग्री को एक में मीज कर तथा उसे पानी मे सानकर वे आप खा गए। रामबोला को उनकी भोजन-पद्धति देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। बाबा जब खा-पीकर चैन से बैठे तो रामबोला ने उनसे पूछा—"बाबा, एक बात बताओगे ?"

"पूछौ बेटा।"

"यह इतने बढ़िया-बढ़िया मोतीचूर के लड्डू, पूरी, खस्ता-कचौरी, रायता सब एक मे मिलाके गाय-बैल की सानी की तरह आप खा गए तो इसका स्वाद क्या मिला ?"

नरहरि जी मुस्कराए, कहने लगे—"भोजन से पेट भरता है कि स्वाद ?"

"दोनो भरते है।"

"अच्छा तो स्वाद भर दिया जाय किन्तु पेट न भरा जाय तो क्या तुमको तृप्ति हो जायगी, रामबोला ?"

रामबोला इस प्रश्न से चक्कर मे पड़ गया, फिर सिर हिलाकर बोला—"नाही।"

"बस, तो फिर यही बात है। पेट को कोई स्वाद न चाहिए। यह तो बीच की दलाल जिह्वा ही है जो स्वाद की दलाली लेती है।"

रामबोला चक्कर मे पड गया, उसने कहा—"पेट तो बाबा हमारा भी रोज भर रहा था परन्तु ऐसा स्वाद हमने कभी नही पाया। हमारा तो जी होता है कि हम रोज-रोज ऐसा ही सुन्दर भोजन करे।"

"रोज-रोज यह खटरस भोजन तुम्हे कहा से मिलेगा ! क्या चोरी करोगे रामबोला !"

"नाही।"

बाबा बोले—"राम जी जब तुम्हे दे तो खाओ, न दें तो न खाओ। स्वाद के पीछे न जाओ, पेट की चिन्ता करो।"

"अच्छा, बाबा।"

रामबोला बाबा नरहरिदास के साथ ही रहने लगा। वह हनुमान जी का चबूतरा बुहारता, बाबा की कुटिया और आगे की छोटी-सी फुलवारी वाला भाग स्वच्छ करता, और दिन मे विश्राम के समय वह अपने नन्हे-नन्हे हाथो से बाबा के पैर दबाता था। नित्यप्रति मण्डी के एक अनाज के व्यापारी के घर से बाबा के लिए सीधा आने लगा था। नरहरि बाबा बच्चे को रोटिया बनाना और पोना सिखलाते थे। रामबोला धीरे-धीरे अच्छा भोजन बनाने लगा। उसे खिलाकर तथा बन्दरो के आगे टुकड़े डालकर शेष सामग्री वे सानी बनाकर नित्य खाते थे।

एक दिन रानी साहबा अपने राजकुवर को लेकर बाबा के दर्शन करने आई। बाबा के बन्दरो के लिए और घाघरा-सरयू के सगम-तट पर बसने वाले कगलो के लिए वे लड्डू-कचौड़िया बनवाकर लाई थी। नरहरि बाबा को वे एक गाय भी पुन्न करके दे गईं। गाय पाकर रामबोला को ऐसा उत्साह आया कि वह उसे तथा उसके बछड़े को देखते नही अघाता था। नरहरि बाबा से बोला—"हम औरो के यहां गाय देखें तो दूध और छाछ पीने को हमारा भी जी करे। अब बाबा हम रोज-रोज दूध दुहेंगे और फिर मजे से हम-तुम दोनो छक के पिया करेंगे। वाह रे, हनुमान स्वामी, तुमने हमारी खूब सुनी।"

नरहरि बाबा बच्चे की भोली बातें सुनकर हस पड़े, फिर पूछा—"हनुमान स्वामी कहा हैं रे ?"

"वह क्या चबूतरे पर खड़े हैं गदा-पहाड़ लेके।...अच्छा बाबा एक बात बताएंगे आप ?"

"पूछो।"

"यह तो संजीवनी बूटी का पर्वत है। है न ?"

"तुमको कैसे मालूम, रामबोला ?"

"हमारी पार्वती अम्मा ने एक बार हमको बताया रहा। ठीक बात है न बाबा ?"

"हा, ठीक बात है।"

"पर संजीवनी बूटी से लछिमन जी तो पहले ही ठीक हो गए, अब ये क्यो पर्वत लिए खड़े है ?"

बच्चे के इस प्रश्न पर नरहरि बाबा हंस पड़े, बोले—"इसलिए खड़े है कि और किसीको जरूरत पडे तो उनसे सजीवनी बूटी ले ले। तुमको चाहिए

संजीवनी बूटी ?"

"हमको शक्ति थोड़े लगी है बाबा, हम मरे थोड़े हैं।"

"जिसके हृदय मे राम जी नही रहते वही मरे के समान होता है, बेटा। तुम तो साक्षात् रामबोला हो।"

"नाम से क्या होगा बाबा, हम जरूर मरे हुए ह, बाबा।"

"काहे ?"

"अरे हम नान्हे से लड़के, हमारे पास न ओढ़ने को है और न बिछाने को। हमारे हिरदै मे सियाराम जी काहे निवास करेंगे ? और फिर राम जी तो बाबा बहुत बडे हैं और हमारा हिरदै तो अबही नान्ह-सा है।"

"तो राम जी भी नन्हे से बनकर निवास करते है।"

रामबोला सुनकर स्तब्ध हो गया। आखे फाड़कर बाबा को देखने लगा। फिर बोला—"पर हमने तो बाबा उनको कभी देखा नही। क्या राम जी छोटे भी होते है ?"

"हा-हा, वे छोटे से छोटे हो सकते ह, इतने छोटे, कि किसीको न दिखाई पड़े। और इतने बड़े भी हो जाते ह कि कोई उनको पूरा देख नही सकता है।"

"राम जी कैसे ह बाबा ? आप देखे हो ?"

नरहरि बाबा बच्चे के प्रश्न पर एक क्षण के लिए चुप हो गए, फिर अदृश्य मे आखे टिकाकर कहा—"एक बार झलक-भर देख पाया था उन्हे। तब से बराबर एक बार फिर देखने की ललक मे हम पड़े ह बचवा।"

"पर बाबा, आप तो बड़े ह, आपका हिरदै भी बड़ा है।"

"काया बड़ी हो जाने से तो हृदय थोड़े बड़ा हो जाता है रे। वह तो राम जी की दया से ही होता है।"

रामबोला चुप हो गया। बात उसकी समझ मे ठीक तरह से न आई। फिर कुछ सोचकर पूछा—"अच्छा बाबा, राम जी कैसे है ? ··बड़े सुन्दर होग !"

"हा, बहुत सुन्दर।"

"जैसे अपनी फुलवारी मे फूल सुन्दर लगते है, वैसे होगे ?"

"इस जगत म जितने सुन्दर-सुन्दर फूल हे उन सबको मिला दो तो उनसे भी अधिक सुन्दर ह राम जी।"

सुनकर बच्चा हताश हो गया—"हम तो सब फूल भी नही दखा बाबा, हम कैसे जाने। (फिर एकाएक आखे सूझ से चमक उठी।) राजा जी की फुलवारी मे सब सुन्दर-सुन्दर फूल होगे। है न बाबा ?"

"हमको नही मालूम बचवा। हम कभी राजा जी की फुलवारी म नही गए है। परन्तु जब इतनी बड़ी फुलवारी है तो वहा बहुत-से फूल भी होगे। अच्छा, अब तुम हनुमान जी के चबूतरे पर जाकर बैठो और 'राम-जी-राम-जी' जपो। हम भी अब जप करेंगे।"

रामबोला जब बाहर आने लगा तो नरहरि बाबा ने उससे कुटिया का द्वार बाहर से उड़का जाने का आदेश दिया। आदेश का पालन करके रामबोला बाहर आया। बाड़े मे एक ओर गाय-बछड़े को बधे देखकर वह थम गया। देख-

देखकर उसके मन मे हर्ष नही समाता था—'कैसा नीक लगता है! कैसे सुन्दर है ! एक तरफ यह फूल खिल रहे है और एक तरफ यह गाय-बछडा है। अरे बहुत सुन्दर हे। ऐसा सुख मुझे कभी नही मिला।' बाहर आते हुए बाडे का टट्टर बन्द किया और फिर चबूतरे पर जाकर बैठ गया, मूर्ति को देखते हुए मगन मन उससे बतियाने लगा। हनुमान स्वामी, आप बडे अच्छे देवता हो। हमको बाबा से मिला दिया, इससे हमे बडा सुख मिल गया। इतनी बडी मड़ैया है कि पानी नही पानी का बाप भी बरसे तो भी हमें नही भिगो सकता है। हमारी पार्वती अम्मा बिचारी ऐसी झोपड़ी मे नही रह सकी। 'यह हमारी फुलवारी और गाय-बछडा कैसा सुन्दर लगता हे! जो सारे फूलो के बीच यह गाय-बछडा खडा कर दिया जाय तो बहुत ही अच्छा लगेगा। पर हमने तो कभी सब फूलो को देखा ही नही है। एक बार देख ले।' सब फूलो को एक साथ देखने की इच्छा रामबोला के मन मे इतने उत्कट रूप से जागी कि उन्हे देखने के लिए वह उतावला हो उठा। राम-बोला चबूतरे से उठा ओर राजा जी की फुलवारी की ओर दौड पडा।

फुलवारी बहुत बडी थी। उसके चारो ओर इतनी ऊची-ऊची दीवारे थी कि हाथी पर बैठा हुआ आदमी भी फुलवारी के भीतर का दृश्य न देख सके। रनि-वास को स्त्रिया इस प्रमद वन मे मनोविनोद के लिए प्राय आती थी। फाटक पर कडा पहरा रहता था। रामबोला फाटक के तगडे मुछाड़िये सिपाहियो को देखकर सहम गया। उधर से निराश होकर लौट आया। चहारदीवारी के किनारे-किनारे चलते हुए बार-बार नजर ऊची उठाकर देखे, पर कुछ भी दिखाई न पडे। बच्चे को फूल देखने की हुडक-सी लग गई 'हे राम जी कैसे देखे, कैसे तुम्हारा सरूप दिखाई पडे? अब तो हमसे देखे बिना रहा ही नही जाता है। क्या करे ?'

रामबोला अपने भीतर ही भीतर बावला हो उठा था। दीवार के सहारे-सहारे वह चलता ही चला गया। दूसरे सिरे पर पहुचकर उसे एक जगह से बाहर आती हुई एक बडी नाली का मुहाना दिखाई दिया। नाली सूखी पडी थी और रामबोला का मन अपने उत्साह मे बह रहा था। उसने एक बार नाली के मुहाने मे झाककर भीतर देखा, फिर जोश मे आकर वह उसमे घुस गया। बदन ईटो से छिला, कष्ट भी हुआ परन्तु ज्यो-त्यो करके बच्चा नाली के भीतर से रेग ही गया। अन्दर पहुच उसे अपार सन्तोष हुआ। वह घूम-घूम कर देखने लगा। भाति-भाति के रग-बिरगे मनोहर पुष्पो के वृक्षो और क्यारियो को देखकर उसका मन मगन हो गया। सचमुच ऐसी सुन्दरता उसने अब तक नही देखी थी। सरोवर मे कमल खिले थे। उसके किनारे मोर चहलकदमी कर रहे थे। सामने हिरनो का एक जोडा घास चर रहा था। वृक्षो पर पक्षी चहक रहे थे। सब कुछ बडा ही अच्छा था, बस, दूर-पास पर यदि उसे किसी मनुष्य की आहट सुनाई पड़ती थी तो वह डर के मारे चोककर दुबक जाता था। अपनी यह स्थिति ही उसे असुन्दर लगी थी, बाकी सब कुछ सुन्दर था। चलते-चलते वह एक सरोवर के निकट पहुच गया। यह स्थान एकान्त मे था और चारो ओर कई फूल वृक्षो से घिरा हुआ था। उसके बीच मे सगमरमर का एक छोटा-सा सिंहासन नुमा चबूतरा बना हुआ था। बच्चा वहा खडा हो गया। चारो ओर फूलो की शोभा देखकर

फूल चुनने आरम्भ कर दिए। रंग-विरंगे फूल चुन लिए, फिर उन्हे चबूतरे पर सजाने लगा। रामबोला सजाता जाय और फिर खड़ा होकर उनकी शोभा निहारता जाय। कभी एक रंग के फूल एक जगह से उठाकर दूसरे फूलों की गड्डी के पास रख दे और फिर शोभा निहारे। पर उसका जी न भरा। उसने अलग-अलग रंग के फूलो के गोले-दर-गोले बनाने आरम्भ किए। फिर शोभा देखी, सोचा, और थोड़े फूल समा सकते है। बच्चा उस कुन्ज से बाहर निकलकर और भी रग-विरगे फूल तोड़ लाया। फिर सजाकर देखा। बच्चे के चेहरे पर अब पहले से अधिक सन्तोष झलका। फिर लगा कि इतने सन्तोष से भी उसका मन अभी भरा नही है। बाबा कहते थे कि सब फूलो को मिला दो तो राम जी उससे भी ज्यादा सुन्दर साबित होगे, 'पर सब फूल कहा से पाऊ? अच्छा, वो जो सरोवर मे कमल खिले है उनको ले आऊ।' बच्चा सरोवर के किनारे-किनारे के छोटे-छोटे कमल भी तोड लाया। गोलों के बीच मे उन कमलों से उसने दो आखे बनाईं, होठ बनाए, कान और नाक भी बनाई, फिर देखा। अच्छा लगा। मगन मन फूलो की शोभा निरखता जाय और सतोष-भरी 'हूं-हूं' करता जाय। 'राम जी का पूरा मुख कमल जैसा होगा? वह जो आगे बड़े-बडे कमल खिले है उन्हे तोडकर लाऊ।' यह सोचकर फिर सरोवर मे घुसा। पानी मे थोड़ा ही आगे जाने पर पानी गहरा हो गया। पैरो मे कमलो की जड़े भी उलझीं। आगे बढने की हिम्मत न हुई, लौटने लगा। लौटते हुए एक जगह उसका पैर कमल की जडो के जाल मे ऐसा उलझा कि वह डर गया। पैर निकाले पर न निकले। प्रयत्न से खींचतान करने पर उसका दूसरा पैर भी फंस गया। बच्चा भय और घबराहट के मारे चीख पडा—"बचाओ, बचाओ।"

किसी माली के कानो मे आवाज पडी। वह झपटकर आया। रामबोला पानी से बाहर निकलने के प्रयत्न मे बार-बार उठता और गिर पडता था। गनीमत यही थी कि वह बहुत गहराई मे नही था। गिरने पर दोनो हाथो के टेके लगाकर सिर ऊचा कर लेता था। पर अपने पैर के फसाव और फिसलन के कारण वह अपने-आपको पूरी तरह से संभाल नही पा रहा था।

"तू कौन है रे? यहा घुस कैसे आया?" कहते हुए माली ने पानी मे अपना पाव जमाकर रखा और उसका पाव पकडकर जोर से खींच लिया। फिर तो रामबोला को बहुत मार पडी। उसने बार-बार रोते हुए यह सिद्ध करने का भरसक प्रयत्न किया कि वह चोर नही है, राम जी की सुन्दरता का अनुमान पुष्पसमूह से लगाने की लालसावश ही उसने इस फुलवारी मे प्रवेश किया था। माली को विश्वास न हो तो वह चलकर चबूतरे पर देख ले। राम जी की सौह, हनुमान स्वामी की सौह, वह चोरी करने नही आया था। वह नरहरि बाबा की कुटिया मे रहता है। नाली के मुहाने से घुसकर भीतर आया था। इस प्रकार मार खाते हुए अपनी ईमानदारी सिद्ध करने के लिए उसने सभी दलीले रो-रोकर पेश कर दीं। दो-एक माली और भी आ गए। चबूतरे पर बनाया हुआ बच्चे का खेल देखा। नरहरि बाबा का नाम सुना, तो दो-चार हाथ मारकर फिर उसे बाहर निकाल दिया। × × ×

"इस प्रकार राम-मुख-छवि निहारने की पहली ललक पर मुझे मार खानी पडी। जब पिट-कुट के घर पहुंचा तो बाबा के चरणों में गिरकर खूब रोया। मुझे याद है। बाबा का वह वाक्य भी मुझे कभी नही भूलता जो उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरते कहा था। बोले, कि पराये फूलो से अपने राम को देखेगा ? पहले अपने मन की बगिया लगा ले फिर तुझे राम अवश्य दिखाई पडेंगे।"

"पर अब तो आपने राम जी के दर्शन अवश्य पा लिए होंगे प्रभु जी !" रामू ने प्रश्न किया।

सुनकर बाबा कुछ बोले नही, केवल मुस्करा दिए, उनकी दृष्टि प्रश्नकर्ता रामू के चेहरे के पार कही दूर जाकर टिक गई। फिर राजा भगत ने पूछा—"राम जी क्या बहुत सुन्दर हैं ?"

"सौन्दर्य व्यक्त भी है और अव्यक्त भी। साकार की सीढियो पर चढकर तुम निराकार सौन्दर्य को निहार सकोगे। अच्छा, कल मेरे साथ चलना। राम-सौन्दर्य देखने के लिए तुम्हे इस चित्रकूट से बढकर भला और कहा अवसर मिलेगा ? यहा पत्थर भी छवि-अंकित होता है।"

७

जन्माष्टमी का दिन है। रामजियावन महराज के कच्चे आगन मे बच्चे लोग मण्डप सजा रहे हैं। पत्थरो के ढोको से पहाड बनाए जा रहे है। पत्थरो की आड मे एक बडा टोटीदार गगाल रखा जा रहा है। दो नवयुवक ऊंची चौकी पर गगाल जमा रहे है। दो लडके उसके अगल-बगल खडे होकर पत्थरो के ढोको से गंगाल का वह भाग ढक रहे है जो सामने से दिखाई पड सकता है। एक लडका सामने खडा होकर आलोचक की दृष्टि से निहार रहा है, "हा, अभी बाईं तरफ का भाग दिखाई दे रहा है। दो पत्थर और रखो तो बात बन जाय।" गगाल की बाईं ओर खडे पहाड बनाते लडके ने दो ढोके और चढाए और पूछा—"अब बताओ ?"

"हा, अब ठीक है। अब नीचेवाली गुफा मे शकर भगवान लाकर रख दे, मनोहर भइया ?"

"अभी ठहर जाव भाई, यह पर्वत अच्छी तरह से बन जाय। एक-एक पत्थर जम जाय तब ले आना। पुरानी मूरत है, खूब सभाल के रक्खी जायगी।"

दो लडके बास के छोटे-बडे कई पोले टुकडे और छोटी पत्तियो वाली कई टहनियो का एक ढेर लिए बैठा था। वह बास के टुकडो के आधे-आधे भाग मे चारो ओर चक्कू से छेद बना-बनाकर रखता जाता था और दूसरा उन छेदो मे छोटी-छोटी टहनिया काटकर खोसता जा रहा था। वे बास के पीले डण्डे विभिन्न प्रकार के वृक्षो के लघु सस्करण बनते चले जा रहे थे। यह पेड पर्वत की शोभा

बढाने के लिए जगह-जगह खोंसे जा रहे थे। मण्डप के ऊपर भी बल्लियां गाडकर तख्ते बिछाए गए थे और उनपर गोले पत्थरों की बटिया लुढका कर बादलों की गरज का ध्वनि-आभास दिया जा रहा था। जमुना की लहरे और घटाओं की छटा दिखलाने के लिए पुराने रंगे हुए घटाओं के पर्दे और झालरे टांगी गई थी। बडी तैयारिया हो रही थी। एक लडका हंसकर बोला—"हम तौ हियां नकली पानी बरसाइत है और जो ऊपर ते राजा इन्नर फाटि पडे तौ का होई ?"

पेड बनाता हुआ लडका बिगड उठा—"ए सुखिया, अण्ड-बण्ड न बोलो भाई, अबकी परसाल की तरह दुर्दशा न होने पावे। अबकी हमारे घर बाबा आए है। झाकी देखने के लिए सैकडो आदमी आएगे हमारे यहा, देख लेना।"

"तब बाबा से कहो जाके कि राम जी से कह दें कि राम जी आज पानी न बरसाना।"

सुखिया फिर हंसा. बोला—"राम जी कहेगे कि हमे क्या पडी है ? पानी बरसे, चाहे न बरसे, हमारा जनमदिन थोडे है।"

"वाह, भगवान्-भगवान एक, राम जी ऐसी बात कभी नही कहेंगे।"

"एक कैसे हो सकते है। राम जी का जनमदिन रामनौमी को पडता है और कृष्ण जी का आज पड रहा है। जो एक होते तो एक जनमदिन न पडता ?"

"एक हो ही नही सकते है।" एक दूसरे लड़के ने जोरदार समर्थन किया।

"अच्छा तो चलो पूछौ बाबा से कि भगवान एक है या दो।" एक छोटी आयु का लडका पूछने के लिए कोठरी की ओर भागा। रामसुखी चिल्लाया—"ए खबरदार, यह न पूछौ। ए सुगनवा, सुनता नही है !" लेकिन रामफेर उर्फ सुगना बाबा की कोठरी में पहुंच गए।

कोठरी मे बाबा चौकी पर विराजमान थे। उनकी आंखें खुली होने पर भी बाहर नही, भीतर देख रही थीं। रामू दिये के प्रकाश मे बैठा तख्ती पर लिखे लेख को कागज पर उतार रहा था। बेनीमाधव जी गोमुखी मे हाथ डालकर माला जपते-जपते रुककर बोले—"गुरू जी, जपते-जपते मन कभी-कभी सहसा शून्य हो जाता है। पहले भी एक बार ऐसा ही अनुभव हुआ था परन्तु सतत् अभ्यास से वह संभल गया था। पर अब तो ऐसी विस्मृति चढती है कि कुछ समझ मे ही नही आता है। कभी-कभी अत्यन्त लज्जा का बोध होता है महाराज।"

"लज्जा क्यो आई ? तुम्हारा जप तुम्हे प्रज्ञा के क्षेत्र मे प्रवेश कराता है और तुम उसकी नई गति को पहचान भी नही पाते। तुम्हारी श्रद्धा कहां है, बेनी-माधव ?"

"मेरी श्रद्धा आप में है।"

"कौन-सी श्रद्धा ? सात्विक या राजसिक, तुम मेरे बारे में चिन्तन करते हो या मेरे जीवन-चरित्र-लेखन के ?"

बेनीमाधव झेंप गए, कहा—"आपने मेरे चोर को ठीक जगह पर पकडा है गुरू जी, आपकी जीवन-कथा लिखकर अमर हो जाना चाहता हू।"

"स्वर्ग की सीढिया सूक्ष्म होती है वत्स, तुम स्थूल पर ही क्यो टिके हो ?"

"वस्तु जगत के धरातल पर अभी जिज्ञासाएं शान्त नही हुई, गुरू जी।"

"वेनीमाधव, तुम मेरा जीवन-चरित्र जिस उद्देश्य से लिख रहे हो वह परिपूरित होकर भी न होगा।"

वेनीमाधव हडवडाकर आगे झुके और अपने गुरु जी के सामने भूमि पर मत्था टेककर कहा—"ऐसा शाप न दें गुरु जी, मेरे यह लोक और परलोक दोनों ही विगड जायंगे।"

वावा हंसे, कहा—"तुम्हारी श्रद्धा सात्विक होती तो मेरी सीधी-सादी वातों में तुम्हे शाप-भय न दिखाई पडता।"

वेनीमाधव सतर्क होकर वावा का मुख देखने लगे। वे कह रहे थे—

"श्रद्धा के सात्विक न होने के कारण तुम्हारे द्वारा लिखा हुआ मेरा जीवन-चरित मृत देह के समान ही काल की चिता पर भस्म हो जायगा। यह यथार्थ है।"

वेनीमाधव के चेहरे पर परेशानी झलकी। किन्तु उन्होंने मन की उमडती घवराहट को थामकर कहा—"जिस काव्य के सहारे इस अकिंचन के अमर होने की वात आप कहते हैं वह कार्य ही यदि नष्ट हो गया तो फिर अमरता कैसे सुलभ होगी गुरु जी?"

"तुमने खण्डहर हवेलिया अवश्य देखी होंगी, वेनीमाधव। वे खण्डहर होकर अपने आकार के वैभव को तो खो देती हैं किन्तु नाम चलता रहता है कि यह अमुक व्यक्ति की हवेली थी। इसी प्रकार तुम्हारा काव्य खो जायगा और उसकी स्मृतियों के खण्डहर में तुम्हारे नाम पर टुटपुंजियों के भाव जम जायगे।"

"नही गुरु जी, मेरी श्रद्धा राजसी भले ही हो किन्तु उसमे मेरी सात्विकता भी निश्चित रूप से निहित है। मैं लोक-मगल की भावना मे भी यह कार्य कर रहा हू।"

"यह 'भी' ही तो तुम्हे खा रहा है वेनीमाधव। तुम एक ओर तो प्राण की सूक्ष्म गति करना चाहते हो और दूसरी ओर उसकी स्थूलता को एक क्षण के लिए भी क्षीण करने का प्रयत्न नही करते। मेरा जीवन-चरित यदि स्वयं तुम्हारा मगल नही कर सकता तो वह लोक-मगल कैसे कर पाएगा भाई?"

सुनकर वावा वेनीमाधव स्तब्ध हो गए। उनका वंधा मन अपनी थाह पाने के लिए तेजी से गहराई मे डूब चला। तभी रामफेर कोठरी मे घुसकर वहा के वातावरण को अनदेखा करके अपनी वात सीधे वावा से कहने लगा—"वावा, वावा, राम जी और कृष्ण जी दो हैं कि एक है?"

वावा समेत सबका ध्यान रामफेर की ओर गया। सबके चेहरे मुस्कान से खिल उठे। वावा ने हंसकर कहा—"यह वताओ कि रामफेर और सुगना एक ही लडका है कि दो हैं?"

वावा का प्रश्न सुनकर वह झेंप गया और फिर मानो उस झेंप को मिटाने के लिए उसने कहा—"हम भी तो यही कह रहे थे सुक्खी भैया से कि दोनों एक ही हैं। मुदा वावा जब एक ही भगवान हैं तो उनके जनमदिन काहे को अलग-अलग पडते हैं?"

"अरे भाई, भगवान तो पल-पल में जनम लेते है। तुम लोग भला पल-पल

मे उनकी झाकी-झूला मना सकते हो ?"

"नही।"

"वस, इसीलिए साल मे दो वार जनमदिन मनाया जाता है। भगवान तो एक ही है।"

"तो वावा तुम भगवान जी से कह देव कि-आज पानी न वरसावै। आज हम लोग वड़ी वढिया झाकी सजा रहे है। खूब घटा-उटा वनाए हैं। कैलाश पर्वत वनाया है, चित्रकूट वनाया है, चित्रकूट पर राम जी वैठाए हैं।"

वच्चे की भोली-भोली वाते सुनकर वावा वडे मगन हुए, वोले—"वाह-वाह, वडी सजावट की है तुम लोगो ने, लेकिन एक वात वताओ, तुम लोग हमको भगवान जी की झांकी दिखाओगे ?"

"हा-हा, हमारी अम्मा कह रही थी कि आज वावा भगवान का जनम करवाएंगे। और हमारी आजी क्या वनाय रही है, जानते हो वावा ?"

"क्या वना रही है भाई ?"

"अरे वडे-वडे माल वन रहे है। वीजपापड़ी, चिरौजी-मखाने की पापडी और तुमका का-का वताएं वावा! चरणामिर्त वनेगा।"

"अच्छा, भला उनको कौन खायगा रामफेर ?"

"भगवान जी खायंगे और फिर हम पंचन को प्रसाद मिलेगा।"

"और भगवान जो सव माल खाय गए रामफेर, तो तुम पंच क्या करोगे ?"

"वाह, तुम इतना भी नही जानते हो वावा, भगवान जी अपने खातिर वनवाते हैं और सवको खिलाते हैं।"

वावा ने वेनीमाधव की ओर देखा और कहा—"यह वालक सत्व को पहले प्रतिष्ठित करके ही सत्य को स्वीकारता है। यह सत्य को पहचानता है।"

"अच्छा वावा, पहले आप हमारा काम कर देव, पीछे इनसे वात करो। हमको वहुत काम पड़ा है।"

वच्चे की गम्भीरता ने वावा का मन मोद से भर दिया। वोले—"हा-हा, अपना काम वताओ, वह जरूर महत्त्वपूर्ण होगा। क्या काम है, सुगना ?"

"हमारा काम यह है कि हम पंच मिलकर झांकी सजा रहे हैं और आप यहा वैठकर भगवान जी से कहिए कि आज पानी न वरसावै।"

"काहे न वरसावै भाई, पानी न वरसैहैं तो अन्न कैसे होगा ?"

"अरे वस छठी तक न वरसै, इतना तो वरस चुका है। आगे चाहे और जोर से वरसै। हमारा सव सुख विगड़ जायगा।"

वच्चे की वात सुनकर सव हंस पडे। वावा ने कहा—"अच्छा भाई सुगना-राम, तुम्हारी आज्ञा का पालन करूंगा। कृष्ण भगवान, आप हमारे सुगना-रामफेर की अरज सुन लेव। राजा इन्द्र को वांधकर रखो, जिससे कि हमारे वच्चों का मजा न विगड़ पावै। जयकृष्ण परमात्मा। जय योगेश्वर नटनागर वालमुकुन्द।"

वच्चा सन्तुष्ट होकर चला गया और उसे संतोष देने के लिए वावा आंखें मूदकर जो प्रार्थना भाव मे आए तो फिर उसी में रम गए। मनोलोक में वाल-

मुकुन्द की झाकी सज गई। सुगना उर्फ रामफेर की बातो से उपजा सुख आनन्द बनने लगा। सुगना-मुख कृष्ण-मुख बना। कृष्ण अपनी चिर-परिचित बालरूप राम की मनोछवि मे प्रतिष्ठित होकर बाबा का मन मोहने लगे। वात्सल्य भाव की गूज मे यशोदा मैया का आकार उभरने लगा। अपनी जाघ पर थपकी देते हुए उछाह-भरे स्वर मे वे गा उठे ··

(माता) लै उछंग गोविन्द मुख बार-बार निरखै।
पुलकित तनु आनँदघन छन छन मन हरषै।
पूछत तोतरात बात मातहि जदुराई।
अतिसय सुख जाते तोहि मोहि कहु समुझाई।
देखत तव बदन कमल मन अनंद होई।
कहे कौन रसन मौन जानै कोइ कोई।

रामू लिखना रोककर बाबा के साथ ही साथ उनके शब्दो को धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा। बेनीमाधव जी भी भावमग्न होकर अपने पैरो पर थाप दे रहे थे। बाबा के स्वर का माधुर्य इस आगु मे भी ऐसा चुम्बक है कि वातावरण का चेतन स्वरूप मुग्ध होकर बंध जाता है। गायन समाप्त करने के बाद बाबा कुछ देर तक उसी प्रकार ध्यानावस्थित मुद्रा मे बैठे रहे। जब उन्होंने आखें खोली तो बेनीमाधव जी ने उनसे सविनय प्रश्न किया—"कृष्ण भगवान को आपने केवल ब्रज-जनहितकारी क्यो माना गुरू जी ?"

"मेरे लिए श्रीकृष्ण अथवा श्रीराम के जन्म-भूमियो के नाम एक सीमित क्षेत्र का अर्थबोध नही कराते। यह समस्त सचराचर जगत ही भगवान का ब्रज-अवध है। कौन-सी भूमि भगवान की जन्मभूमि नही है वत्स ? रूप, रस, गध, स्पर्श, शब्द नाना आकार-प्रकारो मे मेरे रामभद्र को छोडकर प्रतिपल के सहस्राशो मे भला और कौन जन्मता है ?"

रामघाट पर नित्य बाबा रामचरित मानस सुनाते है। कोल-किरात आदि गण दूर-दूर से आकर आजकल चित्रकूट मे ही अपना डेरा जमाए हुए है। वे बाबा के लिए फल, फूल, कन्द, मूल, दूध, दही आदि लेकर आते है। इस समय रामजियावन के घर मे मानों आठो सिद्धि नवोनिधियो का वास है। तीसरे पहर कथा होती है और फिर भक्तो की भीड रामजियावन के घर मे सजी हुई झाकी देखने के लिए आती है। चित्रकूट की गली-गली मे भक्तो की भीड यत्र-तत्र अपने बसेरे बसाए पडी है। पक्षियो का कलरव तो रात को थम जाता है पर यह जनरव मध्यरात्रि से पहले कभी शात नही होता।

तुलसीदास जी के दर्शन करने अथवा रामकथा सुनने की श्रद्धा के साथ-साथ ही उनका समस्त माया-प्रपच भी अभिन्न रूप से जुडा हुआ है। इधर वे भक्ति भावना से उद्दीप्त होते है और उधर पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष से उतने ही सकीर्ण भी हो जाते है। न वे उदात्त है न संकीर्ण, वे दोनो का मिश्रण है। कभी एक रस उमगता है कभी दूसरा। वे मानो सागर की लहरें मात्र है जो उछलना-भर ही जानती है, उनमे गहराई तनिक भी नही होती।

एक दिन कथा के उपरात बाबा घर लौट रहे थे तो आती-जाती भीड को देखकर बोले—"अयोध्या मे ऐसी भीड़-भाड अब नही होती। वहा दर्शनार्थी अब प्राय. नही के बराबर ही आते है।"

वेनीमाधव जी ने पूछा—"पहले किसी समय वहा भीड आती रही होगी, बाबा?"

"हा-हा, बचपन मे जब हमारे पंच सस्कार कराने के लिए गुरू जी हमे अयोध्या ले गए थे उस वर्ष अंतिम बार रामभक्तो और राजसेना के बीच मे बडी करारी झडप हुई थी। हमे स्मरण है अयोध्या रणभूमि बन गई थी।"

वेनीमाधव जी बोले—"एक बार मुझे भी अयोध्या मे जन्मस्थान के सघर्ष का स्मरण है। उसमे मैने भी चार-पाच लाठिया खाई थी, महाराज। परन्तु ऐसे छोटे-मोटे संघर्ष तो वहा प्राय हुआ ही करते हैं।"

"हां, मेरे भी देखने मे आए हैं किन्तु जैसा सघर्ष मैने बचपन में वहा पर देखा था वैसा फिर कभी नही देखा। उस समय हुमायू बादशाह शेरशाह पठान से हारे थे, चारो ओर भगदड पडी थी। तभी कुछ विरक्त साधुओ ने जन्म-स्थान के उद्धार करने की योजना बनाई। अपार भीड थी। गुरू जी हमें लेकर अयोध्या पहुंचे। × × ×

दिन का चौथा पहर है। नरहरि बाबा, रामबोला को साथ लेकर सरयू के एक घाट पर नाव से उतर रहे हैं। घाट पर सन्नाटा है, बस, दो-चार व्यक्ति इधर-उधर आते-जाते दिखाई पड रहे है। नाव से उतरी हुई आठ-दस सवा-रिया स्थिति को देखकर चिंतित हो रही है। एक कहता है—"जान पडता है कोई उत्पात होनेवाला है। बडा सन्नाटा है।"

ऊपर आकर तख्त पर बैठे एक बुड्ढे साधु से नरहरि बाबा पूछते है—"आज बडा सन्नाटा है बाबा जी, कोई उत्पात हुआ है यहा?"

अपने पोपले मुह से कुछ-कुछ अस्पष्ट स्वर मे उस चिन्तामग्न बूढे साधु ने कहा—"हुमायूंशाह हार गया। मुगल और पठान लोग कल और परसो यहा दिन-भर एक-दूसरे से गुथे रहे। देखो, क्या होता है। तुम लोग जल्दी-जल्दी अपने-अपने स्थानो पर चले जाओ भाई। आजकल किसी बात का ठिकाना नही है कि कब क्या हो जाय।"

घाट से आगे बढने पर शृगारहाट नामक मुख्य बाजार मे आए। निर्जनता के कारण वह चौडी सडक और भी अधिक चौडी लग रही थी। कुत्ते तक उस मार्ग पर नही दिखलाई पड रहे थे। रामबोला ने इतना बडा नगर, पक्के मकान, पक्की सडक और घाट-बाट जीवन मे पहली ही बार देखे थे। इस दृश्य से वह चमत्कृत भी हुआ, मन मे बतियाता चला। 'राजा रामचन्द्र जी की अयोध्या है, इसे तो ऐसे ठाठ-बाट का होना ही चाहिए था। मुदा यह बीच-बीच मे इतने खण्डहर क्यो पडे हे? राम जी की अयोध्या मे मुगल-पठान क्यो लड रहे है? किसी और बादशाह की हार-जीत का प्रश्न क्यो उठ रहा है?" ऐसे कौतूहल भरे प्रश्न उसके अबोध मन को चौकाने लगे.

एक जगह आठ-दस लड़वैये तीर-कमान लिए कमर में तलवारें बांधे एक चबूतरे के पास खड़े थे। नरहरि बाबा ने उनसे कहा—"जै सियाराम!"

"जै सियाराम, बाबा, अरे नान्हे से बच्चे को लेकर काहे घूम रहे हो आप?"

"बाहर से आए है भगत। ठिकाने पर जा रहे है। यह प्रलय काल कब तक रहेगा भाई?"

एक सिपाही ने खिसियाई हुई हंसी हंसकर उत्तर दिया—"कौन जाने महराज, राम जी तो अजुध्या छोटि कै वैकुण्ठवासी हो गए। अब जो न हो जाय सो थोड़ा है।"

"यह हवेली कौन सेठ की है?"

"बिस्सूमल जौहरी की। वह तो फटे-पुराने चिथड़े पहनकर भाग गए है और हमे मरने के लिए यहां छोड़ गए हैं। माया उनकी और रच्छा हम करें! ह-ह-ह।"

दूसरा सिपाही बोला—"तो क्या उपकार कर रहे हो तुम!"

एक तीसरे सिपाही ने कहा—"यह घुरहना गार जब बोलता है तब अण्ड-बण्ड ही बकता है। अरे पापी पेट की गुलामी कर रहे है हम लोग। जिसका नमक खाते है उसके लिए जान भी देंगे।"

नरहरि बाबा शांत स्वर में बोले—"पेट ही तो राम जी की माया है। पेट और नारी इन्ही दो से संसार नाचता है। तो सब सेठ-साहूकार भाग गए होंगे?"

"हां, महराज, बस एक रतनलाल सेठ मूछो पै ताव दिए डटे हैं। दो हजार बैरागी लड़वैये उनके साथ है। कोई मुगल-पठान उधर मुह करने की हिम्मत नही करता है।"

इस हवेली को पार करके बाबा एक गली मे मुड़े। गली यहा से वहा तक सूनी पड़ी थी। सारे द्वार-खिड़किया-झरोखे बन्द थे।

रामबोला ने पूछा—"बाबा, राम जी मुगल-पठानो को अपनी अयोध्या मे दंगा काहे मचाने देते है?"

"अरे भाई, राम जी के तो सभी लड़िका है। और लड़के दंगा भी करते हैं। क्या तुम नही दंगा करते हो?"

रामबोला झेंप गया। बाबा ने कनखी से उसकी ओर देखा और मुस्कराकर कहा—"तुम भले लड़के हो, कभी-कभी दंगा करते हो।" हल्का विनोद का पुट देकर बाबा ने बच्चे के मन को थाम लिया। एक बड़े फाटक के सामने आकर बाबा रुके। उन्होंने फाटक का कुण्डा जोर से खड़खड़ाया और आवाज दी—"अंजनीशरण, ऐ अंजनीशरण!" भीतर से कोई आवाज नही आई। कही दूर पर 'जय-जय-सीताराम' का युद्धघोष गूंजा। नरहरि बाबा ने फिर कुण्डा खट-खटाया और जोर-जोर से अंजनीशरण को पुकारा। फाटक की खिड़की के पीछे से आवाज आई—"कौन है?"

"हम, नरहरिदास।"

"कौन दास, कहा से आए है?"

"वाराहक्षेत्र से नरहरिदास।"

"तुम्हारे साथ कोई और भी है ?"

"अरे, द्वार तो खोलो भाई, हमे पहचाना नही, अजनीशरण कहा है ? सियारामशरणदास है ? जाके उनसे कहो कि वाराहक्षेत्र से नरहरि बाबा आये है।"

फाटक के पीछे से एक नया स्वर सुनाई दिया—"हा, हम चीन्हि गए। फाटक खोल दे जयरमवा।"

कुण्डी खटकी। खिड़की का एक पल्ला तनिक-सा खुला। दो आखो ने झाक कर देखा और पल्ले झट से खुल गए। "आओ, बाबा। अरे ऐसी प्रलय मे आप कैसे आकर फस गए बाबा ? जय सियाराम।"

"जय सियाराम। बडा उत्पात मचा है यहा तो!"

"कुछ समझ मे नही पडता है महराज, क्या होगा ? जिस बब्बरशाह ने जन्मभूमि को नष्ट-भ्रष्ट किया उनही का बेटा आज दण्ड पा रहा है। हार के भागा बिचारा। अब यह पठान क्या करेगे सो कौन जाने।"

"राम करे सो होय, कलिकाल है भाई।"

रामबोला बड़ो की बाते सुन-सुनकर अपने मन मे कुछ विचित्र-सा अनुभव कर रहा था। उसके हृदय मे कौतूहल-भरी सनसनाहट और आतक की उठती-गिरती तरगे भरी हुई थी। नई जगह का अनजानापन भी मन को अस्थिर बना रहा था। उसके मन मे शब्दो का भण्डार मानो चुक गया था, मन का यह गूगापन रामबोला को और भी आतकित कर रहा था।

भीतर दालान मे एक वृद्ध साधु चौकी पर बैठे माला जप रहे थे। नरहरि बाबा को देखते ही वे उठ खडे हुए और प्रेम से उनकी अभ्यर्थना की। बातो के दौर मे बाबा ने रामबोला का परिचय दिया। पैनी दृष्टि से बालक को देखकर महन्त जी बोले—"यह तो जन्म से ही यज्ञोपवीत धारण करके आया है बाबा, इसे आप क्या सस्कार देगे!"

"सासारिकता निभानी ही पडती है महन्त जी, स्वय राम जी को भी पृथ्वी पर आकर संस्कार-सम्पन्न होना पडा था।"

"हा, यह तो ठीक है। तो क्या परसो रथयात्रा के दिन इसे सस्कार देगे ?"

"हा।"

"अब तो अयोध्या से रथयात्रा का उत्साह ही समाप्त हो गया, बाबा। श्रीराम की अयोध्या रावण की लका हो गई है।"

"लका तो यहा नही बन सकती। अब तक दिल्ली मे थी, अब चाहे जौनपुर मे बने। राम जी की इच्छा, क्या कहा जाय।"

दो दिन बीत गए। अयोध्यापुरी आतक और अफवाहो से तो भरी रही किन्तु कोई घटना न घटी। रथयात्रा के दिन ब्रह्म मुहूर्त मे ही रामबोला का मुण्डन और फिर उपनयन सस्कार हुआ। रामबोला को गायत्री मत्र की दीक्षा स्वयं नरहरि बाबा ने दी। सस्कार समाप्त होने के बाद रामबोला को तुलसी मण्डप के नीचे काठ के छोटे-से पलके मे विराजमान राम जी को प्रणाम करने के लिए भेजा गया। रामबोला जब भगवान को साष्टांग प्रणाम कर रहा था तब तुलसी

की एक पत्ती वृक्ष से झरकर उसके मस्तक पर गिरी। उसे देखकर महन्त जी प्रसन्न मुद्रा में बोले—"उठ, उठ बच्चा, तेरा कल्याण हो गया। राम जी ने तेरे मस्तक पर भक्ति-भार डाल दिया है।"

सुनकर नरहरि बाबा पास आए। बालक के मस्तक पर चिपकी तुलसी की पत्ती को देखकर वे बोले—"आपने सत्य ही कहा महन्त जी, श्रीराम ने इसे निःसंदेह स्वभक्ति का ही वरदान दिया है। आज से इसका नाम तुलसीदास हुआ।"

उसी दिन महन्त जी ने बालक का अक्षरारंभ संस्कार भी कराया। रामबोला उर्फ तुलसीदास अब विधिवत् पंच संस्कार पाकर ब्राह्मण बटुक बन गया था। महन्त जी ने बाबा से पूछा—"बालक को क्या आप अयोध्या में ही छोड़ जाना चाहते हैं?"

"इसे काशी ले जाऊंगा महन्त जी, आचार्य शेष् सनातन ही इसे पण्डित बनाएंगे।"

"हमारा विचार है कि अभी आप कुछ दिनों तक अयोध्या न छोड़ें। राजनीतिक स्थिति शांत हो जाने पर ही यात्रा करना उपयुक्त होगा।"

"राजनीतिक स्थिति अब तो सदा ऐसी ही रहेगी महन्त जी। शेर खा आवे चाहे चीता खा। वस्तुतः धर्म धर्म से नहीं लड़ रहा है, यह बात अब सिद्ध है। नहीं तो पठान भला मुगलों से लड़ते? राम जी कालदधि मथकर मानव-मन का माखन निकाल रहे हैं।"

संस्कार तथा नया नाम पाकर तुलसी के जीवन में सहसा एक विराट परिवर्तन आ गया। वह बड़ी लगन से पढ़ता। उसे जो कुछ भी पढ़ाया जाता वह दिनभर उसे ही याद करता था। यज्ञोपवीत के सात-आठ दिन बाद ही नगर में डौंडी पिटी—"खल्क खुदा का, मुल्क शेरशाह का अमल ।" स्थानीय पठान शासनाधिकारी के नाम की घोषणा हो जाने के बाद सबको अपनी दूकानें खोलने और कारबार चलाने का आदेश दिया गया। समय देखकर नरहरि बाबा ने काशी जाने की योजना बनाई। तुलसी बोला—"बाबा, तुम तो कहते थे कि अयोध्या जी में राम जी का महल है। हमें भी दिखाय देव।"

सुनकर बाबा की आंखें उदास हो गईं। होंठों पर खिसियान-भरी पराजित मुस्कान की रेखा खिंच गई, वे बोले—"राम जी का पुराना महल टूटकर अब नया बन रहा है बेटा।"

"तो राम जी आजकल कहां रहते हैं?"

"मेरे-तेरे अपने चाहनेवालों के हृदय में रहते हैं।"

बात इतनी गम्भीरतापूर्वक कही गई थी कि बच्चा उसका प्रतिवाद करने का साहस तक न कर सका। यद्यपि उसके मन में गहरा प्रश्नचिह्न बना ही रहा।

मार्ग इस समय निरापद था। जगह-जगह पठानों की चौकियां थीं। वे लोग व्यापारी काफिलों को आने-जाने के लिए प्रोत्साहन दे रहे थे। बाबा नरहरिदास जी के साथ ही काशी जाते हुए एक अन्य साधु ने यह देखकर कहा—"यह पठान

मुगलो से अधिक प्रबन्धपटु लगते है। इनका ब्यौहार भी मीठा है।"

नरहरि वावा हंसे, कहा —"नया धोवी कथरी मे साबुन। अभी कुछ दिनो तक तो यह अच्छे प्रबन्धक वने ही रहेगे। उन्हे अपना शासन जमाना है।"

"आपने सत्य कहा महात्मा जी, पर अब क्या रामराज्य कभी लौटकर नही आएगा ?"

"जब रामकृपा होगी तब रामराज्य भी आ जायगा।"

"रामराज्य कैसा होता है वावा ?" वालक तुलसी ने प्रश्न किया।

"वाघ और वकरी एक ही घाट पर पानी पीते है। राह मे सोना उछालते चलो तो भी कोई तुमसे छीनेगा नही। जैसा न्याय राम जी करते है वैसा कोई नही कर सकता है वेटा। रामराज्य मे कोई दीन-दुर्बलो को सता नही सकता। कोई भूखा नही रहता, कही भी चोरी-चकारी और अन्य अपराधजनित कार्य नहीं होते।"

"ऐसा रामराज्य कव आएगा वावा ?"

नरहरि वावा मुस्कराए, कहा—"तुम आठो पहर अपने मन में प्रेम से गोहराओ, राम जी आओ, राम जी आओ, तो राम जी तुम्हारी गोहार अवश्य सुनेंगे।"

"राम जी आओ, राम जी आओ, राम जी आओ।" बालक का भोला मन गुरु से राह पाकर सीधा-सरपट दौड़ चला। मार्ग-भर वह इधर-उधर से मन हटाकर वार-वार यही रटता चलता था। उसकी बुदबुदाहट पर बडी देर वाद नरहरि वावा का ध्यान गया। तव तक वे अपनी कही वात को भूल भी चुके थे। उन्होने पूछा—"क्या बुदबुदाता है रे ?"

"राम जी को गोहरा रहा हूं, वावा।"

तुलसी के सिर पर प्रेम से हाथ रखकर वावा वोले —"गोहराए जाओ, रुकना नही। कभी तो गरीव निवाज के कानो मे भनक पड ही जाएगी।"

एक व्यापारी काफिला इन साधुओ के साथ चल रहा था, इसलिए इन्हे मार्ग मे भोजन-पानी की तनिक भी चिन्ता न करनी पडी। वे सकुशल काशी पहुच गए। × × ×

८

वावा का मन अपनी जीवन कथा की तटस्थ होकर पुनरावृत्ति करते हुए एक जगह पर शून्य-स्थिति में आ गया और जव सूनापन आता है तो आदत से सधा हुआ राम शब्द तुरन्त उस शून्य का केन्द्र-विन्दु वन जाता है। कुछ क्षणों तक वे शब्द रूपी कमल की केसर मे मधुप वनकर चिपके रहे फिर कहा—"अच्छा, वेनी-माधव आगे की कथा अव कल होगी।"

रात में स्वप्न देखा कि एक सर्पिणी अपना फन कुडली मे दवाए पड़ी है और

वावा उसे ध्यान से खडे हुए देख रहे हैं। अकस्मात् उन्हे ऐसा लगता है कि जैसे उनका हृदयाकाश असख्य वाद्य ध्वनियो की गूज से भर उठा है। उन्हे स्वप्न मे भी ध्यान आने लगा कि जो वाजे उन्हे अव तक राम ध्वनि के साथ कानो मे ही सुनाई पडा करते थे वे अव हृदय की धडकनो मे ऐसे अद्भुत नाद करते सुनाई दे रहे हैं कि वे स्वय ही उसके जादू से वंध गए है। उन्हे ऐसा लगता है कि जैसे वे एक वहुत वडे सोने के फाटक के सामने खडे हैं। अपने साहव की ड्योढी देखकर उनके हृदय को आह्लाद का दौरा पडा। वे डरते हैं और अपनी राम-आस्था से सभलते हैं।

'प्रभु जी की ड्योढी पर आना क्या कोई हंसी-ठट्ठा है! कैसा चमत्कार है। भय तो लगेगा ही। पर भय तेरा क्या कर लेगा, रे तुलसी! तू जिसका खास गुलाम है यह उसी मालिक गरीव-निवाज तुलसी-निवाज की ड्योढी है।'

द्वन्द्व यहा भी न छूटा, दूसरा मन खिल्ली उडाते हुए पूछ वैठा—'क्या प्रभु भी तुझे अपना मानते हैं?'

'मानते हैं।'

'फिर खुलती क्यो नही? खास गुलाम को भला ड्योढी पर रोक-टोक?'

पहला मन इस प्रश्नाघात से स्तम्भित होता है। आह्लाद रुक गया। मन की खीझ वढी। फिर वह सिसक उठा। नीद खुल गई। वे उठकर वैठ गए। आखो मे आसू छलछला आए, होठ कापने लगे। दोनो हाथ जोडकर प्रार्थना की करुणा मे वह चले--

राम! राखिये सरन, राखि आये सव दिन।
विदित त्रिलोक तिहु काल न दयालु दूजो,
आरत-प्रनत-पाल को है प्रभु विन॥
स्वामी समरथ ऐसो, हौ तिहारो जैसो तैसो
काल चाल हेरि होति हिये घनी घिन॥
खीझि-रीझि, विहँसि-अनख क्योहूँ एक वार।
'तुलसी तू मेरो,' वलि, कहियत किन?
जाहि सूल निर्मुल, होहि सुख अनुकूल,
महाराज राम, रावरी सौं तेहि छिन॥

रामू झपटकर उठकर वैठ गया। वह सहसा मन मे लज्जा का अनुभव करने लगा। कई वर्षो के साथ मे यह पहला ही अवसर था जव रामू अपने प्रभुजी के जागने के वाद जागा। वावा का भजन चलता रहा। वह पीछे खडा-खडा होठो मे दुहराता रहा। प्रभु जी के स्वर मे आज कैसी अगाध करुणा है। वावा फिर जव चैतन्य होकर भीतर मुडे तो उसने वावा के चरणो मे अपना प्रणाम निवेदन किया और फिर अपना टाट समेटकर उसे रखने के लिए वाहर दालान मे चला गया।

वावा उसके पीछे ही पीछे वाहर दालान मे आ गए, आकाश देखा, वोले—"लगता है कि हम जल्दी उठ आए। स्वप्न मे सर्पिणी को देखा तो आग खुल गई।" वात कहते हुए उन्हे लगा कि वे चीखकर स्वर निकाल रहे है। और कान

में बजने वाले ढोल-दमामे की गूंज मे जैसे उनका स्वर अपने ही मे दबा जा रहा है। उन्हें लगा कि उनके प्राणो मे बाढ आ रही है और प्रवाह के वेग से वे स्वयं भीतर ही भीतर कही बहे चले जा रहे हैं।

"रामू !" गूढ किन्तु धीमे स्वर मे पुकारा।

"जी, प्रभु जी।"

"लगता है कि जीवन मे अभीप्सित क्षण आ पहुचा है। सावधान रहना। मेरे शिशु मन की परीक्षा का कठिन क्षण भी है। कुछ भी हो सकता है।"

सुनकर रामू का मन कांप उठा। लड़खडाए, घबराहट-भरे, सिसकते स्वर मे मुह से निकला,-"प्रभु जी···"

"मृत्यु नही पगले, जीवन की बात सोच। चल, अब उठ पड़े है तो घाट पर ही चले।"

"भगत जी और सन्त महाराज को जगा लूं तो···"

"वे अपने समय से जागेगे। तू मुझे ले चल।" रामू के लिए बाबा की बात कुछ पहेली-सी तो थी किन्तु वह इतना अवश्य समझ गया कि बाबा के भीतर कोई रहस्यमय परिवर्तन-हो रहा हैं। उनके स्वर मे कुछ भारीपन और खिचाव भी था। ऐसा लगता था कि वे भीतर कही पीड़ित है परन्तु वह पीडा उनके लिए दुखदायिनी होते हुए कही पर सन्तोष-भरी और सुखदायिनी भी है। वे चेहरे पर ही खोए-खोए-से लग रहे हैं। स्वर, चाल-ढाल सबमे यही बात है। ऊपरी तौर से वह दिन अनमना बीता। बाहर से मानो उनकी सारी क्रियाए शिथिल पड गई थी। बोलना-चालना, भीड-भड़क्का, खाना-पीना कुछ भी रुचिकर नही लग रहा था। रामजियावन ने वैद्य को लाने की बात कही किन्तु बाबा ने मना कर दिया, बोले—"मेरे वैद्य स्वयं पधार रहे है।"

रामू अनुभवसिद्ध भले ही न हो किन्तु काशी मे जन्मा है। ऐसे वातावरण मे पला-बढ़ा है जहा आध्यात्मिक प्रसंग जनसाधारण की गप्पो तक मे सुने-बखाने जाते हैं। चौदह-पंद्रह वर्ष की आयु मे बाबा के पास आया था और इन्ही की सेवा मे जवान हुआ। अनेक सन्त-सन्यासियो और ज्ञानियो के साथ बाबा की बातें भी सैंकड़ो बार सुनी है इसलिए रात मे जब बाबा लेटे तो पैर दबाते हुए उसने कुछ-कुछ सहमे हुए स्वर मे पूछा—"प्रभु जी, काया मे कोई आध्यात्मिक परिवर्तन ?"

"हू। किसी से कहने-सुनने की आवश्यकता नही है।"

दूसरे दिन रात मे फिर उसी समय शक्ति जागी। इस बार बाबा भी जाग पड़े। बैठने लगे तो भीतर से आदेश गूजा · 'शवासन साधे पडे रहो।'-बाबा अचम्भे में आ गए। सोचते, 'यह स्वर है तो मेरा ही पर इतना गम्भीर और गूज-भरा हे कि मानो रामजी का ही स्वर हो।' अभ्यास-भरी सास राम-राम जप रही है, अर्न्तदृष्टि के आगे दृश्य आ रहे है···

उन्हें भासित हो रहा था कि उनका मन मानो एक गुफा है। जिसमे बीचो-बीच एक दिया जल रहा हे। वह गुफा राम-रमी वाद्यध्वनियो से गूज रही है, और वह गूज बढती ही जा रही है। फिर उन्हे लगा कि प्राण मानो उनके

नाभिचक्र से नाचते हुए ऊपर उठ रहे है, पचेन्द्रिया अजीव सनसनाहट मे भर उठी है। सारे राग एक सम्मिलित नाद बनकर उन्हे अपने-आप मे लपेटते ही चले जा रहे है, नाद बवण्डर की तरह उनके मन के चारो ओर नाच रहा है। दीप-शिखा नाद के बवण्डर को नागिन की जीभ बनकर छू लेती है। जैसे ही उसका स्पर्श होता है वैसे ही नादमयी काया आह्लाद की विवश गुदगुदी, कौतूहल और भय की सनसनाहट से भर उठती है। मन-गुफा के कण-कण से ऐसा रस झरने लगता है कि वह झूमचूम हो जाते है, आनन्द और भय मे ऐसा द्वन्द्व हो रहा है कि ऊपर से कुछ कहते नही बनता, पर मन मे कही से बात भी उठ रही है कि धैर्य धरो, प्रतीक्षा करो।

मन-दीप की शिखा मीनार-सी ऊची उठती है और उसकी नोक से एक नन्हा ज्योति-बिन्दु झरकर गुफा के शून्य मे नाचने लगता है। वह क्रमश. बड़ा होता है और बन्द कमल कली-सा नीचे उतर आता है। कली खिलती है, खिले कमल से तुलसीदास ही का एक आकार पद्मासन साधे बैठा हुआ प्रकट होता है।

फिर उसके स्पर्श से एक दूसरा ज्योति-बिन्दु उठकर नाचता है और वैसे ही सक्रमण करते हुए क्रमशः कमल और कमलासीन तुलसी प्रकट होकर बाबा के बाएं विराजते है। क्रमश. आकार से आकार निकलते चले आते है। प्रत्येक आकार पहले से अधिक झीना होता है और इन सात आकारो के गोष्ठचक्र के बीच मे एक नन्हा-सा सूक्ष्माकार विराजमान हो जाता है। किन्तु यह किसी का आकार नही, यह सूर्य है जिसकी किरणे सुनहरी नागिनो-सी चारो ओर बढ रही है। मन चकित और बड़ा ही विकल है। सूर्य उनके आकारो को आत्मसात करता हुआ बढ रहा है।

रामू जाग पड़ा। उसने आश्चर्य से देखा कि अधेरे मे बाबा की काया तहखाने मे रखे सोने जैसी लग रही है। झिलमिल देह मानो यथार्थ से एक उच्च यथार्थ है।

कुछ देर तक अन्तर्पट के दृश्यो को देखते रहे। और फिर वह दृश्य भी तिरोहित हो गए। केवल काला अधेरा बचा और शेष रहा कपाल-बिन्दु पर एक अनोखा और सचल भारीपन। बाबा को उन दृश्यो के खो जाने का बड़ा दुख था। उन्हे वैसा ही लग रहा था जैसे उनका पैसा गांठ से खिसककर कही गिर गया हो। दुख को शब्दो का जामा पहन लेने की आदत पड़ गई है। लेटे ही लेटे बाबा अपने आप ही से बोलने लगे—

"कह्यो न परत, बिनु कहे न रह्यो परत
बड़ो सुख कहत बडे सो बलि दीनता।
प्रभु की बड़ाई बडी, अपनी छोटाई छोटी,
प्रभु की पुनीतता, आपनी पाप-पीनता।
दुहू ओर समुझि सकुचि सहमत मन,
सनमुख होत सुनि स्वामि-समीचीनता।
नाथ-गुननाथ गाये, हाथ जोरि माथ नाये,
नीचऊ निवाजे प्रीति-रीति की प्रबीनता।

हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उठ बैठे। उन्हे बैठते देखकर रामू ने तुरन्त चरणो मे माथा टेककर प्रणाम किया।

"रामू!"

"हा, प्रभु जी।"

"घाट पर चल बेटा।"

"जैसी आज्ञा प्रभु जी, किन्तु अभी तो रात शेष है।"

"हुआ करे, मुझे ले चल।" इस लालच से रामू के कधे पर हाथ रखकर बाबा आखे मीचे हुए ही चल रहे थे कि कदाचित् वे प्रकाश-दृश्य फिर उनके अन्तर्पट पर आ जाय। पर नही आ रहे। 'तुलसीदास, इस नब्बे वर्ष की आयु मे भी तुमने बच्चो जैसी उतावली दिखलाई ? याद रख रे मूढ, यही तो वह दरबार है जहा गर्व से सर्व हानि होती है! यहा तो अपनी आध्यात्मिक गरीबी एव मिस्कीनता को प्रदर्शित करने मे ही कुशल-क्षेम है। मूर्ख तू भूल जाता है कि राम सरकार रावण जैसे मद-मोटो को नही वरन् विभीषण जैसे दीन-दुर्बल पुरुष को शरण देते है। इस दरबार मे तू जो चतुर बनकर आता है तो तुझसे बढकर मूर्ख और कोई नही है। हे अज्ञानी, तूने जटायु, अहल्या और शबरी की कथाए क्यो बिसार दी जिनमे अहकार रहित प्रेम भाव लहराता है। वे ही प्रभु को प्यारे है। रामभद्र मुझे क्षमा करे। मैंने बडी चूक की।

सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु,
सुमिरत होत कलिमल-छल-छीनता ॥
करुनानिधान, बरदान तुलसी चहत,
सीतापति-भक्ति-सुरसरि-नीर-मीनता ॥'

दो दिनो से भगत जी और बेनीमाधव जी पिछड जाते है। बेनीमाधव जी को इस बात से गहरा दुख और लज्जा का बोध होता है। कल जब घाट पर आए थे तब बाबा नहाकर व्यायाम कर रहे थे किन्तु आज तो वे अपने ध्यान मे भी बैठ चुके है। बाबा का विचित्र हिसाब है। नहाकर व्यायाम करते हैं और उस समय वे गणेश-भैरव-शिव-सरस्वती-हनुमान और प्रभु सीतापति समेत चारों भाइयो की वन्दना मे अपने अथवा पराए रचे हुए श्लोको का मानसिक पाठ भी करते चलते है। उनकी डण्ड-बैठक की अवधि उनके भजन क्रम के लम्बे पाठ के साथ ही साथ पूरी हो जाती है। तन-मन के इस व्यायाम मे उनका आधी घडी से कुछ अधिक समय ही लगता है। फिर वे ध्यान मे बैठ जाते है। बाबा का यह दैनिक कार्यक्रम जब पूरा हुआ और जब भगत आदि भी अपने दैनिक क्रम से मुक्त हुए तो घाट पर चहल-पहल बढ चुकी थी। रामजियावन नहा-धोकर अपना चदन घिसने बैठ चुके थे। घर लौटने से पहले शिव जी के दर्शन करने जाया करते थे। आज मार्ग मे भगत जी ने बाबा को टोका—"भैया, का हम दीन-दुर्बलो को हियै छोड़ि के सरग जाओगे ?"

सुनकर बाबा खिलखिलाकर हस पड़े और भगत जी के कधे पर हाथ रखकर बोले—"तुमको छोड़ के जाएगे तो स्वर्ग मे हमारे हेतु राजापुर कौन बसा-

एगा ? चिन्ता काहे करते हो।"

"चिन्ता बस इसी बात से भई कि दुइ दिनो से हमको सोता छोड़ि के तुम चले आते हो।"

"नही भाई, इसमे हमारा कोई विशेष प्रयोजन नही। दो दिनो से अपने भीतर कुछ ऐसे अलौकिक अनुभव पा रहा हू कि उनकी चकाचौध के मारे फिर लेटा नही जाता। इसी से चला आता हूं।"

राजा की शिकायत मिटी, कौतूहल जागा, पूछा—"कैसे अनुभव पा रहे हो, भैया ?"

बाबा हसे, कहा—"मन अभी गूगा है राजा। वह गुड का स्वाद जानता तो है पर बखान नही पाता।"

राजा कुछ समझे, कुछ न समझे पर बाबा की बात से उन्हे यह संतोष अवश्य हो गया कि वे उनसे असतुष्ट नही हैं। किन्तु बेनीमाधव जी मन ही मन मे राजा भगत से भी अधिक कुण्ठित थे। उन्हे रामू के प्रति ईर्ष्या थी। वे मन से चाहने पर भी बाबा की वैसी सेवा नही कर पाते जैसी रामू करता है। उन्हे कही यह गुमसुम शिकायत भी थी कि बाबा रामू को अधिक चाहते हैं।

बाबा को लगा कि बेनीमाधवदास का मन उनके मन के भीतर बोल रहा है। उन्होने बेनीमाधव जी के मुख पर एक सतर्क दृष्टि डाली। उनके म्लान मुख पर अपनी नवानुभूति का समर्थन पाकर बाबा को लगा कि उनके मन ने अब दूसरो के मन की तरगो को आत्मसात करने की शक्ति पा ली है। अभी तक वे दूसरो की आखे देखकर उनके मन के भाव ताडा करते थे, राम ने इस दिशा मे भी कृपा करके उनका एक डग और बढा दिया है। उनका मन अब निर्मल हो गया है। अपने मन की अवस्था को और भी सही प्रमाणित सिद्ध करने के लिए उन्होने बेनीमाधव जी से कहा—"यह लड़का मुझसे कुछ नही चाहता। इसमे अपना नाम अमर करने की आकाक्षा तक नही है। फिर इससे ईर्ष्या क्यो करते हो बेनीमाधव ? मै पक्षपात नही करता। न्याय करता हू। अपने मन को निर्मल करो, तब समझ जाओगे।"

बेनीमाधव जी बात सुनकर चौक पड़े। झटपट हकलाकर कहा—"मे-मे-मेरे मन मे कोई ईर्ष्या " बाबा से आखे मिली तो कहते-कहते चुप हो गए, फिर सिर झुकाकर अपराध-जड़ित स्वर मे कहा—"अपराध हुआ गुरू जी, क्षमा करे।"

बेनीमाधव के चेहरे पर लहराती हुई पश्चात्ताप की कठिन पीडा बाबा की पैनी दृष्टि से बच न सकी। कामदनाथ महादेव के दर्शन करके मन्दिर से बाहर निकलते हुए उन्होने बेनीमाधव के कन्धे पर हाथ रखकर राजा भगत से कहा—"रजिया, तुम और रामू घर चलो। मैं थोड़ी देर के बाद आऊगा। मुझे बेनीमाधव से कुछ काम है।"

पहाड़ी के पीछे एक छोटे-से झरने के पास बैठ गए। आकाश पर बादल मडरा रहे थे। मौसम सुहाना था। पक्षियो का कल कूजन बेनीमाधव जी के मन की तरह नाना स्वरो मे बोल रहा था, अन्तर केवल इतना ही था कि पक्षियो के स्वर में जहा आनन्द था वही बेनीमाधव के मन की तहो मे भय,

करुणा, दीनता, क्षोभ और कुण्ठाएं बोल रही थी। 'गुरुजी सब जानते है। यह मुझे यहा क्यो लाए है? मै पापी अवश्य हू पर उसके लिए इतना विवश हू कि क्या करूं। मुझे यह निरर्थक जीवन क्यो मिला राम! अब मै बहुत दुखी हूं··· वहोत-बहोत, बहोत ही दुखी हूं राम। मुझपर दया करे, दया करे।'

"बेनीमाधव तुम्हारे भीतर कोई अनबुझी चाहना है। वही विद्रोह करती है और फिर कुण्ठित भी होती है।"

बेनीमाधव चुप रहे। सिर झुकाए सुनते रहे। बाबा ने आगे कहा—"धन तुम्हारा लोभ नही, नारी है। मैने तुम्हारी आखो से कामना के तीर चलते देखे है।···तुम विवाह कर लो। गृहस्थ होकर तुम राम-पद-नेह इस स्थिति से अधिक सुगमता से··" कहते-कहते वे सहसा रुक गए। सहसा बेनीमाधव के कधे पर हाथ रखकर कहा—"इधर देखो।"

गुरु-आज्ञा टाल न सकने की मजबूरी मे बेनीमाधव जी ने उनसे आखे तो मिलाई पर ऐसा करते हुए वे अपने आसू रोक न सके। उनकी दृष्टि मिलकर फिर झुक गई। बाबा गम्भीर स्वर मे बोले—"लगता है नारी को लेकर तुम्हारे मन मे श्रद्धा और अश्रद्धा का भयंकर द्वन्द्व निरंतर चलता रहता है। मै ठीक कह रहा हूं न?"

"हा गुरु जी!"

"कारण?"

बेनीमाधव जी निरे बचपन मे ही अनाथ हो गए थे। चाचा-चाची ने पाला। बेचारे कुत्ते की तरह दुरदुराए गए। सोलह-सत्रह वर्ष की आयु थी जब इनके गाव मे एक संन्यासिनी आई। परम तेजस्विनी थी। गाव-भर उसका भक्त हो गया। बेनीमाधव भी माता के सेवक हो गए। उन्ही के साथ-साथ वे गाव से निकल गए। जिस माता स्वरूपिणी संन्यासिनी ने उन्हे आरम्भ मे भक्ति का ऐसा प्रबल भाव दिया कि बेनीमाधव अपने भीतर एक चामत्कारिक परिवर्तन का अनुभव करने लगे थे, वही संन्यासिनी कुछ महीनो बाद तपोभ्रष्ट हुई। एक रात सोते हुए बेनीमाधव पर उसने ऐसा कामुक आक्रमण किया कि वे जीवन-भर के लिए झटका खा गए। सन्यासिनी से भागे लेकिन अपने मन से भागकर कहा जाय! ब्रह्मचर्य साधते है, सध नही पाता। ब्रह्मचारी के रूप मे प्रसिद्धि पाई है इसलिए साधु-सेवा की भूखी बदनाम कामिनियो को भजने मे भय लगता है। काम के प्रबल हठ से जब-जब ऐसे संयोग लुक-छिपकर साधे है तब-तब उन्हे अपने-आप से घोर ग्लानि हुई है। राम और नारी की खीचतान मे स्तब्ध होकर खडे-खडे उनका मन अब काठ हो गया है। अहर्निशि उनकी आत्मा सिसकती है, कही जी नही लगता।

बेनीमाधव जी के आत्मसंघर्ष को बाबा यो तो वर्षो से देख रहे थे किन्तु उनका मर्म वे आज समझ सके। गम्भीर हो गए। बेनीमाधव फूट-फूट कर रो रहे थे। कुछ देर विचार करने के बाद वे बोले—"पुत्र, काम ने मुझे भी बहुत सताया है किन्तु तुम्हारे प्रति तो उसने अत्याचार किया है। मै समझ गया, गृहस्थ बनकर अब तुम्हे सुख नही मिल सकता। जिस मार्ग पर अब तक इतनी

ठोकरें खाकर भी तुम चलते रहे हो उसी का अनुसरण करके तुम्हें सद्गति प्राप्त हो सकती है। अन्य उपाय नहीं। पश्चात्ताप के पाप को सतत प्रार्थना का पुण्य बनाओ। मैंने यही किया है—

सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि
लियो काढि वामदेव नाम-घृतु है।
नाम को भरोसो-बल, चारिहूं फल को फल,
सुमिरिये छाडि छल, भलो कृतु है।"

"आपने शतकोटि चरित्रों का दधि मथकर जिस कामारि अर्द्धनारीश्वर को पाया वह मुझे एक आप ही के पावन चरित मे प्राप्त होने की आशा है। मैं यह भलीभांति समझ चुका हूं कि आप ही मेरा बेडा पार लगाएंगे।" बेनीमाधव जी बाबा के चरणो मे झुक गए।

उनके सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए बाबा कहने लगे—"जप मे ध्यान रमाओ। नाम ही का आधार लो। तुम्हे गति मिलेगी।"

"नही मिलती गुरु जी। वर्षों से प्रयत्न कर रहा हूं। धरती पर पानी डालने से वह सोखती है, मैं तो चिकना पत्थर हूं पत्थर, पानी बह जाता है।", गीली आंखे फिर कटोरी-सी भर उठी।

बाबा ने स्नेह से झिडका—"कैसे मर्द हो बेनीमाधव? दीवार से बार-बार गिरनेवाली चीटी की कथा सुनी है न। उस अदम्य अपराजेय नन्हे-से जीव से शिक्षा ग्रहण करो। नाम-जप एकाग्रता सिद्ध कराता है। भाव की एकाग्रता अंतश्चेतना का वह द्वार खोलती है जिसमे सत्य सार्थक होकर बसता है।" कुछ क्षणो तक रुककर वे झरने की ओर देखते रहे—झरना नही रंग बह रहे थे। रग आपस मे मिलते तो नया रूप लेते, बिछुड़ते तो नया रूप लेते और जब सब रग मिलते तो झरना बिजलिया बहाने लगता था। बाबा उमंगो मे भर उठे, खडे हो गए, कहने लगे—"अपने जीवन-भर के संघर्ष का सुख मैंने अब पाना आरम्भ किया है। आओ चलें।"

उस रात फिर उसी समय शक्ति जागी। बाबा को लगा कि कोई उन्हे झिंझोड कर जगा रहा है। वे उठ बैठे। देखा कि सामने एक प्रकाश पुरुष खड़ा है। पुरुष के चरण-नख-बिन्दु से एक ज्योति निकलकर उनकी काया के चारों ओर इन्द्रधनुष की तरह फैल गई। ज्योति-रेखा जब उनके हृदय को स्पर्श करती है तो वह उन्हे दाहक नही लगती वरन् उसका ताप उनके हृदय को गुदगुदा रहा है।

उनकी सासो मे समाई रामधुन बढती जा रही है। उन्हे ऐसा लगता है कि मानो उनकी देह सगीत-लहरियो से भर उठी है। उनकी दृष्टि के आगे फैले प्रकाश का अणु-अणु उसकी गूंज से निनादित हो रहा है। इस गूंज मे घिरा राम-नाम सुनने मे अलौकिक लग रहा है। ज्योति चारो ओर से सिमटकर फिर बिन्दु बन रही है और उनकी काया की ओर बढ रही है। बिन्दु उनकी नाभि, हृदय और कण्ठ को छूता हुआ ऊपर बढ रहा है, उनकी भवो के केन्द्र को स्पर्श

कर रहा है। उन्हें अपने कपाल के मध्य मे गुदगुदी-सी अनुभव होती है और वह गुदगुदी बढते-बढते असह्य हो जाती है। बार-बार जी चाहता है कि सिर रगड ले परन्तु हाथ उठ जाने पर भी वे उसे हठपूर्वक रोक लेते है। उन्हे लगता है कि उनका सारा शरीर भीतर से खोखला हो उठा है, साय-साय कर रहा है। प्राण केवल भृकुटी मे भवर बनकर चक्कर काट रहे है, यह चक्कर तीव्र से तीव्रतर होता चला जा रहा है। कण्ठ से लेकर मस्तक तक ऐसा तनाव बढ गया है कि उनसे सहन नही हो पा रहा है। मन को बहुत कडा करके बाबा अपना राम-जप निरन्तर साधे रखते है। श्रद्धा के भीतर द्वन्द्व छिड गया है। उफनकर काव्य शब्द फूटते है—

स्वारथ-साधक परमारथ-दायक नाम,
राम-नाम सारिखो न और हितु है।
तुलसी सुभाव कही साचिये परैगी सही,
सीतानाथ नाम नित चितहू को चितु है।

चेतना सिमटकर शून्य बन जाती है। इन्हे ऐसा लगता है कि राम शब्द मानो कील की नोक बनकर उनकी भृकुटी मे धंसता ही चला जा रहा है। वे केवल भीतर से ही नही, बल्कि बाहर से भी अचेत हो जाते हे।

उस दिन बाबा सारे दिन मौन रहे। हर वस्तु से अलिप्त और अपने मे तन्मय रहे। बातो का उत्तर भी सिर को 'हा-ना' मे ही हिलाकर दिया। भक्तो की भीड यथावत् ही आई। उन्होने सबको मौन भाव से ही ग्रहण किया। उन्हे भीतर से लगता था कि जैसे उनके बोलने की शक्ति और इच्छा ही चुक गई है। किन्तु तीसरे पहर कथा सुनाते समय उनका स्वर अचानक खुल गया।

उस दिन नर-नारियो को कथा मे अपूर्व-अलौकिक रस मिला। प्रत्येक जन यही अनुभव कर रहा था कि मानो चित्रकूट मे राम जी का अतिथि-समाज इसी समय उनके बीच मे उपस्थित है और फलाहार कर रहा है। लोग भाव-मन्दाकिनी मे बह रहे थे। उस दिन कथा समाप्त होने पर भक्तो की भीड भौंरा बनकर तुलसी-चरण-कमल-स्पर्श का रसपान करने के लिए बावली बनकर उमडी। बाबा का आह्लाद वेग भी साथ ही साथ उमड पडा, मानो मन रूपी समुद्र मे ज्वार आ गया हो। आखो के सामने नर-नारी साधारण जन न रहकर सीताराम की छवि से भासित हो रहे थे। बाबा की आखे छलछला आई, कण्ठ गद्गद हो गया और 'सीताराम-सीताराम' कहते-कहते ही वे सहसा अचेत हो गए।

बाबा को भीड से बचाकर एकान्त मे लाना सहज काम नही था, किन्तु रामू, बेनीमाधव और रामजियावन आदि की तत्परता से बाबा को व्यासपीठ से उठाकर घाट के तखत पर लाया गया। बाबा को अचेत देखकर भीड व्याकुल हो उठी थी। वह सारा दिन चिन्ताकारक रहा। बाबा दो बार और अचेत हुए। सहसा बातें करते, जहा उनकी आदत के अनुसार मुख पर राम शब्द आ जाता था वही वे भाव-विगलित होकर गिर पडते थे। हरबचन वैद्य बुलाए गए थे पर वे उसमे भला क्या टोह पाते, माथे पर बदाम-रोगन की मालिश की जाने लगी।

उस दिन सभी व्याकुल रहे। बाबा की खाने की इच्छा ही मानो समाप्त हो चुकी थी। उन्हे अपना पेट भरा-भरा लगता था। तबीयत का हाल जब पूछा जाता तभी वे झूमकर कह देते, "चिन्ता न करो, बहुत अच्छा हू।" उनका स्वर मानो किसी खोह से ऐसा झूमकर आता था कि लगता था उन्होंने मटको भाग पी ली हो।

उस दिन बाबा की कोठरी मे रामू किसीको आने न देता था। मात्र राजा भगत अड गए, बोले—"हम तुम्हारे जी का मरम समझते हैं, बाकी तुम अभी निरे बच्चे हो महराज। हम हियै पौढेगे।" कहकर वे कोठरी के द्वार पर आए, देखा कि बाबा तकिये का टेका लगाए मग्न अधलेटे-से पडे है। ऊची आवाज मे भगत जी ने पूछा—"भैया, भीतर आय जाय ?"

"आव, आव, राजा।"

"भैया, हमारी अस इच्छा है कि आज तुम्हारे ही पास रहे। हम सब समझ गए है। हमारा हिया रहना जरूरी है।

"रहौ, रहौ," गहरा और झूमता हुआ स्वर फूटा—"सब कोई रहौ, हमे क्या ? हमारे तौ एक रामचन्द्र है

राम रावरो नाम साधु सुर तरु है
राम रावरो नाम साधु सुर तरु है
सुमिरे त्रिविधि घाम हरत, पूरत काम,
सकल सुकृत सरसिज को सरु है।"

भगत जी, बेनीमाधव जी, रामजियावन, हरवचन वैद्य और रामदुलारे उस छोटी-सी कोठरी मे भीड बनकर जम गए। रामू उनकी चरण सेवा मे लग गया। बीच मे दो-एक बार बाबा ने अपने दोनो हाथ उठाकर अपना सिर दबाया। देखकर बेनीमाधव और राजा भगत साथ ही साथ उठे। उस समय भगत जी में नव-जवानो की-सी फुर्ती आ गई थी। सन्त जी के कधे पर हाथ रखकर उन्हे धीमे से ढकेलते हुए वे बोले —"बैठो-बैठो, सन्त जी, हमने जवानी मे भैया की बहुत मालिस की है।" कहकर वे बाबा के सिरहाने बैठकर उनका सिर दबाने लगे।

"कौन ? भगत है ··अच्छा···अच्छा भगत।"

"हा, भैया।"

"हम छोटे-से रहे तो हमारा सिर बहुत पिराता था। पार्वती अम्मा ऐसे ही दबाती थी। वह अमृतरस आज फिर पाया। राम तुम्हारा भला करे। हमारी पार्वती अम्मां साक्षात् पार्वती जी रहीं। उनकी बडी याद आती है।"

सत बेनीमाधव का कथा रस कुछ पूछने को उत्सुक हुआ। भगत जी का बाया हाथ दबाते-दबाते रुक गया, नाक पर उगली रखकर उन्होने चुप रहने का सकेत किया।

सत जी मन ही मन बडे कुण्ठित हो गए। उन्हे लगता था कि तुलसीदास जी पर मानो दो ही व्यक्तियो का पूर्णाधिकार है। उनका दुख और क्षोभ मन के मान से फूलने लगा।

बाबा का झूमता स्वर फिर मुखरित हुआ "बेनीमाधव !"

"जी गुरू जी !" उत्तर देते हुए संत जी के स्वर मे उत्साह और आनन्द आया। बाबा ने पुकारकर उन्हे मानो आश्वस्त किया था कि वे उन्हे भी अपना ही मानते है। बाबा कहने लगे—"तुम्हारा मन क्या कहता है, हमारी पार्वती अम्मां मुक्त हो गई होंगी ? बडा कष्ट पाया बेचारी ने। इतनी तपस्या की और फल क्या मिला ?"

"उनकी तपस्या का फल आप हैं गुरू जी।"

"हा हम है, राम है-राम है।" थोडी देर में ही लोगों को लगा कि बाबा को झपकी आ गई है। धीरे-धीरे सभी ऊंघ गए। केवल रामू ही अथक-अपलक बैठा उन्हे देखता रहा। चेहरा कितना शात है, कितना देदीप्यमान है।

रात के तीसरे पहर फिर शक्ति जागी। बाबा की आंखें एक बार खुली, अपने आसपास देखा। रामू को तख्त पर ही सजग बैठा देखकर वे मुस्कराए, अपना बाया हाथ उठाकर उसके घुटने पर रख दिया और फिर आखे मूंद ली। भीतर प्रकाश भर रहा था, इन्द्रधनुषी प्रकाश-कूप के तल में दस बत्तियों वाला दीप चमक रहा था। उस इंद्रधनुषी कूप से स्वर उमगता है—'अब क्या देखोगे तुलसी ? तुम्हारी इच्छाशक्ति अब तुम्हे सब कुछ प्रदान कर सकती है, क्या लोगे ?'

प्रश्न के उत्तर में आह्लाद उमड़ पडा। ऊपरी मन में एकाएक पार्वती अम्मां के दर्शन करने की धुन समाई, परन्तु भीतरी मन गरज उठा—'रे मूढ, राम भज ! राम भज !' राम और पार्वती अम्मा, या राम या पार्वती अम्मा ?...

इन्द्रधनुषी कूप से क्रोध-भरा स्वर आया—'मैं अब नहीं आऊंगा।' बालू की ऊंची कगार-सा अन्तर्दृश्य ढह गया, अधकार की नदी मे छपाछप विलीन हो गया। बाबा एकाएक घबराकर उठ बैठे। "यह क्या हुआ राम ?" सारी देह कांपने लगी, पसीना-पसीना हो गई। आखे छलछला उठी। विगलित स्वर फूटा—

"दीनबन्धु, दूरि किये दीन को न दूसरी सरन। आपको भले है सब, आपने को कोऊ कहूं। सबको भलो है राम रावरो चरन।"

उनकी मजे हुए तावे की-सी चमचमाती देह बुझी राख जैसी लग रही थी। बाबा के चौंकने से सभी जाग पड़े थे। बाबा की यह विकलता लोगो के लिए चिन्ताकारक बन गई।

अगली रात मन की तीव्र उत्सुकतावश बाबा तो जाग गए, पर शक्ति न जागी। बार-बार आग्रह करके भीतर की दुनिया देखनी चाही पर वह न दिखलाई दी। बहुत राम-राम जपा, बहुत चिरौरी की पर कुछ न हुआ। उस दिन वे सारा दिन बहुत उदास रहे। अपनी चूक पर उन्हे रह-रह कर पछतावा हो रहा था, 'क्या मेरे पातक मुझे यहां तक ले डूबेंगे। सचमुच मैं इतना अभागा हूं ?' आखे भर-भर आती थी, कलेजे मे सास फूल-फूल उठती थी, 'हे प्रभु, अपनी ड्योढी तक लाकर मुझे यों न दुतकारिए।'

श्रद्धालु भीड नित्य की तरह उनके चबूतरे पर जुडी हुई थी। सब अपनी

चिंताओ की गठरी लेकर इस महान सन्त के द्वार पर अपने दुख भार छोड़ने के लिए आए थे। परन्तु यह कौन जानता था कि दूसरो का कष्ट हरनेवाला महापुरुष इस समय अपनी ही मानसिक यत्रणाओ से अत्यधिक त्रस्त था। ऐसा लगता था कि दण्ड देने के लिए नियति ने एक ऐसे अदृश्य यत्र मे बाबा को बन्द कर दिया है जिसमे उतनी ही सुइया जडी है जितने कि शरीर मे रोम छिद्र होते है। ऐसी चुभन है कि न कहते ही बनता है और न सहते ही। किन्तु सेवा से सेवक का निस्तार नही, उसे अपना कर्तव्य तो निभाना ही होगा। जो अनेक बार प्रतीति पाकर अपने-आपको खास सेवक समझता रहा है वही इस समय अपने साहब के द्वारा त्यक्त और तिरस्कृत है।' 'क्या जीवन के अन्त मे अब निराशा ही निराशा हाथ लगेगी ?

संत बेनीमाधव बाहर लोगो को मना करने चले कि आज बाबा अस्वस्थ होने के कारण किसी से नही मिलेंगे, परन्तु जैसे ही वे चले वैसे ही बाबा के मन मे उनके मन की बात दर्पण-सी प्रतिबिम्बित हुई। वे हाथ उठाकर बोले—"नही, बेनीमाधव, मालिक के काम की अवहेलना करने का साहस यह गुलाम कभी नही कर सकता। अनेक रूप रूपाय राम प्रभु लोक-यत्रणा को दर्शा कर मेरी यत्रणा की लघुता सिद्ध करने के लिए पधारे है।"

किसी के बच्चे को तिजारी का ज्वर नही छोडता, किसी का बेटा घर त्यागकर चला गया है। किसी की सास कष्ट देती है तो किसी की बहू कर्कशा और जादूगरनी है। किसी निर्बल की जमा जमीन किसी सबल ने हडप ली है और कोई सबल किसी दुर्बल की भगिनी को बलात् हर ले गया है। किसी को भूत सताता है तो किसी को चुड़ैल। रोग, शोक, अत्याचार, अनाचार, पाप-शाप आदि त्रिविध तापो की कष्ट-कथा बहती चली जा रही है और वे झाड-फूक करते, भभूत-गण्डे बाटते हनुमान जी और राम जी के प्रति निष्ठा जगाते हुए मध्यान्ह तक अपने तन-मन को यंत्रवत् परिचालित करते रहे। उन्हे देखकर रामू को ऐसा लगता था कि मानो किसी संगमरमर की मूर्ति मे बोलने और अपने हाथों को गति देने की शक्ति अवश्य आ गई है, किन्तु है वह निष्प्राण। इतने वर्षो के साथ मे रामू ने बाबा के उल्लास, उमग, वेदना-भरे मन की सैकडों झाकिया देखी थी पर ऐसा उदास कभी नही देखा। रामू अत्यधिक चिन्तित था, कही कुछ गडबडी तो नही होने वाली है। कुण्डलिनी की ऊर्ध्व गति मे क्या कोई बाधा आई है ? कौन जाने ? प्रभु जी अपने श्रीमुख से ऐसे गोपन अनुभवो की बातें कभी-किसी को नही बतलाया करते, फिर जानने का उपाय ही क्या है। किन्तु ऐसा हो नही सकता। प्रभु जी के समान शुद्ध मन और आचरणवाला एक भी व्यक्ति रामू ने नही देखा। प्रभु जी अपने मुख से यद्यपि बार-बार अपने-आपको अति अधम और पातकी आदि कहा करते हैं, किन्तु रामू ने उन्हे न तो किसी के प्रति नीचता बरतते हुए देखा है और न कोई पाप करते ही। उसके मन मे वर्षो से यह पहेली बनी हुई है कि आखिर पुण्यात्माओ का पातक होता किस प्रकार का है। बाबा दूसरों का दुख-दर्द मेटने के लिए वर्ष की कुछ विशिष्ट तिथियो पर यन्त्र-तन्त्रादि सिद्ध करते है लेकिन रामू ने आज तक कभी यह नही देखा कि बाबा ने किसी

को मारने या बदला लेने की भावना से कभी ऐसे प्रयोग किए हो। फिर भला यह कौन-सा कष्ट सह रहे है। इस नब्बे वर्ष के सरल-निर्मल शिशु से भला कौन-सा पाप हो सकता है? रामू सोच-सोच कर रह गया पर उसे कुछ न सूझा।

दिन में बाबा ने भोजन न किया। बहुत चिरौरी करने पर एक अमरूद के दो टुकड़े खा लिए, तीसरे पहर कथा भी कही, पर खींचकर कही। शाम को दर्शन के लिए पधारी हुई रानियों, सेठानियों को भी उपदेश दिया। रात मे केवल तनिक-सा दूध-साबूदाना लेकर ही रह गए।

अगली रात भी सूनी ही गई, शक्ति न आई। बाबा अपने-आप से बड़े दुखी थे · 'मैंने पार्वती अम्मा का आग्रह क्यों किया? श्रीचरण भक्ति छोड़कर मैंने और कुछ क्यों चाहा? सेवक को भला क्या अधिकार है कि वह अपने स्वामी से किसी वस्तु की माग करे! स्वामी की जो मर्जी होगी वही मिलेगा। तुलसी जो बात स्वयं तूने अपने से तथा दूसरों से बारबार कही है, उसी जानें-समझे सत्य को नकार कर तूने अपने प्रभु को क्यों अप्रसन्न किया?'···मन का अवसाद काव्य-तरंगो मे लहराने लगा—

"जानि पहिचानि मैं बिसारे हौ कृपानिधान
एतौ मान ढीठ हौ उलिटि देत खोरि हौ।
करत जतन जासों जोरिबे को जोगी जन
तासों क्योंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरि हौं।
मोसो दोस कोस को भुवन कोस दूसरो न
आपनी समुझि-सूझि आयो टकटोरि हौ।
गाडी के स्वान की नाईं, माया मोह की बड़ाई
छिनहिं तजत छिन भजत बहोरि हौ।

मन की ग्लानि उमडती ही गई।·· 'हे प्रभु, मैं आपके सुनाम की करोड़ों कसमें खाकर अब तो यही कहूंगा, मुझ जैसे लबार, लालची और प्रपंची को अपने द्वार से दूर फेकवा दीजिए, नही तो मैं कही इस सुधा सलिल के समान चमकते हुए आपके पवित्र द्वार-पथ को सूकरी की भाति गन्दा कर दूगा। हे प्रभु, सत्य कहता हूं, अब मुझे इस धरती से उठा लीजिए। अब जीने की लालसा नही और यदि आपने ढील दे दी, मैं जीवित रह गया तो आपके सुयश को अपने पातको से मैं निश्चय ही कही गहरे मे डुबो दूगा।' अपने को प्रभु से दण्ड दिलाने की तीव्र चिढ-भरी इच्छा करते-करते बाबा की आखों से गंगा-जमुना बह चली।

उनके शब्दो को मन मे दोहराते हुए अश्रु-विगलित स्वर के प्रभाव से रामू भी बिलख-बिलखकर रो पडा।

बाबा के दोनो जाघो मे कई दिनो से गिल्टिया निकल आई है। उनमें से दो अब पक भी चली है। पीडा भोगते हुए बाबा के मन में बार-बार आया कि जागी किन्तु रूठी हुई शक्ति के कोप के कारण ही उनकी काया पर यह विकृत प्रभाव पडा है, किन्तु राजा भगत, सत बेनीमाधव जी तथा रोज आने-जाने वालो मे से कई अनुभवी लोगो का यह विचार था कि बलतोड के फोड़े है। कई लोग

रामू को दोष देते थे कि उसने मालिश करने मे असावधानी बरती। वह बेचारा सुनकर लज्जित हो जाता था। रामू पिछले दस-बारह वर्षों से बाबा की मालिश करता आया है। अपनी प्रबल श्रद्धा एवं सेवा-भाव के कारण उसने मालिश की विद्या को अब ऐसी बना लिया है कि बाबा परमप्रसन्न होते हैं। उसने अपनी जानकारी मे ऐसी रगड नही की कि बाबा के बलतोड हो जाते, वह भी एक-दो नही चार-पाच, फिर भी जब बडे-बुजुर्ग कहते है तो कदाचित् उससे चूक हो गई हो। बाबा इन दिनो अधिक बातें नही किया करते थे। वे प्राय: उपदेश ही दिया करते थे, किन्तु अब कथा के समय को छोडकर बाकी समय 'राम कहो' अथवा 'रामराम जपो' से बड़ा वाक्य नहीं कहते थे, एक ओर वे अपने तन की पीड़ा तथा दूसरी ओर आशा और प्रार्थना को अनवरत सहते-साधते हुए अन्तर्लीन ही रहा करते थे। चित्रकूट मे सभी लोग बाबा के इस परिवर्तन से चकित थे। भादो मास के शुक्लपक्ष की नवमी को रामचरित मानस का पाठ पूरा हुआ। अन्तिम दिन आरती मे डेढ हजार रुपयो से कुछ अधिक ही रकम चढी। बाबा ने चित्रकूट के आदिवासियो और भिखारियों की टूटी झोपडियो को छवाने और उन्हे आगामी सर्दी के कपडे दिलाने के लिए दान कर दी।

इसके बाद ही बाबा बोले—"अब हम काशी जी जायंगे। गगामैया की याद आ रही है। बाबा विश्वनाथ बुलाते हैं।"

त्रयोदशी के दिन बाबा ने चित्रकूट से प्रस्थान किया। हजारों जन उन्हे सीमा तक छोडने के लिए आए। एक छोटी बैलगाडी पर उनकी यात्रा के लिए व्यवस्था की गई थी। विदा का दृश्य बडा मार्मिक था। चित्रकूटवाले बाबा को अपना ही समझते थे। सबको ऐसा लग रहा था मानो परिवार का बड़ा-बूढा अपने अन्तकाल मे गृह त्यागकर काशी लाभ करने जा रहा हो। अधिकतर लोगो के मन से यह पुकार उठ रही थी कि बाबा का यह अन्तिम दर्शन है। भगवान अपने परम भक्त को भाव-भीनी विदाई दे रहे थे।

९

क्षितिज पर काशी दिखलाई पडने लगी। गंगा दूर से रुपहली गोटे की पट्टी जैसी चमक रही थी। देखते ही बाबा आत्मविभोर हो गए। गगा की ओर हाथ बढाकर मस्ती मे कविता फूट पडी—

देवनदी कहँ जो जन जान किए मनसा, कुल कोरि उधारे।
देखि चले झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे।
पूजा को साजु बिरंचि रचैं तुलसी, जे महातम जाननिहारे।
ओक की नीव परी हरिलोक बिलोकत गंग! तरग तिहारे।

गाड़ी ज्यो ही कुछ और आगे बढी त्यो ही सबको सामनेवाले पेड पर एक

शव लटकता हुआ दिखलाई दिया।

रामू बोला—"लगता है किसीको फासी दी गई है।"

और आगे बढने पर सारा दृश्य स्पष्ट रूप से दिखलाई देने लगा। तीन सिपाही वेषधारी और एक मूल्यवान वेषधारी सरदार की लाशें पड़ी थी। उनसे कुछ हटकर लहू के ताल मे डूबी एक स्त्री की लाश थी। फासी पर लटका हुआ शव भी जगह-जगह से रक्तरंजित था। कौवे वृक्ष पर काव-काव मचा रहे थे और कुत्ते लाशो से जूझ रहे थे। आकाश पर कही से उड़कर आते हुए गृद्धो का छोटा-सा झुण्ड भी दिखलाई दे रहा था। दृश्य देखकर हरएक का मन भारी हो गया था। गाड़ी लाशो से जरा सरकाकर निकाली जाने लगी। बाबा अत्यन्त करुण स्वर मे निरन्तर राम-राम जपने लगे। गाड़ी स्त्री के शव से जरा आगे ही निकली थी कि बाबा तनिक हड़बड़ाकर बोले—"गाड़ी रोक दो। रामू, यह लड़की पानी माग रही है। अभी मरी नही है।" कहने-भर की देर थी कि रामू चट से गाड़ी पर से कूद पड़ा और उस स्त्री के सिरहाने के पास पहुचा। सचमुच वह पानी माग रही थी। तब बेनीमाधव लोटा लिए पास आ गए।

"पानी-पानी।"

कराहता हुआ धीमा स्वर दोनो के कानो मे पड़ रहा था। बेनीमाधव ने झुककर चुंल्लू से उसके अधखुले होठो मे पानी डाला। पानी का स्पर्श पाते ही गर्दन थोड़ी हिली।

राम-राम जपते हुए बेनीमाधव ने उसके मुह पर पानी का एक हल्का-सा छीटा दिया। युवती ने आखे खोली।

"राम-राम जपो बिटिया।"

गाड़ीवान और भगत जी का सहारा लिए हुए बाबा गाड़ी से उतरकर लगड़ाते हुए इसी ओर आ रहे थे।

युवती ने बेनीमाधव से पूछा—"उइ मरि गए?"

बेनीमाधव ने समझा कि युवती शत्रुओ के सम्बन्ध मे पूछ रही है। प्रेम से आश्वासन दिया—"हा, बिटिया, अब तुम्हारा कोई भी शत्रु बाकी नही बचा। राम-राम जपो।"

युवती की आखे मुद गई, हफनी तेज हो गई। बाबा तब तक निकट पहुच चुके थे। बेनीमाधव जी निरन्तर जोर-जोर से राम-नाम जप रहे थे। बाबा जब उसके सिरहाने पहुचे तब उसके होठ फिर पानी के लिए बुदबुदाए। बेनीमाधव अपनी रामधुन मे युवती के होठो की हरकत पर ध्यान न दे पाए। रामू ने लोटे से एक चुल्लू जल लेकर उसके होठो मे डाला। पानी का स्पर्श पाते ही होठ कुछ और खुले और पानी के गले से नीचे जाते ही आखे भी एक बार खुली। बाबा को देखा, आखे कुछ और ऊपर उठी, पेड़ पर लटकती लाश की पीठ दिखलाई दी। युवती बिलखी—"रा-आ-आ ..."

उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बाबा बोले—"सुख से जाव बेटी, तुम्हारा पति अमर गति पा गया। राम-राम भजो।"

युवती की आखें बाबा को एकटक निहारते हुए ही थम गई; उनकी ज्योति

बुझ गई। बाबा बोले---"कलिकाल मे यह आए दिन का खेल हो गया है। वीर थी वह स्त्री जिसने आततताइयो द्वारा अपवित्र होने से पहले ही अपनी हत्या कर ली। वीर था उसका पति भी जिसने अकेले ही इतने आदमियो को समाप्त कर दिया।"

"तब इस व्यक्ति को फासी किसने दी होगी ?"

"कुछ और सिपाही भी रहे होंगे जो बदला लेकर चले गए। लेकिन उनकी स्वामिभक्ति देखो, अपने सरदार तक का शव ठिकाने नही लगा गए। वस्त्र मूल्यवान है किन्तु रत्नालकार एक भी नही दिखलाई दे रहे है। दुष्ट उन्हे लेकर आगे बढ गए। वाह रे स्वार्थी दुनिया, अब मै इन शवो की सद्गति हुए बिना आगे नही जाऊगा। बेनीमाधव ! रामू ! तनिक गाव मे जाकर दो-चार व्यक्तियो को बुला लो, बेटे। इन यवनो को धरती तथा इस वीर दम्पति को अग्नि के सुपुर्द किया जाए।"

भगत जी बोले—"अच्छा अब तुम तो चलकर गाड़ी पर बैठो, भइया, ई कूकरन और गिद्धन ते हम पच जूझि लेब।"

गाडीवान बोला—"आप सब महात्मा लोग बराजौ, हम हिया खड़े है।"

गाडी पर बैठे हुए बाबा गम्भीर भाव से कही अदृश्य मे देख रहे थे। भगत जी बोले---"हमार तो जनम बीत गवा इहै सब कलिकाल के अत्याचारन का देखत-देखन। मनई के प्राणन का मानो कौनो मूल्य नाही रहा।"

बाबा बोले—"अकबरशाह के समय मे थोड़ा-बहुत सुशासन आया था, अब वह भी समाप्त हो गया। शासक दिल्ली मे रहता है। उसे नित्य हीरे, मोती, जवाहिर और सोना चाहिए। स्त्री और धन की लूट का नाम ही कलिकाल है। सारे पाप यही से आरभ होते ह। हम जब पहली बार गुरु परमेश्वर के साथ यहा आए थे तब तो और भी बुरी दशा थी।"

पद्रह-बीस व्यक्ति रामू के साथ आ पहुचे। लाशो पर उचकती दृष्टि डालकर पहले वे गाडी की ओर ही भागते हुए आए। रामू ने उन्हे बतला दिया था कि गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने उन्हे बुलाया है। सबने गाडी को छूकर सिर नवाया। दो बुड्ढे भी साथ आए थे, उन्होने सबसे कहा—"जाव-जाव, इन बीर पती-पतनी की चिता तैयार करौ और दुष्टन सारेन को पडा रहै देव। खाय गिद्ध-कौवा।"

बाबा ने तुरत ही हाथ उठाकर कहा—"ना-ना, मनुष्य मनुष्य है। काया को सद्गति मिलनी ही चाहिए।"

बुड्ढा बोला—"अरे महराज, हम तौ इनकी सद्गति करे और जो अभी इनके साथी-सगी लौट आवे तो सब मिलके हमारी ही गति बना डालेगे।"

"राम है, भइया, राम है। कभी होम करते हाथ जल अवश्य जाता है पर राम जी सबकी दया बिचारते है।"

बुड्ढा बोला—"यह दुष्ट किसीकी दया नही बिचारते।"

उत्तर सुनकर बाबा हल्की-सी हसी हसकर बोले—"दुष्ट यह हो या वह, वे किसीकी दया नहीं बिचारते।"

काशी नगरी की सीमा मे प्रवेश करते देखकर दूर से ही कुछ पण्डा प्रतिनिधियो ने उन्हे 'एहर आवा हो जजमान' कहकर ललकारना आरंभ किया। दो पण्डे दौड़ते पास भी आ गए। लढिया मे बाबा को बैठा हुआ देखकर एक प्रौढ पहलवाननुमा पण्डे ने घृणा से मुह बिचकाकर कहा—"अरे ई तौ गुसैया हौ सरवा।"

रामू, वेनीमाधव आदि के चेहरों पर तमक आ गई, किन्तु बाबा खिलखिलाकर हस पड़े। कहा—"हा रे, अब तुम्हारे यजमान करवत लेने के वजाय राम-नाम लिया करेगे।"

"अरे तुम्हे भवानी खायं, अधर्मी, तोरे रोम-रोम मा···"

"राम रमै।" बाबा ने पण्डे की गाली को अपने भाव से मढ दिया और कहा—"राम कहा कर बचवा। इस शंकर जी की नगरी में भला काली गुण्डई का क्या काम है?"

"अरे जा सारे। सबेरे-सबेरे तुम्हार राम-मुख देखकर हमार तो बोहनी बिगड गई।" कहते हुए वे लौट गए। दूसरा युवक पग-दो पग उसके साथ जाकर फिर लौटा और हाथ जोड़कर बाबा से कहा—"ई मंगली के कारण आप हम सबको सराप न दीजिएगा। महराजौ, आप ऐसे महात्मा से कुबचन बोलकर जाने कौन से नरक मे ठिकाना मिलेगा इस नीच को। बाकी हमे आप छिमा कर दीजिए।"

करवत का वह कटुभाषी पण्डा अपनी जगह से ही चिल्लाया—"अबे आता है कि नही। सारे, जिजमान न मिला तो तुझे ही ले जाके करवत दे दूगा, और तेरी बिटिया-मेहरुआ को बेचकर अपने दक्षिणा के पैसे वसूल कर लूगा।"

दूसरा पण्डा उसकी ओर बढ़ते हुए चिल्लाकर बोला—"अरे, जा-जा, तेरे बाप-दादे सात पीढी तक के आवे तो भी हमारा कुछ भी नही बिगाड़ सकते।" दोनो पण्डे आपस मे गाली-गलौज करते हुए तेज़ी से दौड़ पड़े। और बाबा की लढिया भी उन्हीके पीछे-पीछे धीरे-धीरे बढती गई।

गंगा और अस्सी के सगम पर घाट के ऊपर एक पक्की इमारत बनी थी। उसके पहले एक अखाड़ा भी था जिसके ऊपर छप्पर छाया हुआ था और कई बालक, युवक और प्रौढ़ लोग वहा डण्ड-बैठके लगाते, मुग्दर घुमाते अथवा मालिश करवाते या फिर अखाड़े मे कुश्ती लड़ते दिखलाई पड रहे थे। घाट पर भी थोडी-बहुत भीड़-भाड़ थी। अधिकतर लोग घाट की सीढ़ियो अथवा चबूतरो पर बैठे पूजामग्न थे। दूर से आए हुए कुछ देहाती स्त्री-पुरुषो का स्नान भी चल रहा था। बाबा को देखकर अखाड़े के लड़को ने 'बाबा आ गए, बाबा आ गए' कहकर वैसे ही चिल्लाना आरंभ किया जैसे सूर्य भगवान को देखकर चिड़ियां चहकती हैं। थोड़ी ही देर मे बाबा अपने भक्तो से घिर गए। रामू और बाबा दोनो ही बनारस वापस आकर अत्यंत मगन थे। वेनीमाधव और राजा भगत को मकान के ऊपरी भाग का दो कोठरियो मे बसाने का आदेश देकर बाबा अपनी कोठरी की ओर बढ़े। कोठरी का द्वार सफेदी से पुता हुआ था। द्वार के चारो ओर रामनामी से अंकित गणेश जी बने हुए थे। द्वार

के अगल-बगल दीवारो पर ऐसे ही राममय स्वस्तिक और कमल बने थे। कई युवक बाबा को सहारा देते अथवा उनके आगे-पीछे लगे हुए उनके साथ बढ रहे थे। बाबा ने कोठरी मे प्रवेश किया। कोठरी लिपी-पुती स्वच्छ थी। उनकी अनुपस्थिति मे किसी भक्त ने चारो ओर गेरू और चूने से राम शब्द के बडे ही कलात्मक और सुन्दर बेल-बूटे चीत दिए थे। चौकी के सामने की दीवार पर राम-नाम की तरगो मे एक रामनामी हस भी बनाया गया था। और जिधर बाबा की चौकी लगी थी उधर दीवाल मे हनुमान जी की एक विशाल-काय मूर्ति भी राम शब्दो से अकित की गई थी। चारो ओर देखकर बाबा मगन हो गए। बोले—"वाह, तुम लोगो ने तो इस कोठरी को वैकुण्ठ बना दिया, किसने किया यह सब ?"

बाबा को सहारा देकर चौकी पर बैठाते हुए एक युवक बोला—"कन्हई इसे एक दिन पुतवा रहे थे तभी सुमेरू रगसाज इधर आए। उन्होने आपके नाम की कुछ मानता मानी थी सो पूरी हो जाने पर बडा परसाद-वरसाद लेकर आपके दर्शन करने आया था। उसी ने कहा कि हम इस कोठरी का राम-शृगार करगे।"

"वाह, बड़ा रामभक्त है। उसका सदैव मगल हो।"

आने के दूसरे दिन बाबा ने विश्वनाथ और बिन्दुमाधव के दर्शन की तीव्र इच्छा प्रकट की। उन्हे ले जाने के लिए डोली का प्रबन्ध हुआ। काशी का मध्य भाग अन्तर्गृही कहलाता था और श्रेष्ठ पण्डितो, सेठ, साहूकारो तथा सम्पन्न हाट-बाटो से सदा जगमगाया करता था। क्षत्री, ब्राह्मण और बनियो की बस्ती इस भाग मे अधिक थी। लगभग छत्तीस-सैंतीस वर्ष पहले राजा टोडरमल के पुत्र राजा गोवर्धनधारी ने सुलतानो के समय तोडे गए काशी विश्वेश्वर के मन्दिर को फिर से बनवाकर नगर का तेज बढा दिया था। भक्तो की भीड़ से मन्दिर मे बड़ी चहल-पहल थी। ब्राह्मणो के समवेत मन्त्रोच्चार से वह विशाल मदिर गूज रहा था। काशी विश्वेश्वर की पावन मूर्ति के पास पुजारियो और दर्शनार्थियो की भीड़ लगी हुई थी। "गोसाई जी महाराज आ रहे है। राम-बोलवा बाबा आ रहे हे। हर-हर महादेव, जै-जै सीताराम" आदि ध्वनियो से मदिर का आगन गूज उठा। कइयो ने घृणा और उपेक्षा से मुह भी बिचकाए किन्तु बाबा के लिए मार्ग बनता गया और वे मदिर मे पहुच गए। मन्दिर के पुजारियो मे बाबा के विरोधी अधिक थे किन्तु महन्त जी उनका बडा आदर करते थे। कुछ दूर से ही उन्हे देखकर महन्त जी का मुख खिल उठा। बाबा सहारा लेकर बढ रहे थ किन्तु शकर जी की मूर्ति को देखते हुए वे बड़े आनन्द-मग्न थे। दर्शन करते ही वे हाथ बढाकर सस्वर काव्यपाठ करने लगे—

खायो कालकूटु, भयो अजर अमर तनु,
भवनु मसानु गथ गाठरी गरद की॥
डमरू कपालु कर, भूषन कराल ब्याल,
बावरे बडे को रीझ बाहन बरद की॥
तुलसी बिसाल गोरे गात बिलसति भूति,
मानो हिमगिरि चारु चाँदनी सरद की॥

अर्थ-धर्म-काम-मोच्छ बसत बिलोकनि मे,
कासी करामाति जोगी जागति मरद की ।।

अपना दुख-दरद आसपास के वातावरण को अतर के उभरे भावावेश से रंगकर मानो सूर्य के प्रकाश मे अन्धकार-सा विलीन हो गया। दृष्टि के सम्मुख केवल विश्वनाथ थे और वह भी भाव-सरिता के मस्त प्रवाह मे बहकर अपना प्रत्यक्ष स्थापित रूप परिवर्तित कर चुके थे। भाव के दूध मे उमग रूपी चीनी जैसे-जैसे घुलती गई वैसे-वैसे ही आखो का स्वाद बदलता चला गया। मूर्ति के स्थान पर जागते जोगी मरद की आकृति अपने-आप उभरती ही चली गई। पिगल वर्णी मस्तक पर जटाजूट से प्रवाहित पावन गगाजल, विशाल अरुणाभ नेत्रो की ज्योति की दमक, ललाट पर द्वितीया का चन्द्र, भस्मीभूत, सर्पभूषित, दिगम्बर वेशधारी, परम कल्याणकारी शिव भोलानाथ गोसाई बाबा की आखो के आगे खड़े शृगी बजा रहे थे, जिसकी गूज उनके रोम-रोम मे अद्भुत नाद जगा रही थी। अन्तर्मन के आख-कानो से देखते-सुनते बाबा अपने मे तन्मय हो गए थे। बाबा एक के बाद एक दो-तीन कवित्त सुनाते ही चले गए। सारा वातावरण बधकर महाभावयुक्त हो गया। उनके विरोधियो के मन का लोहा तक उनकी भावशक्ति के ताप से पिघलकर रस बन गया था।

"अहो ! ए ई शाला भोण्डो गोशाई ए बार फिर एशे देखे ची।"

लगभग साठ-पैसठ वर्ष के प्रकाण्ड तान्त्रिक पण्डित रविदत्त लाल वस्त्र पहने, लाल टीका लगाए, लाल-लाल आखो से आग बरसाते हुए मन्दिर मे प्रविष्ट हुए। महत जी ने हाथ उठाकर उन्हे शान्त करना चाहा किन्तु रविदत्त जी का क्रोध उस समय और भी अनर्गल हो गया। वे बोले—"हामको आप चुप नही कोरने शकता मोहोंत जी। हामको मा बोला जे तुलशीदाश भोण्डो दगाबाज के दोण्ड दाओ रोवीदत। ए बार आमि एइ दुष्ट के निश्चोइ मारबो।" अपने कमडलु से चुल्लू मे जल लेकर 'ओम्-ओम्, आगच्छ-आगच्छ, मारय-मारय··।' मत्र का पाठ जोर से आरभ करके फिर धीरे-धीरे होठो मे बुदबुदाते हुए अंत मे कर्कश 'स्वाहा' शब्द के साथ झटके से हाथ उठाकर बाबा पर जल छिड़कना चाहा, किन्तु पहले से ही सावधान रामू ने छपाक्-से आगे बढ़कर उनके उठे हुए चुल्लू को ऐसा झटका दिया कि पानी स्वय रविदत्त के मुख पर ही पड़ गया। अब तो रविदत्त के रोष का ठिकाना न रहा। साप का विषदंत मानो उसके ही शरीर मे सयोग से चुभ गया। महत जी उठे, बाबा ने भी दृष्टि फेरकर देखा, रविदत्त रामू को मारने के लिए झपटे। बेनीमाधव और बाबा के आगे जो युवक खड़े थे वे भी उनकी ओर बढ़े। दर्शनार्थियो की कौतूहल-भरी दृष्टि उस नाटक को खड़ी देखती रही। पडित रविदत्त बावले की तरह से प्रलाप कर रहे थे। बाबा शान्त स्वर मे बोले—"रविदत्त जी शात हो। आप जैसे सुप्रतिष्ठित तत्रविद्या-विशारद··"

"चुप कोर, चुप कोर· 'शाला भोण्डो।"

एक युवक ने तैश मे आकर पंडित रविदत्त की दाढी पकड़ ली। बाबा ने

उसे वरजा—"कन्हई, दूर हटो।" फिर विनम्र स्वर मे रविदत्त जी से कहा—"देवस्थान मे क्रोध प्रदर्शन न करे। मैं जा रहा हू। चलो हो, राजा।" कहकर वावा ने भोले वावा को प्रणाम किया और रविदत्त की तनिक भी परवाह न करके लगड़ाते हुए वाहर निकल गए। रविदत्त चिल्लाते रहे। उन्होने तुलसीदास को पृथ्वी से उठा देने की प्रतिज्ञा की।

मंदिर के आगन मे अनेक भक्त गोस्वामी जी महाराज की महत्ता वखान रहे थे और रविदत्त की निन्दा कर रहे थे। एक ने कहा—"अरे, जव वटेश्वर महाराज जैसे प्रकाण्ड तान्त्रिक गोस्वामी वावा का कुछ न विगाड़ सके तो ई रवीदत्तवा का उखाड़ लेगा?"

मन्दिर के भीतर समझानेवालो की भीड़ से घिरे पडित रविदत्त यह सुनकर वड़ी जोर से उखड़े। अपने शुभचिन्तको का घेरा तोड़कर वाढ़ के प्रचंड प्रवाह की तरह वाहर निकले—"हाम क्या उखाड़ शोकता, देख!" कहकर वे द्वार तक पहुच जाने वाले वावा की ओर, एक वूढ़े का लट्ठ उसके हाथ से छीनकर, झपटे किन्तु हडवडी मे चौखट लाघते हुए ठोकर खाकर धडाम से गिर पड़े। भीड़ मे कुछ लोग उन्हे फर्श पर गिरा देखकर एकाएक जोश मे वजरगवली और वावा विश्वनाथ की जै-जैकार कर उठे।

थोड़ी ही देर मे काशी की गली-गली मे यह खवर गूज गई कि विश्वनाथ वावा के मंदिर मे गोस्वामी तुलसीदास जी पर आक्रमण करनेवाले रविदत्त पडित को हनुमान जी ने उठाकर पटक दिया। वावा की महिमा इस कारण से और वढ गई। नगर मे तरह-तरह की वात सुनकर कई शुभचिन्तक वावा के दर्शनार्थ आए। पडित गगाराम ज्योतिषी, पंडित काशीनाथ, कवि कैलास, सेठ जैराम, आदि लोग यह खवर सुनकर आए थे कि रविदत्त पडित ने वावा पर लाठी से प्रहार किया और प्रहार होते ही उन्होने हनुमानजी को गोहराया।

सुनकर वावा खिलखिलाकर हस पड़े, वोले—"अरे भैया, वजरगवली के मारने के लिए अनेक दुष्ट पड़े हैं, वेचारे रविदत्त का तो केवल एक यही दोष है कि वह निर्वुद्धि है। वेचारा अपने ही आवेश मे गिरकर चुटीला हो गया। राम करे शीघ्र ही स्वस्थ हो जाए।"

"स्वस्थ? अरे महाराज, उसकी तो हड्डी-पसलियो तक का चूरा हो जाना चाहिए। दुष्ट दिन-रात मा-मा चिल्लाकर ढोग रचाया करता है और इस उमर मे भी महरियो और मेहतरानियो के पीछे मारा-मारा डोलता है।"

कैलास कवि की वात सुनकर पडित गगाराम मुस्कराकर वोले—"आप तो वहुत वढ़ा-चढ़ाकर वात कर रहे है कवि जी। रविदत्त के कतिपय विरोधियो ने उसके विरुद्ध वहुत-सी झूठी वातें उड़ा रखी है। रविदत्त निर्वुद्धि-अहंकारी अवश्य है, जगदम्वा के नाम पर वारुणी का सेवन भी करता है। किन्तु वह कट्टर धर्माचारी तान्त्रिक है, व्यभिचारी कदापि नही। मैं जानता हू।"

रामू वोला—"तव तो महाराज उसे अपने ही मंत्रपूत जल के छीटो से मर जाना चाहिए।" पूछे जाने पर उसने सारी कथा सुनाई।

पडित काशीनाथ वोले—"अरे भाई उसके मत्रपूत जल से शक्ति उत्पन्न नही

होती। हा, वारुणी के एक चुल्लू से ही वह कदाचित्...”

“उल्लू भले ही वन जाता पर मरता तब भी नही काशीनाथ जी। वह बडा ही चीमड है।” कैलास जी ने हंसते हुए कहा।

बावा बोले—“इसके पिता मेरे और गंगाराम के सहपाठी थे। ज्योतिष विद्या मे हम लोगो के आगे जब उसकी दाल न गली तब वह हम लोगो से चिढ कर तात्रिक वना था। भोला और भडभडिया था।”

“किन्तु यह रविदत्त परम कुटिल है, तुलसीदास! स्मरण करो कि इसकी तामसिक सिद्धियो ने तुम्हे कितना सताया है।” गगाराम ने कहा।

“अरे हमका का सतइहै! भूत-पिशाच निकट नहि आवै, महावीर जब नाम सुनावै। सकटमोचन के आगे कौन खडा हो सकता है।”

‘धन्य है महात्मन्, आपकी अटल श्रद्धा से हम सदा हा-ना मे झूलनेवाले मोहात्माओ को ऐसा लगता है जैसे बंद तहखाने मे ताजे पवन-झकोरे आने लगे हो।” जैराम सेठ ने गद्गद् भाव से कहा।

“वाह कैसी वढिया वात कही जैराम। हमे गर्व है कि गोस्वामी जी महाराज के निकट आने का सौभाग्य पा सके। पिछले चालीस बरसो से यही तो हमारी सजीवन वूटी है। राम तुम्हारी जय हो!”

पडित काशीनाथ की वात से गर्व-स्फूर्ति लेकर कैलास जी बोले—“अरे, हमें तो तिहत्तर वर्षो से यह वरदान प्राप्त है। हम इनसे चार वर्ष छोटे है। पहली वार मेघा भगत के यहा वात भई रही, फिर तो साथ-साथ वदरी-केदार, मान-सरोवर, द्वारका तक की यात्रा की।”

कैलास जी की वाते सुनते हुए गंगाराम जी मद-मंद मुस्कराते रहे। जब उनकी वात समाप्त हुई तो धीरे-से-गर्दन उठाई और कहने लगे—“इन देवता को मित्र मानकर तुलसी, तुलसिया, रामवोला आदि कहकर पुकारने का सौभाग्य आप लोगो के वीच मे सवसे पहले मुझे ही मिला था। वारह-तेरह वर्ष की आयु से हम दोनो साथ-साथ पढे है। राम-भक्ति तो मानो इनकी घुट्टी मे ही पड़ी है। पर भाई भूत से ये भी कुछ कम नही सताए गए है। हः-ह-ह, कहौ तुलसी, वतावै तुम्हरे हाल?”

बेनीमाधव की उत्सुकता उनकी आखो मे गेद-सी उछली। बाबा वड़ी स्नेह भरी दृष्टि से अपने सहपाठी को देखते हुए बोले—“सुनाओ-सुनाओ। इन सब का मनोरंजन और मेरा आत्मालोचन होगा।”

१०

पंडित गगाराम ज्योतिषी का मुखमडल हर दृष्टि के लिए चुम्वक वन गया। पालथी पर वाया हाथ आड़ा रखकर उसपर अपनी दाहिनी कोहनी टिकाकर अध-वढ़ी दाढी पर मुलायमियत से उंगलिया फेरते हुए पण्डित गंगाराम पिचहत्तर-

छिहत्तर वर्ष पूर्व के अपने स्मृति-आकाश मे शब्दो के पंख लगाकर उडने लगे।

बाबा ने अपनी आखे मूद ली। सहपाठी के शब्दो का लगर बाधकर उनकी ध्यानमग्न काया स्मृति के समुद्र मे गहरी पैठने लगी और अपनी अनुभवगम्य बिम्ब सजीवता को सागर के तल से मोतियो की तरह उबारकर लाने मे तल्लीन हो गई।

गगाराम जी कह रहे थे—"हमारी इनकी भेंट पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय शेष जी महाराज की पाठशाला मे हुई थी। शीघ्र ही हम लोग ऐसे गहरे मित्र बन गए कि अपने मन की एक-एक बात एक-दूसरे के आगे कहने लगे। उन्हे गुरुजी महाराज के घर मे छत पर बनी एक छोटी-सी कोठरी रहने को मिली थी। उस कोठरी की दीवार पर एक विशाल पीपल की टहनियां जब हवा से डोलती तब झाड़ू लगाया करती थी। तुलसी भृत्य शिष्य थे। गुरुजी के घर का सारा काम-काज भृत्य के रूप मे करते, तीसरे पहर गुरुजी से शिक्षा ग्रहण करते और रात मे पतली सीढिया चढ़कर हथेली की ओट से दिए की लौ को सुरक्षित करके यह तिमजिले की छत पर पहुंचते। × × ×

छत के द्वार पर बारह-तेरह वर्ष का एक गौरवर्ण बटुक दिया लिए हुए खडा है। अभी ही उसने सीढिया चढकर द्वार पर पहला कदम रखा है। सामने पीपल की टहनिया उसकी कोठरी की छत से लेकर इस छत की मुडेर तक दीवार तक हवा के झोको से ऐसे झाड जाती है मानो किसीके बोझ से इतनी नीचे झुकती हो। बालक की भावना मे एक विशालकाय मनुष्याकार झलकता है जो क्रमश. बडा होते हुए आकाश को छू लेता है और फिर तिरोहित हो जाता है। कलेजे के अन्दर धमाके की गूज अब भी सनसनाहट भर रही है। बच्चे का चेहरा फीका पड़ गया, काया काठ हो गई, केवल हाथ-पैर भय की सनसनाहट से जल्दी जल्दी काप उठते, जिससे हाथो का दिया हिल-हिल जाता था।

अपने भय-जडित स्वर को क्रमश खोलने के प्रयास मे ऊचा उठाते हुए बालक के हाथ-पैरो मे गति आई। कदम आगे बढा 'जै बजरग ··,' दूसरा कदम बढा 'बजरग-बजरग', दो सहमे डग और आगे बढ गए, बढने से भय कुछ-कुछ पीछे हटा किन्तु अभी तो भय का आगार, वह दीवार ठीक सामने थी जिसके सहारे दस-पाच पल पहले बच्चे ने अति विशालकाय काया देखी थी। भय अपने-आप मे हाफने लगा, साथ ही उसमे फिर से एक नई तेजी भी आई, "भूत-पिशाच निकट नहि आवै, महाबीर जब नाम सुनावै।" अपने शब्द अपने ही लिए नई आस्था बनकर बच्चे को आगे बढाने लगे। वह डरता जाता है और डर को जीतते हुए बढता भी जाता है।

वह अपनी कोठरी के द्वार तक पहुच ही गया। दिये को हवा से बचानेवाला दाहिना हाथ दरवाजे की कुण्डी तक लड़खड़ाता हुआ उठा। कापते हाथो कुण्डी खुली फिर झटके से द्वार खुला। बच्चा हवा की तरह भीतर घुस गया और द्वार उड़काकर उसपर अपनी पीठ टेककर अपनी हथेली के दिये को सभालने और अपने-आपको निरापद महसूस करने की स्वचालित प्रक्रिया मे रम गया।

दूसरे दिन पाठशाला मे रामबोला ने अपने मित्र गंगाराम से कहा—"गंगा, भूत-प्रेत सचमुच होते है। कल मैने पीपलवाले ब्रह्मराक्षस को अपनी आखो से देखा है।"

सायकाल के समय तुलसी और गंगाराम दोनों ही पाठशाला के आगे का आगन बुहार रहे है। दोनो सूखे पत्ते, गर्द आदि सारा कूड़ा एक जगह लाकर एकत्र कर रहे है, हथेलियो से कूडा एक जगह डाल रहे है और बाते कर रहे है। तुलसी कह रहे है—"हमारी कुठरिया की छत पर पीपल की डाल पकडे हुए बैठा था। उसने जो हमको देखा तो ऐसी जोर से टहनी को झकझोर उठा कि मानो हमे देखकर उसे बडा क्रोध आ गया हो। और वो बडा हांने लगा। मैंने भी जोर-जोर से राम-राम, बजरंग-बजरंग जपना आरंभ कर दिया। एक पक्ति भी बन गई, 'भूत-पिशाच निकट नही आवै, महाबीर जब नाम सुनावै'।"

बालक गगाराम बोले—"हमारी तो भैया ऐसे में सिट्टी-पिट्टी ही गुम हो जाय। काशी में विश्व-भर के भूत आते है।"

तुलसी बोला—"हमारे बाबा कहते थे कि राम मंत्र सिद्ध मंत्र है। हमको तो वही फलता है। जिसके हनुमान और अंगद जैसे महावीर सैनिक हैं, जो नाथो के नाथ विश्वनाथ के भी इष्टदेव है, उनके चरण भला क्यो न गहै! अरे, हम तो कहते है गंगा, कि ऐसे बडे मालिक को कष्ट देने की भी आवश्यकता नही, उनके परम सेवक बजरंगबली से ही हमे रक्षा मिल जाती है! 'भूत-पिशाच निकट नहीं आवै, महावीर जब नाम सुनावै। नासै रोग हरै सब पीरा, जपत निरंतर हनुमत बीरा। संकट से हनुमान छुडावै, मन-क्रम-वचन ध्यान जो लावै।"

पास ही से दो विद्यार्थी साग-भाजी लेकर आंगन मे प्रवेश कर रहे थे। उन्होने सुना। एक ने मुस्कराकर कहा—"अरे वाह, आश कवि जी, बडी जोर से कविताई हो रही है!"

तुलसी झेप गया, गंगा ने हंसकर कहा—"भूत-बाधा दूर करने का मंत्र बना रहे हैं।"

दूसरा लडका हंसकर बोला—"हे-हे-हे:, अभी नाक पोछना तो आता नही, मत्र बनावैंगे। अभी पिछवाडे का पीपलवाला जो इनके सामने आकर खडा हो जाय तो डर के मारे इनके वस्त्र बिगड जाय। हि:, मंत्र बनाने चले है।"

तुलसी को ताव आ गया। उस लडके की ओर देखकर कहा—"देखा है, देखा है उस पीपलवाले को भी। मेरी कोठरी की दीवार पर ही तो बैठता है। पर मैं जैसे ही जाकर हनुमान जी का नाम लेता हू। वैसे ही भाग जाता है।"

लडके आंगन मे खड़े हो गए। एक ने कहा—"अरे जा रे लबार। झूठ-मूठ की न हाक।"

"मै गुरू जी के चरणकमलों की सौगध खाकर कहता हू। मैंने पीपलवाले को कई बार कई रूपो में देखा है।"

इतनी बड़ी शपथ का प्रभाव उन विद्यार्थियो पर पड़े बिना न रह सका। एक बोला—"अपना वटेश्वर प्रत्येक अमावस्या की रात को श्मशान पर एक कापालिक से भूत-विद्या सीखने के लिए जाता है। वह कहता था कि आधी रात

को वहां शिव जी के मंदिर मे सारे भूत एकत्र होते हैं और भूतनाथ की आरती उतारते है। वह कहता था कि उस समय जो कोई वहा जाकर शख वजा दे तो सारे भूत उसके वश मे हो जाए। पर कोई वजा ही नही सकता। वडे-वडे सिद्ध भी यह साहस नही कर सकते।"

गंगा बोला—"हमारा तुलसी जा सकता है। यह वडा राम-भक्त है।"

'हिं, देखी-देखी इसकी भक्ति।" एक ने कहा।

तुलसी की आंखे स्वाभिमान से चमक उठी। कूडे वाली डलिया उठाकर उसने कहा—"बटेश्वर अमावस्या की रात्रि मे वहा जाते हैं ना ? उनसे कहना कि अवकी अमावस्या की रात्रि मे मेरा शंखघोप वे राम जी की दया से सुन लेंगे।"

"अरे जा, जा, वडी राम जी की दयावाला वना है। हग भरेगा वच्चू, हग भरेगा।"

तुलसी के चेहरे पर निश्चय की स्फटिक शिला जम गई थी। उसने अपने सिर पर कूडे की डलिया रखी और सधे पाव वाहर की ओर चला। गंगा भी उसके साथ ही साथ चला। कुछ-कुछ सहमे- से स्वर मे उसने पूछा—"तुलसी, क्या तुम सचमुच अमावस्या की रात मे वहा जावोगे। मैंने वडी गलती की जो आवेश मे आकर कह गया। तुम्हे भी जल्दी आवेश मे नही आना चाहिए था। हम दोनो से चूक हुई।"

तुलसी चुप रहा। घूरे तक वे लोग चुपचाप आए। तुलसी ने कूडा घूरे पर डालकर डला झाडा फिर संयत स्वर मे कहा—"अव तो अमावस को जाऊगा, गंगा। नही जाऊगा तो मेरे राम जी, हनुमान जी झूठे सिद्ध होंगे।"

गगा बोला—"राम जी समर्थ हैं। अपनी निन्दा-वडाई को वह आप संभाल सकते है। तुम भूत-प्रेतो से मत खेलो तुलसी।"

"नही, अव तो वात दे चुका। मैं जाऊगा।"

"भाई, मेरे मते तुम्हे पहले आचार्यपाद से आज्ञा ले लेनी चाहिए।"

"हा-हा, निश्चिन्त रहो। गुरू जी से पूछकर ही जाऊगा। मेरा विश्वास है कि वे आज्ञा दे देंगे।"

"अभी से यह भरोसा न वांधो। गुरु जी ज्ञान नारायण को धारण करनेवाले साक्षात् शेष भगवान है।"

"तभी तो विश्वासपूर्वक यह कह रहा हूं कि वे आज्ञा दे देंगे।" × × ×

नीम के पेड तले मिट्टी के चवूतरे पर कुशासन विछाए विराजमान, ज्ञानमूर्ति, तपोपुंज आचार्यपाद शेप सनातन जी महाराज अपने सामने वेत की वुनी हुई चौकी पर रखी पोथी के कुछ पन्ने हाथ मे उठाए हुए वाच रहे थे। वालक तुलसी दवे पाव वहा पहुचा और चुपचाप हाथ वाधे खडा हो गया। गुरू जी कुछ समय के अन्तराल मे पोथी के पन्ने पढकर पलटते है और आगे पढने मे तल्लीन हो जाते हैं। तुलसीदास की ओर उनका ध्यान तक नही जाता। वालक सिर झुकाए हाथ वांधे खडा रह जाता है। गुरू जी जव उन पृष्ठो को पढकर पोथी मे मिलाते हुए आगे के पृष्ठ उठाते हैं तो उनका ध्यान एकाएक तुलसी की ओर जाता है।

पूछा—"क्या है ?"

हाथ जोड़कर तुलसी ने कहा—"एक आज्ञा लेने के लिए सेवा में आया हूं गुरू जी।"

"कहो।" गुरू जी ने नये पृष्ठ हाथ में उठा लिए।

"दो दिन पहले हरि और केशव से मेरी वदावदी हो गई थी। वे भूतों का भय दिखला रहे थे। मैंने कहा कि भूत-पिशाच वजरंगबली से बढकर शक्तिशाली नहीं है। जिसकी भक्ति राम के चरणो मे अटल है वह भूतो से कदापि नही डर सकता। इसपर हरि ने कहा कि जो ऐसे भक्त हो तो हरिश्चन्द्र घाट पर शिव जी के मंदिर मे अमावस्या को आधी रात के समय शंख बजा आओ तब हम जानें। बटेश्वर वहा किसी भूत-विशारद से भूत-विद्या सीखने के लिए जाते हैं। वे मेरे शंखवादन के साक्षी होंगे। यदि आप आज्ञा दें तो चला जाऊं।"

गुरू जी मौन रहे, फिर पूछा—"अपनी कोठरी में कभी डरे हो कि नहीं ?"

"कुछ-कुछ तो अवश्य डरता हूं गुरू जी, परन्तु श्री केसरीकिशोर के ध्यान से मेरे भय के भूत भाग जाते है। आपके उपदेश भी मेरे मन को वल देते रहते है।"

पैनी परख-भरी दृष्टि से अपने शिष्य का मुख निहारकर फिर पोथी की ओर देखते हुए गुरू जी गंभीर स्वर मे बोले—"पीपलवाला तो बडा सभ्य भूत है, केवल दुष्टों को ही सताता है, परन्तु सब भूत-प्रेत ऐसे नही होते। कुटिल और क्रूर भूतों की कमी नही है। हरिश्चन्द्र घाट भूतों की अति भयावनी लीलास्थली है।"

"वालक की वाचालता क्षमा हो गुरू जी, बटेश्वर भी तो वहा जाते है।"

"वटेश्वर मंत्र-कवच-मंडित है। तुमको तो भूत फाड़ खाएंगे।"

तुलसी एक क्षण तक स्तंभित खडा रहा, फिर सिर में कुछ तनाव आया, झटके से स्वर उठा, कहा—"राम जी के रहते मेरा कोई कुछ नही बिगाड सकेगा। आपके चरणों का ध्यान ही मेरा रक्षा कवच वनेगा।"

"यह तुम्हारा अटल विश्वास है ?"

गुरु के चरणों मे शीश नवाकर तुलसी ने कहा,—"हा, गुरू जी, मेरी परीक्षा ले लें।"

"तुम्हें स्वयं अपनी ही परीक्षा लेनी है तुलसी। यदि तुम्हारी भक्ति अटल है तो भय भूतनाथ तुम्हारी रक्षा करेंगे। जाओ, मेरा आशीर्वाद है।" × × ×

वावा ध्यानमग्न बैठे अपने पूर्वानुभव के मनोदृश्य देख रहे थे। प० गगाराम का स्वर उन दृश्यों को गति दे रहा था। पण्डित जी कह रहे थे—"पाठशाला मे सभी छात्रो को धीरे-धीरे यह वात विदित हो गई। पाठशाला मे केवल हम चार-पांच छात्र ही छोटी आयु के थे। उनमे भी केवल तीन बालक गुरू जी के घर मे रहकर सेवा-वृत्ति से शिक्षा ग्रहण करते थे, बाकी सब स्थानीय निवासी थे और दक्षिणा देकर पढा करते थे। उनकी संख्या आठ थी, उनमे भी छ विद्यार्थी सत्तरह-अठारह से वीस-पचीस की आयु वाले थे। वटेश्वर मिश्र की

आयु २३-२४ वर्ष के लगभग थी। वह श्याम वर्ण का दुबला-पतला क्रोधी और अहंकारी युवक था। गुस्सा सदा उसकी नाक पर ही धरा रहता था। धनी पिता का पुत्र था इसलिए अपने आगे किसी को कुछ समझता नही था। जरी काम का दुशाला और लाल मखमल की मिर्जई पहनकर वह पढने के लिए आया करता था। हरि केशव दोनों ही सदा उसकी चाटुकारी मे रहा करते थे। चतुर्दशी के दिन गुरूजी महाराज किसी नरेश के यहां बुलावे पर गए थे। हम सब लोग उस दिन प्राय अनुशासन-मुक्त थे। तभी हरि ने छेड-छाड की। × × ×

हरि, केशव, बटेश्वर तथा उनके समवयस्क दो और छात्र दालान मे गुरू जी की सूनी चौकी के पास बैठे हुए थे। तीन बडे छात्र एक अलग कोने मे बैठे हुए आपस मे साहित्य-विवेचना कर रहे थे।

तुलसी, गंगाराम और उनके समवयस्क दो छात्र बैठे हुए आपस मे ज्योतिप संबंधी चर्चा कर रहे है। एक ने पूछा—"अच्छा तुलसी, बताओ, व्यापार के लिए कितने नक्षत्र अच्छे होते है ?"

तुलसी बोला—"बारह ! श्रवण के तीन, हस्ति के तीन, फिर पुष्य और पुनर्वसु, इसके बाद मृगशिरा, अश्विनी, रेवती तथा अनुराधा—इन बारह नक्षत्रों मे धन-धान्य, धरोहर-धरती का लेन-देन करो तो लाभ होगा।"

उसी समय कुछ दूर पर बैठे केशव ने बटेश्वर से हंसकर कहा—"ये तुलसिया परसों अमावस्या को अर्धरात्रि के समय हरिश्चन्द्र घाट के मंदिर मे शंखघोष करने जाएगा।"

सुनकर तुलसी और उसकी मण्डली के बालक चुप हो गए। बटेश्वर उपेक्षा-भरी हंसी हंसा, किन्तु कहा कुछ भी नही। हरि ने बात आगे बढाई, बोला—"कहता था, राम शब्द से अधिक सिद्ध और कोई मंत्र ही नही है।" कहकर वह जोर से खिलखिलाकर हंस पडा।

तुलसी आवेश मे आ गया। वही से बोला—"हा-हा, अब भी कहता हूं और कल जाकर रामकृपा से अवश्य ही शंकर जी के मंदिर मे शंखनाद करूंगा। देखूगा कि भूत बडे हैं या रामसेवक कपि केसरीकिशोर।"

तुलसी का तैश देखकर हरि और केशव दोनो ही हो-हो करके हंस पडे। "अरे वाह रे कपि केसरीकिशोर के भक्त। जब शंखिनी-डंकिनी दहाडेंगी तब कहना।" हरि ने व्यंग्य कसा और फिर हंस पडा।

तुलसी फिर तैश खा गया, झटके से उठकर खडा हो गया और हरि की ओर देखते हुए हाथ बढाकर बोला—"भूत-पिशाच निकट नही आवै, महावीर जब नाम सुनावै। एक भी भूत-चुडैल मेरे सामने नही ही आवैगी। देख लेना।"

बटेश्वर क्रोध मे आखे निकालकर गरजा—"अच्छा बक-बक बद कर। ससुरा भिखारी की औलाद टहल-मजूरी करके पढ़ता है और हम विद्वानों से उलझता है ? बडा हौसला होय तो आना बेटा कल रात मे। परसो सवेरे मदिर के नीचे से डोम ही तेरा शव उठाएंगे और वही लोग फूंकेंगे।"

तुलसी भी ताव खा गया, बोला—"जाको राखे साइया, मार सकै नहि

कोय। बाल न बांका करै सकै जो जग बैरी होय। तुमसे जो बने सो कर लेना। मरना बदा होगा तो राम जी के नाम पर मर जाएंगे। कौन हमें रोने को बैठा है।"

कहकर तुलसी दालान से बाहर चला आया। गंगा भी उसके पीछे ही पीछे आया। आवेश मे भरे तुलसी के कंधे पर प्रेम से हाथ रखकर गंगा ने कहा—"तुलसी, मेरे पिता मणिकर्णिका घाट के योगीजी को जानते है। मुझे भी उनके कारण योगीजी जानते हैं। चलो चलकर उनसे सारी बात कहें। वे निश्चय ही कोई सिद्ध जड़ी-बूटी अथवा मंत्र तुम्हे दे देगे।"

"राम सिद्धमंत्र है। बंधु, मुझे अपने स्वर्गवासी गुरू बाबा की बात ही राजमार्ग जैसी सरल और सुखद लगती है। तुम जानते नही हो, हनुमान जी बचपन से ही मेरी बाह गहे हुए है। अच्छा, अब चलू, गायो की सानी करना है, फिर माता जी के सायं स्नान के हेतु दो गगरी गंगाजल लाना है।"

उस रात तुलसी जब सब कामों से छुट्टी पाकर अपना दिया लिए हुए ऊपर चला तो सीढ़ियों में ही हवा का ऐसा गूंज भरा थपेड़ा आया कि दीप की लौ झोंका खाकर बुझी-अब बुझी जैसी हो गई। मन सहम उठा, राम-राम का जप स्वर में हल्की कंपकंपी के साथ तीव्र गतिशाली हुआ। बत्ती की लौ नन्ही बूद जैसी बन गई पर बुझी नहीं, फिर क्रमशः उसमें उजाला बढने लगा। उस उजाले से बालक के चेहरे पर आत्मविश्वास का उजाला बढ गया। सीढी पर जमे डग फिर उठे। तुलसी छत के द्वार तक पहुंच गया। रात घनी काली थी किंतु सर्दी की स्वच्छ रात में तारो की चमक लुभावनी लग रही थी। नीचे गली से लेकर कोठरी की छत को छूता हुआ पीपल रात की कालिमा मे अंधेरे की एक और गहरी पर्त बनकर खड़ा था लेकिन आज वह तुलसी के लिए रुकावट न बना। उसकी कोठरी की छत पर आज उसे कोई दीर्घाकार न बैठा दिखलाई दिया, न वह छत पर धम् से कूदा; न कोई आवाज ही सुनाई दी। बालक उत्साह मे तनिक जोर से बड़बड़ा उठा—"जै बजरंगबली। हे बजरगबली, आज हमने तुम्हे सारे दिन-भर ध्याया है। भला कौन भूत अब मेरे सामने आने का साहस करेगा?" बडबडाते हुए कुडी खोलकर जो कोठरी मे कदम रखा तो ऐसा लगा कि उसकी चटाई पर कोई लेटा है। सारी आस्था, मन का चैन लड़खड़ा गया। एक बार उल्टे पैरों लौटा, फिर देखा तो लगा कि कही कुछ भी नही है। बालक के मन में नये सिरे से उत्साह आया। उसने अपनी कोठरी मे पुन. भीतर तक प्रवेश किया। दिये के प्रकाश में कोठरी के चारो कोने और फर्श से लेकर छत तक, सतर्क नजरो से सब छान मारा, कही कुछ भी न था। मन का विश्वास फिर लौटा। दिया आड़ मे रखा। द्वार खुले होने से ठंडी हवा भीतर आ रही थी। तुलसीदास ने दरवाजे अंदर से बंद कर लिए। छोटी-सी कोठरी की अकेली दुनिया कुछ अजीब-सी लगी। कुछ भय, कुछ अभय मिलकर तरुण मन को सनसनाहट से भरने लगा। भरी सर्दी मे भी माथे पर पसीने की बूंदे चुचुआ उठीं। फिर आप ही बडबडा उठा—"वत् तेरे की रामभगतवा। हनुमान जी का ध्यान कर।"

वह अपनी चटाई पर बिछी हुई कथरी पर बैठ गया। मिट्टी की दवात और

सरकंडे की कलम सामने रख ली। कागज उठा लिया और लिखना आरंभ किया :

जै हनुमान ज्ञान-गुन-सागर।
जै कपीस तिहुँ लोक उजागर॥

मध्य रात्रि तक हनुमान चालीसा पूरी की। तुलसी ने अपने अब तक के जीवन मे यह पहला लंबा काव्य रचा था। वह बडा ही मगन था। जोश में आकर उसने दो-तीन वार अपने चालीसा काव्य को पढा। दो-एक जगह संशोधन भी किए, फिर ऐसे मुख से टांगें पसारकर सोया मानो उसने कोई बडी भारी दिग्विजय कर ली हो।

दूसरे दिन सुबह जब वह गंगाजल की गगरियो को घर के भीतर पहुचाने के लिए गया तो गुरु-पत्नी ने पूछा—"रामबोला, हमने सुना है, तुम आज मसान जाने वाले हो ?"

तुलसी झेंप गया, फिर कहा—"हम राम जी की शक्ति को भूतो की शक्ति से बडी मानते हैं, आई। क्या गलती करते है ?"

"नही बेटा, भूत तो बनते-बिगडते रहते हैं, वह तुम्हारे मन के विकारों की तरंगें मात्र ही हैं। उनकी चिंता कभी न करना।"

गुरु-पत्नी की बात अच्छी तो लगी पर मन को जैसे विश्वास न हुआ, पूछा—"अइया जी, रात में पीपल तले कभी-कभी ऐसा उजाला दिखलाई देता है कि हम आपसे क्या बतलाएं। आकार भले भय के हों, पर यह उजाला कौन करता है ? कभी-कभी हवा शरीर का ऐसे स्पर्श करती है कि लगता है कोई हमारी देह रगडता हुआ चला गया है। यह सब क्या होता है आई ?"

"अपने गुरु जी से पूछना।"

"साहस नही होता। गुरु जी कहेंगे, तुम्हें अभी इन बातो से क्या प्रयोजन। फिर राम जी भी तो है।"

गुरु-पत्नी हसी, कहा—"तुमने राम जी को देखा है रामबोला ?"

"नही, आई।"

"तुमने भूत को नही देखा और राम जी को भी नही देखा। जिसपर चाहो विश्वास कर लो। मन माने की बात है।"

तुलसी बोला—"तब फिर मैं राम जी को क्यो न मानू ! भूत मेरा कुछ नही बिगाड सकता है।"

तुलसी की गंभीर किंतु भोली बातें गुरु-पत्नी को भली लगी। स्निग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा—"तुम बडे अच्छे लडके हो। भगवान तुम्हारा सदा मंगल करे।"

गुरु-पत्नी के आशीर्वाद ने तुलसी के मन को बडा बल दिया। किंतु पाठशाला के बडे विद्यार्थी विशेष रूप से उसे दिन-भर डराते और चिढाते रहे। शुभचिंतक साथियो ने न जाने के लिए आग्रह किया। तुलसी के मन मे उनके तर्को से भूत कभी वास्तविकता का आभास कराते थे और कभी अपने हठवश वह उसे नकारने लगता था। गुरु जी से पूछने की इच्छा बार-बार मन मे जागी परतु उनके सम्मुख

होने पर उसका सारा साहस मानो समाप्त हो जाता था। वे कहेंगे कि जब जाने की आज्ञा ले ही चुके हो तो स्वयं अनुभव करना। अब शास्त्रार्थ की क्या आवश्यकता है।' उनका तेजस्वी, शांत और गंभीर मुखमंडल देखते ही उसे मानो अपने न पूछे हुए प्रश्न का उत्तर मिल जाता था किंतु ऊहापोह फिर भी शांत न हुआ और बालक मन हां और ना के झूले में झूलता ही रहा। यह होते हुए भी जितना ही उसे डराया या समझाया जाता था उतना ही उसका हठ और दृढ़ होता जाता था।

शाम आई, तुलसी ने गुरू जी के घर का सारा काम-काज पूरा किया, फिर गुरु-पत्नी से कहा—"आई, हमें आज रात के लिए एक शंख दे दीजिए।"

"तो तुम जाओगे ही रामबोला?"

"हां, आई।"

"कोई भी बाधा आए पर डरना मत बेटा।"

"नही आई, डरूंगा तो फिर मेरे बजरंगबली रूठ जाएंगे। मुझे उनके रूठने का भय है। रावण का मानमर्दन करनेवाले रामप्रभु मुझसे न रूठे, केवल इसी की चिंता है।" अपने इस उत्तर से उसे सहसा वह आस्था मिल गई जिसे वह इतने दिनों से पाने और संगठित करने के लिए सतत् प्रयत्नशील था।

शंख लेकर तुलसी अपनी कोठरी मे आया। आज उसके हाथ मे दिया नही था। वह बाहर के अंधेरे से लडने के लिए अपने भीतर के प्रकाश का सहारा ले रहा था।

रात का पहला पहर समाप्त हुआ। कसौटी पर चढने का क्षण आ गया। तुलसी ने शंख उठाया, अंधेरे मे शंख के स्पर्श मात्र से उसके मन मे एक विचित्र-सी सनसनाहट भर गई। हृदय धड-धड़ करने लगा, किंतु उसे लगा कि यह धडकन भयकारी नही वरन् उत्साहवर्धक है। हृदय 'राम-राम' बोल रहा है, 'उठ-उठ' कह रहा है। तुलसी खडा हो गया। कोठरी से बाहर निकला, कुंडी चढाई। आगे की छोटी-सी छत अंधकारमय थी। बाईं ओर का पीपल अंधेरे मे भय की सघन छायामूर्ति बनकर खडा था। तुलसी स्तब्ध होकर उधर ही देखता रहा। मन तेजी से कल्पना करने लगा कि नीचे से बडे-बडे दातो और सीगो वाला ब्रह्मराक्षस अपना आकार बढाता हुआ मानो अब उठने ही वाला है। वह आएगा और उसके हाथ से शंख लेकर चूर-चूर कर डालेगा। वह धक्का देगा और तुलसी छत से गिर के नीचे गली में जा पड़ेगा। उसकी एक-एक हड्डी-पसली चूर-चूर हो जाएगी। इस दुनिया से उसका नाम-निशान तक मिट जाएगा। लेकिन तुलसी की कल्पना शक्ति ने उसके भय का साथ न देकर एक नया रूप ही धारण कर लिया। ब्रह्मराक्षस के बजाय उसे हनुमान जी अपनी कल्पना
मे बढते हुए दिखाई देने लगे [illegible] जी के दाहिने कंधे पर राम और बायें
पर श्री लक्ष्मण जी वि[illegible] ही अपने-अपने धनुषो पर बाण चढाए
मानो तैयार बैठे है। व[illegible]ी कल्पना से प्रसन्न हो गया। 'जहां
राम है वहां भय कहा? [illegible]। चल रे रामबोला, चल, आज यह
दिखा दे कि तेरा राम[illegible] अधिक शक्तिशाली और विशाल है

जय वजरंग ।'

संकरी घमावदार सीढियों पर वह उतरने लगा। उतरने की सतर्कता में एक वार भय फिर उमगा। अपने ही मन के धक्के से उसकी देह दीवार से जा टकराई। वह सहमा और फिर संभल गया—'राम-राम जप रे मन। कहां लडखडाता है?'

सीढी का एक द्वार पीपलवाली गली की ओर पडता था। वह द्वार यों तो वन्द रहता था किन्तु गुरु-पत्नी से आज्ञा लेकर उस द्वार का ताला तुलसी ने आज शाम ही को खुलवा लिया था। तुलसी उसीसे होकर वाहर आया। द्वार वन्द किए, कुंडी चढाई, ताला वन्द किया, कुंजी अंगौछे मे वाधी और अंगौछे को कमर पर कसकर वांध लिया, 'जय गणेश, जय भूतेश्वर, वजरंग, रामभद्र जय जय-जय-जय।' तुलसी पीपल के नीचे से ही गली पार कर रहा है। शीत उसकी रुई की मिर्जई को भेदकर उसके भीतर कंपकंपी भर रहा है। ऐसा लगता है कि तुलसी की परीक्षा लेने को सरदी भी आज अपने चरम विन्दु तक पहुच रही है। पर अव तो चाहे सर्दी सतावे या स्वयं भूत ही आकर उसका हाथ क्यो न पकड़े, तुलसी अपने निश्चय से डिग नही सकता। वह सदा आगे ही वढ़ेगा।

अंधेरी-सूनी गलियां पीछे छूटती जाती हैं। शीत के मारे कुत्ते भी इधर-उधर दुवके हुए वैठ हैं, केवल आहट पाकर जहां-तहां भौं-भौं कर उठते हैं। गलियो में यत्र-तत्र वैठे हुए सांड भी तुलसी के चलने की आहट पाकर अथवा शीत की प्रतिक्रियावश अपनी सांसों की फुफकारें-सी छोडते हुए मिल जाते हैं। संकरी गलियों मे वन्द घरों की दीवारें मानो सांय-सांय वोल रही हैं। एक जगह पर छत्ते के नीचे एक सांड पूरी गली घेरे हुए पडा था। घने अंधेरे मे वह तुलसी को दिखलाई न पडा। वह जैसे ही आगे वढा तो ठोकर खाई। पैर लडखड़ाया और वह वैल पर ही गिर पडा। शंख की नोक वैल के शरीर में चुभी और उसने फुंफकारते हुए अपने सींग इवर घुमाए। तुलसी घवरा गया। वैल भी घवराकर उठने का उपक्रम करने लगा। उसकी पीठ पर गिरे हुए वालक की घवराहट इस कारण से और भी वढी। भूत भले न हो पर भूतनाथ के इस नन्दी ने यदि आक्रमण कर दिया तो तुलसी की जान की खैर नही। इस भय ने सुरक्षा की भावना तीव्र कर दी। वैल के पिछले पैरों के पूरी तरह उठने के पहले ही वह फुर्ती से फिसल पडा और फिर घटनो तथा वायें हाथ के पंजे के वल पर उठकर वह तेजी से भागा। अपने भय के भाग जाने पर पशु वही का वही खडा रह गया। आगे थोडी ही दूर पर गली समाप्त हो गई, खुला मैदान आ गया, तुलसी की सांस मे सांस आई।

कितना शीत है। सीलन-भरी गलियों की वन्दिनी शीत से यह मैदान की मुक्त ठिठुरन तुलसी को अपेक्षाकृत भली लगी। तीन साल पहले गुरू जी के एक वनी यजमान के द्वारा विद्यार्थियो को दान में मिली हुई मिर्जइयां अव अपनी गर्मी प्रायः खो चुकी थी। तुलसी को लग रहा था कि शीत महावली योद्धा वनकर हवा के सनसनाते तीर छोड रहा है। मिर्जई का कवच उसकी रक्षा नही कर पा रहा है। दौड़ने से गर्मी वढती है और वही उसकी रक्षा भी कर सकती है।

श्मशान तट पास आ गया। विशाल वट-वृक्ष की अनगिनत जटाएं हवा में भूलती हुई ऐसी लग रही थीं मानो सैंकड़ों फासी के फंदे लटक रहे हो। बरगद पर कोई पक्षी इस तरह रिरिया रहा था कि मानो कोई बच्चा पीड़ा से कराह रहा हो। तुलसी के पाव भय से थम गए पर यह भय अब उसके लिए चुनौती बन गया था। वह श्मशान मे आ पहुचा है। बटेश्वर निश्चय ही यहा उपस्थित होगा। वह अपने कापालिक गुरु से मंत्र-विद्या सीख रहा होगा। यहा तक पहुच-कर अब यदि तुलसी घबराया तो उसकी लोक हंसाई होगी। कल विद्यार्थियो के सामने बटेश्वर दम्भ-भरे ठहाके लगाएगा। नही, ऐसा कदापि नही होगा। तुलसी के पाव अब पीछे नही लौट सकते। यह श्मशान उसके शंखघोष से गूजना ही चाहिए। तुलसी वट के नीचे से निर्भय होकर गुजरने लगा। लटकती जटाएं उसके सिर और कधो को छू जाती है लेकिन अब वह उनसे तनिक भी भयभीत नही हो सकता।

श्मशान की जलती-बुझती चिताएं दिखलाई पड़ रही है। एक चिता की लपटो से उसे तरह-तरह के आकार भी दिखाई देते है लेकिन तुलसी अब भय-भीत नही हो सकता। भूत चाहे उसका गला ही क्यो न दबोच दे पर जब तक वह शिव जी के मदिर मे शंखघोष नही कर देता तब तक उसके प्राण कदापि नही निकलेगे। "जय हनुमान ज्ञान-गुन-सागर, जय कपीस तिहु लोक उजागर।"

तुलसी शिव मदिर की सीढिया चढता गया। सामने गंगा तट पर जलती हुई चिता के पास उसे दो आकृतिया बैठी हुई दिखलाई दी। निश्चय ही बटेश्वर और उसके गुरु कापालिक की आकृतिया होगी। इस विचार ने तुलसी के भीतर मानो नये प्राण फूक दिए। पैर तेजी से ऊपर चढ़े। भूतनाथ अपने इष्टदेव के इस भक्त को कदापि हतोत्साहित नही कर सकते—"जय भूतेश्वर, जय बजरंग, जय-जय-जय सीताराम।"

तुलसी ने विशाल शिवलिंग के समक्ष खड़े होकर पूरी शक्ति के साथ अपना शंख बजाया, एक बार नही, पूरे तीन बार बजाया। बाहर दूर से एक कड़-कड़ाती हुई आवाज आई—"कौन है रे ?"

"राम जी का खास सेवक तुलसीदास।" शिव जी के चबूतरे से ही आत्म-विश्वास से जगमगाए हुए बालक ने कड़क कर जवाब दिया।

"ठहर तो सही, रे भण्ड।" दूर की आवाज फिर गरजी, लेकिन तुलसी उस चुनौती का सामना करने के लिए फिर खड़ा न रहा। जल्दी से शिवलिंग की परिक्रमा करके सीढियों से उतरकर वह भागा। इस समय भूतों से अधिक किसी जीवित मनुष्य की मार खाने का भय ही उसे अधिक सता रहा था। श्मशान से बाहर निकलकर वह थमा और दम-भर खड़े होकर हाफते हुए वह श्मशान की ओर देखने लगा—"आव बच्चू, बटेश्वर होवैं, चाहे उनके गुरू होवैं, चाहे गुरू के भूत होवैं, हमार कोऊ का बिगाड़ि सकत है ? अरे हम तौ राम जी का जय-घोष करि आयेन।" तुलसी श्मशान से यो घर लौट रहा था मानो त्रिलोकविजय करके आ रहा हो। इस समय न तो उसे जाड़ा ही सता रहा था और न किसी प्रकार का भय। आस्था प्रबल होकर उसे राममय बना रही थी। × × ×

भूत-भय-विजय का यह वृत्तान्त सुनाकर पंडित गंगाराम बोले—"ऐसे विकट साहसी हैं हमारे यह परममित्र। इनके कारण हम लोगों का भय भी निर्मूल हो गया। उस समय मेरी जान में हम लोग पंद्रह-सोलह वर्ष के बालक रहे होंगे किन्तु हमसे बड़ी आयुवाले विद्यार्थी भी उसके बाद से इनका विशेष आदर करने लगे। और गुरू जी का मन तो इन्होंने फिर ऐसा जीत लिया कि वे इन्हें पुत्रवत् प्यार करने लगे। उसके बाद आई अर्थात् हमारे गुरू जी की पूजनीया पत्नी ने इनसे भृत्य का काम लेना प्रायः बन्द ही कर दिया। वे इन्हें अधिकाधिक अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहन देने लगीं।"

पण्डित गंगाराम के द्वारा कथा-प्रसंग जब पूरा हुआ तो कवि कैलास मगन मन अपनी पालथी बदलकर पास ही धरती पर रखे अपने अंगौछे की गांठ खोलते हुए बोले—"आस्था में तो यह आरंभ ही से अंगद का पांव रहे हैं। तभी तो इनकी भावना और काव्य-प्रतिभा मिलकर इन्हें महाकवियों में बजरंगबली के समान उड़ानें भरने की शक्ति देती है।" वृद्ध कविवर की प्रशंसा का औरों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। जब तक बात की सराहना में 'वाह-वाह' हुई तब तक कैलास जी के अंगौछे की गांठ से पान का दोना निकल आया। गोस्वामी जी के सामने बैठकर पान खानेवाला कवि कैलास जी को छोड़कर इस नगर में और कोई व्यक्ति नहीं था। दो बीड़े पान जमाए और फिर दूसरी छोटी-सी पुड़िया हाथ में उठाकर बोले—"हमारा हृदय तो इस समय यह कह रहा था कि पवनसुत केसरीकिशोर की जब कवि बनने की इच्छा हुई तो वे हमारे इन मित्र के रूप में अवतार धारण करके हमारे बीच में आ गए।"

श्रोतामण्डली यह सुनकर भाव-विभोर हो गई। सामने मूर्तिवत् बैठे हुए महापुरुष की स्तुति के खिले-अधखिले शब्द फूल कई मुखों से झरने लगे। रामू बोला—"अंधभूतविश्वास के प्रति प्रभु जी का एक दोहा भी तो है—

तुलसी परिहरि हरि हरहिं, पाँवर पूजहिं भूत।
अन्त फजीहत होहिंगे गनिका के से पूत॥
सेये सीताराम नहिं, भजे न संकर गौरि।
जनम गँवायो बादिहीं, परत पराई पौरि।

फिर वाहवाही का भ्रमर गुंजन हुआ। कवि कैलास की छोटी पुड़िया खुल चुकी थी। एक चुटकी तमाखू उठाकर अपने मुंह में डालते हुए वे बोले—"जोतसी जी, अब तमाल पत्र छोड़ो, ये खाया करो—तम्बाकू।"

पं० गंगाराम मुस्कराए, बोले—"हम केवड़ा डालके ये सुरती खाते हैं कविवर। फिरंगी अच्छी वस्तु लाए। सुना रहा कि पहले कोई एक फिरंगी लायके अकबर बादशाह को नजर किहिसि और अब तो हमारे देखते-देखते पिछले बीस-बाईस वर्षों में इस विश्वनाथपुरी में बस सुरती ही सुरती छाय गई है। बाकी तमालपत्र चूर्ण को स्वास्थ्य की दृष्टि से हम अब भी इससे श्रेष्ठ मानते हैं।" बातचीत हल्के लौकिक रंग पर उतर आई थी। एक गम्भीर प्रसंग के बाद

दूसरा उठने के बीच मे विनोद की लहर पट-परिवर्तन के रूप मे मुसाहिबी कला का विशिष्ट गुण बनकर आ ही जाती है।

बाबा बड़ी देर से बाहरी प्रसंगो से अलग अपने मन की गुफा मे बैठे थे। प्रशंसा, प्रशंसा और प्रशंसा···

११

लोगो के जाने के बाद सन्नाटा होने पर भी बाबा के मन से प्रशंसा का हिमालय न उतरा। वह बोझ उन्हे भारी लग रहा था। अपने दैनिक काम-काज करते हुए भी वे प्राय. गुमसुम ही रहे। भोजनोपरान्त बेनीमाधव जी ने पूछा—"आप उदास हे गुरू जी। कोई बात मन को मथ रही है कदाचित् ?"

बाबा हसे—"हा, मन्मथ की बाते मथ रही हैं। दिन मे जब तुम सब मेरी प्रशंसा के पुल बाध रहे थे तब मेरे मनोलोक मे आकर रत्ना मुझसे पूछ रही थी—'भूत से जीते पर क्या अपने गुरु से भी जीत सके ?' मैने सोचा, बेनीमाधव के मनोसघर्ष को मेरे प्रथम नारी-आकर्षण का अनुभव कदाचित् प्रेरणादायक सिद्ध हो सके। लो सुनाता हू।" × × ×

गुरुपाद शेष सनातन महाराज की वही पाठशाला, वही सारा वातावरण। अन्तर केवल इतना ही हो गया था कि रामबोला तुलसीदास शास्त्री हो गया था। उसकी आयु अब तेईस-चौबीस के लगभग पहुच चुकी थी। छोटी-सी दाढ़ी, नोकीली नाक, रहस्यमय अगम मे झाकती हुई प्रश्न-भरी आकर्षक पुतलियो और लहराते बालो वाला उसका उन्नत कपाल ऐसा चमक रहा है कि पूरी पाठशाला मे केवल एक नन्ददास को छोड़कर और कोई भी इतना तेजवान स्वरूप नही दिखलाई देता। नन्ददास के चेहरे पर केवल कोमलता है, किन्तु नवयुवा तुलसी के चेहरे पर वज्र की कठोरता और कुसुम की कोमलता एक साथ झलकती है। और यही उसके चेहरे को सबसे अलग विशिष्ट बना देती है।

तुलसी अब पाठशाला के नये विद्यार्थियो को पढाते है। वाराहक्षेत्र मे उनके भाग्य-विधाता गुरु का देहान्त हो चुका है। गुरुपाद शेष सनातन महाराज ही अब उनके अभिभावक है। उनका तथा उनकी धर्मपत्नी का तुलसी के प्रति पुत्रवत् मोह है। तुलसीदास काशी के नये पडितो मे प्रशसा पा रहा है, इससे गुरू जी अत्यधिक सतुष्ट है। गुरू जी के साले—घर और पाठशाला के व्यवस्थापक—भाग, भोजन, और बातो के अनन्य प्रेमी थे। वे तुलसी के विवाह का डौल भी बैठाने लगे थे पर तुलसी का कहना था कि अभी उसका अध्ययन समाप्त नही हुआ।···मामा जी, इस कारण से आजकल कुछ रुष्ट हैं। तुलसी-विवाह हो तो मामा जी को समधी के घर ज्यौनार का सुख मिले।

गुरू जी की पाठशाला मे भी किसी का न्यौता स्वीकार न करने का अधिकार मामा जी को ही था। मोटा थुलथुल शरीर, गौरवर्ण, बडी-बडी सफेद मूछें। छात्रो के मामा होने के कारण वे अब जगत मामा हो गए थे। उनका आसन ड्योढी के पास आगन मे ही जमता था। वही से वे सारे दिन बैठे-बैठे हुकुम चलाया करते थे।

सवेरे का समय था। एक ब्राह्मण युवक न्यौता देने आया था—"मामा जी दण्डवत् प्रणाम करता हू। विद्यार्थियो को न्यौता देने आया हू।"

सामने चौकी पर ढेर सारे ठाकुर जी फैलाए, उनपर चन्दन की बिन्दिया लगाते हुए बात सुनकर मामा जी ने चन्दन की कटोरी चौकी पर रख दी। एक नजर उठाकर यजमान को देखा, फिर जनेऊ से पीठ खुजलाते हुए पूछा—"कितने विद्यार्थी चाहिए ?"

"कितने विद्यार्थी है महाराज ?"

"तुम्हे किस मेल के चाहिए, पहिले यह बतलाओ। द्रविड़, महाराष्ट्र, पुष्करिया, गुर्जर, गौड़, मैथिल, उड़िया, कनौजिया, सारस्वत कौन से मेल का ब्राह्मण जेवावोगे ?"

"अरे मामा जी, हम सब मेल के ब्राह्मणो को निमत्रण देंगे। पन्द्रह-बीस जितने विद्यार्थी आपके यहा हो सबको लेकर पधारिए। आज मेघा भगत का भडारा है।"

ठाकुरो पर फिर से चन्दन की बिन्दिया टपकाने की क्रिया आरभ करते हुए मामा जी बोले—"बड़ी तेजी से पुजने लगा है यह लड़का मेघा भी। अच्छा-भला पण्डित था, अब भगताई सूझी है, राम-राम। हमारे तुलसी को भी एक दिन यही पागलपन लगेगा। खैर, तो कौन भडारा दे रहा है ?"

"जैराम साव।"

"कहा होयगा भडारा ? राजघाट मे, त्रिलोचन मे, कि दुर्गाघाट, मगलाघाट रामघाट, अग्नीश्वरघाट, नागे···?"

"बिन्दुमाधव घाट पर होयगा, मामा जी।"

"हू-ऊ हू, तो बिन्दुमाधव मे कहा पर होयेगा ? लक्ष्मीनृसिंह के, पचगगेश्वर, आदि-विश्वेश्वर, दक्षेश्वर, कि दूधविनायक, कि कालभै··· होयगा यह भंडारा ?" पूछकर मामा फिर से चदनी सभालकर एक-एक ठाकुर पर चदन थोपते हुए महल्लो के नाम लेते चले।

"दूधविनायक के पास।" मामा ने बचे-खुचे ठाकुरो को जल्दी से चदन लेपकर अब उनपर फूल चिपकाना आरंभ करते हुए कहा—"हा तो निमंत्रण देने आए हो ? हमारी पाठशाला के विद्यार्थी कुछ ऐसे-वैसे नही हैं, जो हर जगह पहुच जाय। क्या समझे ? कोई तंत्र मे, कोई मंत्र मे, कोई ज्योतिष, छादस, निरुक्त, व्याकरण मे, कोई वैशेषिक तर्क, साख्य, योग मीमासा, काव्य, नाटक, अलंकार आदि मे "

न्यौता देने के लिए आए हुए ब्राह्मण युवक ने हाथ जोड़कर मामा जी की बात काटते हुए उत्तर दिया—"मामा जी, मैं केवल आपके विद्यार्थियो को ही

नही बल्कि उनके साथ आपको भी सादर निमत्रण देने आया हू ।"

मामा जी का मन तरी मे आया । मान-भरे स्वर मे बाले—"तो पहले क्यो नहीं बताया ? क्या नाम है तुम्हारा ?"

"महाराज, इस अकिंचन का नाम अर्लषियुध्मगजपुरदरगरुड्ध्वज बाजपेई है।"

मामा नाम सुनते ही सकते मे आ गए। मुह और आखे फाड़कर उसे देखते हुए कहा—"इतना बड़ा नाम ! दक्षिणा तो अच्छी मिलेगी न ? समझ लो, आचार्यो के आचार्य परमपडित शेष सनातन जी के शिष्य, और क्या नाम है कि उनके माननीय साले अर्थात्···"

"मामा, सारी बाते अपने इस भानजे के ही ऊपर-छोड़ दीजिए । मै आपके लिए विजया का गोला भी पीसकर ले आया हू । यह लीजिए, यह भाग, यह बादाम और यह रही केसर की पुड़िया और दूध के पैसे···"

"रहने दे, रहने दे, दूध तो घर मे बहुत है । अच्छा तो हम सबको लेकर समय से पहुच जायगे।"

निमंत्रण के दिन छात्र वर्ग मे एक विशेष आनद की लहर दौड़ जाया करती थी। कुछ बातूनी विद्यार्थियो के लिए तो न्यौता पाकर जीमने से पहले तक का समय निमत्रणकर्ता की हैसियत का अनुमान लगाकर उस हिसाब से मिठाई, पकवानो और तरह-तरह के स्वादिष्ट व्यजनो को कल्पना करने मे बीतता था। न्यौता के पहले मुह से लार टपकाना और उसके बाद सतोष से डकारे ले-लेकर भोजन का रसालोचन करने मे ही वे अपने ज्ञान की चरम सिद्धि मानते थे।

इनकी भीड़ से अलग बड़े आगन के एक धुर कोने मे तुलसी और गगाराम एक गभीर विचार मे लीन थे। तुलसीदास कह रहे थे—"गगाराम, आज बड़े भोरहरे ही मैंने पहले नीलकठ के दर्शन किए और फिर सयोग से एक चकवे को भी देखा। यो तो इस घर मे न्योले प्राय. ही देखने को मिल जाया करते हैं, फिर भी सयोग की बात है कि आज मैने उसे बार-बार देखा। बोलो, इन सबका अर्थ क्या हुआ ?"

गंगाराम अपने पालथी बधे दोनो पैरो के तलवो को अपने दोनो हाथो से मस्ती मे मीजते हुए मुस्कराकर बोले—"फिर क्या है, आनद ही आनद है।"

तुलसी को उत्तर से अधिक सतोष नही हुआ। वह स्वय ही विचार करते हुए बोले—"शुभ शकुन तो है ही, किंतु जब अलग-अलग विचार करके तीनो को एक चित्र मे बाधता हूं तो अर्थ निकलता है कि नीलकठ विष को पचाने वाला है, चकवा विरही है और नकुल सर्प-सहारक है। सब मिलाकर अर्थ यह हुआ कि आज का दिन मेरे लिए सघर्ष करने, विष पीने और पचाने तथा विरह ज्वाला मे दहकने का दिन है। फिर शुभ कहा हुआ ?"

गंगाराम मस्ती मे थे। मित्र को झिड़कते हुए कहा—"तुम कवि लोग अपनी कल्पनाशीलता मे अति पर पहुच जाते हो। यह शकुन शुभ न होते तो पुराने ज्योतिषाचार्य लोग क्या यो ही इन्हे गिना जाते ?"

उस समय घोड़ू फाटक नाम का एक छात्र आया और बड़े उत्साह से

बोला—"अहो तुलसी जी, शुभ सूचना सुनी काय ?"

"कौन-सो ?"

"दूधविनायक पर मेघा भगत का भडारा म्हणजे किसी धनी ने अकरा प्रकार चे मिष्ठान आणि नाना प्रकार के वररस व्यजन जिमाने का उत्साह दिखलाया है। हा, जरा हमारा प्रश्न विचारो तो सही गगाराम भैया, कि मिठाइयो मे कौन-कौन-सी वस्तुए हो सकती है ?"

गगाराम मुस्कराए, बोले—"घोड्या फाटक, अर्गः ज्योतिप-ज्ञानरूपी किले के मिठाई वाले फाटक मे मेरा प्रवेश नही हुआ है। रामबोला से पूछो। इनकी जिभ्या से राम बोलते ह।"

"खर आहे। ते मी विसरलोच हो तो। तुलसी भैया, हमारा प्रश्न तो तुम्ही विचारो। छात्र मडलो म तुम्हार विचारन से चागला प्रभाव पड़ेगा। विचारो, झटपट। हमकू चौक जाना है।"

तुलसी उस समय अपने ही गुताड़ मे थे, बोले—"धोडू फाटक, और चाहे जो व्यजन हो, पर तुम्हारे महाराष्ट्र के वह लक्कड़तोड़ दत-भजक लड्डू कदापि नही होगे, इतना मै तुम्हे विश्वास दिलाता हू। अच्छा अब स्वाद-चर्चा यही समाप्त करो।"

फाटक चिढ़ गया, बोला—"तुम रसहोनो को, सच पूछा जाए तो भोजन कराना हो पाप है।"

"अरे हमारो रोटी-दाल को तो पुण्य बना रहने दो भैया।" गगाराम ने विनोद मे गिड़गिड़ाने का स्वाग किया।

"नको। तुम्हा ज्ञानाचा रोटी आणि ज्ञानाची डाल खाओ। अरे स्वाद-चर्चा ब्रह्म-चर्चा से तोल म कदापि कम नही बैठतो महाराज, समझते क्या हो ? और एक तरह से देखिए तो स्वाद-सुख रति-सुख आणि ब्रह्म-सुख, इन तीनो प्रकार के सुखो म स्वाद-सुख ही मानव के साथ जन्मता और मरता है। बाकी दोनो सुख तो यहा के यहो पड़े रह जाते ह।"

गगाराम ने गभीरता का ढोग करते हुए कहा—"यथार्थ है। किंतु सतमार्ग पर निकल भागने वाले मनुष्य के मगज म यह गूढ़ सत्य कभी समा ही नही पाता। मैं भी तुलसी को समझा-समझाकर हार चुका हू।"

"अच्छा चलू, पाचक ले आऊ। मैं सदा थोड़ा अधिक ही ले आता हू। गगाराम भैया, जिस-किसीको आवश्यकता हो वह दस कौड़ी पर हमसे पाचक खरीद सकता है।"

गगाराम बोले—"तब तो तुलसी के कारण तुम्हे अवश्य घाटा होगा, फाटक। इन्होने हाल ही मे ढेर सारा लवणभास्कर चूर्ण बनाकर रखा है।"

"बेचने के लिए ?"

"नही, भोजन भट्टो को दान करके पुण्य कमाएगे।"

धोडू फाटक तुलसी को गभीर रहस्यभेदी दृष्टि से घूरने लगा। फिर एकाएक गिड़गिड़ाहट वाली मुद्रा मे आ गया और कहने लगा—"अरे भैया, हमारी द्रव्यहानि काहे कराते हो ? थोड़ा-बहुत यही सब करके मैं अपना खर्चा-

पानी निकाल लेता हूं।"

तुलसी बोले—"खर्चे-पानी के लिए तुम्हे विशेष द्रव्य आवश्यकता ही क्यो होती है घोड़ू ?"

अर्थ-भरी दृष्टि से फाटक को देखकर गगाराम बड़ी जोर से खिलखिलाकर हंस पड़े, कहा—"तुम समझते नही तुलसी, दशाश्वमेध पर एक धोबिन से यह अपनी धुलाई कराने लगे है। धुलाई के पैसे भी देने पड़ते है न।"

तुलसी ने घृणा से नाक-भौ सिकोड़ी और कहा—"विद्यार्थी जीवन मे यह सब···।"

फाटक ताव खा गया, बोला—"बस-बस, ज्यादा ज्ञान मेरे आगे न बघारना। तुलसी भैया, काशी मधे दोने पंडित, मी आणि माझा भाऊ। शास्त्रार्थ मे सबको हरा सकता हू।"

"हमारे सामने सिंह की तरह दहाड़ने का स्वाग मत करो फाटक। अभी परसो-नरसों जब तुम्हारी संन्यासिनी प्रिया तुम्हारे कान उमेठ रही थी···"

"भैया गगाराम जी, मै तुम्हे और तुलसी भैया को, यह लो साष्टाग दडवत् किए लेता हू, यह लो नाक भी रगड़ता हू। यह बात किसी से मत कहना। पिता जी आजकल मेरे विवाह की बात चला रहे हैं। व्यर्थ मे मेरी बदनामी फैल जायगी। अच्छा तो चलू, पाचक ले आऊ। मोहन भोग, श्रीखड और देखो क्या-क्या उत्तम सामग्री मिलती है। विश्वनाथ बाबा मेघा भगत की भक्ति, उसके यजमान के धन मे बढ़ोत्तरी करे। नित्य ब्रह्मभोज हो।"

फाटक के जाने के बाद तुलसी बोले—"यो तो भोजन भट्ट है, पर है बड़ा निष्कपट।"

गगाराम बोले—"घाघ है घाघ। बस देखने मे ही भोला-भाला लगता है। उस संन्यासिनी के पास सुना है कि एक हडिया भरके सोने की अशर्फिया है। वह अधेड़ संन्यासिनी विलासिनी और महाकजूस है। उसने इसके ऐसे दो-तीन बटुक प्रेमी पाल रखे हे। उनकी दक्षिणा की सारी राशि वही छीन लेती है और सबको ही लालच देती है कि जिसकी सेवा से मै अधिक सतुष्ट होऊगी उसीको अशर्फिया दे दूगी।"

तुलसीदास ठठाकर हस पड़े, कहा—"माया महा ठगिनि मै जानी। कबीर साहब सत्य ही कह गए हैं। पर यह मेघा भगत कौन हे गगाराम? आजकल बड़ा माहात्म्य सुनाई पड़ता है इनका!"

गंगाराम बोले—"भाई, मैने स्वय तो उन्हे देखा नही है, पर सुना अवश्य है कि वह काव्य-मर्मज्ञ हे और मेधावी छात्र थे। कहते है कुछ महीनो पहले अयोध्या मे इन्हे चैतन्य महाप्रभु के समान ही अचानक आनद का दौरा पडा। कहते है उस समय वाल्मीकीय रामायण का कोई प्रसग पढ रहे थे। बस तब से राममय हो रहे हैं। सस्वर भजन सुनकर प्रसन्न होते है, उन्हीके सबध मे प्रवचन करते है। आठो पहर रामदीवाने बने रहते है। कहते हैं कि उनकी वाणी पर सरस्वती विराजती है। किसीको यदि वे वरदान दे देते हे तो वह अवश्य पूरा होता है।"

सुनकर तुलसी के मन मे मेघा भगत के प्रति कौतूहल जागा और स्पर्द्धा भी। मन कहने लगा, मैं भी ऐसा राम-राम जपू कि सारी दुनिया ऐसे ही मुझे भी देखे। होड़ लेने की इस इच्छा के साथ ही साथ नई उमर की बेताबी ने उनके भीतर डाह भी जगाई। सोचने लगे कि अब भी उसकी राम-भक्ति मे कोई कमी तो है नही। वह अपने आस-पास की सारी दुनिया को दिन-रात देखा करते है, पर कोई भी उन्हे अपने समान राम-प्रेमी अब तक मिला नही है। मुह से झूठ-मूठ 'राम-राम, शिव-शिव' कह लेने से कही भला भक्तिभाव जागता है ? फिर अपने घमड पर ध्यान गया, मन को डाटा—'धत् तेरे की रामभगतवा, झूठ-मूठ ही खिलवाड़ करता है। अभी देखेंगे कि मेघा जी का भक्तिभाव कितना गहरा है।'

सेठ जी की हवेली के एक बड़े कमरे मे भीड़ भरी थी। तुलसी झाकने लगे। कुछ हुआ है, सब लोग बीच ही मे क्यो झुके है ! पता लगा कि भक्तवर को मूर्च्छा आ गई।

केवड़ाजल के छीटे दिए जा रहे थे। दो व्यक्ति अपने-अपने अंगौछों से हवा कर रहे थे। तुलसी अपनी उत्सुकतावश उस छोटी भीड़ मे घुसकर मेघा भगत के पास तक तो अवश्य पहुच गए परतु हवा डुलाने वाले अगौछो के कारण उन्हे युवा भगत जी का चेहरा दिखलाई नहीं पड़ रहा था। उनका मन अगौछा झलने वालो पर झुझला उठा। गरदन कभी दाहिनी ओर झुकाई, कभी बाई ओर। कभी एड़िया उचकाकर तथा आगे की ओर अधिक झुककर देखा। हल्की ललाई लिए गोरा वर्ण और भूरे बालो वाले मुखमडल की सुन्दरता कुछ-कुछ झलकी। तभी भगत का शरीर हिला। अगौछे का झला जाना बद हुआ। भगत जो अब तक बाई करवट से पड़े हुए थे अब चित हो गए। छोटी-सी दाढ़ी वाला लबा चेहरा अपनी सारी पीड़ा के बावजूद बड़ा तेजस्वी और शात था। तुलसी उस चेहरे को अपलक दृष्टि से निहारते रहे, मन बार-बार भापता रहा और अपने-आप से यह कहता भी रहा कि मूर्च्छित व्यक्ति सचमुच भक्त है, अवश्य है।

मूर्च्छा टूटी। आखें खुली। मेघा भगत उठने का उपक्रम करने लगे तो भक्तो ने उन्हे सहारा देकर बैठा दिया। तुलसी अपनी दृष्टि से उस चेहरे को पीने लगे। कैसी आत्मलीन दृष्टि है इनकी ! देख सामने रहे है पर ऐसा लगता है कि मानो वे यहा नही बल्कि काले कोसो दूर किसी ऐसी वस्तु को देख रहे है जो दूसरो को नही दिखलाई देती। क्या यह भगत की अभिनय मुद्रा है ? तभी तुलसी ने देखा कि मेघा भगत की आखें झील-सी भर आई है और उनके होठ कुछ बुदबुदा रहे है। वे बड़ी छटपटाहट के साथ अपने दायें-बाये देखने लगते है मानो उन्हे किसी चीज की तलाश हो। एक बूढ़े-से व्यक्ति ने पूछा—"क्या चाहिए महराज ?"

"कुछ नही··· क्या चाहता हूं, कैसे बतलाऊ ? राजमहलो मे रहनेवाले सैकड़ो दास-दासियो से सेवित राजकुमार वन की ककड़-काटों-भरी राह पर चले जा रहे है और मैं कुछ भी नही कर सकता—नि.सहाय।···जिनकी इच्छाओ का पालन करने के लिए सैकड़ो दास-दासिया सदा हाथ बाधे खड़े रहते थे, बड़े-बड़े सेठ-साहूकार, राजे-सामत जिनकी कृपादृष्टि के प्यासे बने सदा उत्सुक नेत्रो से

देखा करते थे उनसे इस गहन वन में कोई यह भी पूछने वाला नहीं कि नाथ, आपको क्या चाहिए ?…"

मेघा भगत रोने लगे। कुछ थमे तो फिर कहना शुरू किया। सीता जी के थके-कांपते लड़खड़ाते पैरों का करुण वर्णन, उनकी प्यासजनित व्याकुलता, उनका बार-बार पूछना कि हे स्वामी अब वन कितनी दूर है, कुटी कहां छवाई जायगी इत्यादि बातों की कल्पना कर-करके मेघा भगत धारोंधार रो पडते है। उनका कंठ भर आता है और वे दुख की सजीव मूर्ति बने ऐसे विवश हो जाते है कि उनसे बोलते भी नही बनता। इस कमरे मे ऐसा कोई नहीं जिसकी आंखो से गंगा-जमुना न वह चली हों। सभी रो रहे है। उनके साथियों मे गंगाराम और नंददास भी आंसू बहा रहे है।…लेकिन तुलसी की आंखों में पानी क्या सीलन तक नही है। मन की गुफा गूजती है, देखा, यह है राम-भक्ति ! तुलसी अपराधी-से झुक जाते है। दृष्टि पालथी पर रखी हथेलियो पर सधकर अन्तर्मुखी हो जाती है…मन मानो एक गुफा है जिसमे सिर झुकाए खड़े हुए तुलसी एक ओर जहां अपराध भावना से सिहरते है वहां दूसरी ओर इच्छा की तीव्रता से भी कांप-कांप उठते हैं, 'हे राम जी, मेरे मन मे भी आपके प्रति ऐसी ही चाहना है। भले ही मेरी आंखों से इस समय आंसू न बह रहे हों पर मेरा कलेजा आठो याम आपके लिए ऐसे ही तड़पता है।' यह कहते हुए मन यह भी अनुभव कर रहा था कि उसका स्थूल रूप अब भी उसी तरह भावशून्य पत्थर बना हुआ है जैसा कि अभी तक था। उसमें किसी भी प्रकार का करुण स्पंदन नहीं है—'इस समय न सही, पर क्या मेरे हृदय मे राम जी के प्रति ऐसा विरहभाव नही जागता ? जागता है…जागता है…पर इस ऐन परीक्षा के अवसर पर वह भट्ठर हो गया है, तनिक-सी कुनमुनाहट तक नही हो रही।…हे प्रभु, मैं बड़ा अपराधी हू। मेरा कलेजा बड़ा ही कठोर है जो ऐसा निर्मल भक्तिभाव-भरा वातावरण पाकर भी अब तक उमड़ न सका।'

सारा वातावरण करुणा के अपार सागर मे डूब गया है। तुलसी से कुछ ही दूर बैठी कुछ स्त्रियां रो रही है। पुरुषो मे अनेक चेहरे अश्रु-विगलित दिखाई दे रहे है। मेघा भगत के करुणा सागर में डूबे हुए स्वर का प्रभाव सभी के चेहरों पर बोल रहा है। लेकिन तुलसी की आंखें मरुभूमि-सी उजाड़ है। मेघा भगत के मौन भावमग्न होते ही सभी कुछ क्षणो तक तो भावावेश मे गूगे बने रहे फिर हल्की हलचल होने लगी।

दर्शनार्थी भक्तमंडली मे एक तरुणी अपनी मां के साथ बैठी हुई थी। तुलसी और गंगाराम और नंददास उससे कुछ ही दूर पर बैठे थे। एक प्रौढ व्यक्ति ने प्रौढा से कहा—"मोहिनी से कहो एक भजन गाए। महराज को शांति मिलेगी। मेघाभगत आखे मूदे करुणा मे डूबे बैठे है। तरुणी गायिका ने अपनी प्रौढा मा के सकेत पर कुछ क्षणों तक गुनगुनाते रहने के बाद मीराबाई का एक भजन गाना आरम्भ कर दिया—सुनी री मैने हरि आवन की अवाज।

स्वर मीठा, तड़प-भरा था। गाने वाली कला-निपुण थी और मनमोहक भी। थोड़ी ही देर में गीत और गायिका की मधुरिमा वातावरण पर जादू बन-

कर छा गई। मेधा भगत के भक्तो मे आधे से अधिक लोग राम को भूलकर रागरंजित हो गए। गानेवाली के भावमग्न चेहरे पर अनेक आखें लालच के गोंद से चिपक गईं। स्वर सभी के मनों की भौतिक सतह को छेदकर कही अदृश्य गहराई मे हवा की तरह छू रहा था। लोगों की रसमग्न आखों मे गायिका का रूप किसी हद तक समाया तो था, किंतु कानो मे गूजने वाली मिठास रूप के मोह को वहा ले जाती थी। ऐसा लगता था कि गायिका के स्वर और मीरा के शब्दो ने जन-मानस को त्रिशंकु की तरह अधर मे औंधा लटका दिया है। केवल मेघा भगत आखें मूदे पत्थर की मूर्ति वने ध्यानावस्थित हो गए थे।

गायिका का स्वर पवन झकोर वनकर तुलसी के हृदय के पर्दे हिलाने लगा। हरि आवन की अवाज ही मानो गायिका के स्वर मे सुनाई पड रही थी। कठिन कलेजा पिघलकर ऐसा तरगित हो उठा था कि तुलसी का मानस इच्छित गति पाकर वडी शाति और सुख का अनुभव कर रहा था। उस दु ग्न के वहाव में ही गाने वाली के लिए प्रशंसा की विजली भी कौंधी। 'कितना मधुर गा रही है! भक्तराज इससे अवश्य ही प्रभावित हो रहे हैं। धन्य हैं यह • पसी, जो वेश्या होकर भी इतनी भक्तिभावपूर्ण है। मेरे मन मे भी राम रमते :। मेघा जी भक्त है, अव यह भी मानी जायगी। इसमे भक्तिभाव जो है सो है पर यह कला-कुशल है। मेरे मन में भाव भी है और मैं गा भी सकता हू। ऐसे ही गा सकता हूं।'

मन गायिका के स्वर मे स्वर मिलाकर वहने लगा, आखे मुद गई। गानेवाली तुलसी के मन की गुफा में श्रद्धा दीप के पास वैठी गा रही थी। और मन वाले तुलसी का स्वर मानो गुप्त सरस्वती की भाति उसके स्वर मे अतर्धारा वनकर प्रवाहित हो रहा था।

तुलसी एक ऐसे मोड पर पहुचकर स्तब्ध हो गए थे जहा फूलो के रगों से भरी हरीतिमा उनके आभ्यंतर को अपने मे लपेट रही थी। उनके मन-प्राण मे केवल स्वर और शब्द ही थे, और कुछ भी न वचा था।

गायिका का स्वर ज्यो ही अपने पूर्ण विराम पर थमा त्यो ही तुलसी का स्वर अनायास गतिमान हो गया—सुनी री मैंने हरि आवन की अवाज।

गायन शैली वही थी, शब्द भी वही किंतु स्वर नया था। सुनने वालो को लगता था कि वे जैसे अपने अतर मे हरि के आने की आहट पा रहे हे। हरि से मिलने की छटपटाहट हर प्राण मे वस गई। लोग मुग्ध होकर इस अनजाने युवक को देख रहे थे। गायिका चकित और रसमग्न दृष्टि से एकटक होकर तुलसी को निहार रही थी। तुलसी मेघा भगत की ओर देखते हुए गा रहे थे—मीरा के प्रभु गिरधर नागर वेगि मिलो महराज।

महराज तक पहुचते-पहुचते वातावरण प्राय सभी के लिए आत्मविस्मृत-कारी वन गया था। गायिका के स्वर को सुनते हुए जहा मेघा भगत की आखे मुद गई थी वहा तुलसी का स्वर आखे खोल देने वाला वन गया। स्वर मे एक ऐसी सचाई थी जो कोरी कला के सिद्ध से सिद्ध रूप की भी पहुच के वाहर थी।

भजन समाप्त होने पर मेघा भगत गद्गद स्वर में वोले—"कहां से आ गया रे, तू मेरे स्वरूप ? तू तो मेरी अनचाही चाह वनकर आया है रे ! आ, मैं तेरी वलैया ले लू ।" मेघा भगत भावावेश में उठकर तुलसी के पास आ गए और उसे अपने कलेजे से चिपटाकर रोने लगे। वोले—"मैं जिसे अपने भीतर पुकार रहा था वह यों बहाने से मुझे बाहर प्रत्यक्ष होकर मिल रहा है ! तू बड़ा दयालु है—वडा ही दयालु है मेरे राम ।"

सव दृष्टियां भगत और, तुलसी के मिलनदृश्य पर लगी थी । मेघा की आंखें बरस रही थी ।

तुलसी की आंखें प्रयत्न करने पर भी न वरसी। जिसे रिझाने के प्रयत्न मे उनका कलेजा उमडा था उससे इच्छित प्रशंसा पाकर मानो वह फिर घमण्ड की ठसक मे ठोस वन गया। अपने प्रति किए गए भगत जी के संबोधन और प्रशंसा का विचित्र प्रभाव नवयुवा तुलसी के सद्य सफलता से उल्लसित मन को पहेली-सा उलझा गया। काया पर प्रसन्नता और विनय मुद्रा, मन में घमंड। अंतरचेतना मे घुडकी की गूज—'सावधान, घमंड नही ।' मन अपराध भावना से सकुच गया और उससे कतराने के लिए ही तुलसी की दृष्टि भीतर से वाहर आ गई। सामने गायिका उन्हें अपलक दृष्टि से देख रही थी।

उसकी आखों में अपने लिए चमकता हुआ प्रशंसा का भाव पाकर वे लोहे की तरह उस चुवक की ओर खिचते ही चले गए । उन्हें ऐसा लगा कि मानो मेघा से अधिक उन्हे गायिका की प्रशंसा की ही चाह थी, और उसे उसकी आखों में पाकर वे निहाल हो गए है।

ज्योनार का समय हो गया था। वुलावा आने पर शेष जी की शिष्य मंडली के साथ ही कुछ और ब्राह्मण गृहस्थ भी मेघा भगत को प्रणाम करके उठ खडे हुए। जब तुलसी उनके आगे नतमस्तक हुए तो मेघा ने उनका हाथ पकडकर उठा लिया और उनकी आखो में आंखें डालकर देखने लगे। तुलसी का मन अचम्भे से वंध गया—'यह इतने ध्यान से मेरी आखों में क्या देख रहे है ? मैं तो कुछ भी नही समझ पाता ।'

मेघा वोले—"अव तुम वरावर आना भाई। तुम्हारे विना यह मेघ छूछा रहेगा। तुम्ही मेरी वर्षा हो। वचन दो, कि तुम नित्य आओगे।"

अपनी प्रशंसा से तुलसी सकुच गए, कहा—"गुरू जी से आज्ञा लेकर अवश्य आऊंगा।"

"कौन है तुम्हारे गुरु ?"

"परमपूज्यपाद आचार्यपाद शेष सनातन जी महाराज।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"रामवोला तुलसी।"

अन्य विद्यार्थी कमरे से वाहर निकलकर दालान मे खडे थे। मामा जी की भूख भाग के नशे के साथ ही भडक चुकी थी। उन्हे तुलसी का मेघा से खडे-खडे वतियाना उवा रहा था। तुलसी मेघा को प्रणाम करके जो चले तो द्वार की चौखट पर फिर अटक गए। किवाड़ से टिकी हुई गायिका खडी थी। पास पहुचने

पर उन्होंने तुलसी को आंखों ही आंखों में प्रणाम किया। तुलसी का मन गुदगुदी से भर उठा। आपे से बाहर होकर वे उनके रूप में लीन हो गए।

"आप बहुत सुन्दर गाते हैं, किससे सीखा?"

"मालिकें।"

"जाइए।" कहते हुए गायिका की आंखों की पुतलियां गोली से फिरीं। उन्हें देखते ही तुलसी का मन कुछ से कुछ होने लगा। उन्हें लगा कि उनका सारा कलेजा उनके भीतर से निकलकर सामने वाली की आंखों में समाया जा रहा है। उसकी इस विकट मुग्धता पर वे ठगे से उसे देखते ही रह गए।

बाहर से मामाजी चिल्लाये—"अरे अब आओ भी कि साली पतुरिया के रूप से ही पेट भरोगे?"

तुलसी हड़बड़ाकर चले तो चौखट की ठोकर लगी। लड़खड़ाए तो गायिका ने उन्हें थामने के लिए हाथ बढ़ाया। उंगलियां तुलसी की कलाई से छू गईं। सारा शरीर बिजली की सनसनाहट से भर गया। यह एकदम नवअनुभव था, मन सागर में पड़कर चौकन्ना हो गया। तुलसी के कसरती कुश्तीबाज शरीर ने उसी बिजली से फुर्ती लेकर ऐसी सफाई से पैंतरा लिया कि तन और मन दोनों ही गिरने से बच गए। दूर छिटककर खड़े होते हुए उन्होंने फिर मुड़कर भी न देखा। अनुभवहीन नवकच्चा मन इस अपूर्व आनन्द से दहल गया था। मोहिनीबाई की मन-चोर आंखें मृग मरीचिका की-सी प्यास से बंधी टकटकी से अपने जाते हुए मन-भावन को कनखियों से ताक रही थी।

१२

उस दिन सारी दोपहर, सांझ और रात तुलसी जिधर देखते थे उधर ही उन्हें एक सलोना-सा चेहरा दिखलाई देता था। कानों में केवल एक ही स्वर गूंज रहा था—'सुनी री मैंने हरि आवन की अवाज'। इसके अतिरिक्त उस दिन उनके लिए इस दुनिया में देखने या सुनने को और कोई वस्तु मानो शेष ही नहीं बची थी। उस दिन वे ऊपरी तौर पर सब कुछ देखते-सुनते हुए भी मानो बेहोश रहे। रह-रहकर मन अपने-आप ही आनन्द हिलोर से भर उठता था। ऐसा लगता था कि जन्म के अभागे दरिद्र व्यक्ति को आज त्रिलोक की संपदा मिल गई है। वह सब कुछ [illegible] से बड़ी-बड़ी चुम्बक-सी आंखें, कानों पर झूलती हुई घुंघराले बालों की लटें, सांवला-गेहुंआ रंग, ठमका कद, भोला-हंसमुख-गोल चेहरा पल-पल छिन प्राणों में, मन में, रोम-रोम में, क्षण के प्रत्येक अणु में तुलसी के साथ था। समाज में, घाटों में, कहीं भी उनका मन रह-रहकर आप ही आप मचल उठता था। पुराने से पुराने भजन वे आज दिन-भर प्रायः गाते-गुनगुनाते रहे। दिल और दिमाग संगीत से भरा रहा।

[illegible] के ज्ञान की लगनवाली तुलसी की [illegible] का प्रसार पूरी पाठशाला

में हो चुका था।

दूसरे दिन अपने विद्यार्थियों को समय से पहले ही पढ़ाने के लिए बुला लिया। आज सवेरे ही से उनके मन मे उत्साह की हिलोरे ही हिलोरे उठ रही थी। मन मे भाव-सूत्र अभी सब गड्ड-मड्ड थे। तुलसी का मन अपनी खोह मे नन्हा-मुन्ना बनकर गेंद-सा उछलकर अपने श्रद्धा दीप के चारों ओर नाच रहा था। वह मगन था। उसके मगनपने मे राम थे। उसकी भक्ति पर प्रश्नचिह्न लगाने का प्रश्न अभी तुलसी के मन मे उदय नही हुआ था। मोहिनी इन सबके बीच मे एक विशेष आभा लेकर उभर आई थी, यह बात उनके भीतर-बाहर की चेतना मे स्पष्ट रूप से जरूर उभर आई थी। मोहिनी की आकर्षक छवि भी उनकी बिम्ब-गुफा मे उनके साथ ही साथ श्रद्धा दीप के चारों ओर नाचने लगती है। मोहिनी अपनी यथार्थ आयु मे और तुलसी बालक के रूप मे एक साथ एक ही लय और गति मे यह आनन्द ताण्डव कर रहे थे। उसी उल्लास मे जब वे पढाने बैठे तो कालिदास के मेघदूत वर्णन मे ऐसे तन्मय हुए कि विद्यार्थी तन्मय हो गए। विद्यार्थी यो भी पंडित तुलसीदास की अध्यापन कला पर मुग्ध रहते हैं किन्तु आज तो वे छक-छक गए। तुलसीदास की इस तन्मयता को भंग करनेवाली केवल एक ही वस्तु थी ·· छत की धूप। समय के संकेतो पर उनका ध्यान बीच-बीच मे अपने-आप ही जा पडता था। चलते हुए विचारो के रंगीन पर्दों के भीतर मोहिनीबाई की आकर्षक छवि बार-बार झाककर उनका मोद बढा जाती थी।

तुलसीदास ने समय से ही अपने सारे कार्य उत्साहपूर्वक निबटा लिए और मेघा भगत के यहा जाने के लिए गुरू जी की आज्ञा लेने जा पहुचे। तब तक उनके शिष्यो ने पाठशाला के समस्त विद्यार्थियो के आगे अध्यापक तुलसी की ऐसी महिमा बखान दी थी कि उसकी भनक गुरू जी के कानो मे भी पड चुकी थी।

गुरू जी बोले—"हमने सुना है कि आज तुमने अपनी व्याख्यान कला से पार्थिव और अपार्थिव के बीच मे प्रेम रज्जु का लक्ष्मण झूला निर्मित कर दिया है।" सुनकर तुलसी गद्‌गद हो गए। गुरू जी के चरणो मे तुरंत अपना सिर नवाकर वे बोले—"आप मुझसे ये न कहे। सबकुछ आप ही का प्रसाद है और स्वर्गीय बाबा जी के दिए हुए सस्कार है। मै तो आपका अनुचर मात्र हू।"

तुलसी की पीठ अपने दोनो हाथो से थपथपाकर गुरू जी बोले—"विश्वेश्वर तुम्हें अपने इष्टदेव के प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ वितरक बनाए। महामृत्युन्जय तुम्हारी रक्षा करे। सर्वत्र विजयी हो, सिद्ध हो।"

तुलसी के उल्लास को ऐसा लगा जैसे गुरु के आशीर्वाद से कवचमंडित होकर वह प्रेम के कुरुक्षेत्र मे महारथी अर्जुन की तरह फूलो का धनुष टंकारते चले जा रहे है, किन्तु इस युवा तुलसी रूपी अर्जुन का सारथी मोहन नही मोहिनी है। रास्ते मे पाव ऐसी तेजी से चले कि मानो वे अपने-आप मे पक्षी के पखों की उडान भी बाध लाए हो।

मेघा भगत के यहा आज भी कल जैसा ही संसार जुडा था। मोहिनीबाई अपनी माता के साथ पहले ही आ चुकी थी। उसका रथ और सरकारी प्यादे

गली के मुहाने पर ही खड़े दिखाई दिए। देखते ही तुलसी का उल्लास रंगीन होकर चमक उठा। लेकिन प्रवेश करते समय से अपने-आपको संयत बना लेने का होश रहा। मोहिनीबाई ने वातावरण से बेहोश होकर भर नजर तुलसी को देखा। एक उचकती कनखी से इस आनंद के कण समेटकर तुलसी बराबर मेघा भगत से अपनी श्रद्धापूरित आखें मिलाए रखने में सतर्क रहे। मेघा भगत के चरण छूते समय उनके मन ने सहसा व्यंग्य किया। 'जो भाव कल तक सहज था उसमे आज सतर्कता क्यों बरती जा रही है ?'

मेघा भगत ने तभी दोनो हाथो से प्रेमपूर्वक तुलसी के दोनो कंधे हिलाते हुए कहा—"आ गया आत्मन् ? अरे तुझे तो मैं अपने साथ ही भगा ले जाऊंगा। राम और भरत मे कोई अन्तर नही है। वे एक ही अनुशासन के दो परस्पर पूरक रूप है। अच्छा, चल बैठ। भाई आज तो तू ही पहले कोई भजन सुना। कल से कोतवाल साहब की गायिका इस भक्तिन के स्वर ने मेरे राममोह मे एक दिव्य मादकता भी भर दी है। तेरा स्वर उस तरल मद को मेरे लिए प्रगाढ़ कर देता है। गा भाइया, गा। अभी वातावरण शांत है। भीड़ नही हुई है। मेरी आत्म-चेतना के कभी-कभी उठ आनेवाले झोकों को सुलाने के लिए तू अपने स्वर और भाव से उसे कवचमंडित कर दे भैया, फिर इस देवी से सुनूगा। एक जगह पर इसका स्वर इसके अनुपम रूप से अधिक सच्चा है।"

अब पहली बार तुलसी और मोहिनी की आंखें मिली। चारो आखे एक-दूसरे की प्रशंसा मे निछावर हुई जाती थी। मोहिनीबाई ने हंसकर कहा—"आपका स्वर तो अगम सरोवर का कमल है, पडित जी, कल से मेरे कानों मे भी अब तक गूज रहा है।"

तुलसी लजा गये, बैठते हुए बोले—"आप जैसी शास्त्र-निपुण कुशल गायिका के आगे भला मेरी हस्ती ही क्या है। एक भिखारिन की गोद मे पला, उसने जो भजन सिखा दिए वही जानता हूं। फिर थोडा स्वर का अभ्यास पूज्यपाद गोलोक-वासी नरहरि बाबा ने करा दिया था।" यह कहकर तुलसी अपनी गुनगुनाहट में रम गये। आखे मुदने लगी और नरहरि बाबा द्वारा गाया जानेवाला संत रैदास का एक भजन वे अपने ध्यान मे स्व० नरहरि बाबा की छवि लाकर गाने लगे—

प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी।
जाकी अँग-अँग बास समानी॥

यह तुलसीदास नही गा रहे थे, उनके ध्यान मे बैठा हुआ उनका जीवनदाता गा रहा था। इस समय तुलसी का स्वर गोलोकवासी गुरु के भाव और स्वर का वाहक मात्र था। मेघा भगत आत्मविभोर हो गए। उनकी बंद आंखो से अश्रु झर रहे थे। बीच-बीच मे उनके होठ कुछ बुदबुदाहट-भरी फड़कन से भी भर जाते थे। बाकी सारी काया निश्चेष्ट थी।

मोहिनीबाई की काया उसके अन्तर-उल्लास की प्रतिमूर्ति बन गई थी। उसकी चमकती हुई आखे जैसे अपने से निकलकर तुलसी मे समा गई थी। कल

जैसे तुलसी मोहिनी के स्वर से आत्मविभोर होकर उसके साथ गा उठे थे वैसे ही मोहिनीवाई भी आज स्वतःस्फूर्त होकर तुलसी के स्वर मे स्वर मिलाकर गा उठी—प्रभुजी तुम मोती हम धागा।

तब तक कुछ और लोग भी आ गए। मेघा भगत आज संगीत सुनने की मौज में थे, इसलिए मोहिनीवाई ने सगीत का समा बांध दिया। उसकी आंखों का यह भाव तुलसी के मन मे स्पष्ट था कि वह केवल उनके लिए ही गा रही है। तुलसी आनन्दमग्न थे। स्वयं भी जयदेव रचित एक गीत गाया। उस दिन भक्तों में मोहिनीवाई सरीखी सरनाम गायिका से टक्कर लेनेवाले नये पुरुष-स्वर की धूम मच गई। सभी कोई कहे, 'वाह तुलसीदास जी, वाह तुलसीदास जी।'

मोहिनीवाई की सयानी मां ने शीघ्र ही उठने का अंदाज साधा। तुलसीदास-मुग्धा मोहिनी अनख कर उठी। मेघा भगत के चरणों मे प्रणाम अर्पित करने के बाद द्वार तक जाते-जाते उसने कई बार बड़ी सफाई से तुलसी पर अपनी कनखिया और चितवनें डालीं। द्वार के हल्के अधेरे मे चलने से पहले वे चितवनें ढीठ होकर टकटकी बनकर तुलसी के चेहरे पर सध गईं।

उस दिन तुलसी बीते दिन से भी अधिक गहरे नशे मे घर लौटे। रात मे अपनी कोठरी के एकान्त में जब उन्होंने अपने मन को देखा तो लगा कि श्रद्धा दीप के चारों ओर अपनी मोहिनी के साथ नाच आरंभ करते ही मानो किसी जादुई स्पर्श से अपना वाल रूप खोकर युवा बन गए थे। उनके मनोलोक में आज दोनो का आनन्द तांडव अधिक कलापूर्ण और रागरंजित था।

तीसरे दिन मेघा भगत के यहां मोहिनीवाई और शेष महाराज के एक शिष्य के भक्ति संगीत होने की चमत्कारी प्रशंसाएं सुनकर जन समुदाय अपने लिए एक नया आकर्षण पाकर, अधिक संख्या में आया।

इस तरह आते-जाते लगभग छः दिन बीत गए। तुलसी के लिए मेघा भगत का स्थान दोहरा आकर्षण बन गया था। तुलसी को अब यह भी स्पष्ट हो गया था कि दोनों मे मोहिनी के प्रति ही उनका आकर्षण अधिक तीव्र है। यही नही, कही पर वह तीव्र से तीव्रतर भी हो उठता है। आज जब पहुचे तो भक्तवर ने उन्हे बडे प्रेम से देखा, लेकिन तुलसी की आखें उन्हे न देखकर कुछ और देखना चाहती थी। भक्तराज की प्रशंसक-मंडली में बहुत से लोग बैठे थे पर वह न थी जिसे देखने की लालसा उन्हे यहां ले आई थी। मेघा भगत मुग्धभाव से तुलसी को ही देख रहे थे। उनका इस प्रकार देखना तुलसी के मन में संकोच भर रहा था। उनका मन कचोट रहा था कि वह ऐसे सात्विक भक्त को धोखा दे रहे है। पहले जिस उत्सुकता को लेकर वे यहा पर मेघा भगत के दर्शनार्थ आए थे वह उत्सुकता अब उनके प्रति न होकर किसी और के प्रति थी। बीच-बीच मे चौककर चोरी से द्वार की ओर ताक लेते थे, मानो उन्होंने मोहिनी आवन की आवाज सुन ली हो।

मेघा पूछ रहे थे—"वाल्मीकीय रामायण पढी है तुलसी ?"

"हां महाराज, मेरा रसस्रोत उसी से फूटा है।"

"धन्य हो, मेरी दृष्टि मे रामायण से वढकर और कोई काव्य नही, महाकवि

इतने महान् थे कि अन्य कोई भी कवि मुझे उनके आगे ऊंचा-पूरा ही नही लगता।"

"आप ठीक कहते है महाराज।"

"मेरी इच्छा होती है कि वाल्मीकि जी की रामायण का पाठ हो। तुम पाठ करो, मैं सुन।"

"इसके लिए मुझे गुरू जी से आज्ञा लेनी होगी महाराज।"

"ओह, अभी कितने वर्ष और पढोगे ?"

"राम जाने महाराज, वैसे तो अव गुरू जी की पाठशाला मे पढाता हूं। वही मुझ अनाथ के पिता भी है।"

"आखिर कव तक तुम वही रहोगे ?"

तुलसी मुस्कराए, कहा—"जव तक राम रखेंगे।"

"तुम मेरे साथ रहो। हम दोनो भाई राम और भरत के समान रह लेंगे। क्या तुम विश्वास मानोगे तुलसी कि इतने ही दिनों के संग में तुम अव दिन-रात मेरे और मेरे राम के साथ ही रहने लगे हो। कल स्पने मे भी प्रभु ने मुझसे यही कहा कि मेघा, मेरी इस धरोहर को तुम वहुत सहेजकर रखना। क्या जाने तुम मे ऐसा क्या है जो मेरे राम तुम्हारे प्रति इतने रीझ गए हैं। देखो तो सही, तुम्हारी आखों मे कैसी अलौकिक मोहनी छिपी है"

मेघा भगत अपने वावले उत्साह मे तुलसी की वांहे अपने हाथो से थामकर उनकी आंखों में आखे डालकर देखने लगे। तुलसी संकोच से जड़ीभूत हो गए। सारी भक्त मंडली उधर ही देख रही थी।

और तुलसी की आखों मे सूरज चमक उठा। द्वार पर वह खडी थी जिसे देखने के लिए प्राण तडप रहे थे। ऐसा लगा कि मानो कमरे मे प्रकाश ही प्रकाश भर उठा हो। लगा कि वह मुक्त प्रकृति के वातावरण मे पहुच गए हैं जहा सैकडो फूल अपने रंग लुटाते हुए आनद के झोको से झूम रहे है। वेसुधी को मन की चतुराई ने झकझोर कर चेताया। 'सावधान, ध्यान कर कि तू किसके दरबार मे बैठा है।'

चोर चोरी से तो गया, पर हेराफेरी से भला क्योकर हटे। मोहिनी और उसकी माता ने मेघा भगत के चरणो मे झुककर प्रणाम किया। मा ने दासी को सकेत किया। सीक की बुनी हुई रगीन डोलची मे सुन्दर गूथी हुई फूल-माला के साथ रखे फल लेकर वह चट से सामने आ गई। मा ने उसके हाथों से डोलची ली और भक्तराज के चरणो मे उसे रखकर फिर सिर झुकाकर प्रणाम किया। वच्चे के समान भोले आनंद से वह माला अपने हाथ मे उठाकर मेघा भगत देखने लगे। मुग्ध स्वर मे वोले—"वाह कैसी सुन्दर है यह माला। तूने गूथी है वहन ?" उन्होने मोहिनी की ओर देखकर पूछा।

मोहिनी ने लजाकर अपनी आखे झुका ली। मा बोली—"कल आपके दरवार मे गाकर मानो इसके भाग्य की रेखाएं ही वदल गई महाराज। कल शाम ही जौनपुर के राजा साहव के यहा से साई मिली। आपके आसिरवाद से वडे राजदरवार का यह पहला बुलावा मिला है।"

मेघा भगत का ध्यान प्रौढा की बातो पर नही, माला की सुन्दरता पर था। फूलों मे राम ही राम झलक रहे थे। कुछ देर बाद अपने-आप ही कहने लगे—"बहन, तेरा यह श्रम और कला मुझसे अधिक तुलसी के लिए है। इसे पहना दू ?" स्वीकृति के लिए मेघा रुके नही, वह माला तुलसी के गले मे डाल दी। आनंद और संकोच से ऊभचूभ रामबोला की आखे एक बार झुकी फिर बरबस उठकर मोहिनी की आखो से जा अटकी। वह बडे चाव से इन्ही की ओर देख रही थी।

आज फिर गाना हुआ। मोहिनी ने गाया, तुलसी ने गाया और फिर मेघा भगत भी आनन्दमग्न होकर गाने लगे—

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णा तरगाकुला।
रागग्राहवती वितर्क विहगा धैर्य द्रुमध्वंसिनी ॥
मोहावर्त सुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुग चिन्तालसी।
तस्याः पारगता. विशुद्ध मनसा नन्दन्ति योगेश्वरा ॥

मेघा भगत के द्वारा गाया गया श्लोक तुलसी के अबीर-गुलाल-भरे वसंती मन पर पानी-सा पडा। रंग उजड़ गए, कीचड़ हो गई। मेघा भगत से दृष्टि मिलाने मे भय लगता था। मोहिनी के मुख कमल पर पुतलियों के भौरे जा चिपकने के लिए मचलते तो बहुत थे पर इस श्लोक ने सब कीचड़ कर दिया था। सिर झुकाए हुए युवा तुलसी अपने ही मे मन मारे बैठे अपने पश्चात्ताप और सत्याचरण के मतवाले मुर्गे लडवाते रहे। मन नीचे से ऊपर की ओर खौल रहा था, ज्यों चूल्हे की आग पर चढ़ा पतीली का पानी खौलता है।

मेघा भगत ने फिर क्रमश अपनी भाव वाचालता मे आना आरंभ कर दिया। अपनी कल्पना स्वयं अपने ही को सुनाने मे तन्मय होकर यो सीता के खो जाने के बाद श्रीराम के विरह-प्रसग को लेकर वे अपने जी का दुखड़ा बाघने लगे—"कुटिया सूनी है। राम का मन भी कुटी की तरह ही सूना हो गया है। भीतर-बाहर के यह सूनेपन एक जैसे ही भयावह हैं। कहा गई सीता महारानी ? क्या हो गया उनको ?"—राम के भय आसू और विरह की बेसुधी से भरे हुए प्रलापो का वर्णन मेघा भगत की वाणी मे चलने लगा। बीच-बीच मे प्रसंग से सम्बन्धित वाल्मीकि के श्लोक भी गाने लगते थे। विरहरूपी रामकीर्तन बढ रहा है। "श्रीराम ऐसा कर्मयोगी केवल आसू बहाता तो बैठ नही सकता। विरह भी उनके लिए शक्ति और कर्मदायक ही बनता है। वे सीता महारानी को खोज कर ही रहेगे। उनकी बुद्धि उन्हे यह निश्चय भी कराती है कि शूर्पणखा के अपमान और उसके पति की हत्या का बदला लेने के लिए ही किसी ने उनकी प्रिया को हर लिया है। विचारो की इन्ही उथल-पुथल मे उन्हे जटायुराज मिलते है जो सीता को हर ले जानेवाले रावण से लड़े थे।…"

आरंभ मे तुलसी अपने भीतर के दु.ख से सने हुए अनमने बैठे रहे, फिर क्रमशः मेघा भगत के शब्द चित्र उनके कानो मे गूजने लगे। कल्पना के पट पर मनोपीड़ा अपने चित्र आकने लगी। कभी मेघा भगत के शब्द के सहारे हूबहू

उन्ही के मन की तरह से छटपटाते हुए श्री राम झलकते और कभी जंगले के आरपार अपने और मोहिनी के बिम्ब। राम और तुलसी···मन ने पूछा,-'इनमे कौन रहे ?'

मन ने ही अपने कठिन मोह जाल को भेदकर सत्य को सकारा और फिर कुछ पल पश्चात्ताप मे गूगा हो गया। आखें बरसने लगी। मोहिनी की ओर दृष्टि गई।

यह टप-टप आसू टपकाता हुआ गोरा, सुन्दर, कुवारा चेहरा मोहिनी की आखों में अटक गया। जो क्षण मेघा भगत के लिए श्रीराम की विरह ज्वाला मे और रामबोला के अपने पहले-पहले विरह ज्वाल मे जलने का था, वही क्षण मोहिनी के मन मिलन का भी था। सयोग की विद्युत् त्रिकोण के तीनो कोनो से नाग-नागिनो की तरह अपनी जीभें लपलपा रही थी।

आयु मे मोहिनी तुलसी से लगभग दो-चार वर्ष बड़ी ही थी और मन से अभी तक कुवारी भी। उसका तन काशी के बूढ़े कोतवाल का जुठारा हुआ था। चिरअतृप्तिदायक बूढे हाकिम की गुलामी मे घुटी-घुटी दार्शनिकता और भक्ति-भावना में वह मेघा भगत का माहात्म्य सुनकर उनके दर्शन करने आती थी। सहज प्यास मे तुलसी जैसे सुन्दर जवान का रूप-कूप अचानक मिल गया। 'हाय, कितना प्यारा, कितना सुहाना चेहरा है। ये सपन-भरी बड़ी-बड़ी काली पुतलियों वाली आम की फाको जैसी आखें, ये लम्बी सुतवा नाक, ठोड़ी, रोएदार जवानी-भरा भोला-भोला सुहाना मुखड़ा, ये कसरती बदन ! हाय, जो कही इसे वह खाना नसीब हो जो हमारे बुढऊ सैंया को खाने और फेंकने के लिए रोज मिलता है तो चार ही दिन मे ये गवरू जवान हुस्न के मैदान मे रुस्तम की तरह जूझने लगे। हाय, गाता भी खूब है।'

मेघा भगत के वर्णन मे विरही राम और सेवक हनुमान की भेंट हो चुकी है। तुलसी के आसू सूख चुके है। झुका सिर उठकर मेघा भगत को एकटक निहारने लगा है। मेघा के चेहरे का आधार उनकी कल्पना को रामबिम्ब मे रहने के लिए आत्मबल देकर साधता है। इस समय जैसे मेघा भगत के मन मे, वैसे ही तुलसी के मन मे भी हनुमान हाथ जोड़े हुए वीरासन पर विराजमान हैं। उनके पास ही पीपल तले बने अनगढ पत्थरो और मिट्टी के चबूतरे पर शोक-चिन्ता मग्न श्री राम विराजमान हैं। बाई ओर चबूतरे से सटकर वीर लखनलाल क्रोध और चिन्ता से भरे हुए खड़े है। और मेघा भगत के हनुमान जी कह रहे है, तुलसी के हनुमान जी सुन रहे है—"नाथ, आपके चरणो की कृपा से एक रावण तो क्या मैं सौ रावणों से एक साथ जूझकर जगज्जननी को छुड़ा लाऊंगा।" आश्वासन पाकर मेघा के राम की आखें आनन्द से छलछला उठती है—"मेरी प्रिया अब मुझे अवश्य मिल जाएगी। हनुमान के लिए कुछ भी असभव नही है।"

तुलसी के मनोबिम्ब मे अपने लाडले वीर हनुमान के पीछे तुलसी भी हाथ जोड अर्जी लगाए बैठ गए है। वह कहना ही चाहते हैं कि हनुमान जी, मेरा भी विरह ताप हरो। पर सहसा हिचक जाते है। मनोबिम्ब मे तुलसी चोर-से

हनुमान के पीछे से गायब हो जाते है और उनके गायब होते ही सारा मनोबिम्ब अंधेरे मे डूब जाता है, मन सूना हो जाता है।

उधर मेघा की वाणी मे श्रीराम सहारा पाकर अपनी प्रिया के शोक-भरे चिन्तन मे डूब जाते है—"न जाने कैसे होगी, कहां होगी मेरी प्राणवल्लभा जानकी, जिसे मैंने अपनी पलकों की सेज पर सदा सुलाया, सहलाया, जिसकी एक दृष्टि मे ही मुझे अनन्त ब्रह्माण्डों का साम्राज्य प्राप्त हो जाता था, वह प्रिया की हंसती हुई आखे इस समय दु:खों का अपार सागर बनकर कहा लहरा रही होंगी? प्रिये, प्राणवल्लभे, मैं कैसे तुम्हारा दु:ख हरूं? कैसे तुम्हे झटपट अपने अंक मे भरकर तुम्हारा और अपना दुर्भाग्य मोचन करू? सिया सुकुमारी, तुम्हारे बिना यह राम जंगल के ठूठ की तरह जल रहा है। तुम कब वर्षामंगल मनाने आओगी?"

मोहिनी का मनभावना मुखड़ा फिर आंसू टपका रहा है। हाय, कितना भावुक है यह जवान! ऐसा सलोना मर्द रो रहा है, हाय,···जी चाहता है, यहा अकेलापन हो जाय और मै इसे लिपटाकर चूम लू।

मेघा भगत का राम-विरह वर्णन पूर्ण हो चुका था। आंखे बन्द किए आसू बहाते हुए वे होंठों ही होठो मे बुदबुदा रहे थे। उनका मुख अपार शोकमग्न होकर और भी अधिक तेजस्वी हो उठा था। सहसा तुलसी ने धरती पर साष्टांग लेटकर भगत जी को प्रणाम किया और उठकर चल पड़े।

मोहिनी की प्यासी आखे अपने पानी के पीछे-पीछे तड़पकर भागी। तुलसी दरवाजे तक पहुच गए थे। मोहिनी ने अपना सबसे तीव्र शक्तिशाली तीर चलाया। तड़पकर संत रैदास का भजन गाने लगी—अब कैसे छूटै राम, नाम रट लागी—नाम रट लागी।···

प्रभुजी तुम चदन हम पानी।
जाकी अँग अँग बास समानी॥
प्रभुजी तुम घन हम बनमोरा।
जैसे चितवत चन्द चकोरा॥
अब कैसे छूटै राम नाम रट-लागी।···

मोहिनी के स्वर ने तुलसी के पाव बाध दिए। वह वहीं के वहीं खड़े हो गए। गाते हुए मोहिनी के मुखड़े पर हंसी खिल उठी। सभा-चतुर आखें मेघा भगत के चेहरे से लेकर भीड मे जिस-तिस की आखो की ढइया छूती हुई अपने मनभावन की आखो से जा टकराती थी और उन टकराहटो से राम का तुलसी मोहिनी का तुलसी बना जा रहा था—'मोहिनी, तुम चदन हम पानी, जाकी अँग-अँग बास समानी।···छि:, कोई देख लेगा। क्या कहेगा? भागो।' और तुलसी तेजी से बाहर निकल गए।

गलियां पार करते जाते है। अपने घर भी पहुच जाते हैं। दोस्तो की जिस-तिस बातों का जवाब देने के लिए मजबूर होते है। नददास अपनी किसी दार्शनिक गुत्थी को लेकर आ गया, वह भी सुलझानी पड़ी। उसके जाने के बाद किताब

खोलकर पढ़ने का प्रयत्न किया, मगर सब कुछ करते-धरते हुए भी तुलसी के कानो मे अपने मन बसी मोहिनी की आवाज़ ही सुनाई पडती जा रही है—'अब कैसे छूटै राम, नाम रट लागी।' और यह नाम राम नही, मोहिनी है। 'मोहिनी ! मोहिनी !! मोहिनी !!! अब कैसे छूटै राम…'

शाम को गुरु-पत्नी ने कहा—"जान पडता है, यह भी एक दिन मेघा जैसा ही राम बावला हो जायगा।" रात मे अपनी कोठरी मे आने से पहले नित्य नियम के अनुसार मामा जी के लिए जब वह दूध का गिलास लेकर पहुचा तो वे बोले—"अबे, अभी से ज्यादा भगतबाजी के फेर मे न पड। मेघा के यहा जाना छोड़। सरयू मिश्र की लड़की पर तेरे लिए मैं आख गडाए बैठा हू बे। इकलौती लडकी है, देखने मे भी तेरे ही जैसी गोरी-चिकनी है। अबे बीस-पच्चीस हजार से कम की माया नही होगी सरयू की विधवा के पास। यहा से जाने पर सीधा अपने ही घर घरनी और हजारो की सपदा का मालिक बनकर बैठ जायगा। काशी के पडितो मे पुज जायगा। पहले दस-पाच चेले और दस-पाच बाल-बच्चे तो पैदा कर ले रे, फिर भगतबाजी करना।"

भाग के नशे मे तुलसी के प्रति अपनी चिन्तनाओ का प्रसार करते हुए मामा जी जरा गहरे रस के बहाव मे भी बह आए, कहने लगे—"अबे, जवानी मे मर्द को औरत की छाती मे ही शरण मिलती है। राम की शरण तो बुढापे मे ही खोजनी चाहिए। अभी तूने दुनिया देखी ही कहा है बेटा।"

तुलसी के लिए यह सारी बाते दोहरी मार थी। ऊपर अपनी कोठरी मे जब वह अकेले बैठे तो मुक्त निरालेपन मे अपनी ओर प्यार-भरी दृष्टि से ताकती हुई मोहिनी झलक-भर के लिए मासल होकर उनकी आखो के सामने उभर आई। मन की बाछे खिल गई—'मोहिनी, तुम चदन हम पानी…नही राम ! …नही ! यह धोखा है। मै जग को धोखा दे रहा हूं। लोग समझे है कि यह मेरा राम-विरह है। मुझे ऐसा ढोग भी नही करना चाहिए।'

परतु मन के भीतर वाला अतृप्त कामी तुलसी विद्रोह करता है। कहता है 'मोहिनी मुझे चाहती है। नगर की सर्वश्रेष्ठ गायिका, हाकिम के ऊपर भी राज करनेवाली सलोनी प्रियतमा मुझे चाहती है। तब मै क्यो न उसे चाहू ! प्रेम का प्रतिदान देना क्या पाप है ?'

विवेकी तुलसी समझाता है, 'वह कोतवाल की चहेती है। उससे आख लडाओगे तो कोड़े बरसेगे कोड़े। दुनिया तब तेरे मुह पर थूकेगी। तेरी यह सारी धोखा-धडी लोक-उजागर हो जायगी।' सुनकर विरही तुलसी का विद्रोह ठिठक गया। लोहे की मोटी साकल मे फसे हुए पैर वाला जगली गजराज बरगद के मोटे तने से बंधी अपनी जजीर को तोड़ने के लिए रात-भर मचलता रहा—'अब कल से वहा नही जाऊंगा। नही जाऊगा। नही जाऊगा।'

लेकिन दूसरा दिन आया, समय हुआ तो तुलसी के पैर अपने आप ही मेघा भगत के घर की ओर भागने लगे। जब सडक पार कर वे गली की ओर मुडने लगे तो रथ से उतरकर मोहिनी अपनी एक दासी के साथ गली की ओर बढ रही थी। मोहिनी ने तुलसी को देखा तो खिल उठी। आखो की पुतलियो से खुशी

के सुनहरे तारे चमक उठे। देखते ही सब कुछ भूलकर तुलसी भी मोहिनी-मग्न हो उठे। सामने मोहिनी थी। उसकी जादू-भरी हंसी थी, और मन मे अनमोल उपलब्धि का अपार आनंद था। मोहिनी आतुर डग भरकर पास आई। आखो मे आखे डालकर कहा—"आपका कण्ठ बडा ही सुरीला है। कानो मे अमरित घोल देते है।"

मोहिनी की बात ने तुलसी के कानो मे अमृत घोला और आखों ने उसकी आखो मे रस के सागर पर सागर उंडेल डाले। हर्षातिरेक मे तुलसी का रोया-रोया खड़ा हो गया। भाव रुद्ध हो गए। गद्गद वाणी मे कहा—"गाती तो आप है। मैं···मै·· मैं···"

कदम आगे बढाकर तुलसी को अपने साथ-साथ चलने के लिए उकसावा देती हुई मोहिनी बोली—"थोड़ा सगीत का अभ्यास कर ले तो तानसेन और बैंजू-बावरा की शोहरत आपके आगे फीकी पड जायगी। कसम भगवान की, मै तनिक भी झूठ नही कहती।"

अपनी प्रिया की बात सुनकर तुलसी का सारा अंतर जोश और आनद से ऐसा उमडा कि उनका वश चलता तो वही के वही सगीत के उस्ताद बनकर अपनी मनमोहिनी की तुष्टि के लिए तानसेन और बैजूबावरा को पछाड़ देते पर·· बेवसी मे झेंपकर वह बोले—"मुझ निर्धन को भला कौन सिखाएगा ?"

"मै! मेरे यहा आया करो।" शब्दो के न्यौते से अधिक उतावले आग्रह भरा निमत्रण मोहिनी की आकर्षक आखो मे था। देखकर तुलसी का मन रीझकर उमड़ा। चलते-चलते बेहोशी मे वह मोहिनी के इतने पास सरक आए कि बांह से बाह छू गई। संस्कारी ब्रह्मचारी का मन सिहर उठा, वे हट गए, विवश स्वर मे कहा—"कैसे आऊ? विद्यार्थी हूं।"

ब्रह्मचारी तुलसी के सकोच को देखकर मोहिनी इठलाकर चली। "अच्छा, मै उपाय करूंगी।" धीरे से कहा और कनखी का बाका तीर मारा कि उसी दिन तुलसी से मेघा भगत के यहां अधिक देर तक बैठा न गया। मेघा भगत का राम-प्रेम तुलसी के मन के नारी-प्रेम को कोड़े मारता हुआ-सा लगता था, और मोहिनी का गायन तथा उसकी प्यासी ललचाने वाली आखे तुलसी का पीछा नही छोडती थी। भरी भीड़ मे सबकी दृष्टियो को छलकर चतुर नगरवधू नौजवान तुलसी की आखो मे आखे डालकर ऐसा मादक सकेत करती थी कि तुलसी का मन उमड़-उमड़ पड़ता था। वह सारी दुनिया को यह घोषित करने के लिए उतावले हो उठते थे कि दुनियावालो सुन लो, मैं मोहिनी का दास हू। मोहिनी मेरी है, मेरी है, मेरी है।

उस दिन नगर मे कुछ मुगल सिपाहियो ने दर्शनार्थ जाती हुई कुछ स्त्रियो को देखकर छेडछाड़-भरे गन्दे शब्द कहे थे। एक अहिर युवक सिपाहियो की इस अभद्रता को सहन न कर सका। उसने अपनी लाठी तानकर उन्हे चुनौती दी। गली मे आते-जाते कुछ भद्र पुरुष आगे बढकर समझावन-बुझावन करने लगे। उन्होने मुगलो से क्षमा मागी और अहिर युवक को डाट-डपटकर भगा दिया। एक व्यक्ति ने मेघा भगत के सामने इस प्रसग की चर्चा की। इस पर कई लोग कलिकाल का

रोना रोने लगे। मेघा भगत ने इसी प्रसंग को लेकर राम के शौर्य को बखानना आरभ कर दिया। राम अनाचार को कदापि सहन नही कर सकते। उन्होने ऋक्ष, वानर जैसी अर्ध-सभ्य जातियो का सहयोग लेकर प्रबल प्रतापी अनाचारी रावण को दण्ड दिया था। मेघा भगत के प्रवचन मे आज करुणा नही वरन् ओज बरसा। उन्होने राम-रावण के युद्ध का ऐसा चामत्कारिक वर्णन किया कि कमरे मे बैठे हुए हर व्यक्ति को उनके शब्दो की सम्मोहिनी शक्ति ने बाध दिया। हर दृष्टि मेघा भगत के मुख पर मानो टग गई थी। केवल तुलसी की टकटकी मोहिनी के मोहक मुखड़े से ही बंधी रही। नवयुवक तुलसी के लिए संसार मे मानो मोहिनी को छोड़कर और कुछ भी देखने योग्य न था।

मोहिनी चतुर खिलाडिन थी, किन्तु आज वह भी कही पर अपने-आप से खेलने गई थी। बीच-बीच मे उसकी दृष्टि घूमकर तुलसी को देखने लगती। दृष्टि मिलते ही तुलसी के चेहरे पर मुस्कुराहट खिल उठती थी। मोहिनी कभी मुस्कराती और कभी उसकी आखे तुलसी को मुस्करा के बरजने लगती थी। उसके नयन सकेतो से सावधान होकर तुलसी भी मेघा की ओर देखने लगते, किंतु कुछ ही क्षणो मे फिर वह मोहिनी के मोहजाल मे फस जाते थे। अब तक जीवन मे चोरी शब्द का अर्थ न जाननेवाला नवयुवक आज मन से चोर हो गया, ढीठ चोर। उपस्थित मडली मे कुछ नजरे इधर से उधर डोलने की आदी भी थी। उन्हे आचार्यपाद शेष सनातन जी के एक ब्रह्मचारी की यह ताक-झाक मेघा भगत के ओजस्वी प्रवचन से अधिक लुभा रही थी। ऐसे लोगो मे एक तरुण कवि भी था। वह भी नित्य के आनेवालो मे था। नाम था कैलासनाथ। वह अपने पास बैठे एक अन्य युवक को कोचकर तुलसी-मोहिनी का नयन-समर दिखलाने लगा। उन दोनो के चेहरो पर रसीली मुस्काने और आखो मे जासूसों जैसी सतर्कता बार-बार उभर आती थी। मोहिनी की मा भी अपनी बेटी के इस खेल से अनभिज्ञ न रह सकी। उसने अपनी बेटी के घुटने को दबाकर उसे बरज दिया और मोहमुग्ध तुलसी की दृष्टि को अपनी आखो की कठोर मुद्रा से डाटा।

मन के रगीन आकाश मे स्वच्छन्द उड़ानें भरते हुए नवयुवक की आखों के आगे सहसा अंधेरा छा गया। ऐसा लगा मानो सतखंडी हवेली की छत पर खड़े होकर पतग उड़ानेवाला बच्चा अचानक ही नीचे गली मे आ गिरा हो। तुलसी आत्मग्लानि से भर उठे, उनका सिर फिर ऐसा झुका कि मानो उनके गले मे किसीने भारी बोझ लटका दिया हो। 'मेरा पाप पकड़ा गया। अब वह अवश्य ही गुरू जी के पास जाकर मेरा अपराध बखानेगी। कैसा गहरा धक्का लगेगा गुरूजी को! विद्यार्थी समुदाय मेरी खिल्ली-उड़ाएगा। मैंने यह क्या किया राम! मुझसे ऐसा अपराध क्यो हुआ? पर-नारी को क्यों ताका? पर मोहिनी पराई कहा, वह तो मेरी है। छि', अपने को छलते हो, रामबोला? उसका स्वामी कोतवाल है। देख पाए तो तेरी बोटी-बोटी कटवाकर कुत्तो के आगे फेक दे। तेरे कारण मोहिनी की भी यही दुर्दशा होगी।' इस विचार मात्र से तुलसी का मन थरथरा उठा, 'नही, यह प्राणप्यारा रूपकमल कभी न मुरझाए। ऐसा कभी न हो राम!' आंखें मोहिनी के मुखडे को देखने के लिए मचलने लगी, पर कैसें देखे? अपनी

बेबसी मे तुलसी के अरमान घुटने लगे ! सास लेना पहाड ढकेलने के बराबर हो गया।

मेघा भगत बोलते-बोलते सहसा मौन हो गए थे। मोहिनी ने,दबी कनखी से तुलसी को देखा, पीड़ा के समुद्र मे तल पर बैठा हुआ मोती-सा वह प्रिय भला मोहिनी से क्योंकर देखा जा सकता था। न किसीने कहा, न सुना, पर मोहिनी अपनी तड़प मे आप ही आप गाने के लिए मचल उठी—

हरि तुम हरो जन की पीर।
द्रोपदी की लाज राखी, तुम बढ़ाए चीर॥

मोहिनी के स्वर मे ऐसी टीस थी कि किसीका भी मन उससे अछूता न बच सका। तुलसी शब्दों से अधिक स्वर से बधे थे। उन्हे लग रहा था कि जो पीड़ा वह भोग रहे है वही पीडा उनकी प्राणप्रिया को भी सता रही है। 'हे राम अपनी चाहत मे बाधकर मैंने यह क्या अन्याय किया ? जिसे सुखी देखने के लिए मै अपने प्राण तक निछावर कर सकता हूं उसे ही इतना दु.ख पहुचाया। मै सचमुच बड़ा अभागा हूं। मेरे छू-भर लेने से सोना मिट्टी बन जाता है।' तुलसी की आखें भर आईं। मन ऐसा उमड़ा कि फूट-फूटकर रोने को जी चाहा। तुलसी से फिर वहां बैठा न जा सका। गायन समाप्त भी नही हुआ था कि सारे शिष्टाचार भुलाकर वह सहसा उठकर बाहर चले आए। उन्हे ऐसा लगा कि उनके बाहर आने से गाने वाली का स्वर लड़खड़ा गया है। उन्हे लगा कि वह स्वर उन्हे पुकार-पुकारकर कह रहा है, 'मत जाओ।' लेकिन पश्चात्ताप का आवेश इतना प्रबल था कि तुलसी के पैर तेजी से आगे बढते ही रहे। वह घर, वह गली, दो-तीन और गलियां भी पार हो गई परन्तु तुलसी के कानो को मोहिनी का स्वर वैसे ही सुनाई पड़ता चला जा रहा था। जितनी ही तेजी से जाते उतनी ही तेजी से वह स्वर उनका पीछा करता चला जा रहा था।

घर आया। मामा जी ड्योढी की भीतर वाली अपनी कोठरी मे चौकी पर बैठे हुए किसी दासी पर गरमा रहे थे। आगन के चारो ओर बने दालानों मे विद्यार्थीगण पाठमग्न थे। तुलसी इस समय न किसीको देखना चाहते है और न किसीसे बोलना ही चाहते है। सबकी नजरे कतरा कर वह सीधे तिमजिले की सीढियो पर चढ़ गए। अपनी कोठरी मे पहुचकर उन्होने भीतर से किवाड बंद कर लिए और धम्म से अपनी बिछावन पर बैठ गए। मोहिनी का स्वर उनका पीछा नही छोड रहा था। 'हरि तुम हरौ जन की पीर।'

भोजन का समय हुआ पर तुलसी भोजनशाला मे न पहुचे। मामा जी ने दासी की लड़की बेला को उन्हे बुलाने के लिए भेजा। कोठरी के बाहर एक महीन-मीठी आवाज सुनाई दी—"भैया, मामा बुलाय रहे है।"

तुलसी के कानो मे शब्द तो पहुचे ही नही और स्वर भी दासी-पुत्री का होकर न पहुंच सका। उन्हे लगा कि द्वारे खड़ी हुई मोहिनी पुकार रही है।··· नही·· नही, यह छलावा है। उठ, देख कौन आया है। तुलसी बड़ी कठिनाई से उठे। इस समय उनके मन पर एक सुन्दर कोमल फूल का इतना भारी बोझ लदा

था कि तन उठ ही न पाता था। बाहर से बेला की आवाज पर आवाज चली आ रही थी, "भैया ! भैया ! भैया !"

तुलसी उठे, द्वारे का बेडना हटाया और एक कपाट खोलकर बेला से कहा— "कह दे बेला कि आज हम भोजन नही करेंगे।"

"काहे भैया ?"

"हमारा सिर पिरा रहा है बेला। इत्ती बेरिया न खाऊंगा तो तबियत ठीक हो जाएगी। जा कह दे।"

तीसरे पहर गुरू जी ने एक विद्यार्थी को भेजकर तुलसी के हालचाल पुछवाए। अपने होश मे पहली बार तुलसी ने झूठ बोला। उन्होने असह्य शिरो-पीड़ा का नाटक साधा। गुरू जी से झूठ बोलने की ग्लानि मन पर अवश्य चढी किंतु इस समय तुलसी अपने गुरू जी का सामना नही कर सकते थे। पाप और पुण्य की ऐसी गहरी खीच-तान उनके मन मे चल रही थी कि वह उस समय आचार्य जी से दृष्टि मिलाने का साहस कर ही नही सकते। दूसरे, मोहिनी के ध्यान से अलग होकर किसी और बात मे मन रमाना उन्हे तनिक भी नही सुहाता था। यह निरालापन और उसमे मोहिनी का ध्यान अपने-आप मे रमाये रखने का हठ कर रहा था।

१३

दूसरे दिन तुलसी अपने मन की छटपटाहट को हठपूर्वक बरज कर मेघा भगत के यहा न गए। उन्होने सारे दिन अपने-आपको अध्ययन मे व्यस्त रखने का भरसक प्रयत्न किया पर अनमने ही बने रहे। पोथियो के पृष्ठो पर उन्हे अक्षर नही, मोहिनी दिखलाई पड़ती थी। कही झप् से आंखो मे आखे डालकर मुस्कराती हुई वह अपना रुख पलट देती थी, कही तिरछी कनखियो की मिठास छितराकर उनके सारे तन-मन को अनुराग-रंजित कर देती थी, कही आखो ही आखो मे अपनी ओर न देखने के लिए बरज कर वह तुलसी का मन मोह लेती थी। प्रबल आकर्षण मे प्रिया के अनेक रूप आखो के सामने आ-आकर तुलसी को अपने जादू से बाध जाते। पोथियो पर लिखे शब्द अपना धर्म त्यागकर रस-धर्मी हो जाते थे। 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' तुलसी के लिए 'अथातो मोहिनी जिज्ञासा' बन जाता था। प्यार की दुनिया मे व्यवहार की दुनिया अपना रूप और ध्वनि बदलकर कुछ और ही हो जाती। कभी आह, कभी मुस्कान और कभी मिलने की चाह से तुलसी तडप-तडप उठते थे।

नन्ददास, गंगाराम आदि निकटतम मित्रो ने दो-एक बार पूछा भी परन्तु उन्होने कोई उत्तर न दिया। उनके उतरे हुए चेहरे को देखकर मामा जी बोले —"जान पडता है, मेघा के छुतहे रोग ने हमारे रामबोला को भी ग्रस लिया है। अबे, फिर कहता हू, इस भगतबाजी की चकल्लस मे मत पड़ ! यो कहने-

सुनने की बात और है पर व्यवहार की दृष्टि से देखा जाय तो भगवान की भक्ति और परनारीप्रेम में पड़कर मनुष्य की एक ही-सी दशा होती है, वह निकम्मा हो जाता है ।"

नंददास सुनकर हंस पडा, बोला—"धृष्टता क्षमा करे मामा, जान पडता है आपने कभी-न कभी परनारी से अवश्य ही प्रेम किया होगा, अन्यथा ऐसे गहरे भेद की बात भला आप क्योकर बतला सकते थे ।"

मामा हंसने लगे, कहा—"अवे गाव नही गया पर कोस तो गिने है । बताए देता हू बेटो, यदि दुनिया मे सफल होकर रहना चाहते हो तो इन दो बातो पर कभी गंभीरतापूर्वक अमल न करना ।"

तीसरे दिन तुलसी ने अपने मन को बहुत-बहुत बरजा किन्तु उनके पैर अपने आप ही मेघा भगत के निवास की ओर बढ गए । उस दिन आंखे बार-बार द्वार की ओर दौडती रही पर मोहिनी न आई । लोगो के आग्रह से उन्होने मीरा और कबीर के भजन भी गाए पर आज उन्हे गायन में सुख न मिला । तुलसी के कंठ मे विरह-पीडा व्याल-सी लिपटी थी । भक्त मंडली सुनकर आत्मविभोर हो गई परन्तु मेघा भगत ने स्वगत भाव से केवल इतना ही कहा—"हे राम, नारी के विरह मे जैसी टीस कामी के कलेजे मे उठती है वैसी ही मेरे कलेजे मे भी अपने लिए भर दो ।"

तुलसी को लगा कि भगत जी ने उसके मन का पाप पहचान लिया है । इससे मन मे अपार लज्जा और असह्य ग्लानि का बोध हुआ—'कहां जा रहा है रे रामबोला, हीरा छोडकर काच की चमक ने लुभाया है ?' सोचकर आखें भर आई । कल्पना मे विराजी सीताराम की छवि ऐसे हिल रही थी जैसे पानी मे परछाई, और उस परछाई के तल में एक और स्पष्ट प्रतिबिम्ब था जो तुलसी की भावना के अनुसार भय से कांप रहा था । कानो मे एक वाक्य भी सुनाई पड़ा, 'मैं तुम्हारे राम को तुमसे नही छीनूगी । तुम अपने को मुझसे छीनो ।'

"छल है । छल है । चेत रे मन, चल । इस नगरी मे तुझे वह वस्तु नही मिलेगी जिसे तू चाहता है ।" प्रेम किए जा रे दीवाने । यह मत सोच कि जिसे तू चाहता है वह भी तुझे चाहता है या नही । प्रेम तो अपने-आप में ही एक अनुभव है रे । वह देना जानता है और लेने की कल्पना तक नही करता । प्रेम ऐसी मूसलाधार बरसात है जिसमे बरसात का पानी दिखलाई तक नही पडता पर धरती तर हो जाती है, सूर्य का ताप अग्नि की लपटों-सा लगता अवश्य है पर वह जलन शीतल है, उर्वरा है । चल रे मेघ, कही और बरस । इस नगरी में सबके मन पत्थर हैं । वह भले ही मणि-माणिक से चमकते हो पर पत्थरो पर तेरे बरसने से क्या भला कुछ उपज सकेगा ? नही-नही, राम, अब लोकेषणा मे नही फंसूगा । यह नारी के रूप के समान भले ही कितनी लुभावनी क्यो न हो, पर विष है विष ।" मेघा भगत अपने-आप से बतियाते हुए आखे मूदे बैठे थे । उनके भक्तो के लिए उनकी यह बाते एक ऐसा ही रहस्य मात्र थी जिसे भेदकर मर्म पहचानने की विशेष लालसा किसी भी लोकव्योहारी पुरुष मे नही होती । थोड़ी ही देर मे भक्त मंडली अपनी बातो मे रम गई—"आज कुत-

वाल साहब की लड़ैतिन नहीं आई ?"

"कोतवाल साहब ने मना कर दिया होगा।"

"काशी मे इसके टक्कर की दूसरी गानेवाली नही है।"

"क्या कहे, ये मोहिनियां अब तक हमारी हो चुकी होती। मैंने दस हजार सोने की अशर्फियो पर इसका सौदा कर लिया था। पर तव तक कोतवाल निगोड़ा, बूढा बैल, इसपर जान देने लगा। मैं हाथ मलकर रह गया। बस तभी से तो मेरे मन में वैराग उपजा। सब माया-मोह छोड़ दिया। बाकी मोहिनी मन से अब भी नही उतरती।"

"यह विद्यारथी भी बडा रामभगत है। एक दिन मेघा जी के समान ही नाम करेगा, देख लेना।"

"ये रामभगत नही मोहिनीभगत है। बूढे की रखैल इसकी चढती जवानी को दाना चुगा रही है।"

"सच ?"

"हमने अपनी आखों मे देखा है। मोहिनी इस लड़के को देख-देखकर आंखें मारती है, मुस्कुराती है।"

तुलसी अपने पीछे बैठे हुए दो मनुष्यो की यह दबे-दबे स्वरों वाली बातें सुन रहे थे। मेघा की बातो से इन बातो तक ग्लानि का अथाह सागर फैला हुआ था। मन कहने लगा, 'तुलसी, तेरी बदनामी फैल चुकी है। दुनिया कहने लगी कि तू रामभगत नही है।' 'छि:-छि., क्या मोहिनी सचमुच मुझे जान-बूझ कर अपने आकर्षण-पाश मे फसाना चाहती है ?' 'वह चाहे या न चाहे, तू तो फंस ही गया।' 'नही, मै नही फंसा। मेरा मन अब भी राम-चरण-लीन है। मैं यह कभी नही सह पाऊगा कि लोग-बाग मुझ पर अंगुली उठाकर कहे कि यह किसी अन्य का दास है। यह ग्लानि, यह पश्चात्ताप मै कदापि नही सह पाऊंगा। हे राम, मुझे इस पाप पंक मे पड़ने से बचाओ। राम, मै तुम्हारा हू और किसी का नही।'

पर इन पश्चात्ताप भरे शब्दो की तह मे भी मोहिनी का आकर्षण अंगद के पाव की तरह जमा हुआ था। तुलसी को स्वयं ही लगता था कि उनके ग्लानि और पछतावे के भाव मोहिनी के ध्यान के सामने यदि झूठे नही तो फीके अवश्य ही है। ऊहापोह मे फंसते-फंसते मन यहां तक पहुच गया कि राम का ध्यान करें तो छवि मोहिनी की दिखलाई पडे—'छिटक, छिटक, कहा जा रहा है रे मन ? भाग, भाग।' तुलसी सचमुच भाग खड़े हुए। वह वातावरण उन्हें काट रहा था।

गली के मोहाने पर एक युवक ने बडे आदर से उन्हे प्रणाम किया किन्तु तुलसी ने ध्यान न दिया। युवक ने उनके कधे को छूकर उनका ध्यान आकर्षित किया और कहा—"आज आप बडी जल्दी चल दिए।"

इस युवक को तुलसी ने मेघा भगत के यहा देखा कई बार है किन्तु परिचय नही था। एक अपरिचित-परिचित के टोकने से तुलसी ने सहसा कड़े संयम से मन की लगाम साधी, यथाशक्ति प्रसन्न मुख बनाकर कहा—"मुझे एक काम है।"

"आपने जब से बटेश्वर के भूतों को मिथ्या सिद्ध कर दिया तभी से मैं आपसे मिलना चाहता था। भगत जी के यहां अब आपकी उच्चकोटि की भावुकता से

भी प्रभावित हुआ हूं। कई दिनों से सोच रहा था कि आपसे बातें करूं। पर वहां तो रस ऐसा गाढा बरसता है कि मन मे उठनेवाली और बहुत-सी बाते बिसर-बिसर जाती है।"

ध्यान साधते-साधते भी उड-उड़ जाता था; कुछ सुना, कुछ न सुना। चेहरे पर रूखी यांत्रिक मुस्कान आई, हाथ जोड़े, कहा—"अच्छा तो चलू।"

उडी-उड़ी आखे, खोया-खोया चेहरा देखकर युवक ने अचानक मुस्कुराकर कहा—"जान पडता है, आज आपकी जोडीदार नही आई। इसीसे आपका मन ठिकाने नही है।"

तुलसी ने चौककर युवक को देखा। वह हंसकर बोला—"हमारी आयु मे ऐसे खेल पाप नही है। वह भी आप पर जान देती है। मैंने देखा है। ह-ह, आपकी तरह मै भी अभी हाल ही मे पापड बेल चुका हूं न, सो सब समझता हूं। वैसे भी कवि हू। मेरा नाम कैलासनाथ है।"

चोर के आगे चोरी बखानकर कवि जी और भी घुटन दे गए। यह सारी दुनिया तुलसी को एक पिंजरे जैसी घुटन-भरी लग रही थी। उन्हे ऐसा लगता जैसे गलियो मे आता-जाता हुआ हर व्यक्ति पिंजरे में बन्द तुलसी रूपी केहरी को निन्दा-भरी, नोकीले भालो-सी दृष्टि से देख रहा हो। गलियों मे व्यापा जगत कलरव अपने मन के भीतर उन्हे पश्चात्ताप और निन्दा-भरे शोर-सा लग रहा था, 'यह देखो, श्री राम के चरण-कमल छोड़कर वेश्या के तलवे चाटनेवाला यह तुलसी चला जा रहा है। यह तुलसी जूठी पत्तल चाटनेवाला कुत्ता है। यह अपने पूज्यपाद गुरुओ को कलकित करनेवाला अधम कीड़ा है। इसे जीवित नही रहना चाहिए। इसे मर जाना चाहिए। डूब मर रामबोला, डूब मर!' मन अपनी ही प्रताडना से बिलख पडा।

गलियो मे लोग देख रहे थे कि एक सुन्दर युवक अपने-आप मे रोता-बडबडाता चला जा रहा है। वह अपने आपे मे नही है। राह चलते मनुष्यों से टकरा जाता है। कोई झिडकता है, कोई समझाकर कहता है कि देखके चलो, बचकर चलो।

"अरे, तुलसी, इधर कहा जा रहे हो?"

गंगाराम का स्वर मानो तुलसी तक पहुच न सका। जो गली गुरू जी के घर जाती थी उसे छोड़कर वह सामने गंगा जी की ओर जानेवाली गली की दिशा मे बढ रहे थे। जब गंगाराम ने अपनी बात तुलसी के कानों में पडती न देखी तो उनका ध्यान भंग करने के लिए तेजी से आगे बढकर उनका रास्ता रोक लिया। गति मे बाधा पड़ने से तुलसी की बहकी आखे सधकर ऊपर उठी। गंगाराम का चेहरा उनकी चौक मे समाया?

"यह कैसी धज बना रखी है तुमने? इधर कहा जा रहे थे?"

"कही नही। मुझे जाने दो।"

"पागल तो नही हो गए हो तुलसी? रो क्यो रहे हो? कोई देखेगा तो क्या समझेगा? क्या हुआ?"

तुलसी तब तक बहुत कुछ सावधान हो चले थे। प्रिय मित्र को देखकर उन्हे

एक सहारा मिला था फिर भी मन का ग्लानि-प्रवाह अभी पूरी तरह से थम नही पाया था। कहने लगे—"मुझे जाने दो, गगा।"

"अरे, पर कहा जाओगे ? अच्छा चलो, कही एकान्त मे चलें। यहा कोई देख लेगा तो क्या कहेगा ? सभी तो पहचानते है !" गंगाराम ने उनका हाथ झिझोडकर कहा—"आसू पोछो और सावधान होकर हमारे साथ चलो। आज तुम्हे हो क्या गया है ?"

मित्र के आग्रह से बंधे हुए तुलसी ऐसे चल पडे जैसे किसी का नटखट पालतू बछड़ा रस्सी मे बंधा हुआ उसके साथ खिचा चला जा रहा हो। गंगा-तट पर पहुंचकर दोनो मित्र नाव पर सवार हुए और उस पार पहुच गए। निर्जन एकान्त मे तुलसी ने मित्र के आगे अपना मन पूरी तरह से खोलकर रख दिया। बडी देर तक तुलसी अपना मन सुना-सुना कर हल्का करते रहे और गंगाराम गंभीर भाव से सुनते रहे। फिर अकस्मात् उगली से बालू पर कुछ अक लिखे, हिसाब फैलाया और कहा—"विषय चिंतनीय नही है मित्र। अपने उस दिन के शुभ शकुनो को ध्यान करो जिस दिन तुम इस मिथ्या मोहपाश से नियति के द्वारा जकड़े गए थे। तुम्हारा भविष्य बहुत उज्ज्वल है।"

गंगाराम के मिथ्या मोह कहते ही तुलसी के मन को धक्का लगा। जिस पाप-पंक को वह अभी स्वयं ही अपने मुख से नकार रहे थे उसे ही उनका अहंकार जोर-जोर से सकारने लगा—'मिथ्या नही ! मोहिनी सत्य है। मैं मोहिनी को ही चाहता हूं। उसके बिना यह जीवन नि सार है।' हृदय की धड़कन मे ध्वनि गूजी—'राम-राम-राम।' तुलसी एक क्षण के लिए निस्तब्ध हुए, हतप्रभ हुए, फिर आंखें भर आई। पूरी तडप के साथ अपनी धडकनो की गूज पर अपनी दीवानी अहंता को आरोपित करते हुए उनका मन मोहिनी-मोहिनी कहकर विलाप करने लगा। उन्हे लगा कि बिब-दृष्टि मे एक ओर राम-जानकी-लक्ष्मण और हनुमान खडे हैं और दूसरी ओर मोहिनी बडी ही आकर्षक मुद्रा मे खडी है। उन्होने देखा कि श्रीराम के सकेत पर हनुमान जी उनकी हृदयहारिणी को निर्मम भाव से झोंटे पकडकर बाहर निकाल रहे हैं और विवश-विरही तुलसी प्रभु के आगे कुछ कहने का साहस न करके चुपचाप खडे चौधार आसू बहा रहे हैं। प्राण गूजते है, 'क्या चाहते हो ? मोहिनी या राम ? मोहिनी या राम ?' तुलसी विकल होते है, 'राम को कदापि नही छोडूगा पर मोहिनी को भी कैसे छोड दू ?' अपने प्रबलतम मनोद्वद्व को खोई हुई दृष्टि से निहारता हुआ रामबोला काठ के पुतले-सा बैठ रहा।

कुछ दिनो तक तुलसी के मन, कर्म और वचन त्रिशंकु की तरह आठो याम अधर ही मे लटके रहे। तन सूखकर काटा होने लगा। आखे ऐसे डोला करती जैसे उन्हे किसी खोई हुई वस्तु की तलाश हो। गुरु-पत्नी पूछती—"तुझे क्या हो गया है रे रामबोला ? दिनोंदिन सूखता चला जा रहा है।" उत्तर मे 'कुछ नही, आई' कहकर वह आसुओ को अपनी आखो मे आने से रोकने का प्रयत्न करने लगते। कुछ सहपाठी उनके मुख पर और पीठ पीछे भी प्रमाण सहित यह कहते नही थकते थे कि बटेश्वर मिश्र ने तुलसी पर उच्चाटन मत्र का प्रयोग किया

है। कुछ ही दिनों में यह बावले होकर गली-गली डोलेंगे। मामाजी का यह विचार और भी दृढ़ हो गया था कि इसे मेघा भगत का छुतहा रोग लग गया है। उन्होने अपनी बहन से कई बार कहा कि इसका विवाह हो जाना चाहिए। मैंने लड़की ठीक कर ली है। इसे घर भी मिलेगा और धन-सम्पत्ति से भी हैसियत बढ़ेगी। जीजी, तुम जीजा जी से कहो कि इसे विवाह करने की आज्ञा दें। शेष गुरू जी की पत्नी ने अपने पति से इस संबंध में चर्चा भी चलाई। वे बोले—"खिलती कली को तोडकर हार मे गूथना बुद्धिमत्ता नही होती। अभी इसका अंत. सौदर्य विकसित होने दो।"

तुलसी के अनन्य साथी गंगाराम ने ज्योतिष से विचार करके एक दिन तुलसी से कहा—"मित्र, तुम्हारे जीवन मे एक विराट परिवर्तन आनेवाला है। तुम निश्चय ही अपनी इष्ट वस्तु को पाओगे।"

'इष्ट वस्तु! क्या सचमुच ही मुझे मोहिनी मिल जाएगी?—अरे पगले, झूठा मोह क्यो करता है? वह हाकिम की प्राणवल्लभा, सुख से सोने की सेज पर सोती है। हीरे-जवाहरातों से मढी है। वह तेरे जैसे दीन-हीन भिक्षुक के पास भला क्यो आने लगी?···नहीं-नही, वह मेरी प्राणवल्लभा है। असुर कोतवाल अनाचार करके उसे अपने बंधन में बाधे हुए है। वह मुझे मिलेगी। जिसका जिस पर सत्य स्नेह होता है वह उसे अवश्य मिलता है, इसमे तनिक भी सदेह नही।' तुलसी दिन-रात ऐसी बातें सोचा करते। कभी अंतश्चेतना भडकती और प्रश्न करती, 'क्या यही है तेरी इष्ट वस्तु? छि., तू रहा भिखारी का भिखारी ही। जनम-भर जूठन खाता रहा और अब जबकि सोने के थाल मे छप्पन भोग तेरे सामने आए है तब भी तू अभागा जूठी पत्तल की ओर ही ताक रहा है। धिक् तेरा जीवन! धिक् तेरे संस्कार! तू डूबकर मर क्यों नही जाता रामबोला?'

आत्महत्या का विचार उनके मन में रह-रहकर बादलों का घटाटोप बनकर छाने लगा। मोहिनी को देखे दस दिन बीत चुके थे। वह मेधा भगत के यहा जानबूझ कर नही गए थे। उन्हें पूरा विश्वास था कि भगत जी उनके मन की बात जान गए है। यही नही, भगत जी के यहां आने-जाने वाले लोगो मे से भी कुछ व्यक्ति उनका मोहिनी-प्रेम पहचान गए है।

दो-तीन दिनों के बाद मामा जी के आदेशानुसार इच्छा न होते हुए भी तुलसी को एक निमंत्रण मे जाना पड़ा। मार्ग में कैलास से भेंट हो गई। उनसे पता चला कि मेघा भगत इस नगर को छोड़कर अचानक अयोध्या चले गए है। तुलसी को इस सूचना से अपार शाति मिली, यद्यपि इस शांति की तह दर तह मे मोहिनी की याद का भूत अब तक लिपटा हुआ था।

एक महीने से ऊपर दिन बीत गए। तुलसी के मन की हलचल अब प्राय. थम चुकी थी; दिल का दर्द अब विवशता मे कुछ-कुछ दूर का दर्द लगने लगा था। मन अभी बहला नही था पर चुप अवश्य हो गया था।

गुरू जी के घर के पास ही रहनेवाले सोमेश्वर उपाध्याय नामक एक धनाढ्य और प्रतिष्ठित ब्राह्मण के घर पर पौत्र-जन्म की खुशी मे एक प्रीतिभोज और गायन का प्रबंध हुआ। पीपलवाली गली मे मंडप सजाया गया। तोशक-तकिये

लगे, चहचहाते पंछियो के पिंजरे टागे गए, वडी सजावट हुई। शाम से ही सुनने मे आ रहा था कि कोतवाल साहब स्वयं पधारेंगे और उनकी रखैल मोहिनी-वाई का गाना होगा। खवर सुनकर तुलसी धक् से रह गए। महीने-भर के सारे व्रत-नियम वालू की दीवार-से ढह गए। मेघा भगत उन्हे धिक्कारेगे। गुरु जी महाराज सुनेगे तो उन्हे कितना कष्ट होगा! आई को कितना कष्ट होगा! वजरगवली धिक्कारेंगे, राम जी सदा के लिए विमुख हो जाएगे— आदि बातों से चेताकर साधा गया मन इस सूचना से क्षण-मात्र मे फुर्र हो गया। परतु अतश्चेतना शिकारी कुत्ते की तरह अहम् का पीछा कर रही थी। 'मैं क्या करूं राम, कैसे छुटकारा पाऊ? हे वजरगवली, हे सकटमोचन, दलदल मे फसे हुए इस जीव को उवारो। को नहि जानत है जग मे प्रभु संकटमोचन नाम तिहारो।'

रात को महफिल हुई पर कोतवाल और—'और' नही आई। कहा तो मोहिनी के आने की सूचना से वह धडक रहा था और कहा अव उसके न आने से छटपटा उठा। किसी करवट चैन नही।

एक पखवारे का समय तुलसी के लिए अनेक लवे-लंवे युगो का योग वनकर वीता। फिर एक दिन मेघा भगत के दरवार मे मिलनेवाले एक नवयुवक कवि कैलासनाथ दोपहर के समय उनके पास आए। उनकी गगाराम से भेट हुई। गंगा ने कहा—"वह आजकल एकात सेवन कर रहा है, हम लोगो से भी प्राय. नही मिलता, आप उससे क्या चाहते है?"

"तुलसी जी से कहिएगा कि भगत जी अयोध्या से लौट आए है और उन्हे देखने के लिए तडप रहे हैं।"

गगाराम कवि कैलास को लेकर तुलसी की कोठरी मे गए, किंतु कोठरी सूनी थी।

उस समय तुलसी अपनी प्रिया मोहिनी के प्रति कल रात रचे गए, दो दोहे एक पर्ची पर लिखकर उन्हे स्वयं अपने हाथो चुपचाप अर्पित करने की तीव्र कामना लिए उसकी कोठी के द्वारे पर चक्कर काट रहे थे। वूढे कोतवाल उसमान खा ने मोहिनी के लिए वस्ती से कुछ हटकर गंगा-तट पर एक वगीचीदार हवेली वनवा दी थी। वह ऊची सगीन चैहारदीवारी से घिरी थी। द्वार पर यमदूत से पहरेदार डटे हुए थे। तुलसी मन ही मन मे छटपटा रहे थे—'मैं क्या करु, कैसे करूं कि मुझे इसके भीतर प्रवेश मिल जाय? मोहिनी देखेगी तो कितनी प्रसन्न होगी! फिर दोनो वैठकर गान गायेंगे, हसेगे, वोले-वतियाएगे। अरे, फिर तो धरती पर स्वर्ग ही उतर आयगा। जाऊं, पहरेदार से कहू कि भीतर की ड्योढी मे सदेशा भिजवा दे कि तुलसी आया है।'—पर हिम्मत नही पडी। उनकी दीन-हीन दशा देखकर पहरेदार ने यदि उन्हे झिडक दिया तो? 'अरे नही रे, इतना कायर न वन। जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ। तू चलकर सदेशा तो भिजवा। मोहिनी मिलेगी।' अपने-आप को वार-वार हौसला दिलाकर तुलसी फाटक पर पहुचे, पहरेदार से कहा— "मोहिनीवाई से कह दो कि शेष महाराज की पाठशाला से तुलसी आया है।"

"क्या काम है?"

"मिलना है।"

"कुछ दान-दच्छना लेने आए हो ?"

तुलसी के अहंकार को इससे ठेस लगी। वह औरों की तरह साधारण भिक्षुक न थे वरन् कोतवाल उसमान खा की तरह ही मोहिनी के प्रेम-भिखारी थे। मोहिनीबाई ने अपनी चाहत-भरी दृष्टि से देखकर उन्हे ससार का सर्वश्रेष्ठ धनी बना दिया था। यह मूर्ख पहरेदार उन्हे समझता क्या है ? किंतु मन के इस तेहे को दबाकर तुलसी ने बात बनाने के लिए झूठ का सहारा लिया, कहा—"वह मुझे मेघा भगत के यहां मिली थी। उन्होने मुझे मिलने के लिए यहा बुलाया था।"

"वह घर पर किसीसे मिलती नही है। दान-दच्छना लेनी हो तो कल सवेरे आकर दीवान जी से मिल लेना।"

"मुझे दान-दक्षिणा नही चाहिए, मोहिनीबाई से मिलना है।"

"अरे तो मिलके क्या करोगे भाई ? आखे लडाओगे ?"

दरबान ने ऐसी भद्दी हंसी हंसकर यह प्रश्न किया कि तुलसी को ताव आ गया। बोले—"मैं ब्रह्मचारी हूं। मोहिनीबाई ने मुझे संगीतशास्त्र की चर्चा के लिए यहा बुलाया था। तुम जाकर उन्हे खबर तो दे दो।" पहरेदार ने एक बार बडी तीखी दृष्टि से तुलसी को देखा और फिर बगीचे मे काम करते हुए माली को गुहारकर बोला—"बाई जी को खबर कराय देव कि मेघा भगत के हिया से कोई आया है।"

तुलसी के मन मे पहले तो ठंडक पडी कि मिलन-क्षण बस आने ही वाला है, फिर ऊहापोह मचने लगा, 'बुलाएगी या नही ? जिसके इतने नौकर-चाकर है, इतनी बड़ी जायदाद है, वह क्या मुझे इतने दिनो तक याद रख सकी होगी। वह नही बुलाएगी तब तो इन पहरेदारो के आगे तेरी बडी किरकिरी हो जायगी तुलसी…। नही-नही, बुलाएगी। अवश्य बुलाएगी। कितनी प्यारी दृष्टि से उसने मुझे देखा था।' बड़ी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद भीतर से खबर आई कि भेज दो। तुलसी का मन यह सुनकर धड-धड़ करने लगा।

फुलवारी पार करके कोठी मे प्रवेश किया। कोठी के नीचे का खंड सूना था। बाई ओर के दालान मे बडे-बड़े झाड़-फानूसो पर लाल कपडे के गिलाफ चढे हुए थे। दीवारो पर बडे-बडे आईने लगे हुए थे। रगीन बेल-बूटों की चित्रकारी हो रही थी। फर्श पर कोई बिछात न थी। संगमरमर और संगमूसा के चौके अपने सूनेपन मे भी चमक रहे थे। आगन के दाहिनी ओर वाला दालान भी ऐसी ही सजावट का था और सूना था। आगन मे शतरंज की बिसात-से जडे काले-सफेद पत्थर तुलसी को मानो चुनौती दे रहे थे कि आओ, हम पर शतरंज खेलो। इस वैभव से गुजर कर ऊपर चढते हुए तुलसी की अन्तश्चेतना गूजी—'देखा ! भला बौना कभी चन्द्रमा को छू सकता है ?'

चेतना की ललकार ने तुलसी की आखो को झील बना दिया। तभी ऊपर से मोहिनी की आवाज सुनाई दी—'अम्मा, आज हम भगत जी के दर्शन करने जरूर जाएंगे, हमे कोई रोक नहीं सकेगा।" प्रिया के स्वर ने तुलसी के

रोम को उन्मत्त वना दिया। मन बोला—'तेरे ही लिए जा रही थी वहां। वह भी तुझे चाहती है। बस, अभी भेंट होने वाली है, तुझे अपना मन चाहा वैभव बस अब मिलने ही वाला है।'

ऊपर एक बडे कमरे में तुलसी को बैठा दिया गया। कमरा खूब सजा हुआ था। दीवालों पर सुनहले-रुपहले रंगों से पच्चीकारी हो रही थी। फर्श पर वेदाग चांदनी विछी हुई थी, उसपर ईरानी कालीन तथा तोशक-तकिये लगे हुए थे। झाड-फानूसों और बडे-बडे दर्पणों की सजावट हो रही थी। कमरे के बाहर दालान मे चहचहाते पक्षियो के पिंजडे लटक रहे थे। नौकरानी तुलसी को कमरे का द्वार दिखाकर भीतर यह कहती हुई चली गई कि यहा बैठिए, बाई जी अभी आती हैं।

तुलसी को अपने धूल-भरे गंदे पैरों का ध्यान हो आया। यहा पैर धोने के लिए पानी तो मिलने से रहा। वह भीतर कैसे जाएं ? क्या करें ? कंधे पर रखे अंगौछे पर उनका ध्यान गया। वह उससे अपने पैरों की धूल झाडने लगे। उन्होंने अपने तलवो को खूब रगड-रगडकर पोछा। इतने मे मोहिनीबाई की मां आ गई। उन्होने हाथ जोडकर कहा—"पालगन महाराज, कहो कैसे पधारे ?"

तुलसी सकपका गए। घवराहट मे हकलाते हुए कहा—"अ···उ-उ-उ उन्होंने गाना सिखाने के लिए कहा था।"

वडी बाई जी हंसी, बोली—"अरे वो तो अभी आप ही बच्ची है, गाना सीख रही है। तुम ऐसा करो महाराज कि मदनपुर चले जाओ। वहा पर एक उस्ताद जी रहते है, मीर जशन नाम है। वह तुम्हे सिखायेंगे। अभी जाओ तो हम अपना आदमी तुम्हारे साथ कर दें।"

तुलसी का मन मुरझा गया, बुझे हुए स्वर मे कहा—"कल जाऊंगा। आज वहा आने-जाने मे देर हो जायगी।"

पैनी दृष्टि से वडी बाई जी तुलसी को ऐसी उपेक्षित मुद्रा मे ताक रही थी जैसे समुद्र किसी ऐसे तुच्छ नाले को देख रहा हो, जो बरसाती पानी की बाढ मे फैलकर उससे मिलने के लिए आया हो। वह बोली—"अच्छा कल ही सही। मैं आज उन्हे कहला दूगी। तुम्हे कुछ देना-लेना नही पड़ेगा। गंडा बंधवा लेना और बाकी सब मैं देख लूगी। तुम्हे और जो कुछ चाहिए सो हमे बता देना, भला।" कहकर वडी बाई जी ने फिर हाथ जोड़े और चलने के लिए उद्यत होते हुए कहा—"अच्छा, तो मैं चलू महाराज, मुझे काम है, पालागन।"

वेचारे तुलसी की आशा पर तुपारपात हो गया। वड़े ही मरे हुए स्वर मे कहा—"अच्छा।" वड़ी बाई जी वे जाने के लिए पीठ मोड़ी ही थी कि तुलसी ने फिर कहा—"ए-ए-ए-एक बार मोहिनीबाई जी से मिल लेता···" तुलसी के स्वर मे दीनता-भरी गिड़गिडाहट आ गई थी।

बाई जी के होठो पर एक कुटिल मुस्कान खेल गई। वड़े हीरेवाली अपनी नाक की लौंग को वडी अदा से घुमाते हुए प्रौढा ने कहा—"ब्रह्मचारी को नारी से दूर रहना चाहिए महाराज। पालागन।" बाई जी ने फिर पीठ मोड ली और दालान की ओर चली गई।

तुलसी की आखो मे क्रोध और क्षोभ झलक उठा। मन बदला लेने के लिए

बावला हो गया। इस दुष्टा को दण्ड देना चाहिए। 'तुलसी, ऊंचे स्वर मे गाना आरंभ कर! वह अभी दौडी हुई चली आएगी।' और दीवाने आवेश मे तुलसी गाने भी लगे—"सुनी री मैंने हरि आवन की···"

बडी बाई जी त्योरिया चढ़ाकर झपटती हुई आई। उनकी दृष्टि ने मानो तुलसी का गला घोट दिया। वह भय की टकटकी बंधी आंखो से बड़ी बाई जी को वैसे ही देखने लगे, जैसे खूंख्वार शेर के सामने उसका शिकार भयस्तब्ध होकर टकटकी बांध लेता है। तभी कुछ दूर से आवाज आई—"कौन आया है, अम्मां?"

"कोई नही! तू अपना काम कर।" फिर तुलसी की ओर बढ़ते हुए बाई जी ने धीमे किंतु कठोर स्वर में कहा—"खबरदार, जो फिर कभी इस घर में आए। कोतवाल साहब को खबर लग जायगी तो तुम्हारी इस सुन्दर काया से तुम्हारा सिर कटकर पल-भर मे ही अलग जा पड़ेगा। विधर्मियो को ब्रह्महत्या का दोष भी नही लगता। जाओ, भागो। पालागन। जोगी-ब्रह्मचारियो की सिद्धी मे देवता विघ्न भी डालते है। विश्वामित्र मुनि को जैसे मेनका से फंसाकर कुत्ता बनाया था वैसे ही राड मेरी लड़की तुम्हारे पीछे पड़ गई है। जाओ, जाओ। भागो, भागो।" कहकर चली गई।

तुलसी के स्वाभिमान को वर्षों से ऐसा करारा आघात नही लगा था। बचपन मे जब मारपीट कर, मड़ैया उजाड़कर, वह गांव से निकाले गए थे, तब उनका मन जैसे लड़खड़ाया और छटपटाया था, ठीक वैसा ही अनुभव इस नये परिवेश मे इस क्षण हुआ। उनकी सपूर्ण चेतना एकदम से जड़ हो गई थी। वह काठ के पुतला बने खड़े के खड़े रह गए। मुट्ठी मे अनमोल रतन की तरह बड़े प्यार से संभाली हुई छोटी-सी कागज की पर्ची कंकड़ की तरह बेमोल होकर फर्श पर गिर गई। एक बार सिर मे तेज चक्कर आया, दूर पर मा-बेटी की तीखी बातो के कुछ स्वर सुनाई दिए। आस्था की डिगी हुई नीव को मानो हल्का-सा सधाव मिला। उनकी आंखो में आसू आ गए। यह आंसू मानो उनकी जड़ काया के लिए नये प्राण थे। तुलसी अपने यथार्थ-बोध मे आ गए और तेजी से सीढ़िया उतरकर ड्योढ़ी-फाटक पार कर बाहर निकल आए।

१४

मोहिनीबाई के घर से निकलते समय तुलसी का बावला मन कह रहा था—'अब यह जीवन नि.सार है। यह अपमान असह्य है, अब नही जीऊंगा—कदापि नही जीऊंगा।' आखे पोछते, किन्तु वे फिर भर उठती थी—'डूब मर रामबोला, डूब मर! तू सचमुच अभागा है। डूब मर! तुझे गंगा ही शरण देगी और कोई नही।'

तुलसी दशाश्वमेध घाट के पास पहुच गए। वहा एक गली से बाहर निक-

लते हुए उनके पुराने सहपाठी महाराष्ट्रीय मित्र घोडू फाटक ने उन्हे देखकर आवाज लगाई—"अहो, तुलसी भैया ! तुलसी भैया !"

स्वर ने कानो को झटका दिया। उन्होने चाहा कि वह फाटक के स्वर का अनुसुना करके आगे बढ जाएं पर घोडू फाटक भला मानने वाला था। उसने फिर हाक लगाई—"अरे सुनो तो, सुनो तो। मैं आ रहा हू।" फाटक लपककर पास आ गया। तुलसी की दशा देखकर पूछा—"क्या बात है मित्र, चेहरा क्यो तमतमाया हुआ है ? तुम्हारी आखे भी भरी हुई हैं। क्या किसी से लड़ाई हो गई है ?"

"कुछ नही, कुछ नही।" फिर आखे पोछते हुए एकाएक नाटकीय ढंग से हसकर बोले—"पीछेवाली गली मे इतना धुआ था, इतना धुआ था कि आखें भर आईं। तुम कहा से आ रहे हो ?"

घोडू फाटक मुस्कराया, बोला—"अपनी धोबिन के यहा से। उस दिन गंगाराम ने बडी सच्ची बात कही थी मित्र। प्रेमिका सचमुच धोबिन ही होती है। वह कामी पुरुष के मन को एसे पछाड-पछाड़कर धोती है कि बस पूछो मत। तुम कभी इसके फेर मे न पडना तुलसी भैया। श्रीमद्‌शकराचार्य भगवान सत्य ही कह गए है कि—द्वार किमेकन्नरकस्य…"

"नारी की व्यर्थ ही निन्दा क्यो करते हो फाटक ?"

"काए कू ? म्हणजे—कोई धोबिन-वोबिन हो गई है काय ?" कहकर घोडू फाटक हो-हो करके हंस पड़ा। वह हसी तुलसी के कलेजे पर हाथी के पाव-सी धमाधम पडी। धोडू का वाक्य मानो सदेह होकर उन्हे वड़ी सतर्कता के साथ घूर रहा था। तुलसी दोनो ही प्रकार के मानसिक खिचावो से अत्यधिक पीड़ित हुए। बात का उत्तर दिए विना फिर आत्महत्या की धुन मे फाटक से पीछा छुडाकर तुलसी ने गगा जी की ओर कदम बढ़ाया ही था कि पास की एक दूसरी गली से उनके नव परिचित कैलासनाथ आते हुए दिखलाई दिए। दोनो की दृष्टि एक-दूसरे पर प्राय साथ ही साथ पड़ी। तुलसी की आखो मे कतरा जाने का पैतरा चमका और कैलास की आंखो मे मिलने की ललक उदय हुई। दूर ही से वे उत्साहित स्वर मे बोले—"नमस्कार ! वाह, इस समय आपसे खूब भेंट हो गई। मैं आपको ढूढ भी रहा था। इधर कहा जा रहे है ?"

झूठ बोलने के पहले तुलसी का मन तेजी से ऊंचा-नीचा हुआ, पर झूठ का सहारा लिए विना उन्हे गति न मिल सकी, कुछ हकलाकर कहा—"ऐसे ही, बस खाली मन की बहक मे इधर आ निकला।"

"खाली है तो हमारे साथ चलिए। भगत जी के यहां जा रहा हू। आज तो मैं आपके यहा गया भी था, आप मिले नही। भगत जी अयोध्या से लौट आए है, आपको बुलाया है, आइए।"

कही भी, विशेष रूप से मेघा भगत के यहा जाने के लिए तुलसी का मन इस समय राजी न था, बस, मरने के लिए धुन समाई थी। पर कैलास ने उनके मुख से कोई बात निकलने से पहले ही उछाह भरे स्वर मे कहा—"भगत जी ने आपके सबंध मे कल एक बड़ी ही विचित्र बात कही।"

तुलसी का मन धडका कि कही उन्होने उसके मन का चोर न उद्घाटित कर दिया हो। तभी कैलास ने गदगद स्वर मे कहा—"वे बोले कि पहली बार देखने पर मुझे लगा कि मानो परशुराम के सामने राम आ गए है।"

घोडू फाटक सुनकर जोर से हंस पड़ा, कहा—"लो, तुलसी भइया, तुम तो रामचन्द्र के अवतार हो गए। जाओ-जाओ, भगतबाजी करो। आज वहां भोजन-दक्षिणा का डौल तो है नही, अन्यथा मैं भी तुम्हारे साथ चलता।"

कैलास की आखों से यह भाव स्पष्ट था कि उसे घोडू फाटक की हसी अच्छी नही लगी। उसने बड़ी आत्मीयता से तुलसी का हाथ पकड़ते हुए कहा—"आइए, आइए।"

कैलास के द्वारा हाथ पकड़कर खीचे जाने पर तुलसी ऐसे बढ़े जैसे बलि का बकरा कसाई के द्वारा खींचे जाने पर अड-अड कर बढता है। उनका मन इस समय केवल मृत्युमोहिनी की भावना से अभिभूत है। वह राम से कतराना चाहता है। किसी प्रकार का अपराध करने के बाद घर से भागा हुआ दगई बच्चा जैसे लौटकर घर जाने मे हिचकता है, वैसे ही तुलसी भी हिचक रहे थे। रास्ते-भर कैलास उनसे मेधाभगत की चर्चा ही करता रहा। बातो के प्रसग मे उसने कहा—"नदिया के चैतन्य महाप्रभु के कृष्ण प्रेम की चर्चा बहुत सुनी थी, परन्तु भगत जी का राम-प्रेम तो प्रत्यक्ष देख रहा हू। इस कलिकाल मे ऐसा भगवत-प्रेम मुझे तो कही देखने को नही मिला। क्या आपने कोई ऐसा दूसरा व्यक्ति देखा है ?"

तुलसी की अहता को चुभन हुई। 'मेरा राम-प्रेम क्या किसीसे कम है ?' फिर आत्म-ग्लानि उपजी—'अब कहा रहा वह अनन्य भाव! मोहिनी मेरे राम-प्रेम का हिस्सा बटा ले गई। मेघा भगत खरा सोना है जबकि मुझमे तांबा मिल चुका है।···राम के आगे मोहिनी ? परब्रह्म मर्यादा पुरुषोत्तम के आगे वेश्या ? छि:-छि:। तुलसी, गंगा-स्नान करने के बाद कीच-कूडा भरे नाले मे डुबकी लगाने की ललक रखते हो ? किन्तु मोहिनी···हाय मोहिनी। नही, नही। राम-राम-राम-राम···मोह···रा···मोह···राम।' ऊहापोह चलता रहा, कदम आगे बढते रहे।

जिस समय तुलसी और कैलास भगत जी के यहा पहुचे उस समय संयोग से सेठ जैराम को छोडकर वहां और कोई न था। भगत जी तकिये के सहारे अध-लेटे आखे मीचे धीमे स्वर मे संस्कृत का कोई श्लोक गुनगुना रहे थे। जैराम सेठ चुपचाप बैठे सूनी दृष्टि से छत की ओर ताक रहे थे। कैलास को देखकर जैराम बोले—"आओ-आओ, कविराज···"

मेघा भगत ने आखे खोलकर आगन्तुको को देखा। तुलसी कैलास की पीठ की आड़ मे अपना चेहरा भरसक छिपाने का प्रयत्न करते हुए कमरे में आगे बढ रहे थे। मेघा भगत उन्हे देखकर आह्लादित हो गए। झटपट बैठते हुए कहा—"अरे-अरे, मेरे स्वरूप, तू कहा भटक गया था ?"

तुलसी को बडी लज्जा लग रही थी। भगत जी की बात सुनकर उन्हे लगा कि वे अपनी किसी अलौकिक सिद्धि के द्वारा उसके मन का सारा हाल जानते

हैं। इससे उनका लज्जाबोध और अधिक गहरा हो गया। कैलासनाथ तेजी से डग बढ़ाकर भगत जी के पास तक पहुंच चुका था इसलिए उसकी पीठ की आड़ लेकर अपना मुंह छिपाना अब संभव न था। आत्मग्लानि से पीड़ित तुलसी लज्जावश आखें झुकाए हुए भगत जी की ओर बढ़े। कैलास उनके पैर छूकर पीछे हट चुका था। तुलसी ने आगे बढकर उनके पैरो मे अपना सिर झुका दिया। मेघा भगत ने झटपट अपने दोनो हाथो से उनके दोनो कंधे छूकर गद्-गद स्वर में कहा—"बस रे बस भाई, तू मेरे पैर छूयेगा तो मैं भी तेरे पैर छूने लगूगा। प्रेम मे कोई छोटा-बड़ा नही होता।...

दोऊ परैं पैया, दोऊ लेत हैं बलैयां।
उन्हे भूलि गई गइया, इन्हे गागरी उठाइबो॥"

तुलसी तब तक भगत जी के चरणो मे अपना मुंह छिपा चुके थे। तुलसी को पैर छूने से रोकने के लिए कंधो पर रखी हथेलियां फिसलकर उनकी पीठ पर आ चुकी थी। अपनी बात पूरी करने पर उनकी पीठ थपथपाकर भगत जी बोले—"अरे बस करो, उठो मेरे रामरूप, अपना मुखड़ा तो दिखाओ। तुझे तो मैं बहुत याद कर रहा था भइया। मैं कहूं कि जल तो मछली से खेल रहा है फिर मेघ बरसे कैसे? देख, अरे मेरी आंखो में आखे डालकर देख, तेरी सिद्धि का प्रसाद मुझे भी तो मिले भाई।"

भगत जी के आग्रह पर तुलसी अपनी आंखे उठाने का जितना प्रयत्न करते है उतनी ही वह और भी झुकी-झुकी पड़ती है। भगत जी के अत्याग्रहवश उनकी आखें मिली तो अवश्य, पर इस तरह, जैसे तुरंत पकड़ा गया पक्षी बहेलिये को देखता है। भगत जी मुस्कराए, कहने लगे—"अरे चार ही दिनों में तेरी आंखों की मोहिनी बदल गई है रे? इनमें तो एक पूरा ब्रह्माण्ड चमकने लगा है!"

मन की भयजनित शका तुरंत आंखों मे चमकी, क्या यह इनका व्यंग्य है? विवशता मे आंखे भर आई, कहा—"मैं बड़ा अपराधी हूं, महाराज।"

भगत जी हसे, कहा—"अरे मेरे भोले भइया, तू पानी के बहाव को न देखकर उसके ऊपर तैरने वाले मैल को क्यो देख रहा है? बहाव देख, बहाव। यह मैल तो लहरो के थपेड़ो से आप ही आप बह जायगा।" यह कहकर भगत जी जैराम सेठ की ओर देखते हुए बोले—"सेठ, मेघा रहे न रहे पर तुम अवश्य देखोगे कि संसार मेघा को भूल जायगा और तुलसी को याद करेगा। भक्ति तो कोई मेरे इस छोटे भाई से सीखे। यह पृथ्वीवासियों के हेतु स्वर्ग से आया हुआ राम का प्रसाद है।"

तुलसी अब रोने लगे थे। सिसककर बोले—"अब नही महाराज। आपकी बातो से मैं अत्यधिक दण्डित अनुभव करता हूं। मैं बहुत ही अधिक पीड़ित हूं।" कहकर उनकी आखें सोतो-सी फूट पड़ी।

"यह लो, तुम तो रोने लगे। फिर मेरी आंखें भी बरस पड़ेगी, भइया। ये आंसू बड़े छुतहे होते हैं। आंसू पोछ, पोछ! मैं रात-भर रोया हूं रे, मेरी थकी आंखों को तनिक विश्राम करने दो।"

तुलसी ने अपनी आखे पोंछ लीं। कैलास बोला—"महाराज, अभी थोड़ी

देर पहले इनके एक मित्र ने नारी को, कदाचित् अपनी प्रेमिका को, धोबिन कहकर उसे गहरा अर्थ दे दिया था।"

मेघा भगत हसे, कहा—"वाह, यह कवियो जैसी बात है। ठीक कहा, माया सचमुच धोबिन ही है। वह जीव मे लिपटे अज्ञान रूपी मैल को धोकर उसका निर्मल रूप निखार देती है।"

कुछ देर रुक मेघा भगत फिर कहने लगे—"मैं अभी अयोध्या गया था। वहां पर, जहां पावन जन्मभूमि का मन्दिर तोड़कर बाबर बादशाह ने एक पावन मस्जिद बनवाई है, उसी के पास एक टीले पर एक नवयुवा रामदीवाना मिला। अरे, बड़ा ही सुन्दर और सौम्य मुख वाला था, रामबोला। फीकी काया मे से ऐसा दिव्य तेज मैंने पहले कभी नही देखा था। और उसकी आखे क्या थी मानो चुम्बक थी। उनसे दृष्टि मिल जाय; फिर तो नजर छुड़ाए नही छुटती थी। आयु मे वह मुझसे लगभग ५-६ वर्ष छोटा था। बस यह समझ लो कि तुम्हारी ही आयु का था। तुम्हे देखकर मुझे बरबस उसकी याद हो आती है। वह सूर्योदय से सूर्यास्त तक पेड़ की आड़ मे बैठा हुआ मस्जिद की ओर टकटकी बाध कर देखा करता था। कभी हंसता, कभी रोता, और कभी योगी-सा समाधिस्थ हो जाया करता था। तो, मेरी उससे भेंट हुई, फिर आकर्षण हो गया। मैं रोज सूर्यास्त के बाद उसके पास जाने लगा। एक दिन मैंने उससे पूछा कि तुमने कौन-सा योग-साधन कर ऐसा उत्कट राम-प्रेम सिद्ध किया ? कहने लगा 'किसी वस्तु पर रीझ जाओ और फिर रीझते ही चले जाओ, तुम्हे तुम्हारा अभीष्ट मिल जायगा।' इसके बाद प्रसंग बढने पर उसने मुझे अपनी कथा सुनाई। कहने लगा कि 'एक राजरमणी मुझपर रीझ गई थी। मैं भी उसके रूप सौन्दर्य, हाव-भाव, उसकी प्रेमल दृष्टि और दासियों द्वारा भेजे गये गुप्त संदेशो को पाकर ऐसा मस्त हुआ कि राम-रहीम सब भूल गया। उसने मुझसे कहलाया कि तुम अपना धर्म परिवर्तित कर लो और मेरे चाकर बनकर दिल्ली चलो। मैं बिलकुल तैयार हो गया था। वह रीझकर मुझे देखती, मैं उसे देखता। वह हंस पड़ी, मै भी उसका प्रतिबिम्ब बनकर हंस पड़ता। दूर से देख-देखकर मिलन-आकाक्षा मे वह आहे भरती, मेरी भी सासे भर उठती थी। उसकी आखो मे आंसू देखकर मेरी आखो की भी वही दशा हो जाती थी। अपनी तन्मयता मे वह कभी भय से चौक उठती थी कि किसी ने देख न लिया हो, मैं भी वैसे ही चौक उठता था। उसके विरह मे आठो याम बावला बना रहता था। एक दिन वह तो चली गई और मैंने विरह ज्वाला में जलते-जलते यह देखा कि मैं अपने राम के सकेतो को बूझने लगा हूं। कभी-कभी बातो के अर्थ और यथार्थ मे अद्भुत अन्तर होता है।"

आभ्यंतर चौकन्नी एकाग्रता के साथ तुलसी ने यह कथा सुनी। मन बोला, 'यह तो तत्काल गढ़े हुए रूपक-सा लगता है। भगत जी कदाचित् मेरे ऊपर बीती हुई को लेकर ही यह रूपक सुना गए। मोहिनी का प्रेम क्या मुझे भी राम-भक्ति का मर्म समझा देगा ? मोहिनी सुन्दर है। गुणवती है। वेश्या होते हुए भी शीलवती है। वह बहुत मोहक है।'...अंतश्चेतना गूजी, 'श्री राम तेरी मोहिनी से भी कई गुना अधिक सुन्दर और मोहक है। काया का सौंदर्य मोहक

होता अवश्य है परन्तु वह सुन्दरता मन ही की होती है जो काया की सुन्दरता पर अपने-आप को मढकर उसे असंख्य गुना अधिक सुन्दर बना देती है।'... 'क्या किसी स्त्री से प्रेम किए बिना राम को पाया जा सकता है ?' यह बात मन मे उठते ही चेतना ने सहज प्रश्न किया 'क्या स्त्री ही राम तक पहुचने का साधन है ?' चचल मन पर्त दर पर्त मे प्रश्नो से जूझने लगा।

भगत जी ठठाकर हस पडे, कहा—"नही, नही। मुझे तो श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के शक्ति, शील और सौन्दर्यमय काव्य पर रीझकर राम की ड्योढी तक पहुचने की राह मिली। तब से अब तक वही पर बैठा अपना सिर धुन रहा हू कि राम जी द्वार खोलो, दर्शन दो। पर कुसुम से कोमल मेरे राम प्रभु वज्र से अधिक कठोर भी है। शासको मे भी वे मर्यादा पुरुषोत्तम है। देखो, कब मेरी गोहार उनके दरबार तक पहुचती है। कब मुझे वह शक्ति और सौदर्य पुज देखने को मिलता है जिसके आगे उत्तम से उत्तम कविता भी लजा जाती है। कब वह दिन लाओगे राम ? अब तो ले आओ रे, मेरे राम ! तुम्हारे बिना मैं बडा दु खी हू। बडा ही दुःखी हूं।" मेघा भगत आसू बहाने लगे।

कुछ देर बाद कैलास ने तुलसी के हाथ पर हाथ रखकर धीरे से झिझोडा। तुलसी भगत जी की विरह वेदना मे तन्मय हो गए थे। विरह समान था पर विरह के आलम्बनो मे अन्तर था। भगत जी के और स्वयं अपने भी राम के आगे उन्हे अपनी मोहिनी की कल्पना तक इस समय अच्छी नही लग रही थी। मक्खी और क्षेमकरी पक्षी की उडान मे अपार अन्तर का बोध उन्हे अब हो रहा था। अपनी मोहिनी की यह क्षुद्रता एक ओर जहा तुलसी की अहम्भाव-रहित चेतना को अपार आनन्द दे रही थी, वही उनकी अहता की तह दर तह मे नन्ही फास की तरह तीखी चुभन भी दे रही थी। उनका अति मोह कही पर अपनी प्रबुद्ध चेतना से कुठित था। कैलासनाथ के द्वारा अपने हाथ का झिझोडा जाना पहली बार तो उन्हे व्याप ही न सका, फिर जब दुबारा उनका हाथ दबाया गया तो वह चौककर कैलास की ओर देखने लगे। कैलास ने उनके कान मे कहा, "ऐसा भजन सुनाओ जिससे इनका रस अश्रु-भवर से निकल कर आगे बहे।"

तुलसी सोचने लगे, फिर आख मूदकर मीरा का एक भजन गाना आरम्भ किया—"हेरी मैं तो प्रेम दीवानी मेरो दरद न जानै कोय।"

उस दिन तुलसी को ऐसा लगा कि जैसे उनके मन का मैल कट गया है। मन की सारी थकन मिट गई है। ऐसा लगता है कि जैसे एक रम्य किन्तु कठिन यात्रा के बाद वे नहा-धोकर चंगे हो गए हो। मोहिनी मन मे टीस की तरह सतत् विराजमान थी किन्तु राम की याद वे सप्रयत्न बढा रहे थे।

मेघा भगत के यहा उनका नित्यप्रति जाना फिर से आरम्भ हो गया। गुरु जी के नये विद्यार्थियो को पढाने मे उनका मन अब पहले से अधिक सावधान हो गया था। इसी बीच मे मामा ने दोबारा और गुरु-पत्नी 'आई' ने भी एक बार तुलसी के आगे विवाह का पुराना प्रस्ताव दोहराया। तुलसी के मन मे बसी एक नारी-छवि अभी इतनी धुधली नही हुई थी कि उसके ऊपर किसी अन्य जीवन-संगिनी की कल्पना को आरोपित कर पाते। यह बात उनके मिजाज मे तुनुक भर देती

थी। उन्होंने आई से कहा—"मेरी जन्मकुण्डली में साधु होने का योग लिखा है, आई। विवाह करूंगा तो भी मुझे सुख नही मिलेगा।"

बात आई-गई हो गई। तुलसी दृढतापूर्वक अपने-आपको साधकर राम के प्रति अपनी अनुरक्ति वढाने की साधना मे लगे। उन्होने इस बीच में अध्यात्म रामायण पढना आरम्भ कर दिया। इन पाच-छ. दिनो में वह पहले से अधिक गम्भीर हो गए थे।

१५

साधक तुलसीदास एक दिन बड़े भोरहरे जब गंगास्नान के लिए नन्ददास के साथ घाट पर पहुंचे तो एक अनजानी स्त्री ने उनके पास से गुजरते हुए अचानक धीरे से कहा—"एक बात सुन लीजिए।" कहकर वह घाट पर बनी बुर्जी की आड़ मे चली गई।

तुलसी क्षण-भर के लिए ठगे से खड़े रह गए। 'जाऊं या न जाऊं' का प्रश्न उठा। फिर उनके पैर आप ही आप उधर बढ गए। मोहिनीबाई की दासी ने कहा—"बाई जी आपसे मिलने के लिए तड़प रही है। आज दिया-बत्ती जले दुर्गाकुण्ड पर पहुंच जाइएगा। उत्तर के कोने मे भेंट होगी।" सुनकर तुलसी के मन मे एक बार फिर अंधेरे-उजाले की लुका-छिपी चल पड़ी। राम धुंधले पडने लगे, मोहिनी चमकने लगी।

नहाने के लिए सीढियों पर उतरे तो नन्ददास ने पूछा—"तुलसी भैया, यह कौन थी?"

"माया!" तुलसी ने गहरे डूबे हुए स्वर मे उत्तर दिया। वे पानी मे उतर रहे थे। एकाएक उनके सामने ब्राह्म वेला के गहरे धुंधलके मे पानी की सतह पर रहस्यमय रूप से चमकते हुए एक ओर दीर्घाकार राम और दूसरी ओर नन्ही-सी मोहिनी खडी झलकने लगी। मोहिनी मुग्ध दृष्टि से तुलसी को अपलक देखकर मुस्करा रही थी, आखो-आखों मे बुला रही थी। राम के मुख की ओर एक बार आखे उठाकर देखा पर वह सहसा अति दीर्घाकार हो जाने से तुलसी के लिए लगभग अदृश्य हो गए थे। इधर मोहिनी और भी अधिक आकर्षक लगने लगी थी। ध्यान मे उसे देख-देखकर वे मुस्कराने लगे थे। गंगा मे वह ऐसी तेजी से तैरकर आगे बढे मानो मोहिनी के बुलावे पर वे अभी ही मिलने के लिए जा रहे हो। भोला मन साधना से छिटककर फिर खिलवाड़ मे रम गया। नन्ददास भी उन्ही के साथ तैर चले। बिलकुल पास ही मे किसी के तैरने की ध्वनि व छपाके सुनकर तुलसीदास की मनोबिम्ब-लीला बिखर गई। कानो मे नन्ददास की आवाज भी पड़ी—"तुलसी भइया, कबीर साहब कह गए है कि माया महाठगिनि मै जानी। इसपर तुम्हारा विचार क्या कहता है?"

तुलसी सकपका गए। फिर कुछ उखड़े-से स्वर मे उत्तर दिया—"जब माया

मुझे ठग लेगी तब बतलाऊंगा।"

"तुलसी भइया, किसी के द्वारा अपना ठगा जाना तुम्हे अच्छा लगेगा ?"

तुलसी ने उत्तर न दिया। पानी के भीतर बुड़की मारकर तैरते हुए आगे निकल गए। नहाकर जब दोनो घाट पर पहुचे तो देह पोछने के लिए अपना अगौछा उठाते हुए नंददास ने कहा—"हमारे नटनागर ब्रजचन्द को भी परकीया राधा की माया ने ही लुभाया था। ऐसा लगता है भइया कि प्रेम मे चोरी का भाव उद्दीपन रस बन जाता है। पर भइया, ज्ञान और मोह का साथ कैसा ? उजाले और अंधेरे का योग कैसा ? माया का खेल समझ मे नही आता। अपने नन्ददुलारे के साथ वृषभानु-किशोरी का नाता मेरे मन मे बड़े प्रश्न उठाता है।"

तुलसी अपनी देह पोछते-पोछते सहसा रुक गए, गंभीर स्वर मे कहा—"नंददास, इन प्रश्नों का जाल फैलाकर मेरे रहस्य को पकडने का प्रयत्न न करो। यदि तुम कुछ जान भी गए हो तो मेरे हित मे उसे गोपन ही रहने दो।"

"तुलसी भइया, मेरे रसिया गोपीरमण राधावल्लभ तो क्षमा भी कर सकते हैं, पर तुम्हारे मर्यादा पुरुषोत्तम इष्टदेव ऐसे खेल कदापि सहन नही करेंगे। बिचारी सूर्पणखा उनसे अपना प्रेम निवेदन करने गई तो नाक-कान कटा के ही लौट पाई थी।"

तुलसी चुप रहे। उनका मन गहरे ऊहापोह मे फंस गया था। इससे वे कुछ-कुछ चिड़चिडा भी उठे। इस समय वह निर्द्वन्द्व होकर मोहिनी-मुग्ध बने रहना चाहते थे। 'उसने मुझे बुलाया है, क्या कहेगी ? कदाचित् यही कहेगी कि मेरे साथ भाग चलो। भागकर कहा जायेगे ? कोतवाल पकड़वा मंगाएगा। काशी के बाहर कोतवाल का राज्य थोड़े ही है। काशी के बाहर यदि निकल गए तो फिर कौन पडेगा। कही किसी अन्य गाव या नगर मे जाके रहेंगे। मैं कथा बांचूगा, लडके पढ़ाऊंगा और थोड़ा-बहुत ज्योतिष का चमत्कार फैलाकर दोनो के गुजारे लायक कमा लिया करूगा। इसमे कौन झंझट है · पर मान लो काशी से बाहर हम लोग न निकल पाए, पकड़ लिए गए ! तब क्या होगा ? अरे बड़ी मार पडेगी। मार तो खैर सही भी जा सकती है पर जो बदनामी होगी, विशेष रूप से गुरु जी की बदनामी होगी, वह कैसे सही जाएगी ? मोहिनी की तो वह गरदन ही कटवा डालेगा। हाकिम बड़े जल्लाद होते है। फिर उसमान खा तो कोतवाल ठहरा, शहर का राजा। अरे राम बचा लेंगे।···राम ? कठोर संयमी अनुशासक, जिन्होने रावण को मारने के बाद यह कहा था कि अब सीता के प्रति मेरा लोभ नही रहा। मैंने क्षत्रिय के नाते अपनी पत्नी का हरण करने वाले दुष्ट को मारकर अपना बदला ले लिया है, उसे भरत या लक्ष्मण कोई भी ग्रहण कर सकते हैं।—मेरा मन यह सहन नही कर सकता कि मेरी प्रिया को फिर कोतवाल ग्रहण कर ले, अथवा उसे मेरी आखों के आगे ही मरवा डाले। पर कोतवाल समर्थ है और मै असहाय। खैर, मेरे ऊपर जो बीते सो बीत जाय पर बेचारी मोहिनी को मुझे चाहने के लिए प्राणदंड क्यो मिले ?·· नही-नही, व्यर्थ का मोह बढ़ाना ठीक नही। यदि मैं ब्रह्म के राम-रूप को छोड़कर श्रीकृष्ण के शृंगारी रूप को भजू तो क्या वे मुझे बचा लेंगे ? छि-छि, तुलसी, मिथ्या मोह मे पड़कर

तू इतना निर्बुद्धि हो गया है कि ऐसी अकल्पनीय बातें तक सोच डालता है ! खबरदार, जो मोहिनी से मिलने गया तो ! अपना मन सावधान कर, राम-राम जप !'

उस दिन न तो उनका पूजा-अर्चना मे ध्यान लगा, न पढने-पढाने या मित्रों से बात करने मे ही। दिन-भर मोहिनीरूपी अपनी पीठ की खुजली को वे राम-रट रूपी जनेऊ से खुजलाते रहे। मन के हाथ हार गए पर खुजली मिटाए न मिटी। सांझ होते-न होते वे स्वयं अपनी ही चेतना से लुक-छिप कर जाने के लिए उतावले हो उठे।

दुर्गाकुंड के उत्तरी कोने पर वे झुटपुटा समय होने से कुछ पहले ही पहुंच गए थे। आखें चौकन्नी होकर चारों ओर निहारती कि मोहिनी अब आई, अब आई। प्रतीक्षा मे एक-एक क्षण पहले एक-एक युग-सा लम्बा बीता फिर शताब्दियों जैसा और फिर सहस्राब्दियों के समान बीतने लगा। फिर समय का बीतना भी मानो बन्द हो गया था। समय पहाड़ हो गया था जो ढकेले नही ढकिलता था। आंखे बिना पानी की मछली जैसी तड़पती रह गई। मोहिनी न आई। अंधेरा होने के बहुत देर बाद भी तुलसीदास वहा बैठे रहे पर आस पूरी न हो सकी। सुख लेने गए थे दु.ख पाकर ही लौटे। घर के पाठशाला वाले आंगन मे प्रवेश करते ही मामा बोले—"रामबोला ! अरे कहां चला गया था रे ?"

"कही नही।"

"बस, यह 'कही नही' मे रहकर ही तू अपना भविष्य चौपट करेगा। मेरी तो एक ज्योनार ही जाएगी किन्तु तेरा सब कुछ चौपट हो जाएगा। कहता हूं जवानी मे बहुत अधिक भगवत्-भजन करना अच्छा नही होता। यह सब तो हम जैसे बूढो के लिए है। अरे, कोतवाल साहब ने तुम्हारा कीर्तन सुनने खातिर आदमी दौड़ाकर यहां भेजा, पर तू तो अभी से 'सब तज हर भज' के फेर में 'कही नही' मे रहने लगा है। छि-छि:, बिन मौसम की बरसात भला कही अच्छी लगती है।"

मामा जी की झिड़कियो से तुलसीदास ने यह समझा कि अपने यहां कोतवाल के अचानक आ जाने के कारण ही मोहिनीबाई उससे दुर्गाकुंड पर मिलने न आ सकी। हाय कैसा बुरा संयोग था कि मोहिनी मुझे न यहां मिल सकी न वहां। अभागे का भाग्य बडी कठिनाई से खुलता है।

उस रात उन्हे एक पल के लिए भी नीद न आई। हा, मोहिनी से न मिल पाने के कष्ट मे उनकी आंखें बार-बार भर आती थी। अपने जीवन का सारा अभागापन सिमटकर मोहिनी की आड मे उन्हे रात-भर रुलाता रहा। भरे-पुरे होश मे अपने दुर्भाग्य के कारण तुलसी कभी इस प्रकार नही रोये थे। सबेरा होने तक उनका निश्चय फिर मोहिनी का आकर्षण-पाश तोड़कर राम-शरण में आ गया था और अब मोह की पीडा से कुंठित थे।

अगले दिन गंगा जी के लिए नियत समय पर तुलसी भइया जब नीचे न आए तो नददास अधेरे मे सीढिया टोते हुए उनकी कोठरी मे पहुंच गए। तुलसीदास उस समय तन्मय होकर सूरदास का एक पद गा रहे थे—

मेरो मन अनत कहां सुख पावै ।
जैसे उडि जहाज को पछी पुनि जहाज पै आवै ।।

नंददास द्वार पर खडे-खडे सुनते रहे । तुलसी के स्वर मे इतनी करुणा थी कि नददास भावविभोर होकर आसू वहाने लगे । गायन समाप्त होने पर बाहर ही से नददास ने कहा—"तुम्हारे राम-प्रेम की तो भइया, मैं अपने नद के दुलारे से लड-झगडकर अब तो ऐसी ही प्रीति मागूगा । प्रेम उपजे तो ऐसा ही उपजे ।"

झटपट द्वार खोलकर तुलसी ने कहा—"आज तुम्हे आना पड गया नद ! मै तो माया मे सब कुछ बिसार बैठा ।"

"माया बिना हरि नही मिलते, भैया । मेरा श्याम राधा बिना आधा है ।"

कोठरी के अदर से अपना अंगोछा और लंगोट-उठाकर कोठरी के द्वार बद करके कुडी चढाते हुए तुलसी ने कहा—"किन्तु तुम्हारे श्याम और मेरे राम की माया बडी कठिन है नददास । उसपर रीझते भी दु.ख और उसे रिझाते हुए भी दु ख ! केवल दु ख ही दु:ख व्यापता है ।" फिर सीढी के पास पहुचकर वे थम गए । सिर झुकाकर गहरे स्वर में कुछ स्वगत और कुछ-कुछ नददास को भी सुनाते हुए तुलसी ने कहा—"जी चाहता है, डूब मरूं । आयु के यह पहाड़ से चौबीस वर्ष ढकेलते-ढकेलते मैं अब ऊब गया हूं । न माया मिलती है न राम । मैं बहुत अभागा हू ।" दु खावेश मे उनका कठ भर आया और आखें छलछला उठी । इस मन स्थिति के बहाव में आकर वह तेजी से सीढ़िया उतरने लगे ।

घाट पर पहुचने में आज नित्य से कुछ विलम्ब हो गया था । रोज जब आते है तो तारो-भरा आकाश काला रहता हे किंतु इस समय वह खुलता सावला लग रहा था । वस्तुए और चेहरे कुछ-कुछ स्पष्ट हो चले थे । घाट पर फिर कल वाली दासी मिली—"आपसे एक तात कहनी है ।"

कल दासी की सूरत ठीक तरह से नही देखी थी । केवल उसके स्वर के सहारे ही तुलसीदास ने उसे पहचाना, चेहरा तमतमा उठा, कहा—"जो कुछ कहना है यही कह दो ।"

दासी हिचकी । नंददास तुलसी को वहा छोडकर आगे बढ़ गए । दासी ने कहा —"बाई जी ने कल के लिए क्षमा मागी है । उनके मालिक अचानक आ गए थे ।"

'मालिक' शब्द सुनकर सहसा ईर्ष्या और फिर क्रोध उमडा । अपनी मुद्रा को कठिनाई से सयत करते हुए तुलसीदास ने कहा—"तो ? इन बातो से मुझे क्या प्रयोजन ?"

चतुर दासी ने एक बार आख उठाकर पैनी दृष्टि से तुलसी की मुखमुद्रा को ध्यानपूर्वक देखा फिर स्वर मे गिडगिडाहट लाकर कहा—"अबला पर यों गुस्सा न हो महाराज ! मेरी मालकिन आपके दर्शनो के लिए ऐसी तड़प रही है जैसे पानी बिना मछली । कल रात उनकी पलक तक नही लगी । बहुत तड़पी है ।" कहते हुए दासी का गला और आखे भर गई ।

तुलसीदास का क्रोध सहानुभूति मे कुछ थमा तो अवश्य किंतु मन का भाव न गया । मुह फुलाकर कहा—"तो यहा ही किसे नीद आई है ?"

पीछे की सीढ़ियों पर पांच-छः आदमियों की टोली नीचे उतर रही थी। दासी ने उधर देखकर हड़बडी में कहा—"कोतवाल साहब आज फिर आपको बुलाएंगे। आपके लिए रथ आएगा। मालकिन ने कहा है कि जो आज आपने उन्हे दर्शन न दिए तो रात मे वह जहर खा लेगी।" कहकर वह प्रणाम करने के लिए झुकी। तुलसीदास की ईर्ष्या फिर चढ़ गई, बोले—"मैं किसी सेठ, अमले या हाकिम के लिए तुम्हारी बाई जी की तरह गाना नही गाता। ऐसा प्रस्ताव फिर कभी मेरे सामने न लाना।" कहकर वे तेजी से सीढिया उतरने लगे। भावों की हलचल में तुलसी का मन फिर राम-दास से मोहिनी-दास हो चला था। मोहिनी उनके कलेजे मे गुलाबी गुदगुदी बनकर आनन्द उगगाने लगी। राम अब बहुत दूर की गुहार बनकर उन्हे सुनाई पड रहे थे। उनका मन मोहिनी के प्रति सहानुभूतिवश राम को अनसुना करके राग-रंजित हो गया, 'बेचारी पर नाहक ही क्रोध किया। वह म्लेच्छ तो बहाना-भर ही है, मेरा गायन सुनकर जो रीझती और फिर मुझे रिझाती वह तो मोहिनी ही होती। मैंने चूक की। मै बड़ा मूर्ख हूं। बडा अभागा हूं।'

स्नान, व्यायाम औ संध्या आदि प्रात.कर्मों से छुट्टी पाकर तुलसी और नन्द दास जब घर की ओर चले तब तक तुलसी का मन फिर मोहिनी के फंदे से मुक्त होने के लिए अपने-आपको कसने लगा था। अन्तर्द्वन्द्ववश वे उस समय अत्यधिक गभीर हो गये थे।

सीढिया पार कर चुकने के बाद गली मे आने पर नंददास ने एकाएक कहा—"अब मेरा मन काशी से ऊब गया भइया। सोरो जाना चाहता हूं।"

"अपना अध्ययन तो समाप्त कर लो?"

"पढ लिया जो कुछ पढना था। अब ऊब गया हूं। पढने का अंत नही। अब केवल कृष्ण-नाम ही पढूंगा। तुम भी मेरे साथ सोरों चलते तो मुझे बड़ा सुख मिलता।"

"तुम्हारा तो वहां घर है। मेरे लिए भला कौन-सा आकर्षण है?"

"मेरे लिए चलो भइया। मेरे मन के लिए श्रीकृष्ण परमात्मा के बाद तुम ही सबसे बड़ा सहारा बन गए हो। तुम भी मिथ्या माया से छूटोगे। वहा चलकर घर बसाना। नृसिंह चौधरी महाराज नाम के एक बड़े ही राम-भक्त विद्वान वहा रहते हैं। काशी आने से पूर्व मैं उन्हीकी पाठशाला में पढता था। वे अब बहुत वृद्ध हो गए है। अपनी पाठशाला चलाने के लिए उन्हे एक अच्छा विद्वान मिलेगा और तुम्हारी जीविका का सहारा हो जाएगा। चलोगे भइया?"

"तुम्हारे इस आग्रह का मर्म तो पहचानता हूं नंदू, किंतु क्या कहू? नदू, तुम मुझे बड़े भाई की तरह मानते हो, मेरा एक आदेश भी मानोगे?"

"कृष्ण को छोडकर राम भजने को मत कहना, बस, और तो तुम्हारी आज्ञा पर सिर कटाने को भी तैयार हू।"

"मेरा भेद किसी से न कहना।"

"मुझे लगता है यह तुम्हारा असली भेद नही है भइया। तुम अपने राम को छोडकर रह नही सकते।"

"यह प्रसंग न छेडो नंदू। मैं इस समय कुछ नही सुनना चाहता।" तुलसीदास के स्वर मे चिड़चिड़ाहट भर गई थी। स्वयं उन्हें भी लगा कि यह चिड़चिडापन अनावश्यक और अप्रत्याशित था।

लगभग डेढ पहर दिन चढे घर के भीतर से आई का बुलावा आया। तुलसीदास उस समय दो-विद्यार्थियो को कालिदास का मेघदूत पढा रहे थे। गुरु-पत्नी का आदेश पाते ही वे अपना आसन छोडकर उठ खड़े हुए। भीतर की ड्योढी मे प्रवेश करते ही उनके कानो मे जो स्वर तरंगित होकर आया वह…वह…तुलसी नाम न लेंगे, उस नाम की मिठास को गूगे के गुड़ की तरह वह अपने रोम-रोम मे चखेंगे। मोहिनीबाई गुरु-पत्नी को जयदेव रचित एक गीत सुना रही था—"नाथ हरे। सीदति राधा वास गृहे।"

मोहिनी के स्वर ने तुलसी को न तो तुलसी ही रहने दिया और न रामबोला। उनका अस्तित्व ही मानो उस स्वर-रस-धार मे घुलमिल कर वह गया। मोहिनी का स्वर बाढ के पानी की तरह उनकी चेतना पर आच्छादित हो गया। सब कुछ डूब गया, सिर्फ दहलीज में एक काया खडी थी और उसमे मोहिनी का स्वर गूज रहा था। कई दिनों के बाद उनके लिए ऐसा आनंददायक क्षण आया था।

मोहिनीबाई ने गुरु-पत्नी को रिझा लिया। उसने चिरौरी करके, आंखों मे आसू भरके गुरु-पत्नी को यह भी समझा दिया था कि यदि तुलसीदास ने कोतवाल महोदय को अपना कीर्तन न सुनाया तो वे मोहिनी से अवश्य ही रुष्ट हो जाएंगे। तुलसी जब भीतर पहुंचे तो अपनी दृष्टि भरसक मोहिनी से दूर ही रखी। यद्यपि वह उसका मुखचन्द्र देखने के लिए चकोर की तरह तडप रहे थे। उन्होने पूछा—"आई मुझे बुलाया ?"

"रामबोला, इस स्त्री का अपराध केवल इतना ही है कि इसने कोतवाल साहब से तेरी गायन-कला की प्रशंसा कर रखी है। सुना है कि तू किसी हाकिम के लिए न गाने की बात इससे कह चुका है। भविष्य मे भले ही ऐसा न करना, पर आज तो इस लडकी की मान और प्राण की रक्षा के लिए तुझे इसके यहां जाना ही पडेगा। तेरा भोजन भी वही होगा। मैं तेरी ओर से निमंत्रण स्वीकार कर चुकी हू।"

आई का आदेश सुनकर तुलसीदास को सचमुच रारा आश्चर्य हुआ, उस आश्चर्य मे वे मोहिनी के प्रति अपने आकर्षण की बात तक भूल गए। उन्होंने कहा—"आई, काशी के गौरव, गुरुपाद का कोई शिष्य भला…"

"मैं तुम लोगो की आई हूं। तुम्हारी और कर्ता महाराज की मान-प्रतिष्ठा का ध्यान रखना मेरा कर्तव्य है। जो मैंने कहा है वही कर। प्रतिष्ठा हृदय की होनी चाहिए, जवाहर वही है। बुद्धि-अहकार आदि तो केवल जौहरी मात्र है।" तुलसी से इतना कहकर आई ने मोहिनी से कहा—"जा मगलामुखी, तेरी मान-रक्षा हो गई। भविष्य मे कभी किसी ब्रह्मचारी के प्रति ऐसा आग्रह न करना। तुलसी को छोडकर मैं अपनी पाठशाला के अन्य किसी युवक को तेरी जैसी रूपसी और चतुर गायिका के घर भेजने की बात तक नही सोच सकती थी। उसके

लिए आचार्य जी से आज्ञा लेनी पड़ती। किंतु तुलसी पर मुझे पूरा भरोसा है। वह समुद्र-तल में डूबकर भी उबर सकता है और आग की लपटों में घिर करके भी सुरक्षित बाहर निकल सकता है। तुलसी मेरा बेटा है।" कहकर आई ने तुलसी को ऐसी स्नेह दृष्टि से देखा कि उसे देखते ही तुलसी का दुलार-भूखा मन नन्हा-मुन्ना बालक बनकर आनंदमग्न हो गया। यह एक ऐसा आनंद था जो तुलसी को रसातीत लगा।

परंतु रास्ते तक आते ही मन फिर से अपने खिलवाड़ में बंध गया। दो रथ पूरी सड़क छेंककर मंथर गति से दौड़ रहे थे। चार घुड़सवार आगे, चार पीछे चल रहे थे। एक रथ पर मखमली जरी काम के पर्दे पड़े थे और दूसरे पर ब्रह्मचारी तुलसीदास शास्त्री विराजमान थे। पर्दे के झरोखे से दो आंखें चमक रही थीं जो अपनी चाहत उड़ेलकर दरिद्र, अभागे, ब्रह्मचारी रामबोला की अहंता को एक अतुलनीय वैभव से समृद्ध कर रही थीं। चलती सड़क, हाट-बाज़ार वालों की नजरों और अपने ब्रह्मचारी वेश की मान-रक्षा के प्रति सतर्क रहकर, अपने-आपको उन नजरों से बचाकर, तुलसी संयत रहने के अपार जतन तो करते थे मगर शृंगार रस उन्हें बराबर बहा-बहा ले जाता था। आंखों से आंखें चुराते-चुराते भी कनखियां मिलते ही बनती थीं। दो चेहरों पर एक साथ मुस्कराहट की बिजलियां कौंध जातीं। दो रथों की दूरी, पर्दे की आड़, राह चलतों की नज़रों का ध्यान, सब कुछ पल-भर में विलीन हो जाता। मोहिनी तुलसी के मन-प्राण और काया में रमकर गुनगुना रही थी—"नाथ हरे, सीदति राधा वास गृहे।"

कोठी पर पहुंचे। इस बार पहरुओं का कोई डर नहीं था। रथ से उतरते ही वे तुलसी को झुक-झुककर जुहारें करने लगे। तुलसीदास ने त्रिलोकीनाथ के समान अपनी माया मोहिनी के साथ अपने 'वैकुंठ' में प्रवेश किया। दहलीज में घुसकर, फिर सीढ़ियों में चढ़ते हुए मोहिनी ने अपनी आंखों में तुलसी के प्रति ऐसी गहरी रीझ उड़ेली कि वह बिन मोल उसके हाथों बिक गए। बीच सीढ़ियों पर वह ऐसे चढ़ी कि हाथ से हाथ टकराए। तुलसी की काया को स्पर्श से संकोच हुआ। दूसरी सीढ़ी पर बांह से बांह रगड़ गई, तुलसी के मन में गुद-गुदाहट हुई। फिर ऊपर के द्वार का उजाला आने के पहले मोहिनी ऐसे चली कि मानो पैर की लड़खड़ाहट में बरबस उसकी देह तुलसी की देह से सट गई हो। मेंहदी रची हथेली ने तुलसी के कंधे का सहारा लिया, आंखें आंखों से ऐसे लिपटीं जैसे वृक्ष से लता लिपटी हो। तुलसी के मन में बिजलियां कौंध गईं, जीवन को एक नया अर्थ मिल गया। अब तुलसी की आंखों में भी वही नंगी तृष्णा थी जो मोहिनी की आंखों में आरंभ ही से झलक रही थी। तुलसी ने मोहिनी की कलाई धीरे से दाब ली। तभी ऊपर के उजाले से अम्मा की आंखें मानो छनकर टपक पड़ीं। दोनों, विशेष रूप से तुलसी सहम गए। अम्मा ने कहा—"उसमान मियां आ गए हैं।"

चार नजरों का खेल खत्म हो गया, लेकिन उससे दो दिलों में इतनी ताजगी आ गई थी कि वे अब देर तक मुरझा नहीं सकते थे।

लगभग साठ-पैंसठ की आयु वाले लंबे-चौड़े, मोटे-थुलथुल शरीर के मंगोल-

मुखी उमसान खां मसनद के सहारे अवलेटे हुए गंडेरियां चूस रहे थे। उन्होंने तुलसीदास को पैनी नज़र से देखा। कमरे मे तुलसी के साथ केवल अम्मा ही आई थी, मोहिनीवाई पोशाक वदलने के लिए दूसरे कमरे में चली गई थी। अम्मां ने कमरे मे पहले ही से लाकर रखी गई, कुशासन मृग-छाला विछी चौकी पर तुलसीदास को सादर विठलाया। फिर कोतवाल से कहा, "हुजूर इनके गुरु महराज काशी के पंडितों के सिरमौर है। वडी मुश्किल से मोहिनी इनके गुरु की इजाजत लेकर इन्हे यहां लाई है। वैसे संगीत तो इन्होने किसी से नही सीखा, मगर क्या गाते है कि, अव आप से क्या अर्ज करूं सरकार।" कोतवाल से कहकर अम्मा फिर तुलसी की ओर मुडी और हाथ जोड़कर गिडगिड़ाते हुए कहा— "हुजूर के वहाने हमको भी आपके संगीत की प्रसादी मिल जाएगी। महात्माओं की भभूत जहां झड जाती हैं वही वैकुंठ वस जाता है। पहले वही मीरा का भजन सुनाएं महाराज, 'हरि आवन की अवाज'।...आप देखेंगे हुजूर कि हूवहू हमारी मोहिनी के अंदाज मे गाया है और उसमें भी एक अनोखी वात पैदा कर दी है।"

मोहिनी कमरे मे न थी, पर तुलसी के लिए मोहिनी के सिवा कमरे मे और कोई न था। तुलसी की दृष्टि मे उसमान खां कमरे मे खटमल की तरह मसनद से चिपका था और अम्मां मक्खी की तरह भनभना रही थी। पर इक्का-दुक्का मक्खी-खटमल के अस्तित्व का कोई विशेष वोध नही होता। रस के कसाव मे ध्यान छोटी-मोटी चीजों पर जम ही नही पाता। तुलसीदास गा तो रहे थे 'हरि आवन की अवाज' पर उनका मन मोहिनी आवन की अवाज सुनने की आशा कर रहा था और उस आशा मे उनका स्वर-आग्रह रस मे भीगकर भारी होता चला गया। एक भजन समाप्त होने तक मोहिनी कमरे मे न आई। उसमान खा ने गंडेरी चूसते हुए कहा—"माशाअल्लाह खूव गाते हो।"

प्रशंसा सुनकर तुलसी की अहंता को मद चढ आया, सदंभ वोले—"अपने राम को रिझाने के लिए गाता हू।" मन ने झिडका 'यह क्यों नही कहते कि मोहिनी को रिझाने के लिए गाता हूं।' तभी मन पर उसमान खा का दम्भ-भरा रोवीला स्वर आरोपित हुआ। उसमान खा ने गंडेरी उठाते हुए कहा—"हम तुम्हारी तालीम के लिए कुछ वजीफा मुकर्रर कर देंगे।"

तुलसी के स्वाभिमान को ठेस लगी। मन मे ताव आया कि, 'अवे खटमल, तू मुझे क्या दे सकता है? मैं किस वात में कम हू? जिसके पीछे तू आला हाकिम होकर भी कुत्ते की तरह दुम हिलाता डोलता है वह मुझ भिखारी को रिझाने के लिए दीवानी वनी डोलती है। तेरे पास तलवार है, मेरे पास ज्ञान है। तेरा भरोसा दिल्ली के वादशाह पर है और मैं निर्द्वन्द्व राम के भरोसे रहता हूं।' मन अपने तेहे में खटाखट चढते हुए दम्भ की ऊची अटारी पर पहुच गया। उसमान खा के चुप होकर गडेरी चूसने की मुद्रा में आते ही तुलसीदास ने सिर तानकर कहा—"कोतवाल साहव, जैसे आप वादशाह के चाकर है वैसे मैं राम का चाकर हू। मेरा मालिक मुझे अपने गुजारे के लिए सव कुछ देता है। फिर भी आपकी इस उदारता के लिए मैं आपको वडा-वड़ा शुक्रिया अदा करता हूं।"

सुनते हुए उसमान खां की आखे लाल हुई, पैनी हुई और फिर गंडेरियो-सी ठंडी-मीठी हो गई, बोले—"अच्छा है बरखुरदार, आजाद रहोगे, वरना इस दुनिया में रहकर सभी को चाकरी करनी पड़ती है। एक सलाह तुम्हे और दूंगा। किसी औरत के गुलाम मत बनना। हर तरह की आजादी पसंद करनेवाले लोग भी अक्सर अपनी बेहोशी में औरत के गुलाम बन जाते हैं। तुम जवान हो, तन्दुरुस्त और खूबसूरत हो और फिर माशाअल्लाह, गला भी खूब सुरीला पाया है। लेकिन तुम्हारी इन्ही खूबियो की तीलियां बनाकर कोई हुस्नवाली तुम्हारे वास्ते खूबसूरत पिंजडा भी बना सकती है। फिर जब होश मे आओगे तो पछताओगे।"

तुलसीदास को लगा कि यह बूढा अपनी कोतवाली के रोब मे मेरा शिक्षक बनने की चेष्टा कर रहा है। यह आजन्म भोग-विलास मे डूबा रहनेवाला व्यक्ति भला मेरे जैसे पंडित और तपस्वी को शिक्षा देने का अधिकार रखता है! मूर्ख कही का · पर क्या मुह लगू इसके। खीर मे कंकड़ की तरह आकर पड़ा है। कैसा अन्याय-भरा है विधि का विधान, कि मेरे जैसे गुणी व्यक्ति के लिए तो मोहिनी का प्रेम-चोरी की वस्तु है और इसके समान मूर्ख और दम्भी पुरुष सीना-जोरी से उसके ऊपर अधिकार करता है। मेरे गुणों की आभा दब गई। कैसे करूं कि इसके सामने से हट जाऊं? मोहिनी के घर मे रहकर मोहिनी से दूर रहना मुझे अच्छा नही लगता। देखो, पडे-पडे गधे-सा झपकने लगा। सुना है अफीम बहुत खाता है। असुर कही का।

तुलसीदास का मन ईर्ष्या, दम्भ और मोहिनी की प्रतीक्षा मे बीतता रहा। उसमान खा अपनी तोद पर दोनों हाथ रखे मुंह फाड़े अधलेटी मुद्रा मे ही खुर्राटे भरने लगा था। अम्मां पहले ही कमरे से गायब हो चुकी थी। तुलसीदास ऊब चले थे। उसमान खा का मुख देखना उन्हें अच्छा नही लग रहा था। वह शिष्टाचारवश कोतवाल की ओर पीठ घुमाकर तो न बैठे पर मुह मोड लिया। फिर भी तुलसी के शृंगार पर वीभत्स रस का घिनौना आवरण पडा ही रहा।

सहसा 'आयं! क्या कहा?' बडबड़ाते हुए उसमान खा चौंककर जाग पड़े। तुलसीदास को मजबूरन उधर मुह घुमाना पडा। उन्होने पूछा—"श्रीमान् ने मुझ से कुछ कहा?"

अपनी दोनो आखें मलते हुए उसमान खां बोले—"नही।" फिर सुचिन्त होकर आवाज लगाई—"कोई है!" तुरन्त ही दरवाजे का परदा हटाकर एक दासी ने प्रवेश किया। "मोहिनीबाई कहा रह गई?" कोतवाल ने पूछा।

दासी अदब से आगे बढी और धीमे स्वर मे उसमान खा से कुछ कहा। उसमान खा सुनकर बैठते हुए गंभीर स्वर मे बोला—"अच्छा, हमारा घोड़ा कसने के लिए कह दो।" अब हम जाएगे। इस ब्रह्मचारी को कुछ खिलाओ-पिलाओ भाई। इसकी कुछ खातिर करो। वो बूढी, खुर्राट कहा है? उसे बुलाओ।" दासी अदब से सिर झुकाकर बाहर चली गई। मोहिनी की अम्मां के लिए उसमान खा के द्वारा खुर्राट शब्द कहा जाना तुलसीदास को बडा अच्छा लगा। उन्हे वह दिन याद आया जब मोहिनी से मिलने की तडप मे वह यहा आए थे और अम्मा

के खुर्राट स्वभाव का पहला अनुभव पाया था।

खुर्राट ने कमरे में प्रवेश किया। आते ही पूछा—"हुजूर ने मुझे याद फरमाया था ?"

"अरे, भई इस बेचारे बरमचारी की कुछ खातिर-तवाजोह तो करो। इससे मिलकर मुझे बहुत खुशी हुई। लेकिन मेरी यह समझ में नही आता कि मैं इसको किस तरह से खुश करूं। किसी ने सच कहा है कि शाह की हैसियत अगर हारती है तो फकीर की हैसियत से ही हारती है।"

"सरकार बेफिक्र रहे। ये महाराज जी यहा से खुश होके आपको दुआएं देते हुए ही जाएंगे।" कहकर अम्मा ने तुलसीदास की ओर ऐसी कड़ी दृष्टि से देखा कि वह सहसा कुन्द हो गए। तभी एक दासी ने कोतवाल को घोड़े के तैयार होने की सूचना दी। कोतवाल जाने के लिए उठा। तुलसीदास को भी उसे विदा देने के लिए चौकी से उठना पड़ा। चलते हुए बूढ़ा उसमान खां जब बुढ़िया अम्मा के पास से गुजरा तो तुलसी को लगा कि तुलना मे अम्मा की मुखमुद्रा ही अधिक कठोर और आसुरी है। उसमान खां की बातों ने सब मिलाकर तुलसी के मन में उसके प्रति एक कोमल भाव उत्पन्न कर दिया था।

उसमान खां चला गया। अम्मा उसे विदा करने के लिए गई। दासी भी चली गई। कमरा सूना हो गया, तुलसीदास का सूना मन उतावली से भर उठा, अब वह निश्चय ही आएगी "कब आएगी ?······आई "वह आई।" नहीं आई। मन ऊपर-नीचे होने लगा। तुलसीदास ने झरोखे से देखा, कोतवाल अपने घोड़े पर सवार हो चुका था। फाटक पर लगभग पन्द्रह-बीस घुड़सवार सिपाही खड़े थे जो उसमान खां के बाहर निकलते ही उसके पीछे-पीछे घोड़े दौड़ाने लगे। सरकारी रोब की आवाजाही की हलचल मिटते ही बगिया में चिड़ियों की चहचहाहट की गूंज फिर कानो मे जाग उठी। तुलसीदास ने जो झरोखे की ओर से मुड़कर देखा तो द्वार पर सोलहों सिंगार सजी स्वर्ग की अप्सरा-सी मोहिनी दिखलाई दी। तुलसी का रोम-रोम खिल उठा। ऐसा लगा कि उनका हृदय हिरनो का झुंड बनकर दसों दिशाओं में एक साथ कुलांचें भर रहा है।

"अरी, अपने जरा से स्वार्थ के पीछे काहे इस बिचारे भोले बामन का धरम बिगाड़ती है ? तेरा कुछ भी नही जायगा, उस बेचारे का लोक-परलोक सभी बिगड़ जायगा।" मोहिनी कमरे के भीतर आई भी न थी कि पीछे से अम्मा का कड़ा स्वर सुनाई पड़ा।

मोहिनी ने मां की ओर मुड़कर देखा तक नही। हा, चेहरे पर तेहा जरूर चमक उठा। तुलसीदास की आंखो मे आंखे डालकर मोहिनी ने उनसे पूछा—"मैं क्या आपका लोक-परलोक बिगाड़ सकती हूं ? यदि ऐसा हो तो···"

"प्रेम शुद्ध हो तो लोक और परलोक दोनो सुधर जाते है। और तुम्हारे बिना तो मेरे अब बिगड़ ही जाएंगे, मोहिनी। मैने अपने मन के सत्य को पहचान लिया है।"

मोतियो टके धूपछाहीं रंग के लहराते घांघरे-चोली और ओढ़नी में, हीरे, पन्नों और मानिकों से मढ़ी हुई मानवती मोहिनी के चेहरे पर यह सुनकर सुहाग-

चढ़ गया। दर्प-भरी मुस्कराहट, रीझ-भरी आतें और मद-भरी लचकती इठलाती काया ज्यों-ज्यों तुलसी की ओर बढ़ती चली त्यो-त्यो तुलसी का मनोवेग बढ़ने लगा। उन्हें ऐसा लगता था मानो मोहिनी उनकी सांस के फर्श पर पैर रखती हुई चली आ रही है। एकटक, सपनो-भरी-नजर से वह मोहिनी का रूप पीने लगे। दरवाजे पर अम्मा आ खड़ी हुई। उसने वहीं से कुछ ऊंची और कड़कदार आवाज मे कहा—"कान खोलकर सुन लो महराज, जवानी का यह मद उतर जाने के बाद फिर यह मत कहना कि वेश्या ने तुम्हे ठग लिया। मैं विश्वनाथ बाबा की साक्षी मे यह बात तुमसे कहे जाती हू। और तू भी सुन ले मोहिनी, मेरा अन्तकाल अब जरूर पास आ चला है, पर जल्लाद के हाथो अपना सिर कटाकर नही मरूंगी। दो रोटियो के लिए गंगा जी के किसी भी घाट की सीढ़ियां मेरी अन्नपूर्णा बन जाएंगी। मैं तेरा घर छोड़कर जाती हू।" कहकर अम्मा तेजी से बाहर निकल गई।

तुलसीदास का मन कुछ-कुछ भयभीत हो गया। मोहिनी ने इठलाते हुए उनका हाथ पकड़ा और आखो की मोहिनी से बांधकर उन्हे उनके आसन पर बैठा दिया। हाथ का स्पर्श मन से चाहते हुए भी, तुलसी को आनन्द के बजाय भय से चौकाने लगा। मस्तिष्क की शिराओ मे ऐसा विचार कम्पन हो रहा था कि जैसे बिजलिया लपलपा रही हो। मस्तिष्क मे एक साथ बहुत कुछ गूज रहा था। अर्थ शब्दो के बिना भी अपना बोध करा रहे थे। उन्होने दाहिने हाथ से अपनी वह बाई कलाई धीरे-धीरे रगड़ना आरभ कर दिया था, मानो वह मोहिनी के स्पर्श को मिटा रहे हो। उनकी आखे कही अदृश्य मे टग गई थी। मुखमुद्रा भी प्रसन्नता और गंभीरता मे बंटकर बिखर गई थी।

मोहिनी की प्यासी आखे अपने प्रिय के मुख को मृग-मरीचिका के समान निहार रही थी। प्रिय का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उसने सहसा गाना आरम्भ कर दिया—

तन तरफत तुव मिलन बिन प्ररु दरसन बिन नैन।
श्रुति तरफत तुव बचन बिन सुन तरुणी रसऐन॥

आनन्द और आश्चर्य से ऊभचूभ, तुलसी मानो ठगे-से देखते रह गए। जो दोहे वह कभी मोहिनी को अर्पित करने लाए थे, उसे मिल गए थे। अपने शब्दो को दूसरे के द्वारा गाए जाते हुए सुनने का उन्हे यह पहला ही अवसर मिला था। वह अपने आनन्द और गर्व मे उस समय दिल्ली के मुगल बादशाह से भी बड़ी गद्दी पर बैठे थे। गाते हुए मोहिनीबाई ने तुलसी के 'तरुणी' शब्द को बदलकर बड़ी छेड़-भरी अदा के साथ 'सुन्दर' और 'तुलसी' की जगह 'मम मन' शब्द जोड़कर बड़े नखरे के साथ गाया—

बड़ो नेह तुलसी लग्यो और न कछू सुहाय।
तुलसी चंद्र-चकोर ज्यों तलफत रैन बिहाय॥

मोहिनी के जादू-भरे स्वर की डोर के सहारे तुलसी का ध्यान मानो घुटन-

भरी भूलभुलैया से निकलने की राह पाकर उतावली से दौड़ा हुआ बाहर चला आया। मोहिनी के स्वर मे सचमुच ही बडा आकर्षण था। तुलसी के प्राण संगीत के स्वर मे लहरा उठे। एक साथ-एक स्वर मे चहकते ही दोनो खिलखिला उठे। हसी का यह छोटा किन्तु भरा-पूरा दौर बीता।

मोहिनी का मानो सब कुछ मिल गया था। पूर्ण तृप्ति के साथ प्रिय को देखती हुई वह खिलकर बोली—"इन दोहो मे आपने मेरा मन ज्यो का त्यों दर्शा दिया है।"

तुलसी हसे, कहा—"अब मेरा और तुम्हारा मन अलग तो रहा नही मोहिनी।"

"कम से कम मैं तो यही अनुभव करती हू। अच्छा उठिए, भोजन कर लीजिए। असुर का राज्य है। यह सारे दास-दासी उसी के हैं, मैं शीघ्र से शीघ्र आपको लेकर यहा से निकल जाना चाहती हूं।"

सुनते ही तुलसी चौंक उठे, पूछा—"हम कहां जाएंगे?"

"काशी राज्य की सीमा से बाहर, जहा उसमान खा का शासन न हो।"

तुलसी और गभीर हो गए, कहा—"पानी सब जगह है एक ही, फिर एक सिरे की शक्तिशाली तरग को दूसरे सिरे पर तरंगें उठाते देर नही लग सकती। मै अपने प्राण देकर भी तुम्हारे शक्ति-सम्पन्न सरक्षक से तुम्हे मुक्ति नही दिला सकता।"

मोहिनी का आनन्द से चमकता मुख इस यथार्थ-बोध से स्याह पड गया। आंखो की ज्योति बुझ-सी गई। परन्तु मन के उल्लास ने इतनी जल्दी सहसा अपने ऊपर भय का आरोपण पसद नही किया। अपनी बेबसी पर क्रोध चढ आया, झुझलाकर उत्तर दिया—"हम यदि सुख से साथ जी नही सकते तो मर तो सकते है। तुम्हारे साथ रहकर मरने मे भी मुझे सुख है।"

तुलसी अब तक गहरे विचारों मे उतर चुके थे। मोहिनी की बात सुनकर कहा—"व्यर्थ मे मरकर तुम्हे भला क्या सुख मिलेगा? यह धन-वैभव, यह मान-सम्भ्रम तुम्हे भले ही मेरे साथ न मिले पर यदि हम सुख से जी सकें तब तो भाग चलने मे सार्थकता भी है, अन्यथा हमारा भागना एक निरी मूर्खता का काम होगा।"

मोहिनीबाई सुनकर एकाएक बडे आवेश में आ गई। कड़वा मुह बनाकर व्यग्य-भरे स्वर में बोली—"मैं यह भूल ही गई थी कि पडित लोग बड़े ही कायर होते है।"

तुलसी को बुरा लगा, आत्मतेज जागा, किंतु शात स्वर मे समझाते हुए कहा—"प्रश्न कायरता का नही, तुम्हारी रक्षा का है मोहिनी। जिसे मैंने चाहा है, उसे विवश मरते या अपमानित होकर बंदी बनते देखना क्या मेरे या किसी के लिए सुखकर हो सकता है?"

मोहिनी चुप रही। उसका चेहरा आवेश से फडफडा रहा था। आखे ऐसी लग रही थी जैसे पानी मे आग लगी हो। तुलसी का हृदय उसे देखकर सहानुभूति से उमड़ पडा। मन उसे अपने कलेजे से लिपटा लेने के लिए लपका, दो

डग आगे बढ भी गए, फिर संस्कारों ने पैरो के आगे मानो लक्ष्मण-लीक खींच दी। ठिठककर रह गए, मन फिर विचारमग्न हो गया। मोहिनी के आंसू आखों से ढुलक पड़े, गालो पर बहने लगे, होंठो के किनारो पर सुबकियों की फुदकन बढने लगी।

तुलसी उसे देखकर बोले—"तुम्हारी विवशता निश्चय ही किसी भी न्याय-शील व्यक्ति के हृदय मे सहानुभूति जगा देगी। मैं छोटा-मोटा राजा-सामंत होता, मेरे पास सौ-पचास लठैत होते तो एक बार तुम्हे लेकर निकल चलने की बात सोच भी सकता था। धन और प्रभुता के दुर्ग मे तुम्हारे रूप, गुण और यौवन को भलीभाति सुरक्षित कर लेता···किंतु इस स्थिति मे तो प्राण देकर भी तुम्हे न बचा पाऊंगा। तुमने अभी मेरी कायरता की बात कही। हा, मोह-वश मनुष्य कायर भी हो जाता है। अपने सामने तुम्हारे प्राण जाते मैं कदापि नही देख सकूगा।"

चुपचाप खड़ी आसू बहाती हुई मोहिनी का कलेजा फिर तड़पा। रुंधे हुए कण्ठ से बोली—"प्रेम विचार-विचरण मात्र से नही होता ब्रह्मचारी जी, वह मनुष्य को कर्म-संलग्न करना जानता है।"

इस व्यंग्य से तुलसी का आत्मतेज भड़क उठा, बोले—"तुम्हारा कृतज्ञ हूं मोहिनीबाई, तुम्हारी इस बात ने मेरे मन मे प्रेम का स्वरूप उजागर कर दिया। ···नही, मैंने तुमसे प्रेम नही किया। मैं वस्तुतः तुम्हारे रूप और गायन कला पर आसक्त होकर तुमसे वह अनुभव पाने का अभिलाषी हूं, जिसे पाकर ब्रह्म-चारी गृहस्थ हो जाता है। और तुम भी निश्चय ही काम-क्षुधावश मुझ पर आसक्त हो। यह प्रेम नही है, तृष्णा है। प्रेम मैं राम से करता हूं। तुम्हे पाकर कदाचित् शीघ्र ही मेरे मन मे यह असंतोष भड़केगा कि नारी तृष्णा के कारण मैंने राम को खो दिया।"

मोहिनी दीवानी-सी दौड़कर तुलसी से लिपट गई और बिलखकर कहने लगी—"यह न कहो प्राणधन! मेरे मोह-मंडित काच के महल को संन्यास के पत्थर न मारो। यह रूप, यह यौवन, यह देह भोगने के लिए है। इसे भोगकर ही प्रेम उपजता है।"

नारी का प्रथम आलिंगन तुलसी को मदमत्त बनाने लगा, साथ ही नयेपन का अनुभव उन्हे भयभीत भी करने लगा। मन की इस दोहरी स्थिति मे ऊहा-पोह की प्रक्रिया को जाग उठने का सहज अवसर मिल गया। सुरा की बेसुधी के वातावरण मे उनके अंतर का स्वर नरहरि बाबा का स्वर बनकर बोल उठा—'कौड़ी के लालच में अपनी गाठ-बंधी मोहर गवांएगा मूर्ख? वेश्या के लिए राम को त्यागेगा?'—"ना, ना। मुझे जाने दो मोहिनीबाई। मैं अप्राप्य वस्तु के प्रलोभन मे अपने-आपको कदापि नही डालूगा।" कहकर अपने-आपको बांहो के बन्धन से मुक्त कर लिया और एक डग पीछे चले गए, कहा—"तुम अपनी अभिलाषाएं किसी और से पूरी करो मोहिनीबाई। मैं राम का गुलाम हूं, तुम उसमान खां की चाकर। हम दोनो अपने-अपने बंधनो से बंधे हैं। तुम मेरे लिए इस समय भले ही अति आकर्षण-भरी हो, किंतु तुम्हारे लिए अपने जीवन का

श्रेष्ठतम आकर्षण-भाव छोड़ना मेरे वास्ते असंभव है। यदि मैं अपनी और तुम्हारी कायिक भूख के वश में होकर उसे इस समय भूल जाऊं तो भविष्य में मैं उसके कारण निश्चय ही पछतावे में आकर तुमसे घृणा भी कर सकता हूं। यह अनुचित होगा। किसी भी कारण से सही, हमने एक-दूसरे को चाहा है। इतने दिनों में हमारे बहुत-से क्षण एक-दूसरे के प्रति समर्पित सुन्दरतम भावों में बहते हुए बीते हैं। मैं सांस लेता था तो लगता था कि जैसे हवा में बहकर तुम्हारी ही सांसें मेरे प्राणों में आकर समा रही हैं। तुम्हारे संगीत ने आठों पहर मेरे कानों में गूंज-गूंज कर इतना सौंदर्य जगाया है कि उसे भूलने को जी नहीं चाहता। मैं यह कदापि नहीं चाहता कि मेरा वह सोना कल मिट्टी साबित हो जाए। दुविधा में माया और राम दोनों ही चले जायं।"

रोते हुए मोहिनी ने कहा—"मनुष्य के मन से सुन्दर और कुछ भी नहीं होता। ईश्वर यदि है तो मनुष्य के मन में ही समाए हैं। उसे तोड़कर जाओगे पण्डित जी तो तुम्हें राम कदापि नहीं मिलेंगे। एक अबला का शाप तुम्हें खा जायगा।"

तुलसी को बुरा लगा। व्यंग्य-भरी हंसी हंसकर बोले—"जब महाश्मशान के सारे भूत मिलकर मेरे राम-प्रेम को न खा सके तो तुम्हारा वासना-प्रेरित शाप भला मेरा क्या बिगाड़ लेगा? अब मुझे और अपने को व्यर्थ के छलावे में न बांधो।...मैं जाता हूं। जै सियाराम।"

तुलसी की गम्भीर बातों के यथार्थ में मोहिनी बंध गई थी। उसकी मनोदशा उस शेरनी के समान थी जो जंगल के प्रेम में अपना पिंजड़ा तुड़ाकर भागी हो और फिर पकड़ी जाकर दोबारा पिंजरे में बंद करने के लिए बाध्य की जा रही हो। अपनी विवशता के बोझ से अभागी मोहिनी का मन आंसुओं के समुद्र में डूबने लगा। वह अपने आपे में नहीं थी। एक सीमा के बाद तुलसी के शब्द भी उसके लिए निकम्मे हो गए थे। बाहर से सब कुछ जल रहा था और भीतर आंसुओं का सागर था। तुलसी जाने लगे तो उसकी आंसू-डूबी आंखों पर छाया पड़ी, चौंककर होश आया, हाथ बढ़ाकर आगे बढ़ी, भर्राए हुए स्वर में कहा—"भोजन तो करते जाइए"

तुलसी रुके, मुस्कराए, कहा—"आज की यह पार्थिव भूख ही मेरा वैचारिक भोजन बन गई है। तुम हर तरह से सुखी रहो शुभ-मोहिनी, मुझे तुमसे बहुत कुछ मिला है। मैं तुम्हें भूल न सकूंगा।"

तुलसी ने सीढ़ियां पार कीं, ड्योढ़ी, बगीचा और फाटक पार किया, बाहर निकल आए। सड़क पर कुछ दूर जाकर उन्होंने एक बार और उस घर को दृष्टि डाली। लगा कि जैसे जीव का अपने एक जन्म से साथ छूट रहा हो। मन अब भी सब कुछ वही चाहता है, किन्तु ज्ञान यथार्थ-बोध कराता है। जो मनुष्य बनकर जन्मता है उसके मन को यह हक है कि वह असंभव से असंभव वस्तु की चाहना भी कर ले, पर उसे पाने की शक्ति और औचित्य के बिना क्या वह हक यथार्थ है? अपनी परिस्थितियों पर विचार न करनेवाला व्यक्ति मूर्ख होता है। तुलसीदास इस समय मन के दर्द में ज्ञान की गूंज से बचना चाहते थे। इससे तो अच्छा था कि मन राम में रमता...पर अभी राम लौटकर नहीं आते और

मोहिनी छूटकर भी नही छूटती। तुलसी का अहम् बुरी तरह सिसक रहा था और इस सिसकन मे ज्ञान की गूज सहारा-सी बनकर आती थी। तुलसीदास अटूला अधीरा-सा मन लेकर सीधे मेघा भगत के यहा ही पहुचे।

दिन का समय था। मेघा भगत भोजन करके अपने भीतर वाले कमरे की चौकी पर लेटे कुछ गुनगुना रहे थे। बाहर से किसी भक्त की आवाज कानो मे आई—"नही, नही, यह उनके विश्राम का समय है। इस समय कष्ट न दीजिए।"

"कौन है, सकठा ?" मेघा भगत ने तकिये के सहारे बैठते हुए पूछा।

"तुलसी पंडित है, महाराज।"

"अरे आ रे, मेरे भइया।" कहकर मेघा भगत उछलकर अपनी चौकी से उठ खडे हुए और बदहवास से आगे बढे। उसी समय तुलसी ने भीतर प्रवेश किया। एक बार आखो का आमना-सामना हुआ। तुलसी की आखे छलछला आई, फिर नीची हो गईं, फिर जैसे भटका बच्चा अपनी मा की गोद मे आया हो वैसे ही झपटकर वे आगे बढे। थोडी देर तक दोनो एक-दूसरे से चिपके आसू बहाते रहे।

ऐसे ही कुछ क्षण बीत जाने पर मेघा भगत ने हसकर कहा—"कहते हंसी आती है, पर मेरे राम प्रभु अनन्त ब्रह्माण्डो के स्वामी होकर भी अपने भक्तो के लिए काम धोबी का करते है। जीव को, जहा उसमे मैल होता है, ऐसा पछाड़-पछाड कर धोते है कि बस देखते ही बनता है। मैं तो उनके इसी सौंदर्य पर रीझा हू रे। बोल, तुलसी, आज चलू पूज्यपाद शेष महाराज जी के यहा ? तेरी ओर से मै आज्ञा मागूगा। चल तीर्थाटन कर आए।"

तुलसी बोले—"आप मेरे जी की बात कह रहे है। इस समय काशी मे मेरा मन नही लगेगा। मेरा वातावरण बदलना ही चाहिए।" × × ×

स्मृति-पट से मोहिनी का प्रसंग बीत जाने के बाद बाबा को ऐसा लगा मानो उनका एक जन्म बीत गया हो। ध्यान मे वे फिर से एक बार मोहिनी के वर्षों पुराने चेहरे को खीचकर लाने का प्रयत्न करने लगे। वह बांकी चितवनो से तुलसी को ताकने वाली मीनाक्षी मोहिनी अब सजीव देहधारी न होकर मात्र एक मूर्ति-भर ही रह गई थी, जिसमे प्राण नही केवल कलात्मक शक्ति से उत्पन्न प्राण का आभास मात्र ही था। तुलसी अब उससे वीतराग हो चुके थे। आकर्षण अब वहा नही वरन् ज्योति के फर्श पर टिके हुए श्यामल-गौर, पाद-पद्मो पर था। सीता माता के अलक्तक से रगे हुए अरुणाभ चरणो मे मणियो जड़ा आभूषण तुलसी की आंखो मे अपनी कौंध भर रहा था। पैरो की दसो उंगलियो-अंगूठो मे सोने के जड़ाऊ छल्लों और टखनो पर बधी पायलो मे पिरोई हुई हीरे-मोती जडी सोने की लड़ियो की चमक मे बाबा को अपने ही चेहरे दिखलाई देते थे। जगदम्बा ने मानो अपने चरणो मे तुलसी को गहना बना पहन रखा हो। पास ही दाहिनी ओर धरती पर टिके हुए धनुष के पास ही वे तेजपुञ्ज श्याम चरण थे जिन्हे देखते ही बाबा की आनन्द समाधि लग गई।

संत बेनीमाधव का निरंतर जूझता रहनेवाला मन बाबा की आत्मकथा के

इस प्रसंग को सुनकर गम्भीर हो गया ।

१६

सूर्यनारायण धीरे-धीरे अस्ताचलगामी हो रहे थे । आकाश रगीन वादलो की चित्रपटी वन गया था । वावा अस्सी घाट के एक तखत पर सूर्य भगवान से टकटकी लगाए, हाथ जोड़े वैठे हुए मौन प्रार्थना-लीन थे। घाट पर उनके साथ वेनीमाधव विराजमान थे । रामू गंगाजल के निकट सीढ़ी पर वैठा हुआ तावे की कलसी को वालू से चमचमा रहा था । एक-दो व्यक्तियो को छोड़कर घाट प्राय: सूना था । स्नान करनेवालो की भीड से मुक्त होने के कारण गगा इस समय वैसी ही सतोपभरी शान्त लग रही थी जैसी कि दुहे जाने के वाद गाय लगती है । अस्त होते हुए सूर्य की ओर दूर पर एक नाव जा रही थी । परन्तु उससे नदी और वातावरण पर छाई हुई मनोरम शाति को कोई व्याघात नही पहुच रहा था । रामू से दो सीढी ऊपर वैठा भांग घोंटता हुआ एक अवेड व्यक्ति किसी पहले से चलती हुई वात के प्रसंग मे कह रहा था—"अरे, हमने अपनी आखो से देखा है । ये कोने वाली दीवाल से सटा हुआ वह रात-भर एक टाग पर खडा रहता था । वस हाथ जोड़े हुए ध्यानमग्न होकर जप किया करै, न हिलै न डुलै—ऐसा कठोर तपस्वी रहा ।"

उस व्यक्ति के पास ही, गीले वादामो से छिलके उतारते हुए दूसरे अधेड व्यक्ति ने कहा—"दिन मे भी वह अपनी कुठरिया मे वैठे-वैठे जप किया करता था । मैने तो उसे कभी सोते हुए देखा नही भैया । ऐसी कठिन तपस्या करके भी वडा अभागा रहा वेचारा ।"

कलसी को पानी से धोते-धोते तनिक रुककर रामू ने वाते करनेवाले व्यक्तियो की ओर सिर घुमाकर पूछा—"अभागा क्यो था, मुन्नू काका ?"

"अरे, एक सेठ की जवान-जवान विधवा लड़की रही। वह उसके पीछे लगी । रोज आवै, फल-फलारी मेवा-मिष्ठान्न लावै । विचारा वहुत भागा उससे, पर उस लौंडिया ने छोडा नही । ऐसी दीवानी वनके उसकी सेवा मे लगी कि उसका जोगजप सब उस लौंडिया की मद-भरी आखो मे वूड गया ।"

वादाम छीलनेवाला व्यक्ति वोला—"राम जी जिस-तिस को अपनी भक्ति भी नही देते हैं भैया । जो ऐसा होता तो सब कोई हमारे गुसाईं वावा की तरह से न हो जाते । क्या हम कुछ झूठ कहा वावा ?" अपने से दो-तीन सीढिया ऊपर तखत पर वैठे वावा की ओर देखकर उसने पूछा । वावा वोले—"राम तो सब पर कृपा करते हैं देवतादीन । हानि-लाभ, जीवन-मरण, जस-अप-जस बिधि हाथ । अपने प्रतिफलन के लिए पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्मो का भी हमारे इस जीवन के कर्म मे प्रवल आकर्षण होता है । यही तो माया है । इस माया का विषैला तीर एक-न एक वार सभी को लगता है—

" श्रीमद् वक्र न कीन्ह केहि
प्रभुता बधिर न काहि,
मृगनयनी के नयनसर
को अस लाग न जाहि ।"

दोहा पढते हुए बाबा की आखो मे एक बार वर्षो पहले की मोहिनी छवि मासल होकर उभर आई। उसने दोनो हाथ नृत्य की मुद्रा मे ऊचे उठाए और देखते ही देखते मोहिनी चांदी चमकती सीढी बन गई। जिसपर चढ़ते हुए तुलसीदास अपने राम के पास आधी दूरी तक पहुंच गए। राम अब भी आकाश मे थे किन्तु सीढी चुक गई थी। बाबा के ध्यान-पट पर अपना युवारूप सीढी के आखिरी डण्डे पर खडा हुआ अपने राम तक पहुचने के लिए अधीर दिखलाई दिया। युवा तुलसी के अपने और अपने इष्टदेव के बीच मे रहस्य की सतरगी पारदर्शी घटाओं मे रतना का चेहरा चमक उठा।

अपने अन्तर्दृश्य को देखकर बाबा मुस्कराए। पैर के तलुए पर धीमे से हथेली रगड़ते हुए मुख से भाव-भरा 'श्रीराम' शब्द उच्चारित किया। तभी नीचे से देवतादीन सिल की भाग समेटकर उसका गोला बनाते हुए बोले—"साच कह्यो बाबा, जवानी ससुर बवडर होत है बवडर। जेहिका राम बचाय लै जायं वहै भागमान है। हम लखनऊ मा रहत रहे, महराज। तब हमै कसरत-कुस्ती का बडा सौख रहा। तीन एक नउनिया हमारे ऊपर आसिक हुइ गई। वहै हमका यू भाग का सौख लगाइस, रहै। राम जी की किरपा भई, हम एक बैपारी की नौकरी पाय गयन, तब हिया चले आयन। उइ निगोडी का साथ छूटा। पर ई महारानी विजया महामाया हमरे सगे ऐस लिपट गई कि देखौ, आपौ कै लाज-सरम हम नाहि कारिति है। मुदा एक बात है बाबा, हम जब भाग पीमित हई, तो 'ओम नमः शिवाय, ओम नम शिवाय' जपत रहिति है। यहिते माया हमका लिपटाय न सकी।"

"लिपटाए तो हुए है। बरसो से देखता आ रहा हू, साझ-सवेरे दो घडी का समय तुम अपनी उस माया से लिपटने मे नष्ट कर देते हो। तुम जो इतना समय अकेले मत्र जपने मे लगाते तो तुम्हे उस समय के सदुपयोग का अधिक सुफल मिलता।"

बाबा की बात सुनकर देवतादीन, अपनी झेप को अपनी मस्ती से दबाकर बोला—"अरे बाबा, अब दोख है तो दोखै सही हमार, का करी? जोरू न जाता, राम जी से नाता। ई नातेदारी के कारन हमका आपके नित्य दरसन मिलत है और आपैके चरनन मे हम भाग घोटिति है। दिन मा चार घटा गल्ले की दलाली और हिया ते जाइके दुई घड़ी · "

"अरे बसकर अपनी बक-बक! नही तो आज ओम् नम. शिवाय के बजाय यह बक-बक ही भाग के साथ तेरे पेट मे जाएगी।"

सब लोग हंस पड़े। संत बेनीमाधव ने बाबा से पूछा—"गुरू जी आपने यह व्यसन कभी नही किया?"

नटखट बच्चे की तरह वेनीमाधव की ओर देखकर वावा मुस्कराए, फिर अपनी उगलियो से अपनी छाती को छूकर कहा—"अरे यह काया भाग का पौधा बनकर ही उपजी थी, तुलसी तो राम-कृपा से हुई है। हमारी पाठशाला के व्यवस्थापक मामा जी की भाग घोटते-घोंटते ही मुझे उसका इतना नशा चढ गया कि फिर पीकर क्या करता।" कहकर वावा हसे। वेनीमाधव जी ने पूछा—"आपने कहां-कहा तीर्थाटन किया प्रभु ?"

"अरे राम भगत कहा तक हिसाव वतावें। तव हमारी मन की आंखें कुछ काल के लिए अंधी हो गई थी। मेघा भगत, अंधे की लाठी के समान थे। आयु मे भी हमसे लगभग आठ-दस वर्ष बड़े थे।...राम जी ने अपनी ड्योढी तक लाने के लिए हमारे लिए नेह-नातो की जो सीढिया वनाई थी उनमे पार्वती अम्मा थी, सूकरखेत वाले वावा थे और यहां पूज्यपाद गुरु जी महराज के रूप मे मुझे पिता मिले। वजरंगवली को मैंने सदा अपना सगा वड़ा भाई करके ही मन से माना है। वड़ी घुटन मे उनसे गिड़गिड़ाकर कहता था कि कभी प्रत्यक्ष होकर भी मेरी वाह गह लो ..मैं यह मानता हू कि मेरे लिए वजरंगी ही मेघा भगत का रूप धरकर मुझे नये प्राण देने के लिए आ गए थे।"

"आप भगत जी से वहुत अभिभूत हैं ?"

"अभिभूत तो इस भूतभावन की परमपावन काशी नगरी से हूं। काशी के वायुमण्डल ने ही तुलसी को तुलसीदास वनाया। इसने मुझे गुरु, माता-पिता, मित्र, भाई, यश, अपयश और राम-पद-नेह सभी कुछ दिया।" कहकर वावा रुके। फिर हसकर कहा—"हम तुम्हारे जी की उतावली जान रहे हैं वेनीमाधव। तुम्हारा मन हमारे तीर्थाटन का वृत्तात जानने मे लगा है। किन्तु भाई, हमारा भी तो मन है। जव हम उन वीते क्षणो का द्वार खोलते हैं तो एक-एक क्षण के अनंत भडारो से तुम्हारे प्रश्न के उत्तर खोज लाने के सिवा हमे और भी वहुत कुछ आकृष्ट कर सकता है। अव हमारा अन्तकाल आ गया समझो। वहाने-वहाने से पुराने दिन, पुराने लोग, इन नव्वे वर्षों के अनगिनत क्षणो का हिसाव लगाने को जी अधिक चाहता है। कितना करना था, कितना किया, आगे के लिए धर्म को और किस तरह से साधे कि जिससे इसी जन्म मे अधिकाधिक सिद्धि मिल जाय। राम-पद-नेह प्राप्त करने का उछाह मेरी सासो मे एकरस होकर ही इस देह से वाहर जाय, वस यही एक कामना है। ..अंधेरा झुक आया है, रामू आ जाय तो भीतर चले। पहर-भर रात वीते आ जाना वेनीमावव, आज रात तुम्हे और रामू को अपने वीते क्षण अर्पित करूगा।"

रात के समय वावा आपनी चौकी पर सुख से लेटे हुए थे। वेनीमाधव चौकी के नीचे आसन पर वैठे थे और रामू उनके पैर दवा रहा था। दीवाल पर पड़ते हुए दिये के प्रकाश मे हनुमान की मूर्ति चमक रही थी। वावा कह रहे थे—"जव मैंने काशी छोड़कर तीर्थाटन करने का निश्चय किया तो मेरी अइया, गुरु भगवान की सहधर्मिणी वहुत दुखी हुई थी। मामा ने तो क्रोध मे आकर मुझे और मेरी ही लपेट मे भगत जी को भी शाप तक दे डाला था। (खिल-

खिलाकर हंस पड़ते हैं) कैसे-कैसे निर्मल लोग थे ! मामा तो, बस क्या कहें, उनमे बाल, युवा, प्रौढ और वृद्ध सभी रूप ऐसे स्पष्ट होकर आविर्भूत होते थे कि देख-देखकर मन खिल उठता था। हम आई की चौकी के नीचे दालान में बैठे थे। आई कह रही थी × × ×

"मेरी इच्छा तो यही थी कि तुम यही रहते। एक बार तुम्हारे गुरु महाराज ने मुझसे कहा था कि रामबोला के संरक्षण मे बडे मुनुवा, छोटे मुनुवा हमारे बाद भी सुरक्षित रहेगे। हम दोनो का तुम्हारे प्रति जो मोह है वह तुम जानते ही हो।"

गला और आखे भर आईं। अइया पल्ले से आसू पोंछ रही ही थीं कि मामा भीतर आए। उनके हाथ मे सोंटा भी था। आते ही परशुरामी मुद्रा मे तुलसी को देखकर अपनी बहन से कहा—"तुम इस मूर्ख के लिए रोती हो जीजी! हजार उल्लू के पट्ठे जब पैदा होकर मरते है तब उनकी मिट्टी गूंथकर भगवान एक तुलसी गढ़ता है। अच्छा-भला विवाह तै किया इसका। लडकी ऐसी सुन्दर कि रूप में उस कोतवाल की चहेती को भी लजवावै। और वेद पढने मे तो मानो सुग्गा है सुग्गा। बीस-पच्चीस हजार की माया—रूप, गुण, लक्ष्मी, सरस्वती सब एक साथ। और एक सास-ससुर घेलुवे मे। सो इनसे सहा नही गया। अब मेघा भगत के साथ गांव-गांव डोलेंगे। लाख दुख सहेगे। कलिकाल के लड़को की बुद्धि बिलकुल भ्रष्ट है जिज्जी। इनसे बात करना ही वृथा है।"

अइया बोली—"इसकी बुद्धि नष्ट तो नही है, भइया, यह राम-मार्ग पर जा रहा है बेचारा।"

"राम नही भाड़-भड़साईं-मार्ग कहो। अरे घर गृहस्थी लेकर क्या लोग राम-राम नही जपते है? अब मेघा और तुलसी जैसे लडके घर-गृहस्थी की राह छोडकर भगतबाजी की बात करेंगे, तो इनसे पूछो कि सरऊ पढे क्यों थे फिर? राम-राम तो मूरख भी रट सकता है।"

"क्या कहूं मामा, श्रीगुरु-चरणरूपी पारसमणि का स्पर्श पाकर भी यह अभागा जंग लगा लोहा ही बना रहा।"

मामा लाठी तानकर आखे निकालते हुए बोले—"देख बे, मेरे सामने जो तूने दर्शन-ज्ञान बघारा तो मारते-मारते अभी भुरकुस निकाल दूगा तेरा।"

"रहै देव भइया, अपनी भांग का क्रोध इसके ऊपर न डालो।"

"अरे क्या जिज्जी, मैं सरजू मिसिर की पत्नी से पक्का कर आया था कि चाहे और कुछ न देना-लेना पर बड़हार मे ग्यारह मिठाइया परोस देना। हम संतुष्ट हो जाएंगे। चुन्नी साव से पक्का किया रहा कि सरऊ उस दिन जो तू हमे कस्तूरी मे भाग छनाय देओगे, तो तुम्हे हम शुद्ध अन्तःकरण से बेटा होने का आशीर्वाद देगे। सो वह हाथ जोडकर राजी हो गया था। अब यह हमारी सारी योजना मिट्टी मे मिलाकर घर से भागा चला जा रहा है। जा अभागे, अब इस ब्राह्मण का भी शाप है कि तू गृहस्थ न बनकर भगत ही बनेगा।"

तुलसी हंस पड़े, मामा के पैर छूकर कहा—"गुरुजन प्रेमवश जब शाप भी

देते हैं तो ऐसा कि वह वरदान बन जाता है।" × × ×

१७

रामू पैर दबाते हुए अचानक उत्साह मे बोला—"एक बार आप बताते रहे कि तीर्थाटन मे भगत जी के साथ आपको मुगल फौज ने बेगार मे पकडा था।"

बाबा मुस्कराए, आखो मे स्मृतियां झलझला उठी। बोले—"हा रे, उसकी तो याद मात्र से ही मेरी पीठ इस समय भी भारी हो उठी है। हमारे उत्साह के कारण बेचारे भगत जी को भी बोझा ढोना पड गया था।"

बेनीमाधव जी के चेहरे पर उत्सुकता झलक उठी, कहा—"हमे उस प्रसंग को सुनाने की कृपा करेगे गुरू जी।"

बाबा बोले—"जब जीवन का मूल्यांकन करने बैठा हूं तो उसे भी सुना दूगा। जीवन-माला की प्रत्येक मजिल पर मुझे श्री रामचरणानुराग मिला। अत: कथा मेरी न होकर भक्ति-धारा के प्रवाह की ही है। फिर उसे सुनाने मे मुझे संकोच क्यों हो।" कहकर बाबा चुप हो गए। क्षण-भर ऐसे ही बीता, फिर वे रामू के हाथो से अपना पैर झटका देकर छुड़ाते हुए सहसा उठ बैठे। उनकी दृष्टि किसी दूरागत दृश्य को देख रही थी। स्मृति लोक में नगाडे बज रहे थे और अंधकार क्रमश. उजाले मे परिवर्तित होता चला जा रहा था। मनो-दृष्टि मे हिमाच्छादित कैलास पर्वत और मानसरोवर का परमपावन और सुहा-वन दृश्य झलका। नगाड़ो की ध्वनि मानो हर-हर कर रही थी। × × ×

तुलसी मेघा भगत और कैलासनाथ के साथ मानसरोवर के किनारे खड़े थे। कैलास बोले—"अपने नाम के पर्वत को तो दूर से देख रहा हू, किन्तु यदि इसके ऊपर डमरू-त्रिशूल-धारी गगाधर चन्द्रशेखर जी मुझे दिखलाई पड़ जायं तो फिर यह यात्रा ही नही यह सारा जीवन सफल हो जाय।"

"अपनी इच्छा को तीव्र करो कैलास, जिस वस्तु पर जिसका सत्य स्नेह होता है वह उसे अवश्यमेव मिलती है।"

तुलसी मेघा भगत की बात सुनते हुए झील के प्रवाह को देख रहे थे। हिलोर लेती हुई लहरे सहसा नाचते हुए नर्तकी के पैरो की घुघरू-सी लगने लगती है। नृत्यरत पगो मे बडा चाचल्य, बड़ी मादकता, बडी कविता है। पैर झील की लहरो पर नाचते-नाचते मोहिनी के पैर बन जाते है। ऐसा लगता है जैसे मोहिनी मानस-झील का मूर्तिमान सौन्दर्य बनी, लहरों पर नाचती हुई तुलसी को रिझा रही है। 'सुनी री मैने हरि आवन की अवाज।' तुलसी के बिम्ब और गूज दोनो ही मोहिनीमुग्ध हो रहे हे। चेहरे पर अपार सुख बरस रहा है। तभी मेघा भगत का स्वर कानों मे पड़ता है, वे कह रहे थे—"मेरे लिए यह मानसरोवर राम उजागर बन गया। लहर-लहर मे सीताराम-सीता-

राम-सीताराम…"

तुलसी की अंतश्चेतना गूंजी—'देखा, यह है सत्य स्नेह ! तू झूठे ही राम-भक्त बनने का ढोंग करता है।'

तुलसी की मनमोहिनी नृत्यरता कामिनी खंडित मूर्ति की तरह छपाक् से पानी मे गिरकर ओझल हो गई। तुलसी की पलकें नीचे झुक जाती है, दृष्टि आत्मस्थ हो जाती है। अपना ही होश डाटता है—'मोह भंग कर रामबोला ! तेरी प्रीति क्या क्षणभंगुर पर है ?'

'नही-नही,' प्राणों के भीतर विकल सत्य गूज उठा।

'तब फिर राम को देख ! जैसे प्रबल उत्साह से तेरे भीतर यह मोहिनी झाक उठती है ऐसे जब राम जी के दर्शन होने लगेंगे तब तेरा जन्म सार्थक हो जाएगा। राम को देख !'

तुलसी सावधान होकर राम का ध्यान करते है। पहले ध्यान-पट पर कुछ भी नही आता, फिर एक धनुर्धारी आकर झाईं-सा झलकता है। क्रमश: उभरता है किन्तु पूर्ण रूप से नही, और जब उभरता है तो वह आकार अचानक हंसती हुई मोहिनी का बन जाता है। मन गूजा 'राम-राम'। तुलसी की काया पर सिहरन आ गई। ध्यान-पट फिर शून्य हो गया। मनोलोक मे नया दृश्य आरंभ हुआ। तुलसी अपने हाथों मानो एक मूर्ति गढ रहे हो। मूर्ति बिजली की रेखाओं से गढती चली जाती है। सारी मूर्ति गढ गई। धनुप, तीरों-भरा तरकश, मुकुट, राजसी वेश—किन्तु चेहरा फिर मोहिनी का बन गया। ना-ना-ना। तुलसी की बहिचेतना तक थरथरा उठी। उनकी यह नकारने की ध्वनि इतनी स्पष्ट थी कि कैलास और मेघा भगत चौककर उनकी ओर देखने लगे।

"क्या हुआ तुलसी ?" कैलास ने पूछा।

"कुछ नही।"

"कुछ तो अवश्य था तुलसी। किसको घबरा के न-न कहा ?"

"किसी को नहीं।" तुलसी ने घबराहट-भरा उत्तर दिया।

"छलना बडी विकट होती है राम। बडा नाच नचाती है।" मेघा भगत मानो अपने-आप ही से कह उठे।

हारे, घबराये हुए तुलसी उन्हे करुण दृष्टि से देखने लगे। दृष्टि मिलते ही उन्होने कहा—"घबरा मत मेरा भइया ! सत्य भी सहसा प्रकट नही होता। एक बार तो वह मन मे ऐसा प्रकट होता है कि जैसे प्रत्यक्ष ही हो, परन्तु फिर उस प्रत्यक्ष को वस्तुत प्रत्यक्ष करने मे मनुष्य को लोहे के चने चबाने पडते है। जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।"

तुलसी गंभीर भाव से सिर झुकाकर सुनते है। इस समय उनके प्राण राम ही राम रट रहे है। × × ×

'राम-राम !' बाबा अपने गम्भीर चिंतनलोक से उबरकर बहिचेतना के धरातल पर आ गए। एक बार रामू की ओर देखा फिर बेनीमाधव से दृष्टि मिलाते हुए बोले—"मन अपनी गहरी थाह लेने चला गया था। अस्तु…तो मैं क्या

कह रहा था ?"

"मुगलो के द्वारा वन्दी किए जाने की बात उठी थी।"

"हा ऐसा हुआ कि हम लोग मानस होकर, वदरिकाश्रम आदि होते हुए हरद्वार पहुंचे। वहा सुनने मे आया कि हुमायू वादशाह ने दिल्ली फिर से जीत ली थी, किन्तु उसकी मृत्यु हो चुकी थी। लोदियो के पठान तथा हिन्दू सैनिकों ने मिलकर अपने सेनापति हेमू वक्काल को दिल्लीश्वर की गद्दी पर आसीन कर दिया था। पृथ्वीराज चौहान के उपरात तीन सौ वर्ष वाद दिल्ली पहली वार स्वतत्र हुई थी। हरद्वार मे अनेक साधु और ब्राह्मण वडे उत्साहित हो रहे थे कि अव फिर से साधु-सन्तो की प्रतिष्ठा होगी तथा गो-ब्राह्मणादि को संरक्षण मिलेगा। कई लोग नये दिल्लीश्वर महाराज हेमचन्द्र विक्रमादित्य को आशीर्वाद देने के लिए दिल्ली जाने को लल्लक रहे थे। कैलास भी उत्साहित हुए। परन्तु मेघा भगत वोले × × ×

"वहा जाना मेरी समझ मे उचित नही होगा। अभी मुझे स्थायित्व का आभास नही होता है। लगता है, युद्ध होगा। कदाचित् अन्य प्रकार की आपदायें भी वहां जाकर हमे भोगनी पड़ें।"

कैलासनाथ आवेश मे आ गए, बोले—"विपत्तियों से क्या डरना महाराज! युद्ध होगा तो उसे भी देखेंगे। क्यो तुलसी ?"

"हां, वीर भूमि के दर्शन करना तीर्थ-दर्शन समान ही पुण्यदायक होता है।"

तुलसी की वात सुनकर मेघा भगत मुस्कराए, वोले—"जो अपना युद्ध छोड़कर पराये युद्ध का तमाशा देखने जाता है वह निकम्मा और निर्बुद्धि होता है।"

कैलास इस उपदेश से कुछ-कुछ चिढ गए, वोले—"कभी-कभी सत्य को विचार मे देखकर भी यह इच्छा होती है कि उसे प्रत्यक्ष ही देखा जाए तो भला।"

मित्र की इच्छा देखकर तुलसी ने कहा—"मेघा भाई, यदि हम लोग युद्ध मे फस भी गए तो आपको वहां से किसी सुरक्षित स्थान पर हटा देंगे। हमारे कवि जी के अन्दर वीर भाव जागा है, इनका हौसला वढना ही चाहिए।"

भगत जी हंसे, कहा—"होतव्यता होकर ही रहती है। चलो, जो दुख झेलना वदा है वह तो झेलना ही पडेगा। हम सोचते थे कि यदि उससे वच जाते तो अच्छा था।"

"मुझे अपने मन मे इतना वच-वच के चलना पड़ रहा है मेघा भाई कि अपनी अति सतर्कता से घुटने लगा हूं। वाहर का संघर्ष और कुछ नही तो मन को तगडा ही करेगा।"

"वाहर का सघर्ष चाहते हो तुलसी? अच्छा, तो वही सही। तुम्हे अपने जीवन मे वाहर का इतना संघर्ष झेलना पडेगा कि पग-पग पर तुम्हे राम ही राम याद आयेंगे।"

तुलसी हस पडे। कहने लगे—"मेघा भाई, यदि आप मुझे यह शाप दे रहे हैं, तो भी मेरे लिए यह परम कल्याणकारी है। जिस विधि से राम अधिकाधिक याद

आवें वह विधि कष्टकारी होते हुए भी मुझे मान्य होगी। अपने भीतर की अकेली जूझ से उबर तो सकूगा।"

कुरुक्षेत्र मे उन दिनो बड़ा भीषण अकाल पड़ रहा था। दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि सभी जगह प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी। खेतीविहीन उजड़ा भूखण्ड, रूखी काया, फीके कष्ट और चेहरो वाली ककालवत् कायायें इधर-उधर डोलती थी। इन्हे देखकर लोग घेरते—"बाबा भूखे है, बाबा रोटी। रोटी।"

"कहां है रोटी मेरे भइया ? चलो हेमचन्द्र महाराज से मागे। हिन्दू राजा है, निश्चय ही तुम्हारी दशा पर दया करेगा।"

एक खिचडी बालो वाला जीर्ण-शीर्ण व्यक्ति अपने कमजोर स्वर मे भी यथा-शक्ति जोर से हंस पडा, बोला—"हिन्दू ! ह-ह -ह, अरे बाबा, हिन्दू-मुसलमान तो हम-तुम पच होते है, राजा-राजा होता है। हेमू के हाथी चावल-चीनी और घी के लड्डू खा-खाकर मरने-मारने के लिए तैयार हो रहे है। वह बस लडवइयो को ही भर पेट खिला सकता है। हमारा कोई नही। राम भी नही।" × × ×

सुनाते हुए बाबा बोले—"अकाल के क्षेत्र मे हमने बडे ही विषम दृश्य देखे। एक जगह चार-चार मुट्ठी गेहूं-चावल के लिए लोग-बाग अपनी जवान स्त्रियां, लडके-लडकिया तक बेच रहे थे। करुण कराहे सुन-सुनकर मुझे बस राम ही राम याद आते थे। मन से शृंगार रस सूख गया था। सर्वत्र करुणा ही करुणा देखकर ऐसा लगता था कि मानो पृथ्वी पर आनन्द का अस्तित्व ही नही है। वह केवल एक शब्द मात्र है जिसे पेट भरे हुए लोग ही आपस मे कह-सुन लेते है।"

बाबा के चेहरे पर गम्भीर उदासी छा गई थी। कहते-कहते कुछ पलो के लिए वे थम गए। फिर कहना आरम्भ किया—"मेरे अन्तर मे यदि राम न रमते तो यह जीवन अपने और परायो के दु.खों की कथा मात्र बनकर ही रह जाता। अस्तु। हेमचन्द्र महाराज उन दिनों भरतपुर के पास एक स्थान पर अपना पडाव डाले पडे थे इसलिए हम लोग भी उधर ही चले। दिन ढला तो एक गाव मे डेरा डाला। वह गाव हेमचन्द्र की सेना को रसद पहुचाता था, अन्न-धन से गंज रहा था। वही हमे पता चला कि हेमू महाराज अपनी सेनाएं लेकर पानीपत की ओर बढ गए है। पंजाब से मुगलो की सेना उधर ही बढ रही है। यही सब कहते-सुनते रात हुई। हम लोग एक शिवालय मे सो गए।" × × ×

आधी रात का समय था। अचानक बडी जोर का हल्ला मचा। आहे, कराहे सुनाई देने लगी। तुपकचियो की फटाफट और मशालो के चमकते हुए लुक्के जहा-तहा दिखलाई पडने लगे। लाठी, तलवार, बल्लम, गंडासे चारो ओर चल रहे थे। थोडी ही देर मे वह गाव जिसमे कि हमने रैनबसेरा किया था मुगल सेना की एक टुकडी के कब्जे में आ गया। गाव का अन्न भण्डार मुगलो की सम्पत्ति हो गया। छोटे-बडे, सम्पन्न-विपन्न सभी प्रकार के ग्रामवासी नर-नारी मुगलो के द्वारा बन्दी बना लिए गए। मेघा, तुलसी और कैलास की भी वही दशा हुई। सवेरे पता चला कि मुगलों की बेगमो और सरदारनियों के खेमे युद्ध-

क्षेत्र से दूर इस गांव में लगाए गए हैं। इस प्रकार एक पंथ दो काज सिद्ध किए गए है। स्त्रिया सुरक्षित जगह पर टिक गई। साथ ही शत्रुओ का रसद भण्डार भी मुगलो के हाथ में आ गया।

गधों और खच्चरों के साथ उनके चरवाहो की निगरानी मे इन तीनों को भी अन्य वन्दियों के साथ छोड़ दिया गया था। विचित्र वातावरण था। मनुष्य दासता की विवशता मे पशु बना दिए गए थे। उनका हाकिम अब्दुल्ला वेग नामक एक तुर्क था। वह दो पीढियो से यहा वसा था, हमारी भाषा ही अधिक वोलता था। वडा जल्लाद था वह अब्दुल्ला।

इन तीनो को कुछ और भी व्यक्ति वहा वैठे हुए मिले। वाते होने लगी। वे लोग मथुरा, वृन्दावन के निवासी थे और लगभग एक महीने से वन्दी होकर बेगार ढो रहे थे। दिन-भर वे या तो सामान की ढुलाई करते अथवा छावनियों में सफाई आदि अनेक काम करते हुए अपने दिन विता रहे थे। उन्होने वतलाया कि रात मे रूखी-सूखी खिलाकर उन्हे गधो के घेरे मे छोड दिया जाता है।

तुलसी वोले—"तव तो हमारी भी यही दशा होने वाली है कैलाम। भाई जी ने सच ही कहा था। अपना रण छोड़कर हमे पराये रण-क्षेत्र मे नही आना चाहिए था।"

मथुरावासी वन्दी वोला—"हम लोग भी पछता रहे है भइया। ऐसी मनहूस साइत मे द्वारका जी की यात्रा करने चले कि मार्ग मे एक नही सैकडो छोटी-वडी विपत्तियां सामने आई। हमारे एक साथी को वाघ खा गया। हम दो-चार आदमी उससे लडने-झगडने मे घायल हुए। एक गाव के लोग हमे उठाकर ले गए। अपने वहां रक्खा। दवा-दारू से हमारा चोला चंगा किया। वहा एक सुन्दर खतरानी पर हमारे एक साथी लट्टू हो गए। हमने लाख समझाया कि नन्ददास ऐसा न करो, पर जब किसी की आखें किसी से लड जाती है तो वह फिर थोडे कुछ सुनता है भैया, हमने सोचा कि इसके फेर मे हम सभी मारे जाएंगे। आखिर गाव वालों का हम लोगो पर वडा उपकार था। सो प्रेमदीवाने साथी को वही छोडकर चले आए। फिर इन सिपाहियो की पकडाई मे आ गए, तव से वेगार ढो रहे हैं। तीरथ-यात्रा का यह फल पाया।"

तुलसी ने कहा—"आपने एक स्त्री पर आसक्त हो जाने वाले अपने साथी का नाम नन्ददास ही वतलाया न?"

"हा!"

"वह कवि भी है?"

"हां, हा. वडी अच्छी कविताई करता है और गाता भी खूब है। अरे उसकी संगत मे रस वरसता था भइया, रस! क्या कहे अपनी आवरू वचाने के लिए हमने उसका साथ छोड़ा। पर यह अच्छा नही किया। उसीका दण्ड अव वन्दी वनकर पा रहे है।"

तुलसी ने फिर प्रश्न किया—"वह गोरा-गोरा वडी-वडी आखो वाला है न?"

"हा। सनाढ्य ब्राह्मण है, सोरो के पास कही का रहने वाला है।"

"रामपुर का है! तुम उसे जानते हो?" एक अन्य वन्दी ने पूछा।

"वह मेरा गुरुभाई है। काशी जी में साथ पढ़ता था।"

"ठीक है। वह काशी पढ़ने गए थे। हमें मालुम है। बाकी नाम सुनके तुम हमारे साथी को पहचाने खूब महराज!"

"वह अब भी उसी गांव मे है ?"

"अगर मार-पीट कर निकाल न दिया होगा तो वही होगा।"

"क्या कहा जाय, भले घर का लड़का, पर प्रेम तो उल्लू बना देता है उल्लू।"

तुलसी गंभीर हो गए, पूछा—"उस गाव का क्या नाम है ?"

"सिहपुर! यहां से लगभग पच्चीस कोस पूरब मे है।"

तुलसी ने फिर कुछ न पूछा। वह विचारमग्न हो गए। कुछ देर के बाद उन्होने कैलास से कहा—"अब तो कुछ भी हो कैलास, यहा से मुक्त हुए बिना हमारा काम चल ही नही सकता। नन्ददास को बचाना ही है। तुम्हे भगत जी के पास छोडकर मै एक बार नन्ददास की खोज मे अवश्य जाऊंगा। वह मुझे भाई के समान प्रिय है।"

कैलास बोले—"यह तो ठीक है, पर मुख्य प्रश्न तो म्याऊं के ठौर का है। मुक्त होने का उपाय क्या हो सकता है ?'

"एक ही उपाय है। मै किसी पर अपनी ज्योतिष की माया फैलाता हू। आड़े समय मे यह विद्या बडे काम आती है। कल से छोटे-मोटों के हाथ देखकर, उनके प्रश्नादि विचार कर मैं उन्हे सहज ही मे अपना प्रचारक बना लूगा और फिर शीघ्र ही किसी बडे ओहदेदार तक मेरी पहुंच अवश्य हो जाएगी।"

पानीपत का युद्ध समाप्त हुआ। रात मे हरम के पड़ाव पर समाचार आया कि मुगल सेना जीत गई। हेमचन्द्र विक्रमादित्य पकड़ा और मारा गया। दासो और वन्दियो के यमराज अब्दुल्ला को पानीपत से आए हुए किसी व्यक्ति ने हेमू की लडाई का वर्णन किया। उससे खबरे ही खबरें फैल गई। हेमू अपने हवाई नामक हाथी पर सवार हो सेना के मध्य खड़ा सैन्य सचालन कर रहा था। मुगल सेनापति खानेजमा अपनी जगह पर खडा दूरबीन से देख रहा था। उसने हेमू को देखा। एकाएक सेना को ललकारकर खानेजमा ने उसपर हमला किया। हेमू हाथियो की दूसरी पात मे था। उसके चारो ओर बहादुर पठानो का झुण्ड था। खानेजमा ने फिर घेरे को ही तोडने का निश्चय किया। तुर्क तीरो की बौछार करते हुए बढे। हाथियो के हमले को हौसले और हिम्मत से रोका। वे तैयार होकर आगे बढ़े। जब देखा कि घोड़े हाथियो से बिदकते है तो कूद पड़े और तलवारें खीचकर शत्रु की पंक्तियो मे घुस गए। उन्होने वाणो की बौछार से हाथियो के मुह फेर दिए और उन काले पहाडो को मिट्टी का ढेर-सा बना दिया। अद्भुत घमासान रन पडा। हेमू की बहादुरी तारीफ के लायक थी। हौदे के वीच मे नंगे सिर खडा वह सेना की हिम्मत बढा रहा था··

शादीखान पठान हेमू के सरदारो की नाक था। वह धरती पर गिर पडा। सेना अनाज के दानों की तरह बिखर गई। फिर भी हेमू ने हिम्मत न हारी। हाथी पर सवार चारो तरफ फिरता था. सरदारो के नाम ले-लेकर हौसले

बढाता था। वह अपनी भागती सेना को फिर से एकत्रित करने के लिए भर-सक प्रयत्न कर रहा था। इतने मे एक तीर उसकी आंख मे लगा। तब भी वह हिम्मत न हारा। उसने अपने हाथ से तीर खीचकर निकाला और आंख पर रूमाल बांधते हुए भी अपनी सेना को हौसला देता रहा। मगर घाव इतना भीषण था कि कुछ ही पलो मे बेहोश होकर हौदे मे गिर पडा। यह देखकर उसके अनुयायियो की हिम्मत टूट गई, सब तितर-बितर हो गए।

दूसरे ही दिन दिल्ली के लिए कूच का हुकुम हुआ। शाही हरम और उसके साथ ही बड़े-बडे सरदारो की पत्नियो, रखैलो तथा दासियों, नाचने-गानेवालियो और कुछ दूसरे-तीसरे दर्जे के ओहदेदारो की स्त्रियो के खेमे थे। उनके अगले पडाव के लिए तम्बू-कनात आदि गृहस्थी का बोझ ढोकर बन्दी लोग भोर पहर ब्राह्म-वेला मे ही चल पडे। इन राम-श्याम-भक्त बन्दियो का स्नान-ध्यान कुछ भी न होने पाया। तुलसी और कैलास मेघा भगत के लिए चिन्तित थे। वे बेचारे इतने सुकुमार और क्षीण गात थे कि उनके लिए बोझ ढोना असम्भव था। इसके अतिरिक्त वे चलते-चलते ही भाव-समाधि-लीन होकर गिर पड़ते थे, जिसके कारण अब्दुल्ला, यमराज का सिपाही, उन्हे कोडे लगाने से न चूकता था। तुलसी और कैलास इस कारण से विशेष दुखी थे।

सिपाही उजबक जाति का था। वह मुसलमान ही था किन्तु उसके देश मे प्रचलित सनातन बौद्ध संस्कार भी उसमे थे। तुलसी ने उसको समझाया—"यह आदमी सूफी है, कलन्दर है। इसको कष्ट दोगे तो अल्लाह तुम्हारा बुरा करेगा।"

स्वयं सिपाही को भी मेघा भगत के लिए कदाचित् कुछ ऐसा ही आभास अपने मन मे हो रहा था। कुछ सोचकर बोला—"इसका बोझा तुम लोग आपस मे बाट लो और इससे कहो कि कुलियो की कतार से निकलकर गाव की ओर चला जाय।"

मेघा भगत पहले तो राजी न हुए किन्तु तुलसी और कैलास के आग्रह से अन्त मे उन्हे यह करना ही पडा। उन्हे पीछे छोडकर यह दोनो कुलियो के काफिले के साथ आगे बढते गए। मेघा भगत बन्दियो से अलग होकर भी उसी दिशा में अकेले बढ चले।

तुलसी और कैलास दोनो कविबन्धु अपनी इस मुसीबत मे बडे ही विक्षुब्ध थे किन्तु उससे भी अधिक वे विवश थे। यह विवशता तुलसी को मथ रही थी। एक मन कहता, 'राम को विसारकर नारी मे रमा, यह उसी का दण्ड है।' दूसरा मन क्षुब्ध होकर कहता कि यह दुष्ट असुर जो कामिनी-काचन-सत्ता और ऐश्वर्य के मद मे आठो पहर डूबे रहते हैं, कभी एक क्षण के शताश मे भी जो ईश्वर को नही भजते, इनको दण्ड क्यो नही मिलता ?

'दूसरो का क्या होगा या क्या हो रहा है, यह प्रश्न अप्रासंगिक और मिथ्या है।'

'मुझे नन्ददास को बचाना ही है। अपने स्नेही बन्धु को बचाए बिना मरना भी मेरे लिए बड़ा कठिन हो जाएगा।' 'मुक्ति का प्रयत्न करो। राम है, राम है।'

बोझ लादे, सिर और कमर झुकाए हुए जा रहे तुलसी के मुख पर छाई हुई कठोर गम्भीरता मे मन की आस्था से तरावट आई। वे बोझ से दबी पीठ को

तनिक सीधा करने का प्रयत्न करते हुए एक क्षण के लिए थम गए। उसी समय सयोग से कुलियो का जमादार अब्दुल्ला बेग अपना कोडा लिए हुए वहा आ पहुंचा। उसने कड़ककर कहा—"क्यो बे, हरामखोरी सूझी है ?"

तुलसी ने जमादार के मुंह खोलते ही उसके अक्षर गिनने आरम्भ कर दिए थे। अक्षरो से राशिया गिनी और समय का अनुमान करके फुर्ती से लग्न विचारी, फिर मुस्कराकर कहा—"जमादार जी, अगले पड़ाव पर आप जब पहुचेंगे तो आपका हाकिम आपको अपनी एक गर्भवती दासी से जबरदस्ती व्याह देगा। अभी से सावधान होना हो तो हो जाइए।"

जमादार का रौब तुलसी की बात सुनकर क्षण-भर के लिए तो चकरा गया परन्तु फिर अपनी अकड़ के सूत्र बटोरते हुए उसने कहा—"मेरी बात का यही जवाब है ? लगाऊ दो-चार ?"

तुलसी मुस्कराए, कहा—"इस समय आपके तावे मे हूं जमादार जी, मारिएगा तो वह भी सहना ही पड़ेगा। किन्तु मै फिर कहता हूं कि किस्मत की मार से अपने को बचाइयो।"

जमादार फिर चौक से बंध गया, ठडे स्वर मे पूछा—"तू नजूमी है ?"

"जी हा।"

"अगर तेरी बात सच न हुई तो कोई न कोई इल्जाम लगाकर मै तेरा सिर कलम करवा दूगा, याद रखना।"

"बात मेरी नही जमादार जी, ज्योतिप विद्या की है। यह झूठ हो ही नही सकती। मैं आपका दर्द विचार रहा हू।" कहकर तुलसी बढ़ चले। कैलासनाथ उनसे लगभग बीस-पच्चीस कदम अपनी पीठ पर लदे बोझ के साथ रेंग चुके थे। जमादार विचार मे खोया हुआ सिर झुकाए आगे बढ़ गया। तुलसी ने उत्साह से तेज कदम बढाए। और जब तक वह अपने मित्र के पास पहुचे कि जमादार फिर पलटकर उसके पास आया। पूछा—"नजूमी, तुम उस बादी का नाम बतला सकते हो ?"

तुलसी ने फिर अक्षर गिने और मीन-मेष विचारकर कहा—"ग अक्षर से उसका नाम आरम्भ होगा, सरकार। वह सुन्दर होगी और कलाकार भी।"

जमादार की आखे चमक उठी, फिर सोच मे पड़ गया, पूछा—"यह शादी मेरे हक मे होगी ?"

"नागिन नागो मे ही अपना जोडा ढूढती है, जमादार जी। आपके हक मे वह जहरीली है।"

"इससे बच निकलने का क्या मेरे लिए कोई रास्ता नही है ?"

तुलसी ने अपनी पीठ का बोझ धम्म से धरती पर पटक दिया। अब्दुल्ला बेग यह देखकर चौंका। लेकिन बोला नही। तुलसी की मुख-मुद्रा गम्भीर थी और वह अपनी उगलियो के पोरों को अगूठे से गिन रहे थे। गणित करके उन्होंने कहा—

"एक बात पूछू ? गुस्सा तो न होगे ?"

"पूछो।"

"यह स्त्री चोरी का माल है ? आपके मालिक न इसे कही से चुराया है ?"

"हा, ठीक है।"

"जमादार जी, आग से न खेलिए, आपकी जान खतरे मे पड़ जाएगी। अभी से जतन करें तो बच भी सकते है।"

"लेकिन वह औरत जिसके पास हैं वह बहुत ताकतवर आदमी है।"

"हो सकता है, लेकिन नियति का चक्र मनुष्यों से अधिक ताकतवर होता है।" कहकर वे अपना बोझ फिर लादने लगे। अब्दुल्ला बेग पीछे की ओर लौट गया। तुलसी फिर से कैलास के साथ हो लिए। कैलास ने पूछा—"यमदूत तुमसे क्या कह रहा था ?"

"अरे वह हमारे लिए रामदूत सिद्ध होगा। मेरी ज्योतिष कहती है कि उसे राम ने ही हमे सकट से उबारने के लिए भेजा था।"

"बात क्या हुई ?"

"उसका भविष्य मैंने विचारा था। गहरे सकट मे है।"

"क्या वह तुमसे प्रभावित हुआ ?"

"लगता तो है।"

"हा, मुक्ति का कुछ उपाय अब तो शीघ्र ही होना चाहिए। इतना बोझ उठाने का पहले कभी अवसर नही पडा था। कमर झुकी जाती है। पैर साधते-साधते भी लडखडा जाते हैं। जाने कौन पाप किए थे, राम !" कहते हुए कैलासनाथ की आखे भर आईं।

तुलसी ने सान्त्वना देते हुए कहा—"हारिए न हिम्मत विसारिए न राम। हनुमान जी अवश्य ही हमारी रक्षा करने के लिए आएगे। मेरा मन कहता है।"

"दूसरो के पापो की गठरी अपनी पीठ पर लादकर चलना मेरे मन को मर्मांतक कष्ट दे रहा है। तुलसी भाई दासता अति कठिन होती है। मृत्यु उसके सामने बहुत ही रमणीय लगती है। भगत जी की बात न मानकर हमने अच्छा नही किया।"

दुःख-सुख कहते, रोते-हसते, राम-राम करते दोपहर मे कुलियो के चने-चबने का समय आ पहुचा। एक बड़ी बावली के निकट सबने अपनी-अपनी पीठो पर लदे बोझो को उतारा। पीठ सीधी की और सबेरे चलते समय बाटे गए गुड-चने की अपनी-अपनी पोटलिया खोलने लगे। जमादार उसी समय फिर तुलसी के पास आ पहुचा और कहा—"मेरे साथ चलो।"

"साहब, मेरे साथी को भी ले चलिए।"

"नहीं, तू अकेला चल।"

"तब तो आप मुझे मार भी डालें तो भी मै नही जाऊंगा।"

"अच्छा, तुम दोनो चलो। मैं अभी तुम्हारे बोझो को ढोने का इन्तजाम करके आता हू।"

दोनो मित्र आगे बढकर एक जगह खडे हो गए। कैलास का चेहरा खिल उठा था, कहने लगे - "लगता है कि राम जी हमारी रक्षा कर लेगे।"

जमादार तुर्क था मगर दो पीढी से हिन्दुस्तान मे बसा हुआ था। ऊचे उठने

के लालच मे वह एक कच्चा खेल खेल गया था जिसके अन्तिम परिणाम पर तुलसी की ज्योतिष के उजाले मे नजर जाते ही जमादार अपने होश मे आ गया।

गुलनार ठेठ आजरबैजानी माल थी, कहीं कोहकाफ के आसपास की। कहते हैं कि गुलाब के आसपास की मिट्टी मे भी महक आ जाती है, गुलनार में भी कोहकाफ की परियो का, ऐसे ही कुछ दूर-दराज का असर अवश्य दीख पड़ता था। नायब सूबेदार करीम खा ने उसे लाहौर के बाजार मे खरीदा था।

अब्दुल्ला बेग का हाकिम नायब सूबेदार अदहम खां था। वह अकबर को दूध पिलाने वाली धाय माहमअनका का पुत्र था। स्वभाव से कुटिल, स्वार्थी और विलासी। आयु मे वह अभी सोलह-सत्रह वर्ष से अधिक नही था। अकबर का उसके प्रति ममत्व था, यद्यपि वह उसके स्वभाव को पसन्द नही करता था। अकबर के सरक्षक बैरम खा ने माहमअनका के इस बेटे को कभी पसन्द नही किया। लेकिन बादशाह की सिफ़ारिश से उसने शाही जनानखाने और मालखाने की रक्षक और प्रबन्धक सेना मे उसे नायब का पद दे रखा था। करीम खा यद्यपि भारतीय पंजाबी मुसलमान था फिर भी बैरम खा उसकी स्वामिभक्ति और योग्यता से सन्तुष्ट था। अनेक ईरानी, तूरानी नायबों से अधिक वह उसका विश्वास करता था। बादशाह के दूधभाई अदहम खा को किसी हिन्दुस्तानी मुसलमान के आधीन रहकर काम करना बहुत अपमानजनक लगता था। लेकिन इस अपमान से न तो उसकी मा उसे बचा सकती थी और न स्वयं बादशाह ही। करीम खा ने जिस दिन गुलनार को खरीदा था उसी दिन अदहम खा की कुदृष्टि उसपर पड़ गई थी। उसने अपने विश्वासपात्र अनुचर अब्दुल्ला से कहा कि करीम खा इस दासी का भोग न करने पाए। रात होने से पहले ही गुलनार उसके यहा से गायब होकर अदहम खा के पास पहुच जाए।

अब्दुल्ला बेग महत्त्वाकाक्षी था। बादशाह के दूधभाई का महत्त्व जानता था। इसीलिए उसने अदहम खा से भी बड़े हाकिम की खरीदी हुई बांदी को उड़ा लाने का दुस्साहस किया। करीम खा की एक दासी युवक और अविवाहित अब्दुल्ला बेग पर अनुराग रखती थी। अब्दुल्ला ने उसे अपने प्रेम और अदहम खा के पैसे से दबा लिया। झुटपुटे मे गुलनार उड़ा ली गई और 'आदमखोर बाघ ले गया-ले गया' की धूम मच गई। दूसरे ही दिन सयोग से फौज को लाहौर से दिल्ली की ओर कूच करना पडा। सेना चूकि तेजी से गति कर रही थी इसलिए करीम खा अपनी दासी के सबध मे गहरी खोजबीन न कर पाया। फिर भी पानीपत के करीब पहुचने तक उसे यह मालूम हो चुका था कि गुलनार को आदमखोर बाघ नही बल्कि अधम अदहम खा उडा ले गया है। वह बड़े ही क्रोध मे था। उसने अदहम खा के पास तक यह सूचना भेज दी कि वह उसकी आजरबैजानी दासी को यदि शीघ्र ही लौटाकर उससे क्षमा नही मागेगा तो युद्ध समाप्त होते ही वह बैरम खा अतालीकी से निश्चय ही इस बात की शिकायत करेगा। ऐसी हालत मे उसे बादशाह का दूधभाई होने के बावजूद जो नतीजा भुगतना पड़ेगा अदहम खा उसे अच्छी तरह से जानता है।

अहमद खा करीम खा से क्षमा मागने को किसी भी तरह तैयार न था।

दूसरे गुलनार ने उससे यह भी कह दिया था कि वह उसका गर्भ धारण कर चुकी है। अदहम खा के लिए फिर यह सोचना तक असह्य था कि उसकी सतान उसके दुश्मन की दास कहलाए। गुलनार स्वयं भी अब अदहम खा को नही छोडना चाहती थी। लेकिन अदहम खा को अपनी नौकरी और जान भी प्यारी थी। अपनी आन और जान दोनो की रक्षा करने के लिए अदहम खा ने एक उपाय सोचा। उसने गुलनार का विवाह अब्दुल्ला वेग से कराने की युक्ति सोची। योजना वनी कि कह दिया जाएगा कि रात को यह औरत भागकर अब्दुल्ला के खेमे में घुस गई और गिडगडाकर शरण मागने लगी। कहा कि हेमू वक्काल के महलो की दासी हू, हाल ही मे खरीदी गई थी। अब्दुल्ला ने देखा कि औरत अच्छी हैं, मुसलमान हैं, वाप-दादो के इलाके की है और वह चूकि कुवारा था इसलिए उसने जब अदहम खा से सारी वात कही तो उसने दोनो का निकाह पढवा दिया। अब वह एक तुर्की मुसलमान की व्याहता बीवी है। उसे कोई नही छीन सकता। यह याजना बनाकर अदहम खा ने सोचा था कि कुछ दिनो के वाद मामला जब ठडा पड जाएगा, और अगर उसे गुलनार से बेटा हुआ, तो अब्दुल्ला से तलाक दिलवाकर वह उसे अपने पास फिर से ले आएगा।

अदहम खा की इसी युक्ति मे नियति ने तुलसी और कैलासनाथ के भाग्य का संयोग भी जोड दिया था। तुलसी की भविष्यवाणी सुनकर अब्दुल्ला जमादार अपनी जान वचाने के लिए मन मे कुलावे भिडाने लगा। अब्दुल्ला महत्त्वाकाक्षी अवश्य था, जीहुजूर भी था मगर पराया पाप विना किसी लज्जत के अपने सिर पर मढे जाना उसे तनिक भी स्वीकार न था। वह अदहम खा की सारी चतुराई भाप गया था। झूठा निकाह पढवाकर हाकिम की धरोहर अपने पास रखने के लिए वह हरगिस तैयार नही था। मगर वह अदहम खा के सामने इनकार करने का साहस भी नही कर सकता था। हिन्दुस्तानी तुर्क अब्दुल्ला भी अपनी आन और जान बचाने के लिए खालिस तुर्क अदहम खा का दुश्मन वन गया। उसने नायव करीम खा को वतला दिया कि अगर वह इसी वक्त सरकारी दौड ले आए तो अदहम खा के खेमो मे गुलनार बरामद की जा सकती है।

सयोग से अदहम खा ने तय की हुई योजना उसी दिन वदल दी। उसके एक साथी तुर्क मोनम खा की फूफी शाहजादे की तातारी बेगम के महल की वादी थी। अदहम खा ने मोनेम खा की सलाह से गुलनार को शाही डोली पर चुपचाप शाही बादियो के महल्ले मे भिजवा दिया था। जब नायव करीम खा सिपाहियों की दौड लेकर उसके यहा तलाशी लेने आया तो चिड़िया उड चुकी थी। अदहम खा ने त्योरिया चढाकर करीम खा को सरेआम कहनी-न कहनी सुनाई।

बेचारे अब्दुल्ला की जान अब सीधी दो चक्कियो के पाटो मे आ गई थी। उसका हाकिम नायव अदहम खा और आलाहाकिम नायव करीम खा दोनो ही उसपर शक कर रहे थे इसलिए तुलसी की भविष्यवाणी का उसपर तात्कालिक

प्रभाव पड़ा था और उसने अपनी दौड़-धूप आरम्भ की थी।

कैलास और तुलसी को एक जगह अलग खड़ा करके तथा उनपर लदे माल को दूसरों पर लदवाने का प्रबन्ध करके अब्दुल्ला उन दोनों को लेकर एक सन्नाटे की जगह में चला गया। उसने घबराकर कहा—"नजूमी, तुम्हारी बतलाई हुई बात सच निकली, मगर उसका असर बड़ा भयानक हुआ जा रहा है। तनिक विचारो कि मेरी जान को तो कोई खतरा नहीं है ?"

तुलसीदास ने गणना करके कहा—"जमादार जी, आप लम्बी तान कर सोइए। आपके दोनों दुश्मनों का आज ही तबादला हो जाएगा। शान के अगले पड़ाव तक आपका हाकिम बदल जायगा।"

सुनकर अब्दुल्ला बहुत प्रसन्न हुआ, बोला—"नजूमी, अगर तुम्हारी बात सच निकली तो मैं आज रात में तुमको और तुम्हारे साथी को आजाद कर दूंगा और बाकी रास्ते में तुमसे अब बोझा ढोने की बेगार भी नहीं ली जाएगी। लेकिन तुम्हें मेरा एक काम करना होगा।"

"क्या करना होगा ?"

"मैं तुमको अदहम खां के पास लिए चलता हूं। तुम्हें किसी जुगत से यह बात अदहम खां के मन में बैठानी ही होगी कि उसके यहां नलाशी लाने में मेरा तनिक भी हाथ नहीं था। अदहम खां बादशाह का दूधभाई है। अबतक मुझसे खूब राजी भी रहा है, आगे भी वह मेरी मदद कर सकता है। मैं उनसे बिगाड़ हरगिज नहीं करना चाहता।"

सुनकर तुलसीदास ने सलाह के लिए कैलासनाथ की ओर देखा। कैलास ने आंखों ही से संकेत करके अपनी सहमति प्रदान की और अब्दुल्ला एक मातहत को कुलियों का काफिला आगे बढ़ाने का हुकुम देकर उन दोनों के साथ नायब अदहम खां की ओर चल दिया।

शाही बेगमों, रखैलों, नाचनेवालियों, बांदियों तथा दूसरे-तीसरे वर्ग तक के ओहदेदारों की स्त्रियों का काफिला एक साथ चलता था। उनकी रक्षा के लिए सेना की दो टुकड़ियां चलती थीं। अदहम खां उन्हींके साथ पीछे आ रहा था। वह उस समय बहुत ही तैश में भरा हुआ था। अब्दुल्ला पर यद्यपि इस समय तक उसके मन में कोई खास शक तो पैदा नहीं हुआ था ताहम इस समय अपने सौभाग्य से दीपित आवेश में वह हर एक को अपने आगे तुच्छ बना रहा था। अब्दुल्ला तो मातहत होने की वजह से यों भी तुच्छ ही था। उसको देखते ही वह भड़क पड़ा—"तू अपना काम छोड़कर यहां क्यों आया ?"

अब्दुल्ला गिड़गिड़ा कर बोला—"सरकार को मुबारकबाद देने आया हूं। मुझे तो इस नजूमी ने बतला दिया था कि आप पर खुदा मेहरबान है, तनिक भी आंच नहीं आएगी। मैं इसीलिए इनको आपकी खिदमत में ले आया हूं। मगर वल्लाह तारीफ है उस हुजूर की दूरदेशी की जो पहले ही से उन आने-वाले खतरों को भाप लेती है। कल तक तो हुजूर ने मुझसे कुछ और ही बात कह रखी थी।"

अदहम खां खुशामद से ढीला पड़ा, बोला—"अल्लाह का शुक्र है। वही

दुश्मनो को तबाह करता है। नजूमी, यह बतलाओ कि अभी हाल मे ही हमने जो काम किया है उसका आखिरी अन्जाम क्या होगा ?"

तुलसी विचार करके बोले—"हुजूर, जिस वस्तु को आप अपने यहा से निकाल चुके वह अब आपके पास लौटकर नही आयेगी।"

सुनकर अदहम खा की त्योरिया कुछ-कुछ चढ गई। मन मे इस समय अपने जीत के नशे मे गुलनार बहुत ही प्यारी लग रही थी। वह उसे छोड़ने के लिए तैयार नही था। इसीलिए तुलसी की बात सुनकर उसका मिजाज बिगडने लगा।

कैलासनाथ का ध्यान उधर गया। उन्होने तुरन्त ही हाथ जोडकर कहा—"हुजूर, मेरे साथी अल्लाह-ईश्वर के बड़े भगत भी है। इनकी बात मे आपकी भलाई के सिवा और कुछ नही हो सकता।"

अदहम खा के क्रोध के उबाल पर मानो ठडे पानी का छीटा-सा पड़ा। पल-भर चुप रहकर उसने फिर पूछा—"वह माल कौन ले जाएगा ?"

तुलसीदास ने विचार कर कहा—"किसी बहुत ऊचे घराने का आदमी।"

"उसकी औलाद क्या होगी ?"

"लडका !" तुलसीदास ने विचार कर फिर कहा—"वह राजा बनेगा।"

"क्या उससे या उसकी वालिदा से मेरी फिर कभी मुलाकात होगी ?"

"मा से कभी नही किन्तु बेटे से होगी···। न होती तो अच्छा होता।"

"क्यो ?"

"लडाई के मैदान मे या तो वह आपकी हत्या करेगा या आप उसे मारेगे।"

अदहम खा का तेहा फिर भडका, आखे लाल हुई। वह तुलसी के प्रति कोई कडा आदेश देने ही जा रहा था कि अचानक कुछ विचार आते ही गम्भीर हो गया, बोला—"ऐ बिरहमन, मुझे तुम्हारी सच्चाई का इम्तहान लेना होगा। तुम मुझे कोई ऐसी बात बतलाओ जो घड़ी-आध घडी या सूरज ढले से पहले तक होने वाली हो।"

तुलसी ने तुरन्त उत्तर दिया—"थोड़ी ही देर मे सरकार का तबादला दूसरी फौज मे हो जाएगा।"

अदहम खा चौका, फिर उसके चेहरे पर आश्चर्य-भरी खुशी झलकी, पूछा—"क्या मेरी तरक्की होगी ?"

"जी हा।"

"मेरे दुश्मन का क्या अन्जाम होगा ?"

"उसका भी तबादला होगा हुजूर, और आज ही होगा।"

"क्या उसकी भी तरक्की होगी ?"

"हा, अन्नदाता ! लेकिन वह शीघ्र ही मारा जाएगा।"

अदहम खा के चेहरे पर तुलसी की बात के पूर्वार्द्ध ने ईर्ष्या की भड़क उठाई और बाद की बात ने सन्तोष की झलक भी। वह दो पल चुप रहा, फिर कहा—"अब्दुल्ला, इन ब्रह्मनो को आज शाम तक अपनी निगरानी मे रक्खो।"

शाम को पड़ाव पर पहुचने तक जमादार अब्दुल्ला को अदहम और करीम

खा के तबादले का समाचार मिल चुका था। करीम खा बैरम खा के अग-रक्षको मे नियुक्त हो गए थे और अदहम खा को सूबेदारी मिली थी। अब्दुल्ला का नया हाकिम एक अधेड तातारी था जो मदक पीने के लिए खासा बदनाम भी था। अपने ज्योतिषी बन्दी के प्रति अब्दुल्ला की आस्था अब बहुत बढ गई थी, इसलिए मुक्त करने से पहले वह तुलसी को अपने नये हाकिम के पास भी ले जाना चाहता था। उसने तुलसी से अपने नये हाकिम के सम्बन्ध मे पूछा कि उसके साथ उसकी कैसी निभेगी ?

तुलसी ने कहा—"सूर्यास्त के बाद मैं ज्योतिष की गणना नही करता। अपने वचन के अनुसार आप मुझे अब मुक्ति प्रदान करे।"

सुनकर अब्दुल्ला को क्रोध आ गया, उसने कहा—"तब फिर तुम्हे भी कल ही आजादी मिलेगी।"

दूसरे दिन नये हाकिम ने, जिसे सब लोग पीठपीछे मदकची बेग के नाम से पुकारते थे, कुलियो के जमादार अब्दुल्ला को सुबह मुहअधेरे ही बुलवा भेजा। उसके सामने पहुचते ही मदकची बेग ने एकाएक भड़ककर कहा—"क्यो बे उल्लू के पट्ठे, ऐसी बेहूदा औरत कल रात तूने मेरे पास भेजी जो कि सोते मे खुर्राटे भर-भरकर सारी रात मुझे परेशान करती रही।"

अब्दुल्ला जमादार डर के मारे थर-थर काप उठा। उसने गाव से पकड़ी गई हेमू के रसद व्यवस्थापक की रखैल को मदकची के पास भेजा था। वह अफीम, भग आदि अमल तैयार करने और अपने बूढे मालिक को कोरी बातो से ही सतुष्ट करके सुला देने के लिए गाव मे सविनोद प्रख्यात थी। अब्दुल्ला ने तो उसको यह मनोरजक ख्याति सुनकर तथा उसका नाक-नक्शा सिजल देख-कर ही भेजा था। मगर नरगिस आलसियो की सरदारिनी भी थी, यह उसे नही मालूम था। नरगिस से चूक यह हुई कि उसने मदकची बेग के अमल की मात्रा को कम समझा। आधी रात तक तो उसने मदकची बेग को रिझाने का अच्छा प्रयत्न किया, किन्तु उसके बाद वह सो गई। मदकची बेग का नशा जल्दी ही उचट गया। पिनक से होश मे आने पर उसने देखा कि नरगिस खुर्राटे भर रही है। उसने जगाकर उसे अफीम घोलने का हुक्म दिया। नीद की माती नरगिस अनख कर उठी और उसने दो कटोरियो मे चटपट अफीम उंडेली। दुर्भाग्य से कम अफीम वाली कटोरी, जो कि उसने अपने वास्ते घोली थी, बूढे तातारी को दे गई और गहरी वाली खुद पी गई। इसके बाद वह तो अन्टागफील होकर खुर्राटे भरने लगी और मदकची बेग थोड़ी देर के बाद ही फिर अपनी पिनक से जाग पड़ा और अपनी अकशायिनी के खुर्राटो से परेशान होता रहा।

तातारी हाकिम के गुस्से का कारण उसी की उबलन-भरी बातो से जान-कर अब्दुल्ला समझ गया कि नया हाकिम खासा बौडम आदमी है। उसे अपने मातहतो पर हुकूमत करना नही आता। उसका भय कुछ-कुछ कम हुआ। उसने खुशामदाना अन्दाज मे झुककर कहा—"हुजूरेआली, यह कम्बख्त हिन्दुस्तानी औरत हुजूर के अमल करने की ताकत को सही तरीके से आक न सकी। मै

आज ही उसका कत्ल करवा दूगा।"

"नही, नही, वह वेवकूफ भले ही हो मगर सेज पर मौजे-दरिया की तरह लहराती है। मैं उसको एक मौका और देना चाहता हू। तुम उसे सिर्फ इतना ही समझा दो कि मैं बहुत बड़ा हाकिम हूं और अगर उसने मेरी खिदमत ठीक तरह से नहीं की तो मैं उसकी बोटी-बोटी नुचवा दूगा।"

"जी बहुत अच्छा हुजूर।"

"उसे इसी वक्त जाकर जगा दो। कम्बख्त मुझसे जागती भी तो नही।"

अब्दुल्ला ने उसे भीतर जाकर चुटकिया काट-काटकर बाद मे तमाचे मार-कर जगाने की कोशिश की मगर वह मुर्दों से बाजी लगाकर सो रही थी। अब्दुल्ला को कुछ न सूझा तो तैश मे आकर उसकी एक टांग और हाथ पकड़-कर धम्म से जमीन पर गिरा दिया। तब नरगिस की नीद टूटी।

धमाके की आवाज सुनकर मदकची बेग भीतर पहुच गया और उसे जमीन पर गिरा हुआ देखकर अब्दुल्ला पर नाराज हुआ। अब्दुल्ला ने बात बनाई, कहा—"हुजूर इसे मैंने नही गिराया बल्कि मौजे-दरिया की तरह यह इतनी जोर से उठी कि आप ही आप उछलकर जमीन पर गिर पडी।"

नरगिस बड़बड़ाई। उसके चेहरे पर गिड़गिड़ाहट का अन्दाज था। मदकची बेग ने अब्दुल्ला से पूछा—"यह क्या कह रही है?"

अब्दुल्ला ने चूंकि नरगिस की बात को स्वय भी न समझा था इसलिए बात बनाई, हाथ बाधकर कहा—"हुजूरेआली, यह कहती है कि इसने आपको उडन-खटोले की सैर कराने के ख्याल से छलाग लगाई थी, लेकिन मुझे देखते ही शर्म और नफरत के मारे गिर पड़ी।"

"ठीक है, ठीक है। उससे कहो कि हमको यो ही खुश किया करे।"

अब्दुल्ला ने नरगिस को अमल तैयार करने की आज्ञा दी और हिन्दी मे उससे कहा—"इसे गहरा नशा पिला, नही तो सवेरा होते ही यह तेरी और मेरी गर्दन उडवा देगा।" नरगिस ने फिर मदकची बेग को गहरी घोलकर ऐसी नशीली चितवन से पिलाई कि सुबह पडाव उठने तक वह जाग ही न पाया। सवेरे अब्दुल्ला ने आकर तुलसी से कहा—"बिरहमन फौरन मेरे साथ चलो। सूबेदार साहब ने तुम्हे याद फर्माया है।"

तुलसी और कैलासनाथ को लेकर अब्दुल्ला बेग चला। नया सूबेदार अदहम खा अपने खेमे के अन्दर बैठा हुआ एक मुगल बुजुर्ग से बाते कर रहा था। तुलसी को भीतर बुलवा लिया। कैलासनाथ खेमे से बाहर ही रहे। खेमे मे प्रवेश करते हुए तुलसी को अब्दुल्ला बेग की तरह ही झुककर दोनो हाथो से सलाम करनी पडी। अदहम खा ने मुस्कराकर कहा—"बिरहमन तुम होशियार नजूमी हो, हम तुमसे खुश है।"

"तो श्रीमान् जी फिर मुझे और मेरे साथियो को मुक्त करे।"

"हमने तुम्हे एक जायचा देखने के लिए बुलवाया है।" कहकर उसने तख्ती और लिखने की बत्ती मगवाई। उसके आने पर मुगल बुजुर्ग ने एक राशि-चक्र खीचा। तुलसी को थोडी देर मुश्तरी को बृहस्पति और जोहरा को शुक्र के रूप

मे समझने मे लगी। ग्रहो और राशियों के भारतीय नाम समझकर तुलसी कुण्डली विचारने लग गए। कुछ ही पलों मे वह प्रसन्न होकर बोले—"यह कुण्डली किसी बड़े ही चमत्कारी पुरुष की लगती है। ऐसे लोग कम देखने मे आते हैं। ··वाह! यह किसकी कुण्डली है, सूबेदार साहब ?"

"इससे तुम्हे कोई वास्ता नही। तुम खुद ही बतलाओ कि यह कौन हो सकता है।"

अब्दुल्ला वेग ने अदहम खां और मुगल बुजुर्ग को तुलसी की हिन्दी मे कही हुई बात को फारसी भाषा मे समझाया। सुनकर मुगल बोला—"इसके कुछ गुजिश्ता हालात बयान करो।"

"साहब, यह है तो अभी बालक ही परन्तु अद्भुत नक्षत्रधारी है। यह व्यक्ति परम अभागा और परम सौभाग्यवान एक साथ है। इसके जन्म के समय इसके माता-पिता पर बडा सकट आया होगा। बचपन मे इसे अपने माता-पिता से अनेक वर्षो तक अलग भी रहना पडा होगा। और इसने अपने माता-पिता का राज्य भी छोटी आयु मे ही पाया होगा।"

अदहम खा ने पूछा—"इसकी मौत कब होगी ?"

तुलसी कुण्डली देखते हुए हंसे, बोले—"जिसके राम रखवारे हों, उसे कोई मार नही सकता। इस बालक नृपति ने अब तक अनेक बार यमदूतो को पछाडा होगा। यह राम जी का आदमी है, इस संसार मे उन्ही का काम करने के लिए जन्मा है।" तुलसी की बात सुनकर मुगल का चेहरा खिल उठा किन्तु अदहम खा का चेहरा कठोर हो गया। उसने पूछा—"मै कब बादशाह बनूगा, नजूमी ?"

तुलसी ने विचारकर कहा—"इस जन्म मे कदापि नही।"

खुशामदी अब्दुल्ला वेग अपनी स्वामी से ऐसी स्पष्ट बात कहने का साहस न कर सका। उसने अनुवाद करते हुए अदहम खां से कहा—"हजरतेआली, यह कहता है, हुजूर बादशाह पर हुकूमत करेंगे।"

अदहम खा को बात सुनकर क्रोध तो न आया किन्तु संतोप भी न हुआ। उसने फिर पूछा—"बैरम खा कब मरेगे ?"

"चार वर्ष बाद।"

"क्या मुझे बादशाह से वही दर्जा मिलेगा जो बैरम खा को हासिल है ?"

"हुजूर सिपहसालार बनेंगे, अच्छे दिन देखेगे और अगर संभल कर चलेंगे तो इस कुण्डली वाले प्रतापी पुरुष की छत्रछाया मे बडा सुख भोगेगे। लेकिन जान पडता है, अन्नदाता वह सुख भोग नही पाएगे।"

अब्दुल्ला वेग फिर उलझन मे पडा। उसने तुलसी से हिन्दी मे कहा—"नजूमी, अगर तुम्हे अपनी जान प्यारी हो तो ऐसी बाते मुह से न निकालो।"

"मैं क्या करू जमादार जी, प्रश्न का समय इनके अनुकूल नही है। अपने दम्भ के कारण यह ऊंचे दिन देखकर गिरेंगे और सम्राट की ओर मे इन्हे प्राण-दण्ड भी दिया जाएगा।"

अदहम खा ने अब्दुल्ला से पूछा—"यह क्या कह रहा है ?"

अब्दुल्ला ने सभलकर उत्तर दिया—"हुजूर इसका कहना है कि सरकार बादशाह को कभी नाखुश न करें। आपको जो कुछ भी हासिल होगा वह आखुन्दआलम की मेहरबानी से ही हासिल होगा।"

कुण्डली देखते-देखते एकाएक तुलसी बोले—"राजों-सम्राटो मे भी ऐसी जन्मकुण्डली किसी विरले पुरुष की ही होती है, सूबेदार जी! यह सम्राटों का सम्राट होगा। लेकिन पैदल चलने मे इसके समान कोई दूसरा आदमी नहीं हो सकता। जब यह किसी पर दयालु होगा तो उसे निहाल कर देगा लेकिन क्रोध आने पर इसकी क्रूरता को देखकर स्वयं यमराज भी सिहर उठेंगे। यह परम धार्मिक और परम विलासी होगा।"

अदहम खा हंसा, बोला—"दीनपरस्त यह चाहे हो या न हो मगर नफस-परस्त तो यकीनन है। आफताब खा, यह काफिर नजूमी तुम्हे यकीनन खुश कर रहा होगा, क्योंकि तुम भी तो थोडी देर पहले यही सब कह रहे थे।"

आफ्ताब खा बोले—"यकीनन यह जवान अपने फन मे माहिर है। इसकी पेशानी देखकर मैं यह सोचता हू कि यह नजूमी भी अकबरशाह की तरह ही दुनिया में कुछ कर गुजरने के लिए ही आया है। एक दिन सारी दुनिया इसके कदम चूमेगी और एक मानी मे यह अकबरशाह से ज्यादा बडी सल्तनत का मालिक बनेगा।"

अदहम खा की त्योरिया चढ गई। घृणा-भरी दृष्टि से तुलसी की ओर देख-कर उसने आफताब खा से कहा—"आफताब मियां, जरा यह तो बतलाइए कि इस नजूमी का सर अपने धड़ पर और कितनी देर कायम रहेगा?"

"यह काफिर जल्द मरने के लिए पैदा नही हुआ है खां साहब, इसे कोई नही मार सकता।"

अदहम खा को ताव आ गया, लाल आखे निकालकर बोला—"अब्दुल्ला बेग, इस नजूमी को बाहर ले जाओ और इसकी गर्दन काटकर मेरे आगे पेश करो।"

लेकिन उसी समय एक दासी आई, उसने कहा—"हुजूरेआलिया ने हुजूर फैज गंजूर को याद फर्माया है।"

अदहम खा के माथे पर बल पडा, पूछा—"ऐसा क्या काम आ पडा?"

"हुजूर मरियम मकानी ने हुजूरेआलिया को अभी अपने खेमे मे बुलवाया था। वहा से तशरीफ लाते ही जनाबेआलिया ने इस कनीज को आपकी खिदमत मे भेजा है।"

"अब्दुल्ला बेग इस नजूमी को फिलहाल अपनी नजरबदी मे रखो। कल सुबह यहा से कूच करने के पेश्तर मैं इसका सर धड से जुदा देखना चाहता हूं। इसके कत्ल का कोई अच्छा-सा बहाना भी तुम्हे खोजना होगा।"

अब्दुल्ला ने सिर झुकाकर सूबेदार की आज्ञा सुन ली। आफताब मिया फिर हसे, बोले—"आलीजनाब, मैं फिर अर्ज करता हू कि इस शख्स को कोई मार नही सकता।"

मसनद से उठते हुए नौजवान अदहम खा की त्योरियो मे फिर बल पड़ा,

बोला—"आफताद मिर्जा, आप बुजुर्ग है, मुझे चुनौती मत दीजिए।"

आफ्ताव मिर्जा ने फिर उसी बेफिक्री से कहा—"जनावेआली, अल्लाह से बडे होने की कोशिश न करे।"

अदहम खा की आंखे क्रोध से लाल हो उठी। खडे होकर तलवार म्यान से निकालते हुए तुलसी की तरफ आवेश से झपटा। तुलसी एक पग पीछे हटे लेकिन अदहम खा का शरीर झपटते ही अचानक थरथराया और धड़ाम् से गिर पडा। वह वेहोश हो गया, उसका मुह टेढा पडने लगा था। उसके बायें अंग पर फालिज गिरा था।

बादी घबराकर अपनी स्वामिनी के पुत्र को देखने लगी। अब्दुल्ला भी नीचे झुका। आफताब मिर्जा बोले—"अब्दुल्ला, खुदा से बैर मोल न लो। इसे फौरन ही आजाद कर दो। यह काफिर फकीरो का शाहंशाह है।"

तुलसी और कैलास ही नही वरन् उनके आग्रह से व्रज की यात्री मण्डली भी छोड़ दी गई। अब्दुल्ला ने चलते समय तुलसी के प्रति बडा आदर-भाव दिखलाया और कहा—"नजूमी, हमारे हक मे अपने खुदा से दुआ मागना। आफताब मिर्जा बहुत बड़े नजूमी है। माहमअनका इन्हे वहुत मानती है। लेकिन यह नालायक अदहम खा बडा मगरूर और बेवकूफ है।"

१८

अब्दुल्ला ने मुक्त करते समय तुलसी को चादी के बीस दिरहम सिक्के भी नजर किए थे। तुलसी अपने तथा अपने साथियो के मुक्त हो जाने के कारण बडे ही प्रसन्न थे।

छूटते ही वे मेधा भगत की टोह मे लगे। उन्हे खोजने में विशेष कठिनाई न हुई। सेना से लगभग पाव कोस अलग हटकर वे बराबर साथ ही साथ चल रहे थे। पास पहुचकर मेधा भगत के पैर छूकर कहा—"आपकी कृपा से ही यह सकट टला है। अद्भुत चमत्कार हुआ। मुझे ऐसा लगता है कि राम जी ने नन्ददास की रक्षा करने के लिए ही मुझे इस अकाल मृत्यु से बचाया है।"

भगत जी हसे, कहा—"राम जी को तुमसे अभी बडी सेवा लेनी है भइया। न जाने कितनी विपत्तियो से वे तुम्हे मुक्ति दिलाएगे। किन्तु अब मै काशी जाना चाहता हू। अब और कही नही जाऊंगा।"

"किन्तु···"

"चिन्ता की आवश्यकता नही। तुम्हे नन्ददास के पास जाना ही है। कैलासनाथ मेरे रक्षक बनेंगे।"

अब्दुल्ला बेग से पाए हुए रुपये तुलसी ने कैलासनाथ को दे दिए और व्रज की यात्री मण्डली से सिहपुर ग्राम का मार्ग पूछकर वे पीछे की ओर लौटकर चल दिए। तीसरे दिन दोपहर के समय वह सिंहपुर के निकट पहुंच गए।

"क्यो भाई इस गाव मे कोई ऐसा परदेशी पड़ा है जिसका मन बावला…"

"हां-हां, वह बावला क्या हुआ है महराज, सारे गाव को बावला बना दिया है। आप उसे ढूंढते हुए आए है ?"

"हा।"

"उसके नातेदार है ?"

"हा।"

"भाई ?"

"हा, गुरुभाई। वह इस समय कहा होगा ?"

प्रौढ किसान ने फीकी हसी हसकर कहा—"वह हर समय नन्हेमल के घर के आगे ही पडा रहता है। उसे ले जाइए महराज, सारी बस्ती के लोग दुखी है। बाह्मन पण्डित, रूपवान, मीठा, भला, कोई ऐब नही। बाकी ऐबो का ऐब यही लग गया है कि उस भली खतरानी के रूप का दीवाना हो गया है। वहा भी कोई उत्पात नही करता, बस बैठा-बैठा या तो गाता है, या हंसता है, या रोता है। घर वालो की हसी होती है। वह औरत बिचारी आप आठो पहर रो-रोकर घुली जाती है। नन्हेमल परदेस गए है। लोगो को करोध भी आता है, दया भी आती है क्या करे, कुछ समझ मे नही आता। उसके साथी छोडकर चले गए। और यहा के लोग मुसीबत मे पडे हे।"

सुनकर तुलसीदास अत्यन्त गम्भीर हो गए। वह व्यक्ति कहने लगा—"आप उसे जल्दी से जल्दी यहा से ले जाइए। आठ-आठ दस-दस दिन न खाता है, न पीता है। सास बिचारी झख मारके बहू के हाथो परोसी पत्तल भिजवाती रही, पर अब बहू बाहर नही आती। हठ करती है कि जो मुझे नाहक बदनाम करता है उसे खिलाने नही जाऊगी, चाहे मरे चाहे जिये। आज कई दिनो से भूखा पडा है।"

तुलसीदास अब बाते नही सुनना चाहते थे. वे नन्ददास के पास पहुचने के लिए उतावले हो उठे थे, पूछा —"उस ठिकाने तक क्या आप मुझे पहुचा देंगे।"

"मैं पहुचा तो जरूर देता महराज पर नन्हेमल के यहा जाना नही चाहता। एक असामी के कारण हम लोगो मे दो बरस से खीचतान चल रही है। उनकी गैरहाजिरी मे आपको लेकर मेरा वहा जाना ठीक नही होगा।"

"खैर कोई बात नही, आप उस जगह का अता-पता ही बतलाने की कृपा करें।"

हा-हा, सामने चले जाइए। नरम-नरम आधा कोस है। वही भैरोपुर बजार है। बस वहा पहुचकर उत्तर की ओर मुड जाइएगा। हनुमान जी का मन्दिर पूछ लीजिएगा। बस, मन्दिर से लगी जो पगडंडी दिखाई पडे पूरब की ओर, उसी पर चल पडिएगा। जैसे वह घूमे वैसे आप भी घूमिए। सामने नन्हेमल का घर आ गया। उनका घर सबसे अलग कोने मे है। बस उसीके सामने नीम के पेड़ तले आपको अपने गुरुभाई मिल जाएगे।"

भद्र व्यक्ति के द्वारा बतलाए गए पते पर पहुचने मे तुलसीदास को कठिनाई न हुई। नन्ददास धूल मे मुह गड़ाए कराहते हुए स्वर मे कुछ बडबडा रहे थे। तुलसी को अपार पीड़ा हुई। वह सुन्दर गौरवर्ण कान्तियुक्त शरीर इस समय

धूलभरा म्लान और दुर्बल हो रहा है। शिखा धूल-पसीने से सन-सनकर जटा हो गई है, दाढी भी बढी हुई है। तुलसीदास उसके पास बैठ गए, सिर पर हाथ फेरकर पुकारा—"नन्ददास !"

अपनी रुदन-भरी बडबडाहट मे ही नन्ददास ने उत्तर जोड दिया—"मर गया नन्ददास। अपनी राह लगो। मेरा जी अपने बस मे नही है बाबा। मै तो आप ही मरा जा रहा हूं।" कहकर वैसे ही मुह गड़ाए हुए रोने लगे।

"इधर देखो नन्ददास। मैं तुलसी हू।" तुलसीदास की बात ने नन्ददास पर इच्छित प्रभाव किया। उनका रोना-बडबडाना रुक गया। तुलसीदास उनके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"काशी के बाद यहां इस दशा मे तुमसे मिलना होगा, इसकी तो मैं कभी कल्पना भी नही कर सकता था।"

सिर उठा। चौंकी कनखियों से देखा, फिर काया मे कुछ फुर्ती आई, गर्दन भी तनी, रूखी फीकी आखों में स्निग्धता आई, जीवन चमका। होंठो पर ऐसी करुण मुसकान थी कि देखकर तुलसीदास का हृदय भर आया। नन्ददास अपने-आपको संभालते हुए बोले—"तुम कैसे आ गए भैया ?"

"प्रीति-डोर मे बधकर।"

नन्ददास की आखें छलछला उठीं, भरे कण्ठ से कहा—"उसी मे बंधकर तो मेरी ऐसी दशा हुई है।"

"कितने दिनो से यहा हो ?"

प्रश्न सुनकर नन्ददास सामने वाले घर की ओर देखने लगे। द्वार की ओर देखा तो आखे दोबारा उमड़ी, कांपते स्वर मे कहा—"पता नहीं।"

"तुम्हे क्या कष्ट है ?"

"कुछ नही।"

"तुम फिर यहां क्यो पड़े हो ?"

"पता नही।" कहते हुए नन्ददास की आखे सामने द्वार से लगी रही। आखे भरी तो थी ही और भर उठी। गोरे-मैले गालो पर धारे बह चली। तुलसी के कलेजे मे मोहिनी को लेकर अपनी दीवानी टीस याद आई। एक बार तो बीते हुए क्षणो मे एक साथ सिमट कर लीन हो गए, परन्तु वैसे ही मन के भीतर 'हर-हर' की आवाज सुनी। तुलसी को लगा कि यह स्वर उनके सरक्षक गुरु नरहरि बाबा का है। इस चेतावनी से मन और विकल हुआ ; दृष्टि भी चचल हुई, पर जिधर जाती थी उधर मोहिनी ही मोहिनी दिखलाई देती थी। विम्ब मे मोहिनी और ध्वनि मे गुरु-स्वर एक-दूसरे के पीछे दौड़ते चले। 'हे राम' शब्द वडी करुणा से फूटे और आखें मिच गई।

ध्यान मे युगल चरण देखने का उपक्रम चला। मोहिनी यहा भी धंसने का प्रयत्न करने लगी किन्तु तुलसी अब सचेत और सुस्थिर थे। ध्यान युगल चरणो को ही अपने मे लाकर संतोष पाएगा। और वह संतोष अन्ततोगत्वा उन्हे मिलने लगा। मन की मुद्रा शान्त हुई। नन्ददास एक विरह-भरा पद गाने लगे थे। तुलसी का ध्यान उनके दर्द-भरे स्वर से भंग हुआ। वे नन्ददास को भावभीनी दृष्टि से देखने लगे। साक्षात् वेदनामूर्ति बने हुए नन्ददास बड़ी तडप के साथ गा रहे थे।

उनकी आखे मुदी हुई थी और चेहरे पर अपार शान्ति विराज रही थी।

तुलसीदास को लगा कि राम को देखने की ऐसी अनन्य लगन जो मुझे लग जाय तो फिर बेड़ा ही पार हो जाय। धन्य है नन्ददास की यह प्रीति। धन्य है वह आलंबन जिसके सहारे यह प्रीति-बेल चढी।

तुलसी की सराहना की तरंग अभी नीची भी नही हुई थी कि सामने का बन्द द्वार खुला। आधे घूघट से ढका एक सुन्दर शालीन मुखडा झलका। उसके हाथ मे भोजन का थाल है। युवती के पीछे उसकी बुढिया सास भी आ रही है। तुलसी समझ गए कि नवयुवती नन्हेमल की तीसरी पत्नी है और नन्ददास की प्रिया है।

युवती ने नन्ददास के पास एक और व्यक्ति को बैठे देखा तो ठिठक गई। दोनो हाथ थाली मे फसे थे। वह अपने घूघट को और गिरा नही सकती थी, हाथ केवल उचक कर फिर बेबसी की हालत मे आ गए। आखो की पुतलियो मे एक नई ज्योति और चेहरे पर कसाव आया। झिझकते हुए पैर फिर तेजी से आगे बढ गए।

नन्ददास आंखें मूदे अपने गीत मे रमे हुए थे। उन्हे यह होश नही था कि उनके सामने उनकी इष्टदेवी आ गई है।

तुलसीदास ने एक बार फिर युवती को देखा। वह सचमुच सुन्दरी थी। उसका सौन्दर्य इस समय वेदना से तपकर और भी निखर उठा था। नन्ददास पर एक दृष्टि डालकर उसने तुलसीदास की ओर एक बार गहरी सतेज दृष्टि से देखा फिर आंखें झुका ली। कहा—"पालागन महराज, क्या आप इनके कोई लगते है?"

"हां माई। आप इसे क्षमा करें। दरअसल इसे भक्ति का अचेत उन्माद हुआ है। मेरे भाई को आपके रूप मे साक्षात् दैवीशक्ति के दर्शन हुए हैं। यह अभी अपनी उपलब्धि को समझ नही पाया है। इसे कृपापूर्वक क्षमा कर दें।"

नन्ददास युवती का स्वर कानो मे पडते ही गाना रोककर उसकी ओर अपलक दृष्टि से देखने लगे थे। उनकी आखो की पुतलियो में तृप्ति और प्यास दोनो ही झलक रही थी और दोनों ही अथाह थी। रूखे गालो पर आनन्द की कांति विराज रही थी। भैया ने कहा कि दैवी रूप मे दर्शन किए हैं। इस भाव संकेत को लेकर नन्ददास सचमुच ही अपनी चितचोर को देवी के रूप मे देखने लगे और फिर स्वयं ही बड़बड़ा उठे—"भैया ने सच कहा—दैवी रूप है। मैं तुमसे कुछ नही मांगता भागवान्, बस यों ही दर्शन दे दिया करो।"

"दर्शन करने की अभिलाष है तो मथुरा जाइए, जहां भगवान बसते है। यहां आदमी डरते हैं, उनकी अपनी समझ, अपना मान-सम्मान होता है।" युवती के स्वर में अंगारे भड़क रहे थे। सास ने समझाना चाहा तो और तेज हुई, कहा—"नही अम्मां जी, इतने दिनो से घुटते-घुटते अब मैं पक गई हूं। या तो ये भोजन करें और यहा से जायं, अभी के अभी चले जायं। नही तो मैं सच कहती हूं, यही कटार मार कर आज मै अपने प्राण तज दूंगी।"

सास जो पीछे गड़ुवा लेकर खडी थी, घबराकर बोली—"न-न बहू, ऐसा गजब न करना। तुम्ही समझाओ महाराज! हे भगवान, यह तो कोई बडी बुरी गिरह-दसा आई है।"

"बुरी हो या भली, पर अम्मां जी, आज या तो यह यहा से जाएगे या फिर मेरी जान ही जाएगी। अब मै नही सहूंगी। एक नही मानूगी।"

नन्ददास यह सुनकर थरथर कापने लगे, उनकी आखे भर आई, अश्रुकपित स्वर मे कहा—"मैने ऐसा क्या अपराध किया है देवी?"

देवी क्रोध मे अबोली ही रही। तुलसीदास ने नन्ददास की बाह पकडकर उठाते हुए कहा—"जो कुछ अपराध अनजाने में हुआ भी है उसके लिए इस देवी के चरणो मे गिरकर क्षमा मांगो। मैं इसे अभी ही ले जाऊंगा, माई।"

अपनी बांह छुडाकर नन्ददास दोनो हाथ जोड़कर और धरती पर अपना सिर झुकाकर बोले—"मैं तुमसे बार-बार क्षमा मागता हू। तुम और जो चाहो सो दण्ड मुझे दो पर न तो अपने प्राण दो और·· और न मुझसे जाने को कहो।"

तुलसीदास ने फिर झुककर नन्ददास का हाथ पकड लिया और कहा—"उठो नन्ददास, क्या एक भद्र महिला की आत्महत्या का कारण बनोगे? प्रेम क्या इसी का नाम है? फिर इस देवी के साथ मैं भी प्राण दूगा।"

नन्ददास की बहकी आंखें यह धमकियां सुनकर इतने दिनों मे पहली बार अपना सधाव पा सकी। नन्ददास की नवजाग्रत लोक-चेतना को यह सारी बाहरी स्थिति अत्यन्त विचित्र लग रही थी। संयत, गम्भीर स्वर मे उन्होंने कहा—"तुम सदा सुख से जियो, देवी, मैं जाता हूं। मेरी चूक क्षमा करो। मेरे भइया मुझे लेने आ गए है।"

नन्ददास अपने बायें हाथ का पंजा धरती पर टेककर उठने का उपक्रम करने लगे। बुढ़िया सास बोली—"भोजन करके जाओ महराज। मेरे द्वारे से बांमन भूखा जायगा तो मेरा रोयां बहुत दुखेगा।"

तुलसी सुनकर एक क्षण चुप रहे, फिर कहा—"अब भोजन का आग्रह न करें। इसे मैं एक बार स्नान कराना चाहता हूं।"

"तब भी भोजन की जरूरत पड़ेगी ही। कई दिनो से खाया नही है इन्होंने, आप भी भूखे जाएंगे।" युवती के स्वर मे अब शान्ति और सहजता आ गई थी। उसकी आंखें बातें करते हुए बराबर नीचे झुकी रही।

तुलसीदास ने नन्ददास की बांह पकड़कर अपना डग बढाते हुए कहा—"पड़ोस के गांव में मेरे एक परिचित रहते है। वही इसके स्नान-भोजन आदि की व्यवस्था हो जाएगी। आओ, नन्ददास भाई। आशीर्वाद दीजिए कि इसे भगवत्‌भक्ति मिले। राम जी सदा आपका कल्याण करे।"

तुलसीदास अपने गुरुभाई की बांह कसकर थामे हुए आगे बढ गए। नन्ददास की काया तुलसी के सहारे जा रही थी, वह स्वयं कहा थे इसका पता न था। कुछ डग चलने के बाद नन्ददास खड़े हो गए। तुलसी उन्हें देखने लगे। नन्ददास ने अपनी गर्दन युवती की ओर घुमाई फिर बिना उसे देखे ही पलट पड़े। नजरे जो झुकी तो फिर झुकी ही रही। तुलसीदास की दृष्टि ही नन्ददास की

सरक्षिका थी।

युवती करुण दृष्टि से उन्हे जाते हुए देखती रही। उसके दोनो हाथों मे अस्वीकृत भोजन का थाल था और आखों में अयाचित आसू उमड़ आए थे। × ×

१९

सुनाते हुए बाबा के वर्षों पहले बीते हुए क्षण अपनी अनुभूतियो के अणुओं को बटोर कर स्मृति मे इतने सप्राण हो चुके थे कि उनसे उनका मन अब भी गूज रहा था। वे कुछ क्षण आखें मूदे चित्त को सुस्थिर करने के लिए अपने भीतर निमग्न हो गए। भूत से वर्तमान मे ध्यान को लाते हुए वे बोले—"भूतकाल के जीवन को देखते हुए मुझे अपनी जवानी मे एक अयोध्यावासी सत के मुख से सुनी हुई बात इस समय अचानक ही याद आ गई। हम उन दिनो बहुत दुखी थे। रामघाट पर एक दिन वे हमसे अपने-आप ही कहने लगे, 'तुलसीदास, यह कभी न भूलना कि जो देवमूर्ति मन्दिर मे प्रतिष्ठित होकर लाखो के द्वारा पूजी जाती है वह पहले शिल्पी के हजारो हथौडो की चोटें भी सहती है।"

रामू बोल उठा—"पहले ही क्या प्रभु जी, इन कलिकाल के नराधमो ने आपको अब तक चैन नही लेने दिया। आप पुजते भी जा रहे है और हथौड़ो की मार भी सहते जा रहे है। ऐसा अनोखा देवता किसी देश ने किसी काल मे अब तक नही देखा था।"

बेनीमाधव जी रामू की बात सुनकर गद्‌गद हो गए। रामू की पीठ पर हाथ रखकर वे कुछ कहने ही जा रहे थे कि बाबा मुस्कराकर बोल उठे—"अब वह हथौडे मुझे फूलो जैसे ही लगते है। और सच बात तो यह है रामू कि साधक को सिद्ध होकर भी तप से नही चूकना चाहिए। तीर्थंकर महावीर वर्द्धमान का यह सिद्धान्त सत्य है। रामभद्र परम उदार हैं। निन्दको की कटु आलोचना से प्रतिपल-प्रतिछिन मैल धुलता ही रहता है। एक जगह पर पीडा मेरे लिए रत्नावली के समान ही सचेतक बन जाती है। जैसे रत्ना का दाहकर्म करके मानव धर्म से उऋण हुआ था वैसे ही इस काया के धर्म से उऋण होकर अपने स्वामी की सेवा मे जाऊंगा।"

मौका पाते ही तुलसी-कथा-प्रेमी बेनीमाधव ने बात को फिर अपने रस में बहाव देना चाहा। बाबा की बात पूरी होते-न होते बेनीमाधव जी बोल उठे—"मैं आपके वैवाहिक जीवन की कथाएं सुनने को आतुर हो रहा हू गुरू जी।"

बाबा मुस्कराए, फिर कहा—"मेरा विवाह राजा ने कराया था। वह कथा इन्ही से सुनो। रामू, मेरी जाघ की गिल्टी बहुत कष्ट दे रही है। लेप लगा दे बेटा।"

रामू तुरन्त ही लेप लाने के लिए उठकर गया। राजा बोले—"भैया, तुम्हारी यह गिल्टिया है तो बलतोड़ जैसी ही, पर इतने बलतोड़ एक साथ भला कैसे हो

सकते है ? हमें तो कोई और ही रोग लगता है ।"

रामू तब तक कोने मे रखी लेप की कटोरी लेकर आ गया और उनके दाहिने घुटने के पास झुककर गिल्टी पर लेप लगाने लगा। बाबा बोले—"तुम्हारा अनुमान सही हो सकता है, राजा। एक बार सोरों में भी हमे ऐसे ही दो गिल्टियां निकली थी। तब वहां लालमणि वैद्य ने इन्हे वात रोग का परिणाम ही बतलाया था। उन्होने जाने कौन-सा चूर्ण दिया कि दो ही पुड़ियो मे मुझे चैन पड़ गया।"

"तो किसी को सोरों भेजकर लालमणि का पता···"

"अरे वह तो मेरे सामने ही वैकुण्ठवासी हो गए थे। वह बूढे थे और बड़े भले थे।"

"तो नन्ददास जी को लेकर आप सीधे सोरो ही गए थे ?" बेनीमाधव जी ने पूछा।

"नही, पहले मथुरा गया था। बात यह है कि नन्ददास ने अपनी प्रिया की बात टेक-सी साध ली कि भइया मुझे मथुरा ले चलो। इसपर हमे भला क्या आपत्ति हो सकती थी। वही ले गए।"

राजा बोले—"पागल को साथ लेकर चलना भी अपने-आप मे बड़ी कठिन तपस्या होती है। एक बार हमको भी एक पागल को लेकर चित्रकूट से निकरमपुर तक आना पड़ा था। हम उस कष्ट को जानते है।"

बाबा बोले—"नही, वैसा कोई विशेष कष्ट नन्ददास ने मुझे नही दिया। वे प्राय गुमसुम ही बने रहते थे। मै जैसा कहता था वैसा वे कर लेते थे। उस स्त्री की फटकार से उनके दीवानेपन को एक करारा झटका लगा था। अजीव स्थिति थी, न इधर मे थे-न उधर मे। खैर, हम लोग मथुरा आ गए। नन्ददास वहा आकर मगन हुए। मुझे गोस्वामी गोकुलनाथ जी के यहा ले गए।"

रामू बोला—"उस समय उनकी क्या आयु रही होगी प्रभु जी, आप से तो छोटे ही होगे ?"

"गोस्वामी जी महाराज उस समय नौजवान थे। हमसे आयु मे छोटे थे, पर प्रखर बुद्धि और समर्पित व्यक्तित्वशाली थे। उनसे मिलकर बड़ा सुख पाया, लेकिन सर्वाधिक सुख तो भक्तवर सूरदास जी के दर्शन पाकर हुआ था।" × × ×

मन्दिर का एक दालान। पत्थर के एक मेहराबोदार दालान मे खम्भे से टिके एक छोटी-सी गुदड़ी बिछाए सूरदास जी बैठे है। उनका इकतारा दाहिने हाथ की ओर पास ही रखा हुआ है। बाई ओर उनकी लठिया और लौग-मिश्री की डिबिया रखी है। देह दुबली, मुह पोपला, हजामत थोडी-थोडी बढ़ी हुई, बाल सफेद बुर्राक और देह मंजे हुए तावे-सी दमकती हुई। उनकी आयु लगभग छियासी-सत्तासी वर्ष की होगी। सूरदास अपने उठे हुए दाहिने घुटने पर हाथ की उंगलियों से थपकिया देते हुए किसी भाव मे मगन बैठे हुए है। उस बड़े दालान और आंगन मे कई सेवक-सेविकाए काम करते दिखलाई दे रहे है। उनकी बाते भी चल रही है, परन्तु सूरदास जी सारे वातावरण से अलिप्त है। तुलसी और नन्ददास प्रवेश करते है। दोनो ही वयोवृद्ध सत-महाकवि के आगे भूमिष्ठ होकर प्रणाम करते है।

सूरदास सजग होते है, पूछते है– "कौन हे भैया ?"

"मैं हूं बाबा, रामपुर का नन्ददास !"

"अरे आओ-आओ नन्ददास, हमने सुना था कि तुम द्वारिकापुरी के दर्शन करने गए थे !"

नन्ददास के चेहरे पर एक बार लज्जा की लालिमा झलकी, फिर संभलकर उत्तर दिया—"हा, विचार तो यही था बाबा, पर श्रीनाथजी बीच रस्ते से घसीट लाए। और मेरे साथ मेरे एक पूज्य, प्रिय और अग्रज गुरुभाई पण्डित तुलसीदास जी शास्त्री भी आपके दर्शन करने के लिए पधारे हे।"

शास्त्री उपाधि सुनकर सूरदास जी झटपट अदब से बैठ गए और हाथ जोड़कर कहा-—"जै माखनचोर की, शास्त्री जी महाराज !"

"जै माखनचोर की, बाबा ! जै सियाराम ! आप मुझे यो हाथ न जोड़े। मै आपके बच्चे के समान हू।"

"अरे नही भैया, विद्या बड़ी चीज है। अब हमारे गोसाई गोकुलनाथ जी महाराज को देख लो। आयु देखी जाए तो अभी निरे बालक ही है।"

"वे महात्मा और प्रखर प्रतिभाशाली है, बडे बाप के बेटे है। मैने तो बाबा, अपने को पालनेवाली भिखारिन अम्मा से आपके पद सीखकर और उन्हे गा गा कर भीख मागी है मैया मेरी कबहिं बढ़ैगी चोटी।"

सूरदास अपने पोपले मुह से खिलखिलाकर हस पड़े, फिर कहा—"अरे तुम तो हमारे ही जी की बात कह गए भैया। मैं तरह-तरह मे गीत गाकर उस बंसीवाले के द्वारे पर भीख ही मागता हू। मेरा जनम इसी मे बीत गया।"

नन्ददास बोले—"तुलसी भैया बड़े राम-भक्त और बड़े अच्छे कवि हैं। संस्कृत और भाषा दोनो ही मे कविता करते है।"

सूरदास के चेहरे पर आनन्द छा गया, कहा—"भला ! तब तो हमे कुछ जरूर सुनाओ भैया।" × × ×

सूरदास की स्मृति से बाबा गद्‌गद थे, कहने लगे—"मुझे सूरदास जी के श्रीमुख से उनका एक पद सुनने का सौभाग्य भी मिला था। वाह, कैसा रसमय स्वर था उनका !"

(गाकर) अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम-क्रोध को पहिर चोलना कंठविषय की माल।

गाते हुए बाबा तन्मय हो गए। यद्यपि उनकी आंखे खुली हुई थी पर यह लगता था कि वह अपने सामने के दृश्य मे अलिप्त है। राजा भगत ने बेनीमाधव को सकेत किया, दोनो चुपचाप उठे। रामू भी उनके साथ ही साथ उठा किन्तु द्वार पर आकर ठहर गया, कहा—"मैं यही रहूंगा। पर भगत जी, एक अरदास है, राजापुर की कथा अकेले संत जी को ही न सुनाइएगा।"

राजा भगत और बेनीमाधव जी दोनो ही मुस्कराए। भीतर कोठरी मे ध्यान-

मग्न बाबा पर एक दृष्टि डालकर बेनीमाधव जी ने कहा—"अभी तो सोरो-प्रसंग भी सुनना है।"

२०

उस रात बाबा की पीड़ा कुछ अधिक बढ गई थी। पीठ और बाईं बांह मे कुछ नई गिल्टियां उभर आई थी। उनका तनाव उन्हे कष्ट दे रहा था। बार-बार वे करवट बदलकर कराह उठते थे। रामू दिये के उजाले मे उन गिल्टियों पर लेप लगा रहा था। बाबा बोले—"अब हम अधिक दिनों तक इस जर्जर काया मे रह नही पाएगे, रामू। इसमे रहने मे अब हमे कष्ट हो रहा है। हे राम!"

रामू विचलित हो उठा, कण्ठ भर आया। उसने कहा—"आप इस तरह से हताश होगे गुरु जी तो हमारी कौन गति होगी?"

"हताश नही होता पुत्र, मै अपना यथार्थ बखान रहा हूं। मेरे मन की नित्य बढती हुई तरुणाई का साथ अब यह शरीर नही दे पाता।...मेरा काम वेग अति प्रखर रहा था। गार्हस्थ्य जीवन बिताने के बाद फिर से ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना ही मेरे लिए अति कठिन चढाई के समान सिद्ध हुआ। काम से सभी राग जागते है और उसीसे समस्त विभूतियो का भी उदय होता है। मैंने अपने कामलौह को रामरसायन से सोना बना लिया है, यह सच है, पर शरीर को तो उसके आघात सहने ही पड़ेगे। (कराह कर) हे राम! बजरंग! कहा हो प्रभु?"

रामू बोला—"मैं वैद्य जी के पास जाऊं प्रभु जी?"

"क्या करोगे। मेरा वैद्य तो हनुमान बली है। मेरे रोम-रोम मे तनाव बढ रहा है। ऐसा लगता है कि अभी और गिल्टिया निकलेगी। मैं कल्पना करता था कि ऐसा बन जाऊ कि मेरे रोम-रोम मे राम बस जाएं। उनके अतिरिक्त और कुछ न सोचू, कुछ न कहू, कुछ न करूं। पर लौकिक जीवन मे रहकर ऐसा संभव नही हो सका। राग-विराग मे पड़ते, लडते-जूझते आयु का बहुत-सा भाग नष्ट कर दिया। अब रोया-रोया अपने-आपको दिये गए विफल प्रलोभन से कुण्ठित और क्षुब्ध होकर मुझे यो दण्ड दे रहा है। राम! राम!"

"प्रभु जी, यों तो मै आपके मर्म को समझने मे समर्थ नही हू फिर भी लोक मे आपके समान समर्पित जीवन का दूसरा दृष्टान्त नही दिखलाई देता। आपके क्रोध, शोक, लोभादि मानवीय विकार भी राम-स्वार्थ ही से जागते है, मैं स्वयं साक्षी हू। फिर आपका यह पछतावा, मुझे क्षमा करे प्रभु, स्वयं आपके प्रति अन्याय लगता है। मेरा कलेजा जब अधिक सह न पाया तो कह दिया।" कहते-कहते रामू का कण्ठ भर आया। उसने उनकी बाह पर अपना सिर टिका लिया।

बाबा शांत स्वर मे बोले—"अपने संकल्प और कर्म को सदा तौलते रहना मेरा धर्म है। इससे साधू को शक्ति मिलती है। छोड़ो इसे, तुम्हे एक विचित्र

सयोग सुनाऊं रामू। जिन दिनो मे लंका काण्ड मे लक्ष्मण-शक्ति वाला प्रसंग रच रहा था उन दिनो भी मुझे वातपीडा ने बहुत सताया था। मैंने अपनी पीड़ित वाह से जूझकर श्रीराम के संताप-विलाप वाली चौपाइया लिखी थी। मेरी पीड़ा राम के प्रताप में घुल जाती थी। जितनी देर लिखता उतनी देर बांह मे दरद नही होता था। रामू, सुनाओ तो वेटा वह प्रसंग। राम रसायन ही मेरी वेदना हरेगा।"

रामू गाने लगा—

उहा राम लछिमनहि निहारी। वोले वचन मनुज अनुसारी॥…

रामू के स्वर के सहारे वावा के विम्व सजग हो रहे थे। मूर्च्छित लक्ष्मण का सिर अपनी गोद मे रखे हुए श्रीराम विलाप कर रहे है। सुग्रीव, अंगद, सुषेण वैद्य, विभीषण आदि चिन्तामग्न मुद्रा मे वैठे है। एकाएक हनुमान को पर्वत उठाए आकाश मार्ग से आते हुए देखकर सवके मुखो पर उल्लास चमक उठता है। और उन मनोविम्वो का सारा उल्लास सिमटकर वावा के चेहरे पर आ जाता है। वे प्रार्थना करने लगते है—"आओ वजरंगी, मेरी वेर भी ऐसे ही राम संजीवनी वूटी लेकर आओ! धाओ नाथ! अन्तकाल में कष्ट न दो।"

वावा फिर आख मूदकर ध्यानमग्न हो गए। प्राणगुफा मे अखण्ड दिया जल रहा है। लौ मे राम-कथा की अनेक झलकिया झिलमिलाती हैं फिर दृश्य मे स्थिरता आती है। लक्ष्मण और हनुमान-सेवित श्रीसीताराम मनपर तुलसी के सामने है। गुफा असख्य मृदंग-वादन से गूज रही है—राम-राम-राम। वावा समाधिस्थ हो जाते है।

ब्राह्मवेला में वावा ने आवाज़ दी—"रामू!"

रामू शायद तभी सोया था। वावा ने दूसरी वार पुकारा। रामू चौककर जागा। वावा ने उसे सहारा देकर उठाने को कहा। जव उसने उनका हाथ छुआ तो वोला—"आपको तो ज्वर हो रहा है प्रभु जी!"

"हा, गिल्टियो के कारण है।"

"आज आप यदि स्नान न करें तो…"

"जव तक शरीर मे शक्ति है तव तक अपनी चाकरीसे चूकू? चल, उठा मुझे।"

रामू हिचका, वोला—"वैद्य जी मेरे ऊपर चिल्लाएगे।"

"शाही नौकर नही हूं जो हराम की खाऊं। जव तक शरीर मे उठने की शक्ति रहेगी तव तक राम का यह चाकर अपने कर्त्तव्यो से विमुख न होगा। वैद्य चाहे जो कहे।"

वावा ने स्नान किया। कसरत भी करनी चाही पर पहली ही डंड लगाते हुए वे गिर पड़े। रामू ने उन्हे उठाकर कहा—"अव कोठरी मे चलिए प्रभु जी, सेवक की वात इस समय आपको माननी ही पडेगी। वही वैठकर ध्यान कीजिए।"

वावा कराहते हुए वोले—"अरे हमने सोचा कि व्यायाम करने से शरीर में रक्त-संचार होगा तो यह गिल्टिया दवेगी। राम जी की इच्छा।"

"धृष्टता क्षमा हो प्रभु जी, पर मैं समझता हू कि गिल्टियो को आपके नियमित व्यायाम के कारण ही…"

"धत्तेरे की रामभगनवा, तू भी शिवचरण वैद्य की तरह से बोलने लगा। अरे, तुलसी के वैद्य रघुनाथ जी है। यह मूढ मतिमन्द चूंकि हठ के सहारे ही रामचरणानुगामी होता रहा है इसीलिए अंधेरे मे चलने के समान इसे एकाध ठोकर बीच-बीच मे लग जाती है। उसकी क्या चिंता ?"

बाबा को आसन पर बिठाकर रामू फिर घाट पर पडी रह गई बाबा की लंगोटी और अंगौछे को धोने तथा एक गोता मारकर जल्दी से लौट आने के लिए लपका। राजा भगत और बेनीमाधव जी उस समय घाट की सीढ़ियां उतर रहे थे। रामू पंडित के रामजुहार करने पर राजा ने पूछा "भैया कहां है ?"

"उन्हे कोठरी मे बिठला के आ रहा हू। ज्वर मे भी नहाने का आग्रह किया, फिर गिल्टियों-भरी बाह से डड लगाने लगे, सो गिर गए। मै जल्दी मे हू भगत जी, एक गोता मारके बाबा के पास पहुंचना चाहता हू।" कहकर रामू तेजी से नीचे उतर गया। भगत जी बेनीमाधव से बोले—"भैया इतने बड़े ज्ञानी और महात्मा है पर कभी-कभी बच्चो जैसा हठ करने लगते है। क्या कहे ?"

बेनीमाधव जी बोले—"खेल का दीवाना बच्चा कष्ट को महत्त्व नही देता, भगत जी। ऐसा शिशु बनना भी बडा कठिन होता है।"

सवेरे स्नान-पूजादि से निवृत्त होकर बाबा अपने अखाडे के चबूतरे पर बैठते है। वही अपने रोग-शोक निवारण के लिए जनता उनके पास आती है। आज उनके न पहुंचने पर तथा ज्वर का हाल सुनकर कुछ लड़के उनके पास पहुचे। दण्डवत् प्रणाम आदि करने के बाद एक लड़के ने पूछा—"कैसी तबीयत है बाबा ?"

हंसकर बाबा बोले—"अच्छे है। आओ, हमसे पंजा लडाओगे ?"

सब लोग हस पड़े, एक बोला—"अरे ये मंगलुआ आपसे हार जाएगा बाबा, आपके हजारो बार मना करने पर भी इसने अभी तक गाली बकना नही छोड़ा ?"

पहला युवक मगल, मित्त की बात सुनकर चिढ गया। उसकी ओर आंखें निकालकर देखता हुआ बोला—"कौन उल्लू का पट्ठा साला गाली बकता है ?"

कोठरी मे उपस्थित सभी लोग फिर हस पड़े। बाबा हसते हुए हाथ उठाकर बोले—"अरे भाई, ये गाली मंगल थोड़े बक रहा है। इसका कुसंस्कार बक रहा है।"

मंगल झेंपकर खोपडी खुजलाते हुए बोला—"क्या करे बाबा, लाख जतन करते हैं पर मुह से निकल ही जाती है साली।"

एकाध लोग हसने लगे, पर मंगल ने अपनी बात को स्वर में नया जोर देकर आगे बढाया, बोला—"आपका यह सारा कष्ट उस दुष्ट रवीदत्त के कारण ही है बाबा जी। वह मणिकर्णिका पर आपको मारने के लिए बड़ा भारी अनुष्ठान कर रहा है।"

"हां बाबा, मंगल ठीक ही कह रहा है। हमने भी कल सुना था। दस-बीस लोग उसकी पीठ पर हैं, रुपिया खरच कर रहे है। पर बाकी लोग उन पर थू-थू कर रहे है बाबा।"

बाबा हंसे, कहा—"भैया किसीके करने-धरने से कछ भी नही होता. मैं अपने पापों का दण्ड भोग रहा हू।"

मंगल की त्योरिया फिर चढ गईं, बोला—"बाबा, जब तुम इन साले दुष्टों की बात लेकर अपने को पापी कहते हो तब मेरे रोएं-रोएं मे आग लग जाती है। तुम्हारे विरुद्ध हम तुमसे भी नही सुनेंगे, बताए देते हैं।"

बाबा हंसकर चुप हो गए। मंगलू गरमाता रहा—"इतने बड़े महात्मा है, आप जरा एक सराप मुह से निकाल देव कि मर ससुरे रवीदत्त भसम हुइ जा। काठ के उल्लू के पट्ठे।" बाबा बीच मे हंसकर बोल उठे—"अरे भाई, उसका बाप काठ का नही, हाड-मास का था, उल्लू भी नही था। वह मेरा सहपाठी था।"

मगल फिर गरमाया। हवा मे मुक्का तानते हुए उसने कहा—"आप न सही पर मैं आज उस साले को उठाकर किसी जलती चिता मे जरूर फेंक आऊंगा। मुझसे आपका यह कष्ट देखा नही जा रहा है।"

बाबा गम्भीर हो गए, बोले—"मंगल जा, व्यायाम कर, मैं इन संत बेनी-माधव जी से कुछ आवश्यक बात करना चाहता हूं। विश्वास रखो मैं अभी किसी के मारे नही मरूगा। रविदत्त के साथ कोई खिलवाड न करना। उसे अपना मन बहलाने दो। जाओ।" युवको के चले जाने पर बाबा ने राजा भगत से कहा—"राजा, वेनीमाधव को हमारे राजापुर पहुचने का प्रसंग तुम्ही सुनाओ। हमे एकांत दो, पर इसका आशय यह भी नही है कि मेरी सेवा चाहने वाला कोई दीन-दुखी मेरे पास आ नही पाएगा।"

सब लोग उठने लगे तभी वेनीमाधव जी बोले—"हमने सुना था कि आप कुछ काल तक सोरो मे भी रहे थे। फिर वहा से आपका कैसे आना हुआ? यह अंश भगत जी कदाचित् न सुना सकेंगे।"

"हा, पर वहा कोई विशेष प्रसग नही घटा। वैसे सोरो रम्य स्थान है। भरत खण्ड के समीप, सुरसरि के तट पर बसी हुई संस्कार-सम्पन्न पुरी है। फिर हमे वहा संगति भी भली मिल गई थी। हम वहा कथा बाचते, अध्यापन करते तथा अपनी साधना मे रत रहते थे।" केवल एक ही विघ्न पड़ा। वहा हमारी राम-सेवा का जब थोडा-बहुत माहात्म्य फैला तो नन्ददास हमारे राम से अपने श्याम को लडाने लगे थे। वे स्वस्थ तो अवश्य हो गए थे पर उनकी श्याम-धुन बढ गई थी। उन्होने बडा आन्दोलन मचाकर अपने गांव का नाम रामपुर से बदलकर श्यामपुर कर दिया। मैने सोचा कि मेरे सामने रहने से इनकी कृष्ण-भक्ति प्रतिद्वन्द्विता मे केवल अखाड़िया बनकर ही रह जाएगी। यह अच्छा न होगा। नन्ददास उच्चकोटि के भावुक पुरुष थे। मैं उन्हे और स्वयं अपने को भी मार्गच्युत नही करना चाहता था। तभी एक रात हनुमान स्वामी ने स्वप्न मे आदेश दिया कि अपनी जन्मभूमि मे जाकर रह। सो चला आया। पहले अयोध्या गया फिर बाराह क्षेत्र मे कुछ दिन उसी स्थान पर विताए जहा नरहरि बाबा की कुटिया थी। मेरे काशी मे अध्ययन करते समय बाबा जी के भक्तो ने वहा एक सीताराम जी का मन्दिर भी बनवा दिया था। फिर घूमते-घामते प्रयाग पहुचा और वहा से राजापुर। वह दिन हमारी आंखो के सामने ऐसा स्पष्ट झलक रहा है जैसे आज अभी ही की बात हो।" × × ×

२१

यमुना तट पर एक बड़ी नाव आकर घाट से लगती है। उस पर बैठे हुए यात्री उतरने की हड़बड़ाहट मे आ जाते है। घाट पर बैठे हुए एक अधेड़ सज्जन अपने दुपट्टे को पखे की तरह हिलाते हुए आगे बढकर नाव के मल्लाह से पूछते है—"यह नाव कहा से आई है भैया ?"

"परयागराज से।"

"अरे हमारा माल लाए हो, जोराखन साहु का ?"

"हा-हां, साहु जी, ये बोरिया रघूमल बटुकपरसाद के यहा से आप ही के . "

"ठीक है, ठीक है।" आश्वस्त भाव से साहु जी ने पलटकर सीढ़ियो के ऊपर खड़े अपने नौकर पलटू को चिल्लाकर मजदूरों को भेजने का आदेश दिया। तभी नाव से उतरकर कुछ क्षणों तक इधर-उधर देखने के बाद तुलसी ने अपने पास ही खड़े हुए साहु जी से पूछा—"यहा किसी साधु-संत के स्थान या किसी धर्मशाला का पता बतलाएगे साव जी ?"

"धरनशाला तो कोई नही, बाकी साधू ! लेव, नाम मन मे आते ही दिखाई पड़े। अरे भगत जी, यहा आओ।"

सीढियां उतरते हुए एक बलिष्ठ और तेजस्वी श्याम वर्ण का युवक जोराखन साहु की बात पूरी होते ही बोला—"अरे हम तो आप ही तुम्हारे पास आ रहे है। हमारे बिनौले आए कि नही ?"

"देखो, अब माल आया है। चार दिनो से रोज निरास लौट जाते थे हम। अबकी तो ऐसा कहत पड़ा है कि कोई चीज ही नही मिल रही है। सीढियां उतरते हुए ही राजा भगत की आंखे तुलसीदास की आंखों से जा मिली थीं। दोनों व्यक्ति मानो एक दूसरे को परख रहे थे और दोनों ही एक-दूसरे के लिए चुम्बक भी बन गए थे। पास आकर राजा ने तुलसीदास को झुककर प्रणाम किया। तब तक साहु जी बोल पड़े—"अरे भगत जी, यह ब्रह्मचारी जी हमसे साधू का अस्थान पूछ रहे थे। (तुलसीदास से) महराज, वैसे ये है तो गिरिस्त और चार पैसे वाले भी है—सौ-पचास गाये है, खेती है। ससुराल का माल भी इन्ही को मिला है। बाकी है यह साधू ही।"

राजा की सरल आखो में आखे डालकर तुलसीदास ने प्रसन्न मुद्रा मे कहा—"इनकी आखो मे राम झलक रहे है। मैं तो देखते ही पहचान गया।"

अपनी प्रशंसा से अति संकुचित होकर राजा भगत हाथ जोड़कर बोले—"मैं तो महराज साधू-सतो का सेवक हूं। आइए, मेरी कुटिया मे अपनी चरन-धूल डालिए।"

तुलसीदास एक डग आगे बढ़ाकर फिर मुड़े और साहु जी से राम-राम की।

साहु जी अपने कत्थे-रंगे दांतों की बत्तीसी दिखाकर बोले—"हे-हे', मैं तो

आपको अपने यहा ही ठहरा लेता पर आपने साधू का अस्थान पूछा…"

भगत ने सीढ़ी चढते हुए कहा——"ठीक है, ठीक है, बातो मे कौडी थोटे ही खर्च होती है साहु जी। मीठी बातो का दान दे देते हो, यही क्या कम है!" सीढ़िया चढते हुए भगत ने तुलसी से पूछा—"कहा से पधारना हुआ महराज ?"

"कई वर्षो से तीर्थाटन पर था भाई। पहले काशी मे रहा और इस समय सोरो से आ रहा हूं। बीच मे अयोध्या-सूकरखेत आदि के भी दर्शन किए।"

"चित्रकूट जाने के लिए इधर आना हुआ है ?"

"हा, चित्रकूट के दर्शन का प्रलोभन तो है ही, पर विशेष रूप से मैं अपनी जन्मभूमि के दर्शन करने आया हूं।"

"आपकी जन्मभूमी कहा है महराज ?"

"यही, विक्रमपुर गांव मे।"

राजा भगत चलते-चलते थम गए और चकित दृष्टि मे देखकर कहा—"यहा ?"

"हा भाई, पर जन्मते ही यह स्थान मुझसे छूट गया था।"

"आपके पिता का क्या नाम था महराज ?"

"पंडित आत्माराम।"

"अरे तो आप ही हैं जो मूल नछत्र से जन्मे रहे ?"

"आपने ठीक पहचाना।"

"तब तो तुम हमारे भैया हो। हमसे एक दिन बड़े। हम अहिर हैं नाम है राजा। औ, आपसे चार दिन बडे तकरीदी भैया है। जुलाहे हैं। दस करघे चलते हैं और दर्जी का काम भी करते हे। पुराने लोग सब बताते रहे, अब कोई नही रहा। पुराना विकरमपुर गाव तो हमारे-तुम्हारे जलम के बखत ही उजड गया था। कुछ बरस हुए वो पुरानी बस्ती भी जमना जी की बाढ मे बह गई।"

"वह जाने दो राजा। मेरी जन्मभूमि के पुण्यस्वरूप तुम तो हो।"

"अरे हम तो संतो की चरनधूल है। बाकी भगवान ने तुम्हे यहां खूब भेज दिया। पहले हमारे गाव मे ब्राह्मनों के कई घर थे। अब सब इधर-उधर चले गए। ऐसा जी होता है भैया कि एक बार यह बस्ती फिर से बस जाय।"

राजा भगत के वाक्य के अक्षर गिनकर और मन ही मन मे मीन-मेख विचार कर तुलसी बोले—"तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी, भाई। बडे शुभ मुहूर्त मे यह बात तुम्हारे मन मे उदय हुई है।"

खेतो के किनारे चलते-चलते राजा भगत थमकर आनंदचकित मुद्रा मे तुलसीदास को देखने लगे—"बस्ती बसेगी तो तुम्हारे नाम पर ही अबकी उसका नाम रखा जायगा, तुम्हारा नाम क्या है भैया ?"

"मेरा नाम तुलसी है, पर गांव का नाम राजापुर होगा। तुम इस गाव की आत्मा के रूप मे ही मुझे मिले हो।"

दो-तीन दिनो मे राजा तुलसी ऐसे घुल-मिल गए कि मानो अब तक वे साथ ही साथ रहे हो, तुलसी की ज्ञान-भक्ति-भरी बातें सुन-सुनकर राजा और उनके कुनबे के लोग बडे ही प्रभावित हुए। राजा बोले—"अब तो भैया, हम

तुम्हे कही जाने न देगे । यही जमना जी के किनारे तुम्हारे लिए कुटिया बना देगे । मजे से कथा बाचना और सुख से रहना ।"

"अरे, बहते पानी और रमते जोगी को कौन रोक पाया है, भगत ? जन्म-भूमि देखने की लालसा पूरी हो गई, अब चित्रकूट जाऊंगा ।"

"चित्रकूट हम तुम्हे ले चलेगे । चार दिन वहा रहना फिर यही आ जाना ।"

राजा भगत की यह बात सुनकर तुलसीदास चिन्तामग्न मुद्रा में फीकी हंसी हंसकर बोले—"जान पडता है कि मैं जिस स्थिति से बचना चाहता हू उसमें फंसे बिना मेरी और कोई गति नही । फि॰ भी यह देखना है राजा कि हममे से कौन जीतता है ।"

तुलसीदास की बात राजा भगत ठीक तरह से समझ न पाए । अचम्भे-भरी दृष्टि से पल-भर उनको देखते रहने के बाद राजा बोले—"मैं ठीक तरह से यह समझ नही पाया कि तुम काहे से बचना चाहते हो ? साइति घर-गिरस्ती मे फंसने का डर तुम्हारे मन मे है, है न ?"

"तुमने ठीक सोचा । असल मे बात यह है राजा कि जन्मकुडली के अनुसार मेरा विवाह यदि होगा-तो मुझे दु.ख सहना पड़ेगा । यह जानकर ही मैं उससे बचना चाहता हू । यह जीवन रामचरणानुरागी होकर ही बीत जाय, बस इससे अधिक मैं और कुछ भी नही चाहता ।"

सुनकर भगत हंसने लगे, कहा—"साधू के लिए घर-गिरिस्ती का सपना बड़ा डरावना होता है । हम भी ब्याह नही करना चाहते थे भइया । चौदह बरस की उमिर मे हम गांव के कुछ लोगो के साथ चित्रकूट गए थे । वही एक साधू की संगत मे हमारे मन मे बैराग उपजा । यह देखकर हमारे बप्पा और काका ने झटपट हमारा ब्याह कर दिया । पहले तो हम दु:खी भए पर अब ऐसा लगता है कि अच्छा ही हुआ, घरैतिन मेरे जप-तप को अपने भगती-भाव से बढावा देती है । हम दोनो के लिए घर-गिरिस्ती के काम भी भगवान की पूजा के समान ही है ।"

"राम करे, तुम्हारे सुख मे निरन्तर वृद्धि हो, पर मुझे यदि इस प्रलोभन से बाधने का जतन् करोगे राजा, तो विश्वास मानो, मै यहा से ऐसा भागूगा कि तुम मुझे फिर कभी खोज भी न पाओगे ।"

राजा हसने लगे, कहा—"सूत न कपास कोरियो से लट्ठमलट्ठा । अरे भइया, हम तुम्हारा ब्याव अभी थोडी ही रचा रहे है जो तुम भागने की सोचने लगे । हमने तुम्हारी कुटी बनाने के लिए एक ऐसी पवित्र जगह चुनी है कि तुम मगन हो जाओगे । चित्रकूट जाते समय राम जी जिस जगह नाव से उतरे थे और जहा उन्होने जानकी मइया तथा लछमन जी के साथ बिसराम किया था वही तुम्हारी कुटी छवाऊंगा ।"

"सच ?"

"हा, हमारे गाव के लोग पीढी दर पीढी से यह बात दोहराते चले आए है ।"

"राजा, तुम मुझे शीघ्र से शीघ्र उस जगह पर ले चलो ।"

"आज नही भैया । आज हम तुम्हारे लिए कुटी बनाने का लग्गा जरूर

लगा देंगे। दो दिनों में वहा सब कुछ तैयार हो जायगा। तेरस से पूनो तक बड़ी भारी पैंठ लगती है। हमारा विचार है कि आज-कल में इस ग्राम-पास के गांव में सब जगह यह कहला दें कि तेरस से पूनो तक यहां कथा होगी। बस उसी दिन तुम्हें वह जगह दिखा ही नहीं देंगे, वहां तुम्हें बसा भी देंगे। वहीं कथा बांचना और आनन्द से ध्यान रमाना।"

वे दो दिन तुलसीदास ने बच्चों जैसी अकुलाहट के साथ बिताए। वह स्थान जहां राम जी भाई और सहधर्मिणी के साथ उनकी जन्मभूमि के गांव में कुछ देर रहे थे और जहां अब वे आठों याम रहेंगे, उनके मन को वैसा ही विरहा-कुल बनाने लगा जैसा मोहिनी ने बनाया था। विरह-साम्य से मोहिनी दो-तीन बार ध्यान में झलकी, पर तुलसी के राम-प्रेम ने उसकी याद को दबा दिया। इस समय राम-बल अधिक था।

राजा भगत ने सचमुच ही बड़ी सुन्दर प्रचार-व्यवस्था की थी। काशी जी से एक बड़े भारी व्यास जी के पधारने की बात दो ही दिनों में दूर-दूर तक पहुंच गई। यह काशी के नाम का महात्म्य ही था कि पैंठ के दिन हर बार की औसत भीड़ से अधिक लोग विक्रमपुर आए थे। तीसरे पहर बालू पर, तुलसी-दास की नई बनी हुई कुटी के आगे, खासी भीड़ बैठी हुई थी।

तुलसीदास ने अपने प्रवचन का आरम्भ इसी जगह श्रीराम-लक्ष्मण और जानकी के पधारने की बात ही से आरम्भ किया।

भूमि-प्रेम जगाते हुए उन्होंने सियाराम-लक्ष्मण के आगमन का शब्दचित्र खींचना आरम्भ किया। तीन लोक के नाथ, सचराचर के स्वामी अपनी ही लीला के वशीभूत होकर, वनवास करने के लिए पधार रहे हैं। आस-पास के गांवों में धूम मच गई है कि कोई अनोखे राजकुमार आ रहे हैं। कैसे हैं वे कुमार, कि—

जलजनयन, जलजानन, जटा है सिर,
जोबन-उमंग अंग उदित उदार हैं।
सांवरे-गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी-सी,
मुनिपट धारें, उर फूलनि के हार हैं॥
करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,
अति ही अनूप काहू भूप के कुमार हैं।
तुलसी बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि,
रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं॥

राम जी उनके संकोच को दूर करके उनसे ऐसे प्रेमपूर्वक भेंट रहे हैं कि मानो अपने सगे-संबंधियों को भेंट रहे हों। भगवान और जगदम्बा के दर्शन करके लोग निहाल हो रहे हैं। उसी समय एक तापस वहां पर आया। वह सबसे पीछे खड़ा हुआ अपलक दृष्टि से अपने आराध्य देव को देखता रहा। भगवान का ध्यान तापस की ओर गया। उन्होंने बड़े प्रेम से उसको अपने पास बुलाया और उसे हृदय से लगाया।

तापस के वेश मे, तुलसीदास स्वयं अपनी ही कल्पना कर रहे थे। तुलसीदास इस तरह से तन्मय होकर सियाराम के शुभागमन का दर्शन कर रहे थे कि जैसे उनके सामने यह दृश्य प्रत्यक्ष हो और न देख पाने वालो के हित मे वे उसे बखान रहे हो। उस दिन का प्रवचन उन्होने यह कहकर समाप्त किया कि "राम दीन-बन्धु है। जिसका कोई सहारा नहीं है उसके राम सहाय है।।" तुलसी के स्वर मे इतनी सचाई और वर्णन में इतनी सजीवता थी कि सभा मे सम्मोहिनी बंध गई।

चार दिन की पैंठ मैं तुलसीदास के प्रवचनों की धूम मच गई। लोगों को यह भी मालूम हो गया कि यह व्यास जी दरअसल इसी गाव के है। वे काशी पढ़ने गए थे। बदरी-केदार-मानसरोवर के दर्शन करके अब यही बसने के विचार से आए है।

प्रवचन के इन तीन दिनो मे आरती मे चढत भी अच्छी हुई। चादी और तावे के टके चढ़े और पैंठ के अन्तिम दिन तुलसीदास जी की कुटी में अनाज और फल-फूलों का भी अच्छा ढेर लग गया। तुलसीदास संतुष्ट हुए। कुछ लोगों को अपनी ज्योतिष विद्या से भी उन्होंने प्रभावित किया। बस फिर तो धूम मच गई। कोई दिन ऐसा नही जाता था कि बाबा की कुटी मे दस-पांच आदमी न आते हों। तुलसीदास अपनी आय के बारे मे तनिक भी चिन्ता नही करते थे। इधर आया और उधर किसी दीन-दुःखी को दे दिया। राजा को यह रुचिकर न लगा, एक दिन कहा—"भैया आज से जो कौडी-टके सेवा मे चढ़े उन्हे तुम अपनी रकम मानकर खरच मत करो।"

"ठीक है, वह राशि तुम्हारी है।"

"मेरी भी नही है भैया, वह मेरी आनेवाली भौजी की है।"

तुलसी त्योरियां चढाकर बोले—"देखो, राजा, तुम अपने मन से इस प्रकार के विचार निकाल दो। मैं इस माया मे नही पड़ूंगा।"

राजा हंसे, कहा—"जमनापार एक बड़े पडित जी रहते है, वो भी बडे भारी जोतसी है। आपके पिता से उनका नेह-नाता रहा। वह हमसे कहते थे, रजिया, इस लड़के का व्याह जरूर होगा।"

तुलसीदास खिलखिला कर हंस पडे और बोले—"राजा, साधु जब हंसी मे भी ठग बनने का स्वाग करता है तो वह तुरंत पकडाई मे आ जाता है।"

यह सुनकर राजा भी हंस पडे, फिर कहा—'हसी-ममखरी मे हम कभी-कभी झूठ जरूर बोलते है भैया पर हमारी यह बात झूठी नही है।"

"खैर, हम आज से यहा चढने वाला दमड़ी-टका अपने हाथ से न छुएंगे। वह तुम्हारा है, तुम्ही खरच करना। बाकी हमको व्याह के प्रलोभन मे फंसाने का प्रयत्न मत करो।"

राजा बोले—"फंसाता तो प्रारब्ध है भैया। जोडिया पुरबले जनम के संस्कारो से बनती है और हमारे दीनबन्धु पाठक महराज कोई ऐसे-वैसे थोड़े ही हैं, एकदम राज-जोतसी है, भइया। पक्का घर है। बड़ी खेती-बारी है। एक राजा इन्हे हाथी भी दे रहे थे पर ये बोले कि आप लोग जब मुझे बुलाते है तो

अपना हाथी भेज ही देते है और वाकी हमारे कोई लडका तो है नही, एक विटिया है। सो हम हाथी वाध के क्या करेगे ? वडे भले आदमी है।"

वात आई-गई हो गई। उस दिन से तुलसीदास ने पैसा को छूना भी बंद कर दिया। यो, पैसे-टके चार दिनों की पैठ के समय ही चढा करते थे। बीच मे राजा भगत की मार्फत जमनापार के पाठक महराज ने दो वर्षफल वनाने का काम भी तुलसीदास के पास भेजा था। ताजिक रमल शास्त्र के कुछ ही जानकार थे। उन वर्षफलो के वनाने की दक्षिणा मे उन्हे ग्यारह स्वर्णमुद्राएं मिली। तुलसीदास के जीवन मे इतनी बड़ी कमाई पहली ही बार हुई थी। सोना छूकर प्रसन्न हुए। अशर्फिया अपने हाथ मे उठाकर उन्होने प्रसन्न भाव से उन्हे एक हथेली से दूसरी हथेली को दे-देने का वार-वार खिलवाड किया। फिर एकाएक चौककर राजा से पूछा—"क्यो जी, दो यजमानो के यहा से आई होगी तो पांच-पाच मोहरे आई होगी, फिर यह एक ऊपर से हमारे पास कैसे आ गई ?"

राजा हसे, वोले—"हम तो समझते रहे भैया कि तुम एकदम भोलानाथ हो, तुम्हारा ध्यान ही नही जाएगा। यह वढोत्तरी की असर्फी पाठक महराज ने अपनी तरफ से मिलाके भेंट भेजी है। कहने लगे, बड़े महराज का नाम लेके, कि उनका लडका, सो हमारा लड़का। ऐसा वढिया काम करके उसने हमें जिजमानों से जस दिलाया तो हम भी उसे इनाम दे रहे हैं।"

तुलसी प्रसन्न हुए, कहा—"रजिया, एक दिन हमे पाठक जी महाराज के पास ले चलो। मैंने अपने पिता को नही देखा तो कम से कम अपने पिता के एक मित्र को ही देख लू।"

"अरे वह तो आप ही तुमसे मिलना चाहते है। कहने लगे कि हमारी रतना जो लड़की न होकर लड़का हुई होती तो मैं उसे तुलसीदास के पास ही सीखने के लिए भेजता। पाठक जी महराज ने अपनी विटिया को अपनी सारी विद्या दी है भैया। सव लोग रतना-रतना कहते है उसे। सुना है पूरी पण्डित हुइ गई है।"

तुलसीदास ने हसकर राजा का हाथ पकडकर हल्के से घसीटते हुए कहा—"तुम हमसे चांईपना न करो रजिया। हम व्याह के फेर मे नही पडेंगे, नही पडेंगे—वताए देते है। मैं कह नही सकता राजा कि इस जगह मेरी कुटी छवाकर तुमने मुझे क्या दे दिया है! जानते हो मैं यहां एक पल के लिए भी अकेला नही रहता। विना जतन किए अति सहज भाव से मुझे सियाराम जी और लखनलाल के दर्शन सुलभ होते रहते हैं। मेरे मन पर यहां मैल जम ही नही सकता। तुमसे सच कहता हूं।"

राजा हंसकर वोले—"तुम ऊंची आत्मा हो भइया। वाकी एक वात कहे, तुम्हारे आस-पास अव ऐसी भगतिने मडराने लगी है जो साधु-सन्यासियो का ही सिकार खेलती हैं।"

तुलसीदास खिलखिलाकर हस पडे और देर तक हसते रहे, फिर कहा—"रजिया, नदी-नालो मे डूव न जाऊ इसलिए राम जी ने दया करके मुझे वहुत पहले ही समुद्र मे डुवाकर फिर उवार लिया था। अव इन लंका की निशाचरियो के घेरे मे भी मेरी आत्मा जनकदुलारी के साथ राम के ध्यान मे ही रमती है।

यह स्त्रिया आती है तो मानो मेरे ध्यान को और अधिक एकाग्र करने के लिए ही आती है। खैर, अब यह प्रसंग छोडो, यह वन तुम्हे सौप रहा हूं, पर यह मेरा है। रजिया, इस गाव मे सकटमोचन महावीर जी की स्थापना होगी। जब तक यह स्थापित नही होगे तब तक यहा बस्ती भी नही बसेगी।"

यह सुनकर राजा उल्लास और आनन्द की सजीव मूर्ति बन गए। तुरन्त तुलसीदास के पैर छूकर कहा—"भैया, तुम्हारी यह इच्छा बहुत जल्दी पूरी होगी।"

राजापुर पहुंचकर तुलसीदास के जीवन मे एक नया मोड़ आ गया था। यहा उनका अधिकाश समय अपने ध्यान-योग ही मे बीतता था। बाजार के चार दिनो को छोड़कर दोपहर के बाद तुलसीदास की कुटी के द्वार बन्द हो जाते और वे एकात साधना मे रम जाते थे। राजा भगत भोजन करने के उपरांत बाबा की कुटी के आगे एक पेड़ के नीचे अपनी चटाई डालकर पड़ रहा करते थे। कुटी का द्वार बंद हो जाने के बाद वे न तो स्वयं ही भीतर जाते और न किसीको भीतर जाने देते थे। कुछ राजा भगत के इस प्रतिबन्ध के कारण और विशेष रूप से तुलसीदास की प्रवचन-कला तथा आकर्षक व्यक्तित्व के कारण आसपास के क्षेत्रों मे उनकी महिमा बहुत बढ़ गई थी। स्त्रियां भी उनकी कथा सुनने तथा उनसे अपने दुख-सुख निवेदन करने के लिए आया ही करती थी।

हाजीपुर की चम्मो सहुवाइन तुलसीदास शास्त्री पर बेपनाह रीझ उठी थी। वह पहली बार पैठ में उनका प्रवचन होने पर आई थी। फिर जब-तब आने लगी। उसकी एक आख ऐंचोतानी थी। काया भी भगवान की दया से घी के कुप्पे के समान थी। यो रंग गोरा और चेहरे का नक्शा एक हद तक सुन्दर और आकर्षक भी था। भरी जवानी में चार वर्ष पहले विधवा हो गई पर उछलते अरमानों और पैसे की गर्मी ने उसे कभी वैधव्य अनुभव न करने दिया। अपनी तेलघानी चलाती, खेतों में काम कराती और लोक-व्यवहार के सारे काम मर्दों की तरह बेझिझक होकर स्वयं ही कर लेती थी। जब से तुलसी पण्डित की तेजवान सूरत और गोरी-चिट्टी कसरती देह पर उसकी डेढ आंख गड़ी है तब से सहुवाइन को हाजीपुर में रहना तक अखरता है। पहले तो हफ्ते मे एक बार और फिर तो दो-दो, तीन-तीन बार वह विक्रमपुर आने लगी। जब आती तब घी, अनाज, तेल आदि कुछ-न कुछ साथ लेकर ही आती थी। वह सदा इस जतन में रहती कि जहां तक बने तुलसी पण्डित से अकेले मे कथा सुने या बाते करे। वह उन्हें ऐसी रसीली दृष्टि से टकटकी बांधकर देखती कि तुलसीदास शास्त्री के मन का सारा रस ही सूख जाता था। कभी-कभी मौका पाकर चरण छूने के बहाने उसके हाथ बहककर घुटनो के ऊपर जांघ तक पहुच जाते और तुलसी को उलझन होने लगती थी, उन्होने चम्मो सहुवाइन को कई बार इशारों मे समझाया, उसे अपने से दूर रखने का जतन भी किया, यो एक बार झिड़क तक दिया पर सहुवाइन का प्रेम उसकी आख की तरह ही ऐंचाताना था। तुलसी जितना ही उससे खिचते थे वह उतनी ही उनके प्रति बावली होकर खिचती चली-जाती थी।

चम्मो सहुवाइन के समान ही एक राजकुवरी भी तुलसी के प्रति आकृष्ट हो

गई थी। वह भी विधवा थी, अपने मैके में ही रहती थी किन्तु अभी तक किसी पर-पुरुष के लगाव से उसका तन-मन अशुद्ध नहीं हुआ था। देखने में भी बुरी न थी। दो-एक बार ऐसा संयोग हुआ कि चम्मो सहुवाइन की उपस्थिति मे ही राजकुंवरी भी अपनी भावनाओं का कंचनथाल संजोए हुए आई। चम्मो के प्रेमपाश से सताया हुआ तुलसी का मन ऐसे मौको पर सहज सुख के साथ राजकुंवरी को देखने लगा। और एक दिन तुलसी को यह लगा कि उनका सहज आनन्द राजकुमारी के लिए कुछ और अर्थ रखता है, और वह अर्थ तुलसी के मन मे अनर्थ करता है। 'नहीं, अब प्रपंच मे कदापि नहीं पड़ूंगा।' मोहिनी, राजकुंवरी, ऐंचीतानी—आकर्षण-विकर्षण, ऊहापोह और उससे मुक्ति पाने के लिए ध्यान-योग की कठिन साधना मे तुलसी के दिन गुजरने लगे।

राजा भगत चम्मो और राजकुंवरी के व्यवहार को ध्यान से देख रहे थे। एक दिन सहुवाइन से उनकी कहा-सुनी भी हो गई। राजा ने अन्त मे उसे डण्डे मारने की धमकी देकर भगा दिया। इस चीख-चिल्लाहट से तुलसीदास का ध्यान भंग हुआ, द्वार खोलकर उन्होने पूछा—"क्या हुआ रजिया ?"

राजा भगत ने कहा—"जब तक भौजी घर मे न आएंगी तब तक मुझे तुम्हारी इच्छा के लिए ऐसियो से लड़ाई-झगडे भी मोल लेने पड़ेंगे।"

तुलसी हंसे, कहा—"भाई, तुम्हारी भौजी तो मुझे इस कुटी में आती दिखलाई नही देती और रही चौकीदारी की बात, सो तुमने यह बेकार की चिंता ओढ रखी है। नदियां पहाड़ को बहा नही सकती, राजा।"

"हा, पर धीरे-धीरे उसे काटती जरूर है भइया। हम तो कहते हैं कि न हम तुम्हारी चौकीदारी करे न तुम्हे ही खुद अपनी चौकीदारी करनी पड़े। भौजी आ जाएगी तो सब ठीक हो जाएगा।"

तुलसी बोले—"एक ओर तो विलासिनी स्त्रियां मुझे तंग करती हैं और दूसरी ओर तुम्हारी यह 'भौजी-भौजी' की रट पीछा नही छोड़ती। मैं यहां से चला जाऊंगा, राजा।"

राजा हंसे, बोले—"अब यहा से तुम्हारा निकलकर जाना सरल नही है भइया। महराज ने हमसे कह दिया है कि तुम्हारा व्याह अवश्य होगा। देखो न, व्याह की बात जब से उठी-उठी है तभी से तुम्हारे पास कितना काम आने लगा है।"

यह सच था कि तुलसी पण्डित को पाठक जी के कारण ही पहले-पहल ज्योतिष-सम्बन्धी काम मिला। फिर तो बांदा से लेकर चित्रकूट तक राजे-रजवाड़े और साहूकारो मे वे प्राय. बुलाए जाते थे। कथा और प्रवचन आदि के अलावा उनकी ज्योतिष विद्या तथा साहित्य-पाण्डित्य की ख्याति भी फैली हुई थी। मान के साथ ही साथ धन भी धीरे-धीरे बढने लगा था। आमदनी अच्छी होने लगी थी। वह सारा रुपया-पैसा राजा के पास ही रहता था। उस दिन तुलसीदास राजा की बात को सहसा काट न सके। उनके मन का संघर्ष इस स्थिति पर पहुच गया था कि वे विवाह का प्रस्ताव हल्के-फुलके ढंग से टाल नही सकते थे।

संकटमोचन महावीर जी की स्थापना का आयोजन जोर-शोर से होने लगा।

मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा और हवन आदि कराने के लिए पण्डित मण्डली का चयन करने की बात उठी। राजा बोले—"तुम हमारे साथ पाठक महराज के यहां चलो।"

तुलसी बोले—"तुम्हारी चालें मुझपर सफल नही होंगी रजिया।"

राजा बोले—"अरे हमारी होयं चाहे न होयं, पर राम जी जो चाल चलेंगे उससे बचना तो तुम्हारे लिए भी कठिन होगा। खैर, ब्याह की बात करने के लिए मैं तुम्हें वहां नही ले जाऊंगा, पर पंडितों के संबंध में सलाह-सूत लेने के लिए तुम्हे पाठक महराज से मिलना ही चाहिए।"

तुलसी पण्डित ने राजा भगत की बात मान ली।

पाठक जी ने तुलसीदास का बड़ा सत्कार किया। तुलसी पण्डित भी उनके सत्कार से बहुत सुखी हुए।

पाठक जी बोले—"आपको देखकर मुझे आपके पिता की याद आ गई। पहली बार जब मैंने आपको कथा सुनाते हुए देखा तो लगा कि पण्डित आत्माराम जी बैठे हैं। तभी तो मैंने भगत से आपके विषय में पूछताछ की थी।"

तुलसीदास गद्गद होकर बोले—"स्व० पिताजी के सम्बन्ध में कुछ बतलाने वाले आप पहले व्यक्ति हैं। ऐसा लगता है कि जैसे मैं उन्ही से मिल रहा हूं।"

"वे मुझसे साल-सवा साल बड़े थे। अभागे थे बेचारे, अन्यथा उनके समान ज्योतिषी इस क्षत्र में दूसरा कोई न था। अपने यजमानों की जन्म-पत्रिकाएं आपके पिता से बनवाकर कई पण्डित पण्डितराज बनकर पुज गए और वे बेचारे··· राम-राम।"

"मैं भी अभागा ही हूं। अपने पिता के साथ यहा मेरा भी साम्य है, मैं कदाचित् अधिक ही अभागा हूं। मेरा जन्म अभुक्तमूल नक्षत्र में हुआ था।" तुलसीदास ने इस विचार से कहा कि पाठक जी यह सुनकर उनसे अपनी कन्या का विवाह करने की बात अपने मन से उतार देंगे, किन्तु पाठक जी हंसकर बोले—"आयुष्मन्, आपकी कुण्डली मैंने भी बनाई थी। अभुक्तमूल नक्षत्र में जन्मे बालक की ग्रह-दशा पर विचार करने का लोभ भला कौन ज्योतिषी छोड़ सकता था। मैं समझता हू कि इस क्षेत्र के तीन-चार पण्डितों के पास आपका टेवा अवश्य मिल जाएगा।"

तुलसी बोले—"तब तो आप मेरे सम्बन्ध मे सभी कुछ विचार कर चुके होंगे। मैंने स्वयं अपनी कुण्डली पर कभी विचार नही किया। केवल पार्वती अम्मां के मुख से यह सुना-भर था कि मेरे ग्रह-नक्षत्र विचारकर, मुझे मातृ-पितृ-घाती और महा अभागा जानकर ही पिताजी ने मुझे घर से निकाला था।"

पाठक जी बोले—"आपके जन्म के समय आपके गांव पर घोर विपत्ति आई हुई थी। आपके पिताजी अपने बहनोई की धोखेबाजी के कारण उस समय अत्यन्त त्रस्त थे, उन्होंने कदाचित् सूक्ष्मरूप से आपकी कुण्डली पर विचार नही किया था।"

"आप बड़े है। मेरे पिता के परिचितो मे से है। मैं आपकी बात काटने की धृष्टता नही कर रहा, फिर भी अपने अब तक के जीवन को देखते हुए, स्वयं मुझे

भी मानना पड़ता है कि मैं महा अभागा हूं।"

"नही बेटा, भाग्य का चमत्कार केवल लौकिक स्तर पर ही नही दिखलाई देता। मेरी धारणा है कि आपके समान परम भाग्यशाली व्यक्ति जगत मे कदाचित् ही कोई हो। जो सिद्धि किसीको नही मिलती वह आपके लिए सहज सुलभ होगी। अभी आपने अपने जीवन में देखा ही क्या है। खैर, इस सम्बन्ध मे हम लोग फिर कभी बातें करेंगे। आपके द्वारा मारुति मन्दिर की स्थापना का विचार अत्यन्त सराहनीय है। आप चिन्ता न करें, सब प्रबन्ध हो जाएगा।"

पाठक जी के द्वारा हनुमान जी की प्रतिष्ठापना का भार उठाने पर उत्सव सचमुच ही बड़ी धूमधाम से हुआ। अनेक कंगलो ने भोजन पाया, अनेक ब्राह्मणों को भूयसी दक्षिणा मिली, ब्रह्मभोज हुआ, तुलसीदास का प्रवचन भी हुआ। उस दिन उनकी प्रवचन कला ने अपने सहज उल्लास मे ऐसा चमत्कार प्रकट किया कि चित्रकूट, बांदा आदि के बडे-बड़े सेठ-साहूकार और पण्डितगण उनकी प्रशंसा करने लगे। पाठक जी बेहद प्रसन्न थे। सायकाल के समय जब वे जाने लगे तो तुलसीदास ने कहा—"आपने तो अभी तक भोजन भी नही किया। पहले प्रसाद ग्रहण कर लीजिए तब जाइएगा।"

पाठक जी मुस्कराकर बोले—"मेरे कई यजमानो ने मुझसे यहा पर एक पक्की हाट और बस्ती बसाने की बात कही है। बस्ती फिर से बस जाए तो कभी भोजन करने भी आ जाऊंगा। अभी जल्दी क्या है।" इस बात की आड़ मे छिपी पाठक जी की बात को तुलसीदास समझ न पाए। उन्होंने फिर आग्रह किया—"मुझे अपार कष्ट होगा···"

"बेटा, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि इस प्रसंग को यही तक रहने दें। मैं एक और प्रार्थना भी करना चाहता हू।"

"आप मेरे पिता समान है, कृपया मुझे लज्जित करनेवाले शब्दों का प्रयोग न करें।"

पाठक जी हंसे, तुलसीदास की पीठ पर हाथ रखकर उन्होने कहा—"अच्छा, मैं तुम्हारी ही बात रखूगा। तुमसे मुझे यह कहना है कि मेरे गाव मे श्रीमद्-वाल्मीकीय रामायण बाचो।"

"आपकी आज्ञा का निश्चय ही पालन करूंगा। आप जब भी मुझे आज्ञा देंगे, मैं आ जाऊंगा।"

२२

संकटमोचन महाबीर की स्थापना के उपरात शीघ्र ही पुराने विक्रमपुर के पास एक नया बाजार बनने लगा। राजा बहुत प्रसन्न थे। अपने उत्साह मे वे अपना बहुत-सा समय नये बनते हुए बाजार मे ही बिताने लगे। विधवा राजकुवरी ने तब प्राय. नित्य ही दोपहर के बाद तुलसीदास की कुटी मे आना आरम्भ कर

दिया। वह अपने लिए भी एक मकान बनवा रही थी। वह आकर तुलसीदास के चरणो मे अपना मस्तक झुकाती और फिर उनके कक्ष से अलग रसोईघर की आड़ मे बैठ जाया करती थी। तुलसीदास के ध्यान मे इससे व्याघात पड़ने लगा। सियाराम का विम्ब उनके ध्यान-पट से मिट-मिट जाता था। राजकुंवरी के सुन्दर-सलोने-श्याम-मुख की छवि उनकी आंखा मे वार-वार आने लगी। आंखो मे राजकुंवरी और कानो मे राम-राम की गूज उनके मन मे परस्पर-विरोधी तरंगे उठाने लगी। तुलसीदास इससे त्रस्त और भयभीत हो गए। वे अब मोहिनी के समान किसी स्त्री के ध्यान मे अपना जीवन नष्ट नही करना चाहते थे। भक्तिरस और यौवन की तृष्णा उनके मन मे फिर उथल-पुथल मचाने लगी।

एक रात स्वप्न मे उन्होने देखा कि वह माला जप रहे है और मोहिनीबाई राजकुवरी का हाथ पकडे मुस्कराती हुई आती है। माला थम जाती है, मोह आखो मे चचल गति करता है। मोहिनी कहती है—"इसे तुम्हे सौपती हू।"

तुलसी एक बार चाहत-भरी नजरो से उन्हे देखते है। दोनो सुन्दरियां मुस्करा रही है। वे मूर्तिमान प्रलोभन बनी हुई उन्हे ताक रही है। मोहिनी कुवरी का हाथ पकडकर उनकी ओर बढाती है। तुलसी की तृष्णामग्न आखे उन्हे, विशेषरूप से राजकुवरी को अपलक ताक रही है। तभी न जाने कहा से चम्मो सहुवाइन भी वहां पहुच गई। वह भी भैंगी आंखो मे अपनी चाहत का सत निचोड़कर उन्हे देख रही है। रूप-कुरूप से बधे एक ही लालच को सामने देखकर तुलसी के मन का सौन्दर्य-बोध बिखर जाता है। शरीर हिल उठता है। आखे खुल जाती है। तुलसी 'राम' कहते हुए उठ बैठते है। कुछ पल साथ बैठे रहते है फिर आखें भर आती है। करुण स्वर मे आप ही आप कह उठते है—'बजरंगबली, मैंने ऐसा क्या पाप किया है जो यह विघ्न-बाधाएं अभी तक मेरा पीछा नही छोड़ती ?'

दिन का तीन चौथाई भाग आत्म-संघर्ष मे ही बीत गया। सुबह नित्य नियमो मे भी स्त्रियां उनके कल्पना-लोक में बार-बार घंसकर उनके मन को अपराध भावना से जडीभूत कर देती थी। राम का ध्यान न सधा तो तड़पकर बजरगबली से प्रार्थना करने लगे—"हे अंजनीकुमार, मेरी बाधाएं हरो, मैं कुछ नही चाहता, केवल राम-चरणों मे मेरी प्रीति को स्थिर कर दो। मैं मोहरूपी शक्ति से घायल और मूच्छित हो गया हूं, मुझे राम-संजीवनी से जिला दो प्रभु। मेरी लाज रखो।"

उस दिन घाट पर प्रवचन करने में भी उनका ध्यान एकाग्र न हो पाया। तुलसीदास अपने भक्तों को जब राम के चरणों मे अमल प्रीति रखने का उपदेश दे रहे थे तब उनकी आखे सभास्थल मे बैठी राजकुवरी की ओर बरबस ही चली गईं। तुलसीदास का मन अपनी ही अपराधी वृत्ति से बौखला उठा। फिर उन्होने व्याख्यान को बढाने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु उनका मन इस समय तक बहुत बिखर चुका था। अपनी अस्वस्थता का बहाना साधकर उन्होने उस दिन शीघ्र ही अपना प्रवचन समाप्त कर दिया। कुछ भक्तों ने उनके मुख से अस्वस्थता की बात सुनकर उनके उतरे हुए चेहरे पर विशेष ध्यान दिया। तुलसीदास के प्रवचनो पर मुग्ध जनसमुदाय को आज उनकी कथा मे रस नही मिला था, वे भी ब्रह्मचारी महाराज के स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे चिन्ता करने लगे। वैद्य को दिखलाने

की वात भी कई लोगो ने तुलसीदास से कही, परन्तु वे यह कहकर अपनी कुटी के भीतर चले गए कि राम स्वयं ही मेरा उपचार करेंगे ।

सन्नाटा हो गया । तुलसी वन्द कुटी मे आसन पर बैठे ध्यानमग्न होकर माला जप रहे हैं । उनके कानो की रामगूंज मे टक-टक की आवाज व्याघात डालती है । ध्यान का सिमटा हुआ विन्दु टक-टक की ध्वनि के साथ फैलने लगता है । उनके चेहरे पर कसाव आ जाता है । वे अपनी पूरी अंतश्शक्ति के साथ इस व्याघात के विरुद्ध मोर्चा बांधकर जप मे एकाग्र हुए । फिर टक-टक'' फिर चिड़-चिड़ाहट—टक-टक टक-टक । क्रोध से आंखें खुल गईं । मूदकर फिर अपने-आपको शांत करके ध्यानमग्न होने का प्रयत्न करते हैं पर टक-टक टक-टक होती ही गई ।

तुलसी आसन छोड़कर उठे, द्वार खोला । सामने ही राजकुंवरी की आंखो का प्यासा सागर लहरा रहा था । तुलसीदास उसे देखकर बोले—"बैठने आई हैं ? बैठिए, मैं यहां से जाता हूं ।" कहकर तुलसीदास कुटी का पूरा द्वार खोल-कर वाहर निकलने लगे ।

राजकुंवरी ने गिड़गिड़ाकर पूछा—"आप कहां जाते हैं ?"

"जहां मेरे भक्तिभाव को आपके काम-प्रलोभन न सता सकें । आप धनी हैं, धन से सब कुछ खरीद सकती हैं । आपकी इच्छाओ का पालन करने वाले अनेक पुरुष आपको मिल जाएंगे । कृपाकर मुझे शातिपूर्वक राम-चरणो मे लीन होने दीजिए ।" सारी बातें एक सास में कहकर तुलसीदास ने फिर अपनी कुटी के द्वार वन्द कर लिए ।

राजकुंवरी तुलसीदास के क्रोध से आतंकित हो गई । बन्द कुटी के द्वार को वह कुछ क्षणों तक स्तब्ध खड़ी देखती रही । उसकी दो दासियां भी पीछे खड़ी थी । एक ने मुंह वनाकर कहा—"अजी कुंवरी जू, छोड़िए न इस साधू का मोह, इसे अपनी सुन्दरताई पर घमण्ड है । बड़ी भक्ती छाटता है । अरे हम इससे अच्छा-सुन्दर साधू आपके लिए खोजकर ले आवेंगी । किसी दिन यह निगोड़ा अगर जोर से आपको डांट देगा तो किरकिरी हो जायगी ।" राजकुंवरी की आखे कटोरियों जैसी भरी हुई थी और तुलसीदास अपनी कुटी मे पिंजरवद्ध सिंह की भांति चक्कर लगा रहे थे ।

तीसरे पहर राजा भगत आए । कुटी का बांस खटखटाया । जब उत्तर न मिला तो पुकारा—"भैया !"

"हां राजा, आए ।" तन्द्रा में लेटे हुए तुलसीदास ने राजा की आवाज सुन-कर तुरन्त उत्तर दिया और उठकर कुटी का द्वार खोला ।

"आज क्या वात है भइया कि दिन में सो गए ? तवीयत तो ठीक है ?"

"हां, तन ठीक पर मन बहुत अस्वस्थ है । आज तुम कहां चले गए थे, दिन मे एक बार भी नही दिखलाई दिए ?"

"उस पार चला गया था । पाठक महराज का बुलावा आया तो मैं घाट पर ही खड़ा था । सुनते ही नाव से चला गया । इसीसे भेंट न हो पाई । अवकी सोमवार से तुम्हारी कथा वहां होगी भइया । बड़े महराज ने वड़ा परवन्ध किया है ।"

"अब कही नही जाऊंगा, राजा ।"

"क्यों ?"

"मैं नारी के आकर्षण से दूर रहना चाहता हूं। पाठक जी मुझे गृहस्थी के बन्धन मे बांधना चाहते हैं। मैं नही बंधूंगा—नही बंधूंगा।"

राजा भगत शांतभाव से उनका चेहरा देखते रहे। जब वह चुप हो गए और कुछ देर तक वैसे ही टहलते रहे तो राजा ने कहा—"तन की अपनी कुछ चाहे होती है भइया। भूखा अगर परोसी हुई थाली छोड़कर जायगा तो भूख के मारे कही-न कही मुंह मारेगा ही ।"

"इसी बात की तो परीक्षा लेना चाहता हूं। राम-कृपा से मैं उस आकर्षण से मुक्त रहूंगा जिससे सारा संसार बंधता है।" तुलसी के स्वर मे अहंकार बोल रहा था। यह उत्तर वह केवल सामने खड़े राजा भगत ही को नही वरन् अपनी मनबसी दुर्बलता को भी दे रहे थे।

राजा भगत कुछ देर चुप रहे, फिर कहा—"तुम्हारे ही दम पर तो मैं यह हार बसाने के काम में कूदा। बड़े महराज ने लोगो को समझा-बुझाकर यहा पूजी लगवाई। उनके बुलावे पर तुम कथा बांचने भी न जाओगे तो भला बताओ, हम कही मुंह दिखाने जोग रह जायंगे !"

तुलसी पण्डित विचारमग्न हो गए, कहा—"हम कथा सुनाने जाएंगे। वह हमारी जीविका है और फिर वे हमारे पिता-समान है। किन्तु मै तुम्हे चेताए देता हूं राजा, विवाह के बन्धन मे नही बंधूंगा, चाहे वे बुरा मानें या भला।"

मन्द-मन्द मुस्कराते हुए राजा ने कहा—"अच्छा यह बात हमने मान ली। सुन्दर देह, मनोहर रूप और सधुक्कड़ी राह में राम जी की दया से रसीली भगतिनों की कमी भी नही है, ऐसे ही रोज वो तुम्हे सताएगी और तुम यो ही तपा करोगे। राम जी के लिए तपने का तुम्हारा समय यह ससुरियां खाया करेंगी। हमारा क्या है !"

तुलसीदास की आंखो की तपन मिटी, उनमे स्निग्धता आई, मुस्कराकर पूछा—"क्या तुम्हें मेरे आज तक के संकटों का पता है ?"

"अरे हम ही नहीं, सब जानते है। तुम्हारा गुन गाते है और तुम्हारी सिधाई पर हंसते भी है।"

तुलसी को लगा कि उनका भीतर-बाहर सब कुछ शीशे की तरह साफ है, वह अपने समाज में सराहे जाते है। पिछली रात और सारा दिन सतत् संघर्ष-रत रहनेवाले मन को ठंडक पहुंची। 'जनता साक्षी है, मैं सच्चा हूं'—इस विचार के उदय होने से मन जड़ीभूत अपराध-भावना के तनाव से मुक्त हुआ, पर अपनी इस स्थिति पर जग-हंसाई होने की बात उन्हे न सुहाई। बोले—"इसमें हंसने की क्या बात है ?"

"तुम्हारी सिधाई। बुरा न मानना भैया, हम ऐसी-ऐसियों को अपने से कोस भर दूर झटककर फेंक चुके है, और तुम ठहरे देउता मनई, जैसे तुम इन्हे समझाते होगे उससे तो यह और उमंग मे चढ़ती होंगी।"

तुलसी चुप। राजा जो कुछ कह रहे थे, सब सच था। तुलसी के आगे एक-

एक वात स्पष्ट थी । तुलसी ने जव इन स्त्रियो को अनदेखा किया तो उन्होने जान-बूझकर अपने को दिखलाने का प्रयत्न किया । थे कतराने लगे तो वे और घेरने लगी । चम्मो के तरीके फूहड थे, उसने दो-तीन वार तुलसी से मीठी-कडवी झिडकियां पाई । राजकुवरी शालीन है, संयत ढग से घेराव करती है । उसकी शालीनता ने कही पर तुलसी के मन को प्रभावित भी किया है और इसी छोटे-से धरातल पर कुवरी का श्याम-सलोना मुखडा अव अपनी आकर्पणी मीनार खडी करके तुलसी के भक्ति-भाव को हलाकान कर रहा है । तुलसी के इस मौन को लखकर राजा ने हसते हुए कहा—"खैर, अव चिन्ता न करो भैया । कथा वांचने के लिए तुम जव सात-आठ रोज उधर रहोगे न, तव हम तुम्हारे इन तपस्या-कंटको को तुम्हारे रस्ते से हटा देगे ।"

सुनकर तुलसी भी हंसे, कहा—"हां, इधर की खाइयां पाट दोगे क्योंकि उधर तुमने हमारे लिए कुआ खोद रखा है ।" तुलसीदास अपने भीतरवाला वैचारिक ववण्डर रोक नही पा रहे थे । राम और रमणी दोनो ही मन पर ऐसे छाए हुए थे कि वे अपनी वास्तविक इच्छा को समझने मे असमर्थ थे । उनकी वात के उत्तर मे राजा ने मुस्कराकर कहा—"कुआ नही समुद्र कहो समुद्र । रतन और कहा मिलेगे ?"

रविवार के दिन तुलसीदास को अपने साथ लिवा जाने के लिए पाठक जी स्वयं आ गए । तुलसीदास भीतर से चिडचिडा गए, पर वाहरी तौर से अपने को संयत रखकर उन्होने केवल इतना ही कहा—"कल दोपहर में मैं स्वय ही आपके यहां पहुच जाता । आपने वेकार ही कष्ट किया ।"

"एक तो कल डेढ़ पहर तक मुहूर्त अच्छे नही है । दूसरे, आज हमारे यहा दो ज्योतिषाचार्य आने वाले है । हमने सोचा कि आप कदाचित् उस समाज मे अपने-आपको सुखी अनुभव करेंगे । यहां आसपास के पण्डित समाज से आपका जितना परिचय होता चले उतना ही अच्छा है । आपके पिता का नाम लोग अभी भूले नही है ।"

तुलसी 'ना' नही कह सकने थे । यद्यपि उनके मन का ऊहापोह कुछ अधिक वढ गया था । वे अपनी ज्योतिप विद्या से भी यह जानते थे कि उनका विवाह होगा । किन्तु वे यह चाहते नही थे । स्त्री की भूख एक रहस्य वनकर उन्हे लुभा अवश्य रही थी किन्तु राम-भक्त कहलाना और मेघा भगत के समान जनसमाज मे श्रद्धा का पात्र वनना ही उन्हे अभीष्ट था । वे अपने भक्ति के उत्साह और काम की भूख के परस्पर-विरोधी वातचक्रो मे नाच रहे थे और अपने सहज धरातल से उखड़े हुए थे । मानसिक अनिश्चय के कारण तुलसीदास पाठक जी के साथ जाना नही चाहते थे किन्तु मना करने का नैतिक साहस भी उनके भीतर न था ।

दीनबन्धु पाठक की अवाई का समाचार सुनकर राजा भगत भी आ पहुचे । वातो के वीच तुलसी उन्हे कनखी से देखते कि मानो सारा पड्यन्त्र उन्हीका रचा हुआ हो और राजा भगत की यह स्थिति थी कि जव-जव उनकी दृष्टि अपने भैया के मुख पर जाती तव-तव वे मुस्कराए विना नही रह पाते थे । राजा दोनों को घाट तक पहुचाने आए । नाव पर वैठने से पहले तुलसीदास ने राजा के कान

मे कहा—"तुमने आखिर मुझे बलिदान का बकरा बना ही दिया न ! पर देखना, मैं भी तुम्हारे चक्रव्यूह को भेदकर कैसे बाहर निकलता हू ।"

राजा भगत मुस्कराए, फिर कहा—"तुम्हारी तुम जानो भैया, बाकी हमने तुम्हारी यह कुटिया वाली जमीन कल बकरीदी भैया से खरीद ली है ।" तुलसी-दास का चेहरा आनन्द से खिल उठा, बोले —"यह तुमने बहुत ही अच्छा किया, राजा । मै परम प्रसन्न हुआ ।"

नाव सवारियो से भर चुकी थी और जाने के लिए तैयार खडी थी । पाठक जी तुलसीदास की प्रतीक्षा कर रहे थे । जब कान की बात समाप्त होकर दोनो जोर-जोर से बतियाने लगे तब पाठक जी के कानो मे भी उनकी बाते पड़ने लगी थी । सुनकर बोले—"यह जमीन बकरीदी की रही राजा ?"

"हां, महराज । अब उस हिस्से मे हमने कई ब्राह्मन पण्डितों को घर बसाने के लिए राजी कर लिया है । जमीने बिक रही थी तो हमने इनके लिए भी ले ली है । आप अच्छा-सा महूरत निकाल देव तो हम इनके घर की नीव भी लगे हाथों डलवा ही दे ।"

पाठक जी तुलसी के कन्धे पर स्नेह से हाथ रखकर राजा से बोले—"कल मध्याह्न मे सूर्यनारायण जब ठीक तुम्हारे सिर पर आ जायं तब तुम्ही अपने हाथो इनके घर की नीव पूजा करना । इन्होने इस गाव को जिस पुरुष का नाम दिया है, वही इनके घर की नीव रखेगा । मैने ठीक कहा न भैया ?"

भैया इतनी देर से पाठक जी के हाथ का स्नेह स्पर्श अपने कन्धे पर अनुभव करते-करते उसके सम्मोहन मे बंध चुके थे । कुछ अपनी मनभावती भूमि के स्वामी हो जाने के कारण उपजे हुए उल्लास से भी उभचुभ थे । उन्हे पाठक जी की बात का सहसा कोई उत्तर न सूझा, विनत होकर कहा—"मैं क्या कहू, आप जो उचित समझे करे ।"

पाठक जी के घर पहुचकर तुलसीदास मानो राजा हो गए । इतना अपनत्व, इतनी आवभगत और सम्मान तुलसीदास को कही प्राप्त नही हुआ था । पाठक जी गाव के धनी-धोरियो मे थे । आसपास के गांवो मे ही नही बल्कि बादा से चित्रकूट तक इसपार-उसपार उनकी बडी प्रतिष्ठा थी । इसलिए जिसकी अग-वानी मे स्वय वे उत्साह के मारे थोड़े-थोड़े हुए जा रहे हो उसके लिए पलक पावड़े बिछाने वालों की भला क्या कमी हो सकती थी । तुलसीदास बहुत मगन थे ।

पाठक जी विधुर थे । उनकी इकलौती संतान चौदह वर्ष की हो चुकी थी । पण्डित जी ने अपनी पुत्री के प्रबल मोहवश अब तक उसका विवाह टालने का प्रयत्न किया किन्तु अब वे ऐसा कर नही सकते थे । उन्होने रत्नावली को आरम्भ से उसी चाव से पढाया था जिस चाव से कोई पुत्र को पढाता है । वे कई वर्षो से किसी ऐसे सुपात्र की खोज में थे, जिसे वे घरजमाई बनाकर अपने पास रख सके । किन्तु उन्हे अपनी लड़की के लायक कोई लड़का जंचता नही था । जब से विक्रमपुर की पैठ मे उन्होने तुलसीदास की कथा सुनी थी और उनके संबध मे राजा से जानकारी पाई थी तभी से वे उन्हे अपना जामाता बनाने के लिए लालायित हो चुके थे । इन बीते महीनो मे और भी निकट संपर्क मे

आने के कारण उन्होने तुलसीदास को अपना दामाद बनाने का एक प्रकार से हठ ही ठान लिया था। स्वाभिमानी तुलसी को वे अपने घर मे तो न रख सकेंगे पर यह दूरी भी केवल नदी के दो तटो की ही है। इतनी पास मे ऐसा योग्य जमाई मिले तो समझो घर ही मे है। उन्होने तुलसीदास और रत्नावली की जन्म-पत्रिकायें भी मिला रखी थी। संयोगवश रत्नावली के एक सुझाव के अनुसार वे उनके मूल नक्षत्र के सबंध मे भी गहरा विचार कर चुके थे। रत्नावली उक्त कुण्डली के अभागेपन को नकार चुकी थी। वह नही जानती थी कि यह उसके भावी पति की जन्मकुण्डली है। उसके मतानुसार अभुक्तमूल नक्षत्र के चतुर्थ चरण मे पैदा होने वाला व्यक्ति अलौकिक रूप से भाग्यवान होता है। बड़े-बड़े राजे-महराजे और पण्डितगण इनके चरणो मे शीश झुकाएगे। इसके बाद नियति ने ऐसे बानक बना दिए कि पाठक जी जब भी अपनी बेटी को देखते तभी उसके दक्षिणाग की ओर खडी तुलसीदास की मूर्ति उनकी कल्पना मे उभर आती थी। पाठक जी तुलसी को अपना बेटा बनाने के लिए दीवाने हो गए थे।

वाल्मीकीय रामायण कथा का श्रीगणेश हुआ। तुलसीदास जी का कथा कहने का ढंग ही निराला था। वे पण्डित समाज को अपनी विद्या और जन साधारण को अपने भक्ति रस के चमत्कार से एक-सा बांधते थे। बीच-बीच मे अपनी रची हुई भाषा की कविताएं भी पढने लगते तो सभा में समां-सा बंध जाता था। भाषा मे चमत्कार, कण्ठ मधुर और सुरीला तथा इन सबके ऊपर सोने मे सुहागे जैसा उनका सुन्दर रूप और बलिष्ठ काया भी देखने वालों पर अपना प्रभाव छोड़े बिना नही रहती थी। यों भी तुलसीदास आज कुछ अधिक उमंग मे थे। अपनी भावुकता मे वे यह मानते थे कि पाठक जी को सुनाकर वे मानो अपने पिता को ही रामायण सुना रहे हो। वे अपनी कथावाचन कला का सारा निखार मानो आज ही दर्शा देना चाहते थे। ऐसे तन्मय होकर उन्होने कथा बांची कि निर्धारित पाठ पूरा होने पर अपनी वाणी के मौन से वे स्वयं ही सन्नाटे मे आ गए।

पाठक जी के प्रचार और प्रभाववश दूर-दूर के लोग कथा सुनाने के लिए आए थे। गांव मे कई तम्बू-खेमे पड़े हुए थे। बहुत-से घरो मे अतिथि ठहरे थे। स्वयं पाठक जी के घर मे भी तीन संबंधियों के परिवार टिके हुए थे। तुलसी-दास ने पहले ही दिन सबके हृदय जीत लिए।

घर आने पर उनके लिए एक अचम्भा अचानक आया। भोजन इत्यादि करके पाठक जी अपने छोटे भाई के पुत्र गंगेश्वर और साले के साथ तुलसीदास के सामने ही उनकी प्रशंसा करते हुए मगन मन बैठे थे। तभी अचानक ही उन्होंने कहा—"भैया, है तो मेरी बेटी, पर मैंने उसे बेटे की तरह से ही पढ़ाया-लिखाया है। जो पण्डित मुझे योग्य जंचा उसीसे मैंने उसे शिक्षा दिलवाई है। देखो मैं बुलाता हूं। उसने ही तुम्हारे अभुक्तमूल नक्षत्र की व्याख्या मुझसे की थी।··· अरी रत्नू, ओ रत्नू, यहां आ बिटिया···वैसे उसे यह मालूम नही है कि वह कुण्डली आपकी है।"

तुलसीदास अचानक रत्ना के सामने आने की बात सुनकर धक्-से रह गए।

उनका कलेजा धड़धड़ कर उठा—'राम प्रभु मेरी परीक्षा न लें। राम करे, वह न आए—न आए—न आए।' तुलसी तो अपने चेहरे पर चढ़ती धुकपुकाहट को संभालकर उसपर गम्भीरता का मुखौटा चढ़ाने मे व्यस्त हो गए पर उनका मन भीतर ही भीतर सकपका रहा था।

भीतर के उढके हुए द्वार खुले। शुभ्र वर्ण की एक तन्वंगी सामने थी। तेज-युक्त ललाट, पतले होंठ, नाक और ठोड़ी नुकीली तथा आखों में दर्प-भरी चमक थी। उसने एक बार तुलसीदास की ओर देखा। चार आंखें अनायास ही मिलीं। तुलसी के हृदय मे मचती हुई हलचल दृष्टि मिलते ही थम गई। एकाएक उनके भीतर-बाहर मानो सन्नाटा छा गया। उन्हें लगा कि वे अब अपनी सम्पत्ति नही रहे। आंखें नीची हो गईं।

रत्नावली ने तुरंत ही पिता की ओर देखकर पूछा—"क्या है बप्पा ?"

स्वर था कि मानो गला हुआ सोना बह रहा हो। उसमे मिठास तो थी ही किन्तु अधिकार का तेज भी था। तुलसीदास उपस्थित मण्डली के सामने अपने-आप को कसे हुए बैठे थे। बिछे हुए गलीचे का एक रेशा तोड़कर अपनी चुटकी से मीजते हुए वे ऐसे गम्भीर और दत्तचित्त भाव से बैठे थे जैसे किसी महत्त्व के काम मे व्यस्त हों। पाठक जी ने स्निग्ध दृष्टि से अपनी बेटी को देखकर कहा—"आओ बिटिया, आज तुमने हमारे तुलसीदास जी की कथा सुनी थी ?"

तुलसीदास के कान खड़े हो गए। रत्ना ने छोटा-सा उत्तर दिया—"हूं।" तुलसीदास को ऐसा लगा कि रत्नावली ने बड़ी अनिच्छा और दबाव से ही यह उत्तर दिया है।

पाठक जी ने पूछा—"तुम्हे कैसी लगी इनकी कथा ?"

"कथा तो राम जी की थी।" रत्ना बोली

तुलसी को लगा कि मानो इस वाक्य के पीछे खिलखिलाहट भरी है। उसी समय रत्ना के मामा हंस पड़े और पाठक जी से कहा—"देखो, हमारी बिटिया कैसी बात पकड़ती है !"

पाठक जी मुस्कराकर बोले—"अरे ये बड़ी नटखट है। मैं इनके कथा कहने के ढंग और व्याख्या-पद्धति के संबंध मे तेरा मत पूछ रहा था।"

तुलसीदास के कलेजे मे फिर हलचल मची, किन्तु रत्ना चुप रही। मामा बोले—"क्या पूछ रहे हैं जीजा, बताती क्यो नही ?"

रत्नावली के चचेरे बड़े भाई गंगेश्वर ने हसकर कहा—"अरे यह बड़ी बुद्धू है मामा, इसे "चगुट्टे खेलने से ही अवकाश नही मिलता, ये क्या बताएगी ?"

रत्ना ने एक बार गंगेश्वर की ओर देखकर आखें तरेरी। वह हसने लगा। मामा बोले—"हमारी बिटिया बुद्धू नही है। छोटी होने पर भी यह तो अच्छे-अच्छे पण्डितों के कान काटती है।"

पाठक जी बोले—"बड़े भारी ज्योतिषी है हमारे तुलसीदास जी। इनसे ताजक ज्योतिष के लटके भी सीख लो।"

तुलसीदास ने एक बार नज़र उठाकर रत्नावली को यों देखा कि मानो वे उसका उत्तर सुनने के लिए उत्सुक हो। रत्नावली ने अपने पिता से कहा—

"मुझे क्या आज ही सीखना है बप्पा ?"

तुलसीदास अचानक ही हड़बड़ाकर बोल उठे—"नहीं-नहीं। फिर किसी दिन, अभी तो यहां पर एक सप्ताह ठहरूंगा।"

"अच्छा रत्नू, इन्हें अभुक्तमूल के संबंध में बतला। तुलसीदास जी कहते हैं कि तेरी व्याख्या गलत है। वह जातक निश्चय ही मूल के पहले-दूसरे चरण की सन्धि में हुआ होगा।"

"केवल माता-पिता की मृत्यु के प्रमाण से ही यह कह देना ठीक नहीं है बप्पा। प्रश्न यह है कि जातक को नव वर्ष की आयु से समुचित प्रतिष्ठा, विद्या और उन्नति के सोपान मिलते जा रहे हैं या नहीं ?"

पाठक जी ने तुलसीदास की ओर देखकर पूछा—"कहिए, आपका क्या विचार है ?"

"पहले इनका विचार सुन लूं।"

रत्नावली ने भी उचटती नजरों से अपने भावी पति को देखा, फिर पिता से पूछा—"बप्पा, वह टेवा आप ही का था न ?"

"यह तूने कैसे कहा ?"

पिता के इस प्रश्न से रत्ना झेंप गई। कुछ उत्तर न दिया। मामा जी बोले—"अच्छा मेरा एक प्रश्न विचार। हमारे इन शास्त्री जी का विवाह हो गया है या नहीं।"

तुलसीदास का चेहरा और कस गया। उन्हें पाठक जी के साले का यह प्रश्न करना अच्छा नहीं लगा। वे भीतर ही भीतर अनख उठे। रत्नावली भी यह प्रश्न सुनकर सहसा लज्जा से लाल हो उठी। उसने कहा—"घर में काम है बप्पा, मैं जाऊं ?" पिता के कुछ कहने से पहले ही वह तेजी से उठकर भीतर चली गई।

सात दिन तुलसीदास की ख्याति के सात सोपान बन गए। तुलसी के प्रति पाठक जी का ममत्व प्रतिक्षण गाढ़ा होता गया। तीसरे-चौथे दिन की बात है, दिन में भोजन करके पाठक जी तुलसीदास के साथ भीतर के कमरे में बैठे थे। टाड़ों पर ग्रंथों के बस्ते बंधे हुए रखे थे। ग्रंथों का यह विशाल भाण्डार देखकर तुलसी ने कहा—"काशी में गुरू जी का ग्रंथ-भाण्डार इससे कदाचित् ही कुछ अधिक हो। आपके यहां बहुत अच्छा संग्रह है।"

पाठक जी सुनकर प्रसन्न हुए, बोले—"रत्ना इन्हें अपने प्राणों से भी अधिक सहेज कर रखती है।" फिर दबी जबान से बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—"घर की संपत्ति का बहुत कुछ अंश तो मुझे अपने भतीजे को ही देना है। पर अपना यह ग्रंथ भाण्डार उसे मैं देना नहीं चाहता। उसे अध्ययन में रुचि नहीं है। वह केवल कामचलाऊ पण्डित ही है। कभी-कभी अपने ग्रन्थागार का भविष्य विचार-कर रो पड़ता हूं।"

तुलसी अपने सहज भोलेपन में बोल उठे—"इन्हें किसी सत्पात्र को सौंप दीजिए।"

"सुपात्र तो मिल गया है बेटा, बस अब यही मनाता हूं कि उसे अपना

सब-कुछ सौंपकर निश्चिन्त होने का क्षण भी पा जाऊं।"

तुलसी सचेत हो गए। वे भांप गए कि पाठक जी के सुपात्र और कोई नही वे स्वयं ही है। उनका मन फिर हलचल से भर गया। किन्तु यह हलचल पानी जैसी रंगहीन थी, न पक्ष-न विपक्ष। शब्दहीन भावों की तरगें तेजी से चल रही थी। तुलसी अपने-आप को समझ नही पा रहे थे। वे केवल सकपकाए हुए थे। उन्हे अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में चिन्ता-भरी घबराहट थी।

अगला दिन कथा का अन्तिम दिन था। तुलसीदास आज सवेरे ही से प्राय: गुम-सुम थे। यद्यपि उनकी ऊपरी चेतना मे प्राय: सन्नाटा ही छाया हुआ था तथापि अपनी भीतरी तहो मे चलनेवाली हलचल उनके लिए एकदम अनबूझी न थी।

ब्राह्ममुहूर्त मे जब उन्होंने नित्य नियमानुसार ध्यान मे लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और हनुमान-सेवित श्रीसीताराम का बिम्ब साधा तो आकार विशेष स्पष्ट नही हुए। अपनी इस असफलता से तुलसीदास को लगा कि मानो वे एक अति उन्नत शिखर पर चढ़ते-चढ़ते अचानक कोसो नीचे खड्ड मे गिर गए हो। उन्हे अपने ऊपर बहुत खिसियानपन छूटा। मोहिनी प्रसंग के बाद तुलसीदास ने हठपूर्वक अपने इष्ट बिम्ब को साधा था। ध्यान अब न तो बिखरता था और न धूमिल ही होता था। इच्छित बिम्ब की सजीवता ही तुलसी की सफलता और उत्फुल्लता का कारण बनती थी। आज तुलसी को ध्यान में न तो सफलता ही मिली और न उत्फुल्लता। सच तो यह था कि वे कुंठित और हत्प्रभ-से हो गए थे।

स्नान-ध्यान आदि नित्यकर्मों से निबटकर तुलसीदास जी जब पाठक जी के घर लौटे तो पता चला कि वे अपने साले के साथ किसी काम से पास के गांव में गए हुए है। तुलसीदास अपने चौवारे मे अकेले ही बैठ गए। उन्हे कुछ समझ नही पड़ रहा था। पछतावा, खिसियानपन, झुंझलाहट, नामस्मरण, प्रार्थना और संन्यास को साधने का हठ उनके मन को तरह-तरह से रमा रहा था किन्तु वे रम नही पा रहे थे।

दासी आई, कोठरी के एक कोने मे गोबराये हुए फर्श पर पानी छिड़का, फिर पीढा लाई, पीढे पर रेशमी गद्दी बिछाई चौकी सामने रखी। एक दासी चांदी के लोटे-गिलास मे पानी रख गई। फिर रत्नावली कलेवे के लिए थाली सजाकर लाई। अति संयत और गम्भीर भाव से तुलसी की ओर बिना देखे ही रत्नावली खाने की चौकी की ओर बढ गई। थाली रखी और सिर झुकाए हुए कहा—"बप्पा और मामा एक आवश्यक काम से गए है। मेरी मामी ज्वरग्रस्त है इसलिए मुझे ही सब-कुछ तैयार करना पड़ा है। हो सकता है, आपकी रुचि के अनुकूल न बना हो।"

रत्नावली को देखते ही तुलसीदास का गुमसुमपना हवा हो गया था। वे किसी हद तक रत्नावली के रौब मे आ गए। रत्ना का स्वर तुलसीदास के कानो मे बडी मिठास घोल रहा था। पीढे पर बैठते ही रत्ना लोटा उठाकर उनके हाथ धुलाने के लिए उद्यत हो गई। तुलसीदास बोले—"आपकी मामी तो नित्य परोसते समय हम लोगों को यही बतलाती थी कि अमुक वस्तु आपने बनाई है और वह वस्तु निश्चय ही स्वादिष्ट सिद्ध होती थी। मुझे विश्वास है

कि आज भी मेरी रसना को निराश न होना पड़ेगा।"

रत्नावली चुप रही। तुलसीदास ने खाना आरम्भ किया। रत्नावली दीवाल से लगी नीची नजर किए खडी रही। तुलसीदास को रत्नावली की उपस्थिति मन ही मन सुहा रही थी, यद्यपि उन्होने फिर सिर उठाकर उसे देखने तक का प्रयत्न न किया।

एक दासी कोठरी के द्वार पर खडी हुई थी। रत्नावली ने और कुछ लाने के लिए पूछा। तुलसीदास बोले—"साधु यदि पेटू हो जाय तो फिर उसका निभाव भला क्योंकर हो सकता है ?"

रत्नावली तुरन्त ही बोल उठी—"कुण्डली के अनुसार तो साधु बनने से पहले आप लक्ष्मीवान बनेंगे।"

यह सुनकर तुलसीदास की आंखें रत्नावली के मुख को देखे बिना रह न सकी। कंचन-सा वर्ण, चेहरे पर आत्मतेज और वाणी में आत्मविश्वास की ऐसी दीप्ति थी कि तुलसीदास की आंखें शिष्टाचार भूलकर कुछ क्षणों के लिए रत्नावली के मुख को एकटक निहारने लगी। रत्नावली की आंखें भी एक बार धोखे से ऊपर उठ गईं। आंखो से आखे मिली, दोनो ओर पुतलियों से आनन्द के ज्योतिफूल चमके। दोनों के होंठों पर बरबस मुस्कान की रेखाएं भी खिच गईं और फिर दोनों को तुरन्त ही होश भी आ गया। रत्ना की आंखें फिर झुक गईं। चेहरे पर गम्भीरता लाने का प्रयत्न विफल हुआ। आनन्द जड़ होकर उसके चेहरे पर चिपक गया था। तुलसीदास के मन की सारी हलचलें भी रत्नावली के उस आनन्द मे ही थिर हो गई थी। उन्होने मृदु स्वर मे कहा—"देखता हू, मेरी जन्मपत्रिका पर आपने गहरा विचार किया है।"

रत्ना चुप रही। तुलसीदास ने फिर कहा—"साधु होने के लिए केवल वेश ही तो आवश्यक नही होता।" कहने को तो यह कहा पर उन्हे स्पष्ट रूप से यह भासित हो चला था कि वे रत्नावली के प्रभाव-पाश में आवद्ध हैं।

तुलसीदास के अन्तिम दिन के कथावाचन मे सहज रस कम और नाटकीयता अधिक थी। आज वे स्त्रियो की मण्डली मे बैठी हुई रत्नावली को ही अधिक सुना रहे थे और इस सुनाने का कार्य रत्ना के मन मे राम-बोध से अधिक तुलसी-बोध कराना ही था।

आरती में अच्छा धन चढा। सोने की कुछ मोहरें, चांदी के बहुत-से रुपये और तांबे के ढेरों टके ही नही, गेहूं और चावल भी इतना चढा कि चलते समय उनके साथ अनाज के पांच बोरे हो गए थे। एक दुशाला और रेशम के दो थान भी अर्पित किए गए थे। तुलसीदास पाठक जी से बोले—"यह सब वस्तुएं ले जाकर मै क्या करूंगा, मेरी समझ मे नही आ रहा है।"

पाठक जी के साले यह सुनकर हंस पडे, बोले—"उसकी चिन्ता आप क्यों करते है। मेरी भाजी आपके यहा पहुंचकर स्वयं ही उसका प्रबन्ध कर लेगी।"

अपने साले की यह बात सुनकर पाठक जी हंस पड़े। तुलसीदास का मन प्रतिवाद न कर सका, मौन रहा। तुलसीदास जी को नाव पर बैठाने के लिए गांव से बहुत-से लोग आए थे। पाठक जी के भतीजे गंगेश्वर तुलसीदास को उनके

गांव तक छोड़ने के लिए नाव पर सवार हो चुके थे। सबसे मिल-भेंट कर तुलसीदास पाठक जी के चरण छूने के लिए झुके। उन्होंने तुरन्त ही उन्हे अपनी बांहों में भरकर कलेजे से चिपका लिया और धीरे से कान में कहा—"मंगलवार को गंगेश्वर फलदान लेकर पहुंच रहा है। राजा से कहिएगा कि वे कल मुझसे आकर मिल जायं।"

"जो आज्ञा।" तुलसीदास ने आंखें झुकाकर दबे स्वर में उत्तर दिया। सुनकर पाठक जी गद्‌गद हो गए। उन्होने तुलसीदास जी को फिर कलेजे से लगाया।

पहले से सूचना पाने के कारण राजा भगत नौका-घाट पर ही मिल गए। उन्होने तुलसीदास का घर बनवाना आरम्भ कर दिया था। इसलिए वे उन्हे अपने घर लिवा ले गए। मार्ग मे रत्नावली के चचेरे भाई ने उन्हे मंगल को फलदान लेकर आने की सूचना दी। राजा तुलसी को देखकर मुस्कराए और कहा—"तुम अनोखे कथावाचक हो भैया, कथा की चढत मे इनकी बहन को भी ले आए!"

तुलसी की आखों मे पहले झेंप और फिर विनोद लहराया, बोले—"दलालों की माया तो राम जी ही समझ सकते है, बाकी हमे क्या, भिक्षुक ब्राह्मण ठहरे, जो दक्षिणा मे मिला वही स्वीकार कर लिया।" × × ×

राजा भगत से बाबा की कही यह पुरानी बात सुनकर बेनीमाधव ही नही, प्रायः गम्भीर रहनेवाला रामू भी हंस पडा। गद्‌गद स्वर मे बोला—"हमारे प्रभु जी की हंसी भी अनोखी होती है। अरे वह जानकीजी से भी विनोद करने में न चूके···कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे। सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुं मुसुकानी।" सुनकर सभी आनन्दित हुए।

२३

बाबा की गिल्टिया कुछ और बढ गई थी। अन्दर से टीसें मारती थी। पीड़ा के कारण नीद उचट-उचट जाती थी। इधर दो दिनों से बाबा को कुछ ऐसी तरंग आई है कि रात के समय वे रामू को भी अपनी कोठरी मे नही सोने देते। अपनी बढी हुई वेदना को उन्होंने अब तक बाहरी तौर से व्यक्त नही होने दिया। केवल उनके चेहरे का कसाव अधिक बढ गया है और वे कम बोलते है। रामू ने जब कारण पूछा तो वे बोले—"तेरा कोई दोष नही है रे। दिन मे एकात मिल नहीं पाता इसलिए रात मे अपने भीतर वाले हंस को अकेला ही अनुभव कराना चाहता हूं।"

बाबा के चेहरे पर हठ की दृढ़ता देखकर रामू सकुच गया। वह अब कोठरी के बाहर सोता है। कोठरी की देहली ही उसका तकिया है और उसके कान सदा भीतर की ओर ही लगे रहते है।

बाबा को नीद कम आती है, आती भी है तो बीच-बीच मे किसी गिल्टी

से ऐसी टीस उठती है कि उचट जाती है। तब पीड़ा को भुलाने के लिए प्राय: लेटे ही लेटे जपमग्न हो जाते हैं। आज रात भी ऐसा ही हुआ। बाई कलाई पर नई गिल्टी निकल रही है। हड्डी के ऊपर की गांठ बड़ी दुखदाई है। पूरी बांह मे तनाव है। उस तनाव के कारण बगल मे एक और गिल्टी उभर आई। नींद मे करवट ले ली तो वह दब जाने से खुर्राटे भरते-भरते सहसा 'हे राम !' कहके कराह उठे। बड़ी देर तक दाहिने हाथ के पंजे से अपनी बाई बांह दाबे हुए सीधे पड़े रहे। उनका चेहरा बड़े कठिन संयम से अपनी पीड़ा को पचा रहा था। मन की माला राम-राम जप रही थी।

थोडी देर के बाद बाबा ने अपनी आंखे खोली। दीवट पर रखे दीप के उजाले मे दीवार पर रंगे देवचित्र की ओर ध्यान गया। हल्के उजाले मे महावीर जी अपने मध्यम उभार के साथ ऐसे चमक रहे थे जैसे लोभी की लालसा चमकती है। बजरंगबली के चित्र पर दृष्टि जाते ही तुलसीदास के मन मे एक ताजगी आ गई। पीडा को पराजित करने के लिए भी आत्मबल जागा। मुस्कराकर चित्र से कहने लगे—"हे पवनतनय, तुम भले ही पीड़ा से मुक्ति न दो परन्तु यह तो बता दो कि किस पाप-शाप के कारण यह दु:ख पा रहा हूं ? हे राम, अब तो अवश्य अपनी राम-रट मे मुझे इतना रमा दो कि तन की पीड़ा को भूल जाऊं।" कानों मे राम गूंज है पर गिल्टियो की टीसो के कारण बीच-बीच मे राम-रट छूट जाती है। मन कराह-कराह उठता है। एक बार वे वेदना न सह पाने के कारण उठकर बैठ जाते है और कराहते हुए हनुमान जी के चित्र की ओर कातर दृष्टि से देखने लगते है। वेदना और प्रार्थना-भरे मन के ताने-बाने से काव्य-स्फूर्ति जागती है:—

जानत जहान हनुमान को निवज्यो जन,
मन अनुमानि, बलि बोल न बिसारिये।
सेवा जोग तुलसी कबहु कहा चूक परी,
साहेब सुभाव कपि साहिबी संभारिये।
अपराधी जान कीजै सासति सहस भांति,
मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिये।
साहसी समीर के दुलारे रघुबीरजू के,
बाह पीर महाबीर बेगि ही निवारिये।

वे देर तक अपनी बाई बांह सहलाते रहे, फिर आंखे मूंद ली और सोने का जतन करने लगे। फिर मन मे कुछ ऐसा समा बंधा कि लगा मानो कोई उनकी पीड़ित बांह को सहला रहा है। कल्पना की आंखे देखने लगी कि जैसे रत्नावली उनके वामाग से प्रकट होकर उनकी कलाई सहला रही है। उन्हे लगा कि पीडा नही रही। उन्हे अब अच्छा लग रहा है। उन्हे लगा कि रत्ना नेह-पगी दृष्टि से उन्हे देख रही है। आप भी मुस्करा उठे, कहा—"मुझे अब भी नहीं छोडती ? अन्तकाल मे तो अपनी ओर यों न खीचो।

"मैं कब खीचती हू ? आप स्वयं ही मेरी ओर खिचे चले आते हैं।"

तुलसीदास कुछ न बोले । उन्हे लगा कि रत्ना अपनी गोद मे उनकी बाह रखे सहला रही है और उन्हे यह अच्छा भी लग रहा है। सहसा रत्ना ने हंसकर कहा —"आजकल तो आप राजा लाला जी से चेलो को अपनी रामकहानी सुनवा रहे है।"

"बेनीमाधव तुलसी-रत्नावली के जीवनवृत्त को जानने के लिए दीवाना है। फिर क्या करता ? उसे राजा को सौप दिया। वही तो तुम्हारे विवाह का प्रस्ताव लेकर आया था मेरे पास !"

"बुरा किया ?"

"नही ! राम की प्रेमरूपी अटारी तक पहुचने के लिए मुझे तुम्हारी प्रीति की सीढियों पर चढना ही था।"

"अच्छा, यदि मेरे बजाय मोहिनी से ही तुम्हारा विवाह हुआ होता तो ?"

"सीताराम का चाकर परकीया प्रेम का पुजारी कदापि नही हो सकता था। वह स्त्री अपनी धुरी पर घूमती हुई मेरे जीवन-चक्र से आ टकराई थी। मेरे अंधे भोलेपन को अनुभव की पकी दृष्टि मिल गई। बस इतना ही मेरा-उसका नाता हो सकता था।"

"और मेरा-तुम्हारा नाता ?"

तुलसी हस पडे, कहा—"मेरे-तुम्हारे नाते को जग जानता है। हम तो चाखा प्रेमरस पतिनी के उपदेस।"

रत्नावली मान-भरा हुआ मुह सिकोड़कर बोली—"मुझे त्यागने के बाद तुम्हारा यह बखान खोखला है।"

तुलसी चकित मुद्रा मे बोले—"सियाराम का पुजारी अपने मानस की नारी-शक्ति को भला कभी त्याग सकता है ? तुम्हारे कारण मेरी लड़खड़ाती हुई रामभक्ति अगद का पाव बन गई।"

रत्ना ने फिर मान से फूले स्वर मे कहा—"मेरे सहज हठ को तोड़कर तुमने अपना हठ बढाया।"

"रत्ना, हम दोनो चक्की के दो पाटो की तरह है। इनके द्वन्द्व के बिना हम दोनो की लौकिक चेतना का गेहूं पिसकर भला भक्तिरूपी मैदा बन सकता था ? तुम्हारे हठ के आगे मैं टूट जाता था। जब टूटता था तभी पछतावा होता था कि तुम्हारे अनुपम सौन्दर्य और गुणो के आगे इतना विवश क्यो हो जाता हूं। तुम्हारी सुन्दरता ने मुझे इस जीवन मे जैसा नाच नचाया वैसा अपने बालपने के उस विघ्न-चक्र मे भी नही नाचा था।"

रत्ना आत्मलीन दृष्टि से तुलसीदास को देख रही थी। तुलसीदास भी टक-टकी बांधकर उसे ही देख रहे थे। बोले—"तुम्हारी इस रस-डूबी दृष्टि ने तुम्हे छोडने के बाद भी मुझे वर्षों तक सताया है। जब राम मे ध्यान लगाता था तो ये आखे ही मुझे अपनी आकर्षण झील मे डुबा देती थी। कई बार जी चाहा कि घर लौट चलू और तुम्हारी इन आखों की छाया तले अपना जीवन शेष कर दू।"

"फिर चले क्यो नही आए ?"

"मेरा द्वन्द्व आरम्भ ही से काम वासना से था। मेरी अन्तर-बाह्य चेतना अपने भीतर वाले काम हठ से अपने राम हठ को श्रेष्ठ मानती थी। मैंने उसे ही जीतना चाहा था पर तुमने मुझे ऐसा रिझाया-भरमाया कि क्या कहूं।"

"तुम्हारे रूप-गुण और पौरुष-पाडित्य पर मैं भी कुछ कम नही रीझी थी। यदि तुम आरम्भ मे मेरे आगे इतने दीन न बने होते तो मैं ही तुम्हारे प्रति दीन बन जाती। मेरा हठ तो तुम्हारी दीनता ने जगाया।"

"सच है। मेरे जीवन की परिस्थितियो ने मुझे वह दीनता प्रदान की थी और तुम्हारे भीतर अभिजात्य दर्प था। जानती हो रत्ना, तुम्हारे उस सहज दर्पयुक्त सौन्दर्य को अपनाने के लिए ही मैं अपने वैराग्य से विरक्त हुआ था। जो मुझमें नही था वह तुममे था।"

रत्नावली की आखें लाज और प्रेम-भार से झुक गईं। चेहरे पर सुहाग की ललाई दौड गई। हाथ से पैर के अंगूठे को मीजते हुए संकोच-भरे स्वर मे बोली—"घर मे बातें होती थी, कानों में पडता था कि तुम ब्याह करने को राजी नही होते हो। सुन-सुनकर मेरा हठ बढता जाता था कि तुम्हे पाकर ही रहूंगी। तुम जानते हो, मैं नित्य हर-गौरी पूजन करने गाव के मन्दिर मे जाने लगी थी।"

बाबा मुस्कराए, बोले—"और तुम जानती हो कि मैंने तुम्हे अपनी सखियो के साथ मन्दिर की ओर जाते हुए देखा था। तुम्हारी उस छवि पर ऐसा मुग्ध हुआ था कि राम-जानकी का पुष्प वाटिका मे प्रथम मिलन वर्णन करते समय मैं वह मन्दिर और उसके पास वाले सरोवर तक को न भूल सका। तुम्हारी तो बात ही न्यारी थी ··" हल्के-हल्के गाने लगे—

संग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर
सर समीप गिरिजा गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मन
मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौ[illegible]

रीझ-भरी आखो से पति को निहार कर रत्ना बोली—"अपना आपा बिसार कर रीझना मैंने तुम्ही से सीखा है। यदि निसर्ग से मुझे यह गुण मिला होता तो भला तुम्हे इस जीवन में छोड़ती। तुम्हारा बखाना मेरा दर्प ही मेरा शत्रु बना।" कहते हुए रत्ना उदास हो गई।

तुलसीदास स्नेह से उसकी बाह पर अपनी दाहिनी बांह सहज भाव से रख-कर बोले—"जिस दर्प ने मुझे रामदास बनने का गौरव और तुम्हे भक्ति का प्रसाद दिया, उसे अब बुरा न कहो रत्ना। पीडा के बिना शक्ति का जन्म नही होता। भूलो, भूलो वह काटो-भरी, धूल-भरी राह। अब तो हम ठिकाने पर पहुच चुके है। ओ-ओ मेरी भक्ति, मेरी प्राण, हम-तुम मिलकर अपने विवाह की मोद-मंगलमयी छवि निहारे।"

"अपने, कि सियाराम जी के ब्याह की ?"

"अब अपना क्या है पगली, मने अपने सारे लौकिक अनुभव और अन्दर की रसानुभूतिया राम-जानकी को सौपकर ही तुम्हे और अपने को पाया है। ·· फेंक दो अपनी यह प्रश्नमाला। मेरा मन लहरा रहा है। देख, यह तेरा दिया

हुआ उल्लास मेरी काया को पीड़ामुक्त कर रहा है। मेरा यह हाथ आज कितने दिनों के बाद सहज भाव से उठ रहा है। अरे, मैं ब्याह का बन्ना बन गया हूं। और तू बन्नी बनी अपनी संग-सहेलियो से घिरी लाज की परतो में हर्ष-उल्लास का अंगार चमकाए बैठी है !"

पटी पर बीते दृश्य मांसल होकर उभरने लगे। रत्नावली का रूपाकार क्रमश झीना होते हुए ज्योतिबिन्दु बन गया और वह बिन्दु नादयुक्त था। बाबा अपनी पूरी काया मे चैतन्य-स्फूर्ति अनुभव करने लगे। उठकर बैठ गए। तभी बाहर मुर्गे ने बाग दी। बाबा की वृद्ध काया मे इस समय चैतन्य खेल रहा था। धीमे-धीमे ताली बजाते हुए वह मगन मन 'रामलला नहछू' गाने लगे। उन्हे लगा कि उनके स्वर मे एक नही दो स्वर लहरा रहे है, अपना और रत्ना का। और वह दो मिलकर एक मे लय हो गए है। राम-विवाह के दृश्य आखो के सामने चले जा रहे है। बाबा आत्मलीन हो गए है। रामू ने द्वार खोला, दबे पाव भीतर आया। किन्तु बाबा को कुछ पता न था। वे गा रहे थे। जब उनकी भाव समाधि पूरी हुई तो रामू ने झुककर प्रणाम किया। अपने दोनो हाथ उत्साह से उसकी पीठ पर रखकर बाबा उल्लसित स्वर मे बोले—"जियो बचवा, राम सदा तुम्हारे साथ रहैं।" कहकर उन्होंने फिर उसकी पीठ को दोनों हाथों से थपथपाया।

"आज तो लगता है प्रभु जी कि आपके हाथो में पीड़ा नही है।"

रामू के कंधे का सहारा लेकर उठते हुए बोले—"आज मैं बिलकुल स्वस्थ हूं रे। तेरी गुरुआइन सपने मे आकर मुझे चंगा कर गई है।"

२४

सवेरे अपने नियमो से निवृत्त होकर बाबा आज कई दिनो के बाद अपने अखाड़े के चबूतरे पर बैठे थे। बाबा को स्वस्थ देखकर सभी लोग आनदमग्न थे। मंगलू बाबा की बाह और पीठ को हाथ से छूकर बारीकी से देखते हुए बोला—"अरे बाबा, कल तो इत्ती गिल्टिया भरी थी और आज एक्कौ नही ! कमाल हुइ गया साला ?' चट से जीभ मुह से निकल आई और मंगलू के दोनो हाथ अपने कानो को पकड उठे। आस-पास सभी लोग हसने लगे। झेपकर अलग खड़े होते हुए मगलू ने कहा—"क्या करे बाबा, गाली स्सा ·"

बाबा चटपट हाथ बढ़ाकर विनोद मुद्रा मे बोले—"निकली-निकली, रोक।" दुबारा हसी का ठहाका मचा।

मगलू ताव खा गया, बोला—"अच्छा, अब मै भी जोग साधूगा। पर बाबा सच्ची बताओ, कोई टोना-टोटका किया था तुमने ?"

बाबा गम्भीर हो गए, बोले—"हा भाई, किया तो था। हमने अपने मन की उस गाठ को खोला जिसके कारण वैद्य जी की औषधि का प्रभाव पूरी तरह

से नही होता था। तुम भी ध्यान करो मंगलू कि तुम्हारी यह गाली की आदत शुरू कहा से हुई। बात को अच्छी तरह से सोच लो। जब उसके मूल मे पहुच जाओगे तो उसे निर्मूल करने की युक्ति और शक्ति भी तुम्हे मिल जाएगी।"

बात सुनकर राजा भगत ने अपने पास बैठे हुए संत बेनीमाधव से धीरे से कहा—"भैया की इसी बात मे उनकी जीत का भेद छिपा है।"

एक व्यक्ति ने बड़े उत्साह से रविदत्त-प्रसंग उठा दिया। वह कहने लगा—"बाबा, तुमने सुना, कल एक गवार ने रवीदत्त महाराज को बहुत मारा!"

"राम-राम, बात क्या थी?"

मंगलू तैश मे हाथ बढाकर बोला—"अरे बात वही रही जो हमरे मन मे रही। इस समय बनारस मे ऐसा कौन है जो आपका भक्त न हो। सुना हमने भी रहा कि सा-अ-अ। इसके दुइ दांत टूट गए। सुना, हाथ-पैरो मे भी बड़ी चोट आई है।"

"राम-राम!" बाबा उदास हो गए। एक क्षण चुप रहकर फिर रामू से कहा—"चल बेटा, रविदत्त को देख आवे।"

बाबा ज्योही चबूतरे से उठने का उपक्रम करने लगे त्योही राजा ने आंखे तरेरी और तर्जनी उठाकर बोले—"चुपाय के बैठो भइया, अभी तुम इतने तगडे नही हुए कि कही आ-जा सको। हम तुम्हे नही जाने देंगे।"

तुलसी बोले—"उसे इसी समय मेरी सहानुभूति की आवश्यकता है। नही तो उसका काशी मे रहना दूभर कर दिया जाएगा।"

राजा ने फिर भी अपनी टेक न छोड़ी, कहा—"देखो भैया, जब तक तुम हमै पहुचाय नही देओगे तब तक हम तुम्हे मरने नही देगे।"

बाबा हंसते हुए चबूतरे से नीचे उतर आए, कहा—"भाई, जीना-मरना तो राम के हाथ है, पर इस समय मैं रविदत्त के यहा जाने से रुक नही सकता। वैरभाव ही सही, पर बेचारा मुझे हरदम याद तो किया ही करता है।" यह सुनकर राजा फिर चुप हो गए।

आठ-दस चेले-चांटियों और भक्तों की भीड से घिरे हुए महात्मा तुलसीदास जी महाराज एक गली के बाजार मे प्रवेश कर रहे है। लोगबाग चबूतरो और दूकानों से उतर-उतरकर उनके चरण छूते है। बाबा सबको आशीर्वाद देते और राम-राम उच्चारते। परिचितो के हाल-चाल लेते हुए भीड़ के घेराव के कारण धीमे-धीमे ही बढ पा रहे थे। रविदत्त की गली मे प्रवेश करते समय उनके पीछे एक छोटी-सी भीड इकट्ठी होकर चलने लगी थी। रविदत्त के द्वार पर पहुचकर बाबा ने स्वयं ही आगे बढकर द्वार की कुण्डी खटखटाई। द्वार एक शोकमूर्ति युवती ने खोला। बाबा और भीड़ को देखते ही उसने चट से घूघट डाला और दहलीज मे चली गई। चौखट के भीतर बाबा के प्रवेश करते ही वह उनके चरणो मे गिर गई। बाबा ने उसके मस्तक पर हाथ रखकर कहा—"अखण्ड सौभाग्यवती भव!" उसी समय घर के भीतर एक बुढ़िया का चीत्कार-भरा क्रन्दन सुनाई दिया—"हाय रोबू। तू आमा के छांडिये कोथाय गेलो रे, आमार खोखा आमा शोनार बाछा।"

अखण्ड सौभाग्यवती का आशीर्वाद पाने वाली युवती ने एक बार सीधे होकर बाबा की ओर देखा और फिर पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

"रामू, इस बेटी को संभाल। भगत, कोई भीतर न आने पाए।" कहकर बाबा ने घर मे प्रवेश किया।

सामने वाले दालान मे रविदत्त धरती पर लेटा हुआ था। दो बूढ़े और एक बूढी सिरहाने पर बैठे हुए थे। बाबा को देखकर बुढिया का क्रन्दन और बढ गया। बाबा रविदत्त के पास बैठकर उसकी मुदी हुई एक आख खोलकर देखने लगे, फिर दूसरी भी खोलकर देखी। फिर एक वृद्ध से कहा—"कौन कहता है कि जीव इस काया से निकल चुका है! रोना-धोना बन्द करके राम-नाम कीर्तन करो। सब ठीक होगा, सब ठीक होगा।" कहते हुए वे फिर दहलीज की ओर आए और ऊंचे स्वर मे कहा—"राजा, लोगों को भीतर बुला लो, जितना नाद गूंजेगा उतनी ही शीघ्र इसकी महामूर्च्छा भग होगी।"

प० रविदत्त के फिर से जी उठने की घटना ने काशी में शोर मचा दिया। गली-गली मे बाबा की जय-जयकार होने लगी।

एक दिन रविदत्त सपत्नीक दर्शन करने आया। दोनो ने साष्टाग प्रणाम किया। रविदत्त बोला—"आप हमे, खोमा कोर दीजिए बाबा। हाम जोगदोम्बा त्रिपुर-शुन्दरी के आदेश का ओवमानना किया, उशका दोण्ड भोगा। हामारा आर्धांगिनी भी हामको माना कोरता रहा, परन्तु हामको जोन्मजात क्रोध बहुत बेशी रहा महाराज। शाब लोग हामको आपका विरुद्ध भोड़का दिया। हामशे बेडो-बेड़ो आपराध हुआ महाराज।"

"क्रोध का कारण अपने मे खोजो वत्स! तुम्हारे पिता तुम पर अकारण ही क्रुद्ध हुआ करते थे इसीलिए तुम्हारे भीतर विद्रोहवश तमस् भडका। अब तुम्हारी यह अर्द्धांगिनी जैसा कहे वैसा करो। देखो, मैंने अपनी पत्नी का कहा माना तो मुझे राम मिल गए।"

रात हुई, अकेले मे फिर रत्नावली आई। बाबा मुस्कराए, कहा—"बोलो मेरी मानसग्रंथि, आज तुम फिर क्यो आई?"

"अभी तुम्हारे भीतर मेरे जीने के क्षण चुके नही हैं इसलिए आ गई। किन्तु चाहती हू कि शीघ्र से शीघ्र वे चुक जाएं जिससे कि तुम्हारे अंतिम क्षणो मे तुम्हारे और राम-जानकी के बीच मे और कोई भी विम्ब शेष न रहे।"

बाबा गम्भीर हो गए, बोले—"खरी उपकारिणी हो। मुझे लगता है रत्ना, कि भक्ति और माया मे कोई अन्तर नही है। भक्ति प्रेम है और माया प्रेम की परीक्षा। मैं तुम्हारी हर परीक्षा के लिए तैयार हू प्रिये।"

"तब हे मेरे सचेत अर्द्धांग, आप अपने बीते क्षणो की छनाई-बिनाई करें, आत्मालोचन रूपिणी अलकनंदा जब चेतना भागीरथी से मिलेगी तो आप ही आप राम-रूप-गंगा बन जाएगी।" रत्नावली उनकी बाईं बाह से सटकर ऐसे बैठ गई जैसे लता वृक्ष का शृंगार-भरा आधार ले लेती है। बाबा का चेहरा शात, किन्तु अधिक कातियुक्त हो गया था। वे गम्भीर भाव से मुस्कराए, कहा

—"अच्छा, तो फिर, जब ते राम व्याहि घर आए ··।"

"हा जिस दिन मुझे विदा कर लाए थे और सुहागकक्ष में जब हम-तुम पहली बार अकेले मे मिले थे। याद करो, प्रिय, वह रात !" शृंगारमूर्ति बन गई थी।× × ×

सुहागकक्ष मे नवयुवक तुलसी नई व्याहुली का घूघट उठाकर देख रहा है। रत्नावली के दिव्य सौन्दर्य ने उसकी दृष्टि स्तंभित कर दी है। आंखें मूदे, लज्जा मे डूबी हुई रत्नावली अपने घूघट को पति की चुटकी से खीचकर ढंकने के लिए उतावली हो उठी। तुलसी ने यह हाथ भी हाथ से दबोच लिया।

रत्ना हाथो में फंसी चिड़िया की तरह आखें मीचे, निश्चल-निस्पंद मुद्रा धारण किए बैठी थी। सजीवता उसकी लज्जा मे थी, वरना यों लगता था कि किसी कुशल मूर्तिकार ने लाजवन्ती की मूर्ति गढ़कर बैठा दी हो। मुग्ध आंखो से एकटक उसे देखते हुए तुलसी अपना आपा बिसार बैठे थे। सामने की सौन्दर्य राशि फूलो से लदी बगिया की तरह मोहक थी। गोटा-सितारे टंकी गुलाबी चूनर मे रत्ना का मुख उन्हे आकाशगंगा और तारो के बीच चन्द्रमा-सा झलक रहा था। उन्हे लग रहा था जैसे उसके निश्चल चेहरे पर लाज सुमधुर स्वरो वाले पक्षियो के कलरव की तरह गूज रही हो। भावमग्न होकर वह कह उठे—"लाखों रतियो को लजाने वाली यह रूप-रत्न-राशि पाकर जब बड़े वैभवशाली भी क्षण-भर मे अपना आपा लुटाकर भिखारी हो सकते है तो, मैं तो जनम का भिखारी हू। मेरे प्राण भी इतने मूल्यवान नहीं कि उन्हे इस छवि पर निछावर करके अपने-आपको संतोष दे पाऊं।"

तुलसीदास की बात रत्ना के लज्जा-मूर्च्छित भावो को सचेत कर गई। पलकें उठी, पुतलियां चमकी, मानो म्यान से तलवारें निकल पडी हों, स्वर भी लाज से बेलाग था, वह बोली—"आपके प्राण मेरी सौभाग्य निधि हैं। उन्हें अब आप निर्मूल्य न कहे।" बात पूरी होते-न होते आंखें कटोरियो-सी भर उठी। इन आंसुओ ने मानो फिर से लाज जगा दी। पलकें झुकी, आखो की सीपियो से गालो पर मोती लुढक पड़े। वह लाज-भरा सौन्दर्य तुलसीदास के लिए पहले से भी अधिक मोहक हो गया। × × ×

रत्नावली बाबा के पास बैठी उलाहना दे रही थी—"मुझे अपनी बातों से इतना-इतना रिझाया, फिर छोड़कर चले गए !"

रत्ना के मान को देखकर बाबा मुस्कराए और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए स्निग्ध स्वर मे कहा—"तुम्हे छोड़ा कहा प्रिये ! रत्ना के प्रति मेरी रीझ ही तो राम-भक्ति बनी। वह चिरतरुणी और अनन्त सौन्दर्यमयी है, मैं अपनी राम-रिझवार के लिए आज तक तुम्हारा ऋणी हू। किसी पत्नी ने पति को ऐसा सौभाग्यवान नही बनाया होगा।"

चंचल-चपल नयनो से बाबा को निहारकर रत्ना बोली—"राजकुमारी विद्योत्तमा ने मूर्ख कालिदास को कवि-कुल-गुरु बना दिया, किन्तु तुम जो कुछ भी

हो वह स्वेच्छा से बने हो। मैं बेचारी अपनी मूढ अहता के आघातो के सिवा और तुम्हे क्या दे सकी ?"

"तुम्हारा वह अहंकार मेरी चेतना-जड़ता को तोड़ने वाला हथौड़ा था। याद करो प्रिये, तुम्ही ने मुझे मूलरूप से राम काव्य लिखने की प्रेरणा भी दी थी।"

रत्ना मुस्कराई, कहा—"याद हे प्रिय, किन्तु मै तो मात्र काव्यरचना की प्रेरणा ही दे सकती थी। यह रामचरितमानस तुम्हारी अन्तःप्रेरणा का फल है।"

"वह भी तो तुम्ही हो रत्ना। सच कहता हू कि जब गृहस्थ था तब तुम रत्नावली थी और जब विरक्त हुआ तब तुम्ही मेरी रामरत्नावली बन गई।"

"यह तुम्हारी महानता है, जो ऐसा कहते हो। मैं अपने दोष जानती हूं। मुझे याद है जब मुसलमानधर्मियों के मेहदी अवतार की बहस छिड़ने वाले दिन मैंने तुम्हे गगेश्वर भैया का पक्ष लेकर पहली बार मानसिक आघात पहुचाया था।" × × ×

तुलसीदास अपनी बैठक मे विराजमान है। घुघराले बालों और दाढ़ी-मूछो-भरा उनका गौर मुख ऐसा फबता है कि मानो कोई राजा बैठा हो। माथे पर वैष्णवी तिलक, गले मे सोने की जंजीर और तुलसी की माला सुशोभित है। दोनो हाथो की उगलिया नग-जडी अंगूठियो से चमक रही है। वे रेशमी धोती, रेशमी बगलबन्दी और रेशमी चादर ओढ़े अपनी गद्दी पर विराजमान हैं। उनके पास दाहिनी ओर तख्ती और मिट्टी की बत्ती रखी हुई है। एक पतली-सी बही मे हाथ से लिखा हुआ पंचाग भी पास ही मे रखा हुआ है। कमरे मे चारो ओर दीवालो पर बने टाडो पर ग्रन्थों के रंग-बिरगे बस्ते ही बस्ते दिखलाई देते है। कमरे मे बिछी चादनी पर चार लोग पण्डित तुलसीदास के सामने विराजमान है। उनमे दो व्यक्ति अपनी पोशाक से मुसलमान नजर आते है। उनके अतिरिक्त राजा भगत और रत्नावली के चचेरे भाई गंगेश्वर बैठे हुए है। एक मुसलमान सज्जन तुलसीदास से कह रहे है—"हमारे नवाब साहब ने पुछवाया है कि हमारे मजहब मे इन दिनो जो मेहदी की आमद-आमद का शोर है वह क्या सच साबित होगा ? देखिए, ऐसा परशन निकालिएगा पण्डज्जी जिसमे कोई चूक न हो।"

तुलसीदास ने अपनी लिखने की तख्ती और बत्ती उठाते हुए कहा—"किसी एक फूल का नाम लीजिए।"

"गेंदा।"

पट्टी पर कुछ अंक लिखते हुए तुलसीदास बोले—"आपको भी बेफसल फूल ही याद आया ? खैर···" फिर कुछ गणना करके कहा—"मिरजा जी आपके प्रश्न का उत्तर बडा अटपटा है—ऐसी कोई शक्ति तो आ सकती है जो धर्म-ढोंगियो को दण्ड दे। पर किसी दिव्य अवतारी पुरुष के आने की बात मेरी समझ मे नही आती।"

मिर्जा जी बोले—"एक बार और बारीकी से विचार कर लीजिए पण्डित जी। तलवार की धार पर चलने जैसा मसला है। हमारे हुजूर नवाब साहब मखदूम

उल् मुल्क मुल्ला सुल्तानपुरी के हिमायती बनें या मौलाना शेख़ अब्दुन्नबी के ?"

तुलसीदास ने फिर गणना पर गौर करके कहा—"इन दोनों में से किसी के चक्कर में पडना उचित नही। यह दोनों ही डूबती नावें है।"

मिर्जा जी ने चकित दृष्टि से तुलसीदास को देखकर फिर अपने साथी से भेद-भरी दृष्टि मिलाई। मिर्जा जी के साथ वाले व्यक्ति अब्दुस्समद खा ने गम्भीर स्वर में पूछा—"और शेख मुबारक ? तनिक इस नाम पर भी गौर कीजिए।"

तुलसीदास ने शेख मुबारक नाम के अक्षर गिनकर कुछ विचार किया और कहा—"यह व्यक्ति तपस्वी है। बडा अभागा और साथ ही बड़ा सौभाग्यशाली भी है।"

खा साहब चकित दृष्टि से तुलसीदास को देखने लगे, फिर कहा—"आपकी शुरू की दो बाते बिलकुल सच है। शेख साहब बड़े आलिम और तपस्वी है, अभागे भी है। मगर इनके नसीबे के चमकने वाली बात पर मुझे सन्देह है।"

तुलसीदास ने कुछ गौर करके कहा—"सन्देह की गुजाइश नही। घटाटोप बादलो के बीच छिपा सूर्य भी अन्ततोगत्वा चमक ही उठता है।"

सुनकर मिर्जा जी और अब्दुस्समद खा के चेहरे चमक उठे, मिर्जा जी ने झटपट अपना दाहिना हाथ बढ़ाया। उधर खां साहब के कलेजे मे भी वही जोश उमगा, खुशी मे एक आंख और होंठ दबाकर हाथ मिलाते हुए कहा—"मैंने क्या कहा था मिर्जा जी ?"

मिर्जा जी चटपट तुलसीदास के आगे सोने की एक मोहर रखकर बोले—"पंडज्जी, अब आप हमारी तरफ से कोइ ऐसा पोजा-पाठ कर दीजिए कि जिससे हुज़ूर नवाब साहब यह बात मान जायं।"

गगेश्वर ने सामने सोना देखा तो उनकी आंखो मे ईर्ष्या की कनिया चमक उठी। उनका अधीर लोभ चेहरे पर ही नही उनकी काया मे भी चमक उठा। बैठे ही बैठे वे आगे बढ गए, मानो कई दिनो के भूखे ने भोजन देखा हो। फिर एक नई सूझ से सधकर कहा—"मिर्जा जी पहले यह तो तय हो जाय कि शास्त्री, जी ने आपके प्रश्न का ठीक उत्तर दिया है या नही।"

पण्डित तुलसीदास शास्त्री का चेहरा क्रोध से चमक उठा। मिर्जा जी और अब्दुस्समदखा पलटकर गंगेश्वर को देखने लगे। चादनी पर रखी हुई मोहर लपककर उठाते हुए मिर्जा जी ने गगेश्वर से पूछा—"आपका क्या ख्याल है ?"

"मेरा ख्याल है कि प्रश्नलग्न पृष्ठोदय सिंह की है इसलिए आपका काम विफल होगा।"

तुलसीदास ने गभीर स्वर मे कहा—"गंगेश्वर, सावधानी से विचार करो। प्रश्नलग्न कर्क है और चन्द्रमा तथा बृहस्पति इस समय मेष मे है। मेरा वचन झूठा नही हो सकता।"

"म आपकी बात से सहमत नही हो सकता शास्त्री जी।"

सुनते ही राजा भडक उठे, झिड़ककर कहा—"पाठक जी पहले अपने विवेक का मीन-मेख मिटाओ, फिर भैया की चूक बताना। ये तुमसे ज्यादा पढे है।"

मिर्जा जी बोले—"हा, यही हमने भी सुना है। आजकल चारो तरफ इन्ही

का नाम फैल रहा है। हम दीनबन्धू महराज के पास जाते थे, पर अब तो वे भक्ति साधते है और ये उनके दामाद है।"

गगेश्वर ने उनकी बात काटकर तीखे स्वर मे कहा—"पर मै उनका सगा भतीजा हूं। उनका सारा कामकाज भी अब मै ही देखता हूं। यह भले ही हमारे वंश की इतनी सारी पोथिया पा गए हो पर तन्त्र-मन्त्र हमें ही सिद्ध है।"

गगेश्वर का यह कमीनापन राजा भगत को बहुत खला, वे बोले—"मिर्जा जी, हमारे तुलसी भैया काशी जी मे पढके आए है।" राजा भगत अभी कुछ और ही कहने के ताव मे थे कि बीच ही मे तुलसीदास बोल उठे—"मिर्जा जी, आप गंगेश्वर जी-से ही काम कराए। वे अच्छे तांत्रिक है।"

अब्दुस्समद बोले—"यह तो ठीक है महराज, मगर मै मुश्किल मे फंस गया हू। यह तय होना ही चाहिए कि आप दोनो मे किसकी बात ठीक है।"

तुलसीदास बोले—"अब ठीक यही है खा साहब, कि गगेश्वर से काम करवाइए। प्रश्न की जो लग्न यह मानते है यदि वह सही होगी तो आपको इनसे काम कराने का लाभ भी अवश्य मिलेगा।" कहकर तुलसीदास तुरन्त अपने आसन से उठ पड़े और भीतर चले गए। उनके उठते ही राजा भगत भी बाहर चले गए।

गंगेश्वर अपने ग्राहको को जिस समय तुलसीदास की बैठक मे पटा रहे थे उस समय तुलसीदास रसोई मे काम करती हुई रत्नावली के पास आए। दालान के खम्भे पर एक हाथ रखते हुए वे बोले—"सुनती हो, गगेश्वर से कह देना कि अब वह मेरे यहा न आया करे।"

रत्ना ने चौककर कहा—"क्यो?"

"वह भले ही तुम्हारा भाई हो, पर मैं अपने घर मे बैठकर उस मूर्ख के द्वारा किया जाने वाला अपना अपमान भविष्य मे नही सहूंगा।"

"आपका क्या अपमान किया मेरे भइया ने?"

"रत्नो, मैं जा रहा हू।" गगेश्वर ने आगन मे प्रवेश करते हुए जोर से कहा।

"अरे कहा, भइया? रसोई तैयार है। जीम के जाओ।"

"नही, वह ऐसा है कि मेरे हाथ मे थोड़ा काम आ गया है। मुझे तुरन्त जाना है। नवाबी नाव मे चला जाऊंगा।"

रत्नावली पल्ले से हाथ पोछती हुई बाहर आई, उसने कहा—"भइया, तुमने इनका क्या अपमान किया?"

गगेश्वर दोनो से नजरे कतराकर ऊपर की ओर देखते हुए लापरवाही से बोला—"मैंने किसीका अपमान नही किया। बात पापी पेट की है। जब से काका अपना काम बन्द कर दिए है तब से मेरी समस्या यह है कि मैं अपना पेट कैसे भरू?"

"यदि यही बात थी तो मुझसे अलग ले जाकर कह सकते थे। एक झूठा टंटा उठाकर तुमने मेरे ही घर मे मेरा अपमान करने का साहस क्यो किया?"

तुलसीदास की इस तेहे-भरी बात पर नाक सिकोड़कर लापरवाही से अपना

सर झटकते हुए गंगेश्वर ने कहा––"मेरी समझ मे जो या सो किया, आगे भी जो आएगा करूंगा।"

"अब तुम कभी भी मेरे घर की देहली नही चढ सकोगे, गंगेश्वर!"

रत्नावली के चेहरे पर तुरन्त ही तमक आ गई। आगे बढकर भाई से कहा––"जब तक मैं जीवित हू तब तक इस घर मे तुम बराबर आओगे भइया। इनकी बात का बुरा न मानना।"

लेकिन तुलसीदास को अपनी पत्नी की बात से और भी बुरा लगा। कड़क-कर बोले––"गंगेश्वर, अब तुम मेरे घर क्या इस गांव मे भी आओगे तो बिना पिटे नही लौटोगे।"

गंगेश्वर अलगनी पर टंगा अपना धोती-अंगौछा जल्दी से उठाकर बैठक वाले कमरे मे भाग गया।

गंगेश्वर के जाने के बाद रत्नावली चकित मुद्रा मे अपने पति का मुख देखने लगी। तुलसीदास का चेहरा अब भी आवेश मे तमतमा रहा था। रत्नावली के मन पर तुलसीदास के इस क्रोध की प्रतिक्रिया क्रोध मे ही हुई। उसकी सुन्दर आंखें दहकते अंगारो-सी चमक उठी। उसने कहा––"आपने मेरे पीहर का अप-मान किया है, मैं इसे नही सह सकती।" कहकर वह भीतर चली गई। तुलसी-दास अपनी पत्नी को घूरकर देखने लगे।

उन्हे अपनी पत्नी का बडा ही रीझ-भरा और सुहावना रूप पहली बार असुन्दर लगा। उन्हे लगा कि जैसे वह चेहरा कालिख से पुत गया हो और उसमें लुभावनी आंखो की सफेदी भयावनी हो गई हो। तुलसीदास का सुन्दरता-प्रेमी कविमानस स्वय अपनी ही कल्पना से सिहर उठा। वे अपने मन मे अपनी प्रिया का ऐसा विरूप बिम्ब उभरने के कारण स्वयं अपने से लज्जित भी हुए। उन्होने अपना सिर उठाकर दुबारा अपनी पत्नी को देखा। चकले पर रोटी बेलते हुए रत्नावली की मेहदी रची उंगलियो में बेलन मानो जानदार होकर किलोलें कर रहा था। दाहिने गाल पर लटक आई बालो की एक लट हवा मे हल्की-हल्की हिल रही थी और इसी हिलने से तुलसीदास के भीतर वाली कालिख-पुती रत्नावली उजली, पूर्ववत् सुन्दर और सदा की तरह मनोहारिणी बन गई। यही नही, मन के पश्चात्ताप मे उन्हे वह अपनी प्रिया का लुभावनापन अति-रंजित होकर लुभाने लगा। लेकिन सौन्दर्य-बोध की यह सारी प्रक्रिया जब अपनी तह मे बैठकर अपनी पूर्णता पाने का प्रयत्न करने लगी तो रोष से फूलता हुआ स्वाभिमान उसके आड़े आया। सारा सद्भाव होते हुए भी उन्हे अपनी पत्नी का अन्याय पक्ष की ओर जाना अच्छा नही लगा था। उनका न्याय-बोध उनकी सौन्दर्य-रीझ के बावजूद राजी नही हो पाता था। वे अपनी रीझ के कारण कुछ-कुछ शान्त तो हुए किन्तु न्याय से सतेज भी बने रहे। उन्होने कहा––"तुम अशि-क्षित स्त्री की तरह बिना समझे-बूझे अन्याय का पक्ष लोगी?"

मेंहदी रची उंगलियो मे फंसा नाचता बेलन एकदम से थम गया। झुका सिर उठा और झटककर बालो की लट सरकाई, फिर सीधे देखकर कहा–– "पीहर का पक्ष लेना नारी-मन का नैसर्गिक न्याय है। मैं यदि लड़का होती तो

मेरे पितृ की पीढियों से पुजती आ रही गद्दी आज यों सूनी न होती।" बेलन दूनी तेजी से मेहदी रची उगलियों मे नाचने लगा।

तुलसीदास की आखों के सामने रत्नावली अब यो झलकी कि सलोना-सुहावा मुखड़ा, मेहदी रचे, मुंदरी सजे नाजुक हाथ और महावर लगे पैर सब सुन्दर थे, केवल वक्षभाग काला था। वैसा ही कालिख पुता विरूप जैसा कि कुछ क्षणो पहले उन्हे रत्ना का मुख झलका था। बार-बार अपनी सुन्दरी प्रिया का विकृत बिम्ब झलकता उन्हे रुचिकर न लगा। लेकिन रत्ना की बात भी तो रुचिकर नही लग रही थी। वह बोले, स्वर मे हृदय और बुद्धि दोनो ही की खिन्नता बात के साथ ही प्रकट होने लगी, कहा—"तुम्हे मेरी उन्नति अच्छी नही लगती ?" रत्नावली का बेलन तनिक थमा और इसी थमाव के साथ चकले पर रोटी फेरने के लिए उंगलिया सकुचते हुए चली। हाथों और उगलियों की यह गति मानो रत्नावली के मन की गति का प्रतिबिम्ब थी। संकोच-भरे संयत स्वर मे आखें झुकाए हुए कहा—"आपकी उन्नति न चाहने का प्रश्न ही नही उठता, दुखी तो इस बात से हूं कि जिस द्वार पर बड़े-बडे राजे-रजवाड़ो के हाथी आकर खड़े होते थे, उस द्वार पर अब केवल कुत्ते ही लोटा करते है। गंगेश्वर भैया अपनी वह साख न बना सकें।"

"गगेश्वर ने मेरे घर मे बैठकर मेरा अपमान किया, इसे मैं कभी क्षमा नही करूंगा। वह निश्चय ही अब मेरे घर मे कभी प्रवेश नही कर पाएगा।"

रोष से रोष की ज्योति जागी। रत्नावली का चेहरा फिर तमक उठा, बोली, "बप्पा यदि उन्हे किसी काम से यहा भेजे···मुझे बुलाने ही भेजे ?"

"मैं बप्पा से भी स्पष्ट कह दूगा। इस व्यक्ति को अब मैं अपने घर मे कदापि नही घुसने दूगा।"

"पुत्रहीन होने के कारण क्या उन्हे बुढापे मे यह अपमान भी सहना पड़ेगा ?" कहते हुए रत्ना की आखे छलछला उठी, होठ कांपने लगे।

तुलसीदास का न्याय पक्ष अपनी रीझ के आगे कुछ-कुछ अपराधी-सा अनुभव करने लगा। 'यह अनुभूति व्यर्थ की है, किन्तु है। क्या करू ? रत्ना के आंसू कैसे देखू ?' अपने मोह और न्याय मे विचित्र-सा समझौता करते हुए वे बोले, "तुम स्वयं भी दो-तीन बार मुझसे गंगेश्वर की बुराइया बखान चुकी हो। बप्पा भी उससे संतुष्ट नही है, यह भी तुमने ही कहा है।"

"पीहर का कुत्ता भी प्यारा लगता है, यह तो मेरा भाई है।" कहकर रत्नावली तेजी से रसोई मे चली गई। तुलसीदास किंकर्तव्यविमूढ से सिर झुकाए खड़े रहे। उन्हे अपने वैवाहिक जीवन के इन थोड़े से दिनो मे रत्नावली से यह पहला आघात लगा था। जिसकी विद्या, सूझ-बूझ, प्रबन्धपटुता और सर्वोपरि जिसके रूप और सौन्दर्य के प्रति तुलसीदास इतने अधिक अनुरक्त हो गए थे कि इसमे अब वह किसी भी बुराई को देखने की कल्पना तक नही कर सकते थे, वही रत्नावली तर्क और न्याय से परे हटकर उनका विरोध कर रही है। 'पति से अधिक उसे अपने पीहर का कुत्ता प्यारा लगता है। कैसी ठेस पहुचाने वाली बात है। नही, इस बात पर मैं कदापि समझौता नही करूगा। रत्नावली को

यह समझना ही होगा कि विवाह के बाद स्त्री के लिए पति ही सर्वोपरि है। उसके कुकर्मों और अन्यायों के प्रति भी उसे सादर-सप्रेम सिर झुकाना चाहिए, फिर मैं तो न्याय की बात कर रहा हूं। मेरे घर मे बैठकर व्यर्थ मे मेरा अपमान करके मेरी रोटी छीनने वाला व्यक्ति अब इस घर मे कदापि नही आ पाएगा। रत्नावली मुझे भले ही प्राणो से अधिक प्यारी लगती हो, पर उसके इस कुरूप को मैं कदापि प्रश्रय नही दूगा।' तुलसीदास इस निश्चय के साथ फिर अपने बैठके मे चले गए।

२५

थोड़ी देर तक कमरे मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक तेजी से चक्कर काटते रहे। उनके मन की उबलन थम नही पा रही थी। 'कुछ हो जाय मैं रत्नावली के इस हठ को प्रश्रय नही दूगा, नही दूगा, कदापि नही दूगा। उन्हे अपने पति का मान रखना ही होगा।' तुलसीदास ने अपने बैठके के द्वार बन्द किए और भीतर के दालान मे जोर-जोर से खड़ाऊ खटकाते हुए वे दहलीज की ओर बढे। रसोई घर की ओर चोर कनखी से ताका। रत्ना अब भी रोटियां बेल रही थी। उनके मन ने चाहा कि रत्ना एक बार नजर उठाकर उन्हे देखे और बाहर जाने के सम्बन्ध मे कुछ पूछे या कहे, पर ऐसा कुछ भी न हुआ। तुलसीदास के पैरो मे नया आवेश भर गया था। वह खट-खट करते दहलीज तक पल-भर मे पहुच गए। फिर ठिठके, कान भीतर की ओर लगाए, परन्तु आशा अब भी झूठी साबित हुई। रत्नावली ने उन्हे न पुकारा। वे घर से बाहर निकल आए और धीरे-धीरे सकट-मोचन महावीर की ओर बढने लगे। बाजार के दिन थे। गाव मे भीड़-भड़क्का था। तुलसीदास अब तक इस क्षेत्र के नये गौरव बन चुके थे, उन्हे अनेक लोग झुक-झुककर प्रणाम कर रहे थे। सबको आशीर्वाद देते, शिष्टाचार मे मुस्कराते हुए ज्यो-ज्यो वे आगे बढते गए त्यो-त्यों उनके मन का उत्ताप धीमा पडता गया। किन्तु यह ठडक गर्मी से भी अधिक गर्म थी। 'मेरी इस प्रतिष्ठा को गगेश्वर ने आघात पहुचाया। मैं यदि एक बार उसके आगे झुक गया तो वह मूढ दम्भी अपनी बहन का पल्ला पकडकर मुझे चौपट ही कर डालेगा। यह मिर्जा जी और खा साहब आदि फिर मेरे यहा कभी न आएगे। और भी अनेक यजमान भ्रम मे पडकर आना छोड देगे।' वह सकटमोचन तक पहुच गए। भीड अच्छी थी। एक उपाध्याय जी को तुलसीदास जी से कहकर राजा भगत ने मन्दिर का पुजारी बनवा दिया था। दर्शनार्थी भीड से प्रसाद ग्रहण कर रहे थे। चढावे मे आए हुए बतासो और गुड़धानी का कुछ भाग मटको में डालकर जल्दी-जल्दी वे प्रसाद के दोने लौटा रहे थे। उनका छः-सात वर्ष का लड़का भक्तो के कपालो पर सिंदूर के टीके लगा रहा था। चारो ओर 'जय सीताराम, जय बजरगबली' की जै-जैकारें उठ रही थी। एक जजीर मे बंधे चौरासी घटे एक के बजाने से एक साथ

वजकर अविराम गूंज उठा रहे थे। तुलसीदास चबूतरे पर चढकर बजरंगबली को प्रणाम करके उपाध्याय जी के पास ही बैठने लगे। उपाध्याय जी ने झटपट अपने लड़के से कहा, "गनपतिया, पहले काका के लिए झटपट आसन बिछा दे।"

"नाही, क्या करना है!"

"नही भैया, ऐसे न बैठो," इसी बीच मे सिन्दूर लगाना छोड़कर गणपति ने आसन बिछा दिया। तुलसीदास शांतभाव से बैठकर हनुमान जी की ओर निहारने लगे। दर्शनार्थी संकटमोचन से अपने सकटो को मोचने के लिए गोहारे लगा रहे थे। रोगी आत्मीय अच्छा हो जाए, परदेश गया हुआ पति जल्दी लौट आए, अपना खेत जबरदस्ती उजाडने वालो को बजरंगबली दण्ड दें—आदि तरह-तरह की मानव दुर्बलताएं और आकाक्षाएं प्रार्थना के रूप मे हनुमान जी के बहाने उनके सामने आ रही थी। उनका जी चाहा कि वे भी गुहारकर कहे, 'बजरंग, मेरी रत्नावली को सुमति दो। गंगेश्वर की ईर्ष्या के उत्तर मे मेरी प्रतिष्ठा को और बढा दो।' पर अपने मन मे शब्दहीन होकर लहरानेवाली इन बातो को तुलसीदास ने शब्दो की काया न दी। वे बडी देर तक बैठे दुनिया का तमाशा देखते रहे।

भूख जोर की लग रही थी। चबूतरे पर संकटमोचन के मंदिर की भीड़ अब प्राय छंट गई थी। पुजारी जी मदिर की धोवाधाई करके रोटी खाने के लिए घर चलने लगे। तुलसीदास से पूछा—"भइया, क्या रोटी-वोटी खाके घर से निकले हो?"

तुलसीदास के मन में इस प्रश्न ने विचारों की लहरे उठा दी। 'झूठ बोलू? बजरंगबली के स्थान पर बैठकर?···नही, राम-बोला झूठ नही बोलेगा।' उत्तर दिया—"नही अब जाऊगा।"

"भइया, हमारी एक अरदास है।"

"बोलो।"

"बात यह है भइया, कि हम तो, तुम जानो, न पढ़े न लिखे। हमारे बप्पा बिचरऊ भी कुछ ऐसे ही रहे। बाबा हमारे बडे भारी पडित थे। सो एक बार तुर्कों ने गांव लूटा तो उनसे लडते हुए बीरगति को प्रापत होइगे। सब पोथी-पत्तरे, घर-गोरू नष्ट होइगे। बप्पा हमारे जो रहे सो का कहै भइया, बजरंगबली स्वामी के सामने झूठ बोलै मे हमे बडा संकोच हुइ रहा है, और बात कहते भी नीक नही लगती। वह जानत हौ का करते रहे?" कहते-कहते पुजारी जी अपनी पुजापे की गठरी रखकर तुलसी पडित के सामने बैठ गए और कहने लगे—"बप्पा हमारे सच्चे-झूठे म[illegible] [illegible]के किरिया-करम, ब्याह-जनेऊ कराते थे।"

तुलसी मुस्कराने लगे। पुजारी बोले—"हमारे पिता तो फिर भी भले रहे, हम आपको एक ऐसे ही पण्डित जी की आखों देखी किहानी सुनाते हैं। वह हमरे गाव के पडोस मे ही रहता रहा। हम [illegible] साथ-साथ उसने कई बार काम भी किया था। सो वो नशल घेल तिलक-उलक [illegible] के झूठे पोथी-पत्रे बगल मे दबाय के नित्त मरघटे मे सारी किरिया-करम करवावै और मन्तर जानत हौ कैसे पढता रहा? (ऊची आवाज मे) ओम् नमो-नमो गरुड़ो-गरुड़ो गरुड़ोधुजा नारायनो

केसवो हरीह (धीमे बुदबुदाते हुए) सार नरक जाय कि सरगै, हमारे ठेंगे से। (फिर तनिक ऊंचे स्वर मे) ओम् नमामी नमः ओम् जमदूताय नमः (फिर धीमे स्वर मे) औ जो यहिका बेटवा हमका अच्छी दच्छिना देय तौ सारे का सरग मिलै, नाही तौ (ऊंचे स्वर मे) स्वाहा-स्वाहा-स्वाहा।"

पुजारी जी का ऊंचे-नीचे स्वर मे सुनाने का ढंग और इन मंत्रों के शब्द सुनकर हसी के मारे तुलसीदास के पेट मे बल पडने लगे। पुजारी जी का लडका गणपति भी खिलखिला कर हंस पड़ा। तब पुजारी जी अपने अभिनय की गभीर मुद्रा उतारकर स्वय भी हंसते हुए अपने बेटे से कहने लगे—"अरे हंसत का है बचवा, ये तो कहौ, कि सकटमोचन ने हमारी सुन ली, अपनी सरन मे हिया बुलाय लिया, नहीं तो बेटा तुझे भी मैं यही सब मंतर रटवाता। पापी पेट जो ठग विद्या न सिखावै, और जो न करावै सो थोडा है।"

पुजारी की बातो की करुणा से प्रभावित होकर तुलसीदास की आखें भर आई, चेहरा गभीर हो गया। उन्होने कहा—"बुभुक्षितं कि न करोति पापम्। अस्तु, यह सारा प्रसंग उठाने का तुम्हारा आशय मैं समझ चुका हू। गणपति, मेरे साथ चल! मैं आज ही तुझे तेरे गुरु को सौप दूगा और सुमुहूर्त मे तेरा विद्यारम्भ हो जाएगा।"

पुजारी जी की आखे आनन्दाश्रुओ से छलछला उठी। सारा शरीर गद्गद हो गया था। वे तुलसीदास के पैरो मे गिर पडे, कहा—"तुलसी भैया, हमारे बाबा की आत्मा आपको जरूर असीसेगी।"

अपने दोनो हाथ उनके कंधों पर रखकर उठाते हुए तुलसीदास बोले—"उठो-उठो, यह तो मेरा धर्म है। इसे दो गुरु मिलेंगे, मैं और तुम्हारी भौजी।"

सकटमोचन ने मानो गणपति के रूप मे रूठे पति को अपनी रूठी पत्नी के पास लौटने का एक बहाना दे दिया था।

घर लौटे। रसोई के आगे वाले दालान मे रत्नावली उदास बैठी श्यामो की बुआ की बातें सुन रही थी। दहलीज मे घुसते ही श्यामो की बुआ की बातें उनके कानो मे पड़ने लगी। वह कह रही थी—"आज जाने कहा भटक गए हमारे भइया। अपनी भले न रहे, पर तुम्हारी भूख-प्यास भी बिसर गई! हाय, भूख के मारे कैसा कुम्हिलाय गया है तुमरा चेहरा।"

इस बात ने तुलसीदास के पैरो मे बिजली भर दी। मन अपराधी अनुभव करने लगा। दहलीज के सामने वाले दालान का हिस्सा पार करके आगे मुडते ही रसोई घर के आगे दीवार के सहारे हथेली पर गाल टिकाए बैठी हुई रत्नावली के मुख पर चिन्ता और उदासी के गहरे बादल छाए हुए दिखे, मगर···मगर अब कहां रही उदासी? चार आंखे मिली और दो चेहरे खिल उठे। गणपति का हाथ पकडकर उसे आगे बढाते हुए कहा—"लो, तुम्हारे लिए एक शिष्य लाया हू।"

श्यामो की बुवा उलहना देती हुई बोली—"कहा चले गए थे भइया? सारा दिन निकल गया, भौजी बिचारी भूख के मारे कुम्हिलाय गई।"

तब तक रत्नावली उठकर बाहर से आए हुए पति के पैर धुलाने के लिए तांबे की कलसिया लेकर आगन के कोने मे खड़े पति के पास पहुच चुकी थी।

तुलसीदास स्वयं अपने पैर धोने के लिए झुके किन्तु उसके पहले ही रत्नावली के हाथ कलसिया से पानी डालने और पैरो की धूल धोने मे लग चुके थे। एक बार झुके हुए पति की आंखों मे आखे डालकर सुहागिन ने मान और करुणा के अनोखे संगम वाली दृष्टि से पति को निहारा। तुलसीदास ने देखा और लजाकर दृष्टि फेर ली। बात का पक्ष बदलते हुए उन्होने फिर बात उठाई, कहा—"पण्डितो के परिवार का लडका है। दुर्भाग्यवश दो पीढियो तक इसके पुरखे विद्यावचित रहे। इसे समर्थ बनाकर तुम यश पाओगी।"

श्यामो की बुआ, केवल अपने पद से ही नही, काया से भी भारी भरकम थी। पन्द्रह-सोलह वर्ष की छोटी-सी आयु मे भी वह अपनी मोटी काया के कारण आयु से पाच-छ वर्ष अधिक बडी लगती थी। सालिगराम की बटिया जैसी गोल-गोल श्यामो की बुआ रसोई घर के दालान मे आते हुए अपने भइया से आखे नचाकर बोली—"सात जलम मे भी हमारी भौजी जैसी घरवाली किसी को नही मिलती भइया, बताये देती हूं।"

तुलसीदास मुस्करा कर बोले—"अरे सात क्या सत्तरह जन्मो मे नही मिलेगी—न इन-सी भौजी, न तुम-सी ननदी।"

मुह मटका कर, आंखे नचाकर श्यामो की बुआ बोली—"ऊं, हम तो तुमरी बात कह रहे है। हमारी भौजी जैसी सुन्दर कोई बड़ी से बड़ी रानी-महरानी भी नही होयगी।"

दासी तब तक दालान मे पीढा और चौकी बिछा चुकी थी। तुलसीदास ने उसपर बैठते हुए बालक के लिए भी पास ही मे पीढा-चौकी लगाने की आज्ञा दी, फिर मुस्कराकर कहा—"भाई, हमारी जिजमानिनो मे अनेक स्त्रियां तुम्हारी भौजी से अधिक सुन्दर है। हम तो उन्हे देख-देखकर लट्टू हो जाते है।"

"ऊ., न कही ! हमे भरमाने चले है। अरे हमी नही सारी दुनिया जानती है कि सास्त्री महराज हमारी भौजी के नचाए नचाते है। तुमरे आगे राजा इन्नर की अपछरा भी आ जाय तो तुम उसे भी भौजी के आगे छी कर दोगे।"

रसोई घर के भीतर चूल्हा फिर से दहक उठा था। तवा चढ चुका था। चकला-बेलन आगे सरका कर फुरती से आटे की लोई बनाती हुई रत्नावली के चेहरे पर, बाहर दालान मे चलनेवाली बातो को सुनकर, सुहागिन का अभिमान और अपने पति के प्रति उल्लास-भरी आस्था दमक उठी थी। उस समय उसके चेहरे पर ऐसा रुआब आ गया था कि बड़ी-बड़ी रानी-बेगमे भी उसके आगे झेंप जाती। उसके हाथ फुर्तीले सेवक से भी अधिक चुस्तीले चल रहे थे।

बाहर दालान मे बैठे तुलसीदास भीतर बैठी अपनी प्रिया को सतोषमग्न होकर निहार रहे है। भीतर के अधेरे मे रत्नावली की मुखमुद्रा कुछ अधिक उभरकर नही आ रही, फिर भी जो झलक मिल रही है वह मानो प्राणो को भी प्राणान्वित करने की शक्ति रखती है। और उसी शक्ति से उल्लसित होकर तुलसीदास अपनी मुहबोली बहन से विनोद करते हुए बोले—"अच्छा, यह बात है तो मैं भी तुम्हारे लिए दस-पाच बडी सुन्दर-सुन्दर भौजिया बकरी-भेंडो की तरह बटोर के ले आऊगा। फिर तुम यह तो नही कहोगी कि एक ही भौजी

हमे नचाती है।"

"अरे भइया, दस-पांच क्या, तुम पूरा रनिवास बसाय लेव तो भी तुम रहोगे हमारी भौजी के ही बस मे। ऐसी पढ़ी-लिखी बुधमान तुम्हे लाखो मे क्या करोड़ो मे भी ढूंढे नही मिलेगी।"

तुलसीदास गम्भीर होने लगे। श्यामो की बुआ के द्वारा कही गई रत्ना के पढ़े-लिखे होने की बात उन्हे सही लगी, पर रत्ना के बुद्धिमान होने की बात सुनकर उनका विवेक सहसा ठिठक गया। सवेरे पत्नी के निर्बुद्ध की भांति बर्ताव करने की बात मन के चलते हुए आनन्द रूपी बुलबुलो मे कुछ-कुछ सीतान भरने लगी। रत्नावली उस समय भीतर थालिया परोस रही थी। तवे पर चढ़ी रोटी सेकने, नई बेलने और थाली परोसने के विविध कामो मे उसके हाथ ऐसे सधाव और फुर्ती से चल रहे थे कि उसे निहारते हुए तुलसी को लगा कि ऐसी कर्म-कुशल और व्यवस्था-निपुण स्त्री भला अकस्मात् निर्बुद्ध क्योकर हो जाती है? इसका क्या कारण है? × × ×

बाबा के सिरहाने बैठी हुई रत्नावली बोली—"मेरा अहंकार ही मुझे निर्बुद्ध बनाता था। बचपन मे मैंने अपने बप्पा के क्रोध, प्यार और रीझ-भरे क्षणो मे अनेक अवसरो पर सुना कि यदि मैं लड़का होती तो इस घर की गद्दी कभी सूनी न होती। उनकी इस बात ने मेरे मन मे लड़कों के लिए, विशेष रूप से उस लड़के के लिए, जो मेरा पति बनकर इस घर से मुझे निकालकर ले जाएगा, एक अनोखी चिढ भर दी थी। तुम्हे पाकर मैं रीझी अवश्य, पर जब किसी प्रसगवश वह चुभन चुभ जाती थी तो मैं सहसा निर्बुद्ध हो उठती थी।"

"तुम्हारा वह दुर्भाग्य ही हम दोनो का सौभाग्य बन गया रत्ना।"

"पर हमे तपना कितना पड़ा स्वामी!"

"नर-नारी एक दूसरे के पूरक और भाग्यविधाता है, वे परस्पर की रीझ और खीझ मे अपने-अपने अभावो और उनकी पूर्ति के लिए ही पूर्व कर्मानुसार मिलते हैं।"

रत्ना उदास हो गई, बोली—"यह माना कि इस जनम मे राम जी ने हम दोनों को वह तो अवश्य दिया जो जीवन मे हरेक को नही मिलता, पर बाहरी रूप से हम दोनो ही आजन्म कितना सहते रहे स्वामिन्?"

"हजार हथौडो की चोट खाकर ही पत्थर, शंकर बनकर पुजता है। मेरे सियाराम ने नर-तन धारण करके क्या-कुछ न सहा! फिर भला हमारी बिसात ही क्या है रत्ना! हम तो चाकर है चाकर, जैसा मेरा साहब चाहेगा वैसा ही मुझे तपना पडेगा।"

बाबा ने आखे मूंद ली। शरीर ऐसा सधाव लेकर बैठा, जैसा कि कई दिनों से न बैठ पाया था।

"जो भी हो, मेरा सौन्दर्य और मेरे सारे गुण अपनी पूरी शक्ति के साथ तुम्हे बांधते थे, पर मेरा एक दोष बार-बार त्रिशूल की तरह तुम्हारे कलेजे मे चुभता था। हाय नाथ, मैंने तुम्हारे प्रति कितने पाप किए हैं।"

बाबा हंसे, मधुर स्वर में कहा—"तुम्हारा वह पाप ही तो मेरा पुण्य बना। वही तो मुझे रामरूपी 'कोटि मनोज लजावन हारे' सौन्दर्य की चाहत से बाध सका।/सत्य-शील और सौन्दर्य के त्रिगुणात्मक स्तर पर मेरे भोले महाभाव को मोहिनी और रत्ना के सहारे ही बढना था। तुमने मुझे रजोभाव भी दिया और सद्भाव भी। मोहिनी तो मात्र यौवन की अनबूझी हठ-भरी तपस्या ही थी किन्तु तुम्हारे बिना उसकी सिद्धि अर्थात् मेरा रामचैतन्य मुझे मिल नही सकता था प्रिया अर्धांगिनी।···मुझे याद आ रहा है वह दिन जो हमने चित्रकूट के जंगलों में बिताया था।" × × ×

चित्रकूट क्षेत्र मे एक झरने के पास बैठे तुलसी और रत्नावली किसी बात पर खिलखिला रहे है। चिड़िया चहक रही है। रत्नावली के पैर झरने के बहते हुए पानी मे लटक रहे है। पैरों से हल्के-हल्के पानी को हिलाते हुए रत्ना कह रही है—"तुमने मुझे मीठी क्यो कहा ?"

"अच्छा, तो इसीलिए तुम कड़वी बनकर आखें तरेर रही हो ? और ये जो तुम पानी में मगन मन तरंगें उठा रही हो यह तुम्हारे शृंगारप्रेरित आह्लाद का मधुर प्रमाण नही है तो और क्या है ?"

रत्ना इतराहट-भरे स्वर मे बोली—"मैं क्या जानू ?"

"तुम इस प्रकृति के शृंगार की मधुरिमा का एक दिव्य अलंकार बन गई हो। तुम वह मधुर स्रोत हो जिससे मेरे मन में रस का सागर उमड़ता है। तुम···"

"बस-बस पण्डित जी, अपनी यह चाटुकारी-भरी बातें आगरे जाकर अकबर बादशाह को सुनाइए, कोई जागीर मिल जाएगी।"

"मुझे तुम्हारे रूप मे यह रामदत्त अनंत सुन्दर साम्राज्य मिला है, फिर नरदत्त छोटी-मोटी जागीरों की परवाह क्यों करूं ?"

"तो फिर मेरी क्यों करते हो ?"

"यहा द्वैत का प्रश्न ही नही, मैं तो अपनी ही सुन्दरता पर रीझ रहा हूं।"

रत्ना ने 'जाओ तुम बड़े वो हो' वाली भंगिमा मे आखें तरेर कर पति को देखा और अपना मुखड़ा पानी में हिलोरें लेते अपने पैरों की ओर मोड़ लिया। उस निर्मल जलधार में अलक्तक रंगे, बिछुये-पायल मण्डित गोरे पैर पिंडलियों तक चपलतावश डूब-उतरा रहे थे। तुलसीदास कोहनी के बल टिके, अधलेटे हुए प्रिया के क्रीड़ारत चरणो को निहारने लगे। कुछ रुककर फिर बोले—"तुम्हारे नूपुरों मे यदि आटा लगा होता तो ये सारी मछलियां अभी उसी मे लटकती दिखलाई देती।"

रत्ना ने आखे तरेर कर कहा—"मैं कोई मछेरन हूं जो मछलियां फंसाऊ ?"

"और तुम हो क्या ? अपने रूप की बंशी मे गुणो का लासा लगाकर तुमने इस मच्छ को फांस रखा है।"

रत्ना ने फिर आखे तरेरी—"हूंऽ-ऊंऽ, बडे चतुर बनते हो। बहेलिया चिड़िया से कहे कि तुमने मुझे जाल मे फसाया है।"

विनोद मुद्रा मे तुलसीदास रत्ना को चिढ़ाते हुए बोले—"मैंने कब फंसाया ?

तुम्हारे बप्पा कथा के बहाने मुझे ले गए और तुम्हारी इन रसीली अंखियों का चुग्गा चुगाकर मुझे अपने जाल में फंसा लिया।"

"ये नहीं कहते कि मेरे बप्पा ने तुम्हारा उपकार किया, नहीं तो जनम-भर कुंवारे ही पड़े रह जाते।"

"वह तो मैं चाहता ही था। सोचता था राम-चरणों में चित्त लगाऊं।"

"तो अब कर लो न अपनी चाहत पूरी। मैं कहीं कुएं-तालाब में डूबकर मर जाऊंगी, तुम्हें छुट्टी मिल जाएगी।"

"अरे तब तो और भी आफत आ जाएगी। तुम्हारे साथ-साथ मुझे भी डूबना पड़ेगा।"

"क्यों ?"

"कांटे में फंसे मच्छ की भला दूसरी गति ही क्या है !"

"हांऽऽ, मैं ही तो तुम्हारे मार्ग का कंटक हूं। ऐसा करो कि मुझे पीहर भेज दो और छुट्टी पाओ।"

"तुम्हारे पीहर में है कौन ? बप्पा तो क्षेत्र-संन्यासी होकर जमुना तट पर रहते हैं।"

"उससे तुम्हें क्या ? मैं स्वयं किस पुरुष से कम हूं ? बाप-दादों की गद्दी संभालूंगी, खाने-पीने को बहुत मिल जाएगा।"

तुलसी खिलखिलाकर हंसे और कहा—"कोई लुटेरा आएगा और पण्डित जी को ही उठाकर ले जाएगा। कहेगा कि चलो हमारे घर पर ही हमारी और अपनी कुण्डली विचारो।" कहकर तुलसीदास फिर अट्टहास कर उठे।

पति का यह अट्टहास रत्ना के अहंकार की कुण्ठा बना, मुंह फुलाकर झटके से उठ खड़ी हुई और तेजी से चल पड़ी। उसकी आंखों में आग और पानी दोनों ही चमक रहे थे।

तुलसीदास तुरंत ही उठकर उसके पीछे लपके—"अरे तुम तो सचमुच ही रूठ गईं।"

रत्ना की चाल और तेज हो गई। तुलसीदास ने हल्के से दौड़कर उसे अपनी बांहों में बांध लिया। छूटने के प्रयत्न करते हुए वह बोली—"छोड़ो, तुम्हें मेरी···"

तुलसी का एक हाथ चटपट रत्ना के मुख पर चिपक गया, बोले—"झूठी सौगंध क्यों देती हो ? न तुम मुझे छोड़ सकती हो और न मैं तुम्हें।"

रत्ना फूट-फूटकर रोने लगी। आश्चर्य और अपराधजनित भावना से तुलसीदास का चेहरा प्रश्नचिह्न बन गया। रत्ना के मुंह पर रखा हुआ उनका हाथ उसके गालों के आंसू पोंछने लगा और कहा—"अरे मैं तो हंसी कर रहा था रत्नू। पर ऐसी कोई बात तो कही नहीं जो तुम्हें यों चुभ जाए।" रत्ना की ठोड़ी उठाकर उसे अपनी ओर देखने के लिए बाध्य किया। पति की आंखों से आंखें मिलते ही रत्ना ने अपना मुंह उनकी छाती में छिपा लिया और सुबकते हुए कहा—"पुरुष होती तो अपने पिता को बुढ़ापे में यों अनाथ छोड़कर तो न आना पड़ता।"

सुनकर तुलसीदास के हाथों के बन्धन ढीले पड़ने लगे। वे उदास और

गम्भीर हो गए, बोले—"किन्तु यह मेरा दोष तो नही, फिर मुझे क्यो लाछित करती हो ?"

छिटककर अलग खडी होती हुई रत्नावली ने पल्ले से अपने आसू पोछकर रुधे स्वर मे कहा—"दोषी मेरा भाग्य है। तुम्हे पाकर एक जगह मैं अपने-आपको इतनी धन्य अनुभव करती हूं कि अपने दुर्भाग्य पर बीच-बीच मे बावली खीझ उठ पड़ती है। मैं अपने-आपसे विवश हू स्वामिन्।" कहकर वह फिर पति की छाती में मुंह गड़ाकर फूट-फूटकर रोने लगी। नर की छाती पर नारी का रखा हुआ मुख नर का पौरुष बन गया। तुलसीदास शरणागत प्रतिपादक समर्थ स्वामी की तरह बड़े भाव से उस सौन्दर्य पर अपनी जान छिडकने लगे। उसे कसकर कलेजे से चिपका लिया और उसके गाल पर हाथ फेरते-फेरते स्वयं उनकी आंखें भी प्रिया की न थमने वाली हिंचकियों से उमड पड़ी। वनक्रीड़ा का सहज उल्लास दोनों के लिए समाप्त हो चुका था।

सहसा एक गाय विकल रंभाती और दौडती हुई उधर आई। रत्ना रोना भूलकर डर के मारे अपने पति की छाती में और भी सिमट गई।

गाय ने अपनी गहरी काली प्रश्न-भरी आंखों से उन्हें देखा और फिर वन मे आगे दौड़ गई। तुलसी बोले—"कितनी विकल दृष्टि थी इसकी !"

"इसका बछड़ा खो गया है।" कहते हुए रत्ना पति से अलग होकर खड़ी हो गई। उसके चेहरे पर विकलता थी।

तुलसीदास उंगलियों पर गणना करने लगे, फिर कुछ विचार कर बोले—"अरे, वह यही कही किलोलें कर रहा है, अभी अपनी मां को मिल जाएगा। चिन्ता न करो।"

रत्ना मुस्कराई। चेहरे पर नटखटपन झलका, फिर लाज-भरी आंखें नीचे झुकाकर धीमे स्वर में कहा—"बच्चे मां को बड़ा कष्ट देते है।"

तुलसी बोले—"किन्तु तुम्हे उससे क्या ?" फिर सहसा एक नये सोच से आंखें चमक उठीं। रत्ना का हाथ पकडकर पूछा—"क्या तुम मां बनने वाली हो रत्ना ?"

रत्ना ने अपना लाज-भरा मुख फिर पति की छाती में छिपा लिया और नटखट स्वर में कहा—"आप प्रश्न विचार लीजिए न।"

तुलसीदास ने कसकर अपनी प्रिया को बांध लिया। वह रम्य वन, सारा वातावरण उन्हे अपने मन के भीतर वाले समृद्ध सौन्दर्य के आगे फीका लग रहा था। प्रिया के सिर पर अपना सिर टेकते हुए उन्होने अपनी आखे मूंद ली। भीतर सोने के सहस्रदल कमल-सा सौन्दर्य अपनी भावगंध से उन्हे लुब्ध कर रहा था।

२६

सुबह का समय था। रत्नावली पूजा समाप्त करके ठाकुर जी के सामने दंडवत कर रही थी। पास ही दालान मे हिंडोले पर दस महीने का नन्हा तारापति सो

रहा था। एक दासी कन्या हिंडोले मे लगी डोरी को एक हाथ से वीच-वीच में हिलाती हुई दूसरे हाथ से पंचगुट्टे खेल रही थी। इससे थोड़ी ही दूरी पर गणपति बैठा हुआ पट्टी पर लिखा छान्दोग्य उपनिषद् का उपदेश जोर-जोर से रट रहा था। उसका स्वर मानो नट के बन्दर-सा था जो सोंटे के भय से अपने कर्तब दिखलाने को बाध्य था। उसकी आखें आकाश से लेकर ठाकुरद्वारे मे पूजा के आसन पर बैठी गुरुआइन और पंचगुट्टे खेलती हुई दासी पुत्री तक दौड़-दौड़ कर तमाशा देखने मे व्यस्त थी। उसके दोनो हाथ मक्खियां उड़ाने और शरीर भर मे जगह-जगह उठ आने वाली खुजली को मिटाने में फरवट चाकर की तरह व्यस्त थे—

गणपति पढ रहा था—"बल वाव विज्ञानाद् भय··· विज्ञान से आत्मबल श्रेष्ठ है। अपि हि शत विज्ञान-वताम् एको बलवान् आकम्पयते। क्योकि एक बलवान सौ विद्वानो को डराता है। स यदा बली भवति, अथोत्थाता भवति, उत्तिष्ठन परि चरिता भवति परिचरन् उपसत्ता भवति—बलवान होने पर मनुष्य उठ खड़ा होता है—वह जाता है गुरु के घर···"

ठाकुर जी के आगे दण्डवत् प्रणाम करके उठते हुए रत्नावली ने घुड़ककर गणपति से कहा—"फिर वही! तोड-तोडकर क्यो पढता है?"

गुरुआइन जी की घुडकी सुनते ही गणपति का ध्यान सजग हो गया। शरीर-भर मे मचती हुई खुजली न जाने कहां गायब हो गई। स्वर पहरेदार-सा सजग हो गया। मंत्र की तोतारटंत शैली जो कुछ देर पहले मरियल बुड्ढे-सी रेंग-रेंगकर चल रही थी अब धावक-सी दौडने लगी। रत्नावली पूजा वाले दालान से अपने मुन्ने के हिंडोलने के पास आई। अपने सोते हुए लाल तारापति को नयन भरके निहारा। दासी पुत्री मालकिन के आने से तनिक भी न चौंकी। उसके दोनो हाथ वैसे ही अपने दोनो कामो मे दत्तचित्त थे। रत्नावली ने कहा—"चमेली, जाकर पूजा के बर्तन माज डालो।" फिर हिंडोले से सोते हुए तारापति को गोद मे उठाते हुए वह धीमे स्वर में अपने पति का रचा हुआ गीत गाने लगी—"जागिये रघुनाथ कुवर, भोर भयो प्यारे।"

बच्चा अंगड़ाई ले रहा था कि तभी घर में रत्ना के चचेरे भाई गगेश्वर ने प्रवेश किया। रत्ना ने हरखकर कहा—"आओ-आओ भइया, आज सवेरे-सवेरे इधर कैसे भूल पड़े? (स्वर ऊंचा करके) चमेली, पैर धुलाने के लिए पानी ला।"

आंगन के किनारे पैर धोने के लिए रखी हुई चौकी की ओर बढते हुए गगेश्वर बोले—"भूल क्या पड़े, हम जानत रहे कि शास्त्री जी महाराज अभी लौटे न होगे, इसीलिए चले आए। घडी-आध घड़ी मे उनके आने पर तो तुमसे बात करने का अवसर भी न मिल पाएगा।"

चमेली तबतक पानी का लोटा लाकर गंगेश्वर के पैर धुलाने के लिए तैयार खडी थी। रत्ना की आखें भाई की बात सुनकर लज्जानत हुईं। गोद मे आकर भी तारापति अभी चेता न था। उसे जगाना भूलकर रत्नावली ने दुखी स्वर मे कहा—"उनसे तुम्हे यो डरने की आवश्यकता नही भैया, वे तो भोलानाथ है।"

पड़ती हुई पानी की धार मे अपने पैर रगड़ते हुए गंगेश्वर ने व्यंग-भरे स्वर मे कहा—"हाऽ, साक्षात भोलानाथ है। इधर कहा जिजमान तुम्हारा है और फिर उधर भूलकर उसे अपना बना लाए। तेरा पति ठगशास्त्र मे भी पूरा पारंगत है।"

रत्ना को भाई की बात अच्छी न लगी, स्वर सतेज हुआ, कहा—"आप बड़े है भइया, किसीको व्यर्थ ही दोष देना आपको शोभा नही देता। मिर्जा जी को आप प्रभावित न कर सके तो फिर वही इन्हे घेरने के लिए आए। इसमे भला इनका क्या दोष है ?"

गंगेश्वर को उत्तर न सूझा तो जोर-जोर से गला गड़गडाकर कुल्ला करने लगे। रत्ना कहे जा रही थी—"बप्पा ने आपको विद्या देने मे कोई कसर नही रक्खी। पहले मुझसे जलते थे, अब इनसे जलते हैं।"

अंगौछे से हाथ-मुह और पैर पोछते हुए गंगेश्वर ने सहसा स्वर को विनम्र बनाकर कहा—"मैं न तुमसे ईर्ष्या करता हूं और न शास्त्री जी से। पर पापी पेट तो मेरे साथ भी है न। छः बच्चे, फिर दो हम लोग और उसके ऊपर काका का भरण-पोषण भी···"

रत्ना फिर भडकीं—"बप्पा खाते ही क्या है! अपनी दो समय की खिचड़ी के लिए उनके पास राम जी की कृपा से अब भी बहुत-कुछ है। मैं आज ही उन्हे कहला दूगी कि तुम्हारे यहा से कुछ भी न मंगाया करे। मेरे बप्पा ऐसा मनुष्य आज के समय मे ढूढे से भी नही दिखाई देता है और तुम···"

"मैं कुछ भी नही कहता। तुम मेरी बातो का गलत अर्थ न निकालो रत्नू। मिर्जा जी और खां साहब दोनों ही मुझ पर अकारण ही बिगड़ पडे। कहने लगे, 'आपको कुछ आता-जाता नही है। हम आपसे काम नही कराएंगे। हमारे दाम हमको फेर दीजिए। हम उस पार शास्त्री जी के पास ही जाएंगे'।"

"पर तुमने उन्हे दाम फेरे कहां ? रोने तो लगे थे उनके सामने। पण्डित होकर मूर्खों के समान पैसो के लिए रोना भला शोभा देता है! तुम्हारे स्वभाव मे स्थिरता नही है भइया, बुरा न मानना। विवेक-बुद्धि से काम लेना तो तुम जानते ही नही हो। तुम स्वयं ही अपना दुर्भाग्य हो। उस दिन जब यहा मिर्जा जी उन्हे बादा ले जाने के लिए आए तो मैंने उनकी सारी बातें यहा आड से सुनी थी। यह जा थोडे ही रहे थे, मैंने ही बुलाकर कहा कि चले जाइए, इतना आग्रह करके आती हुई लक्ष्मी को छोड़ना उचित नही। तब ये गए है बादा।"

गंगेश्वर चौकी पर बैठकर कान दबाए चुपचाप सुनते रहे। रत्ना ने बात पूरी करके बाहो मे लेटे अपने पुत्र को देखा। वह चकित दृष्टि से मां को निहार रहा था। बेटे से आंखे मिलाकर मा का खौखियाया मन हरखा। गंगेश्वर उदास स्वर मे कहने लगे—"हा ठीक है। पर मैं क्या करूं ? अभागे का कही भी निबाह नही। हमारे लिए तो अब यही एक मार्ग रह गया है कि एक दिन आटे मे माहुर घोलके उसकी रोटियां सब बाल-बच्चों को खिला दे और हम पति-पत्नी भिखारी बनकर निकल जाएं। तब शास्त्री जी महाराज हमारे यजमानों को ही नहीं बल्कि अपनी ससुराल की हवेली को भी हथिया के तुम्हारे साथ बैठकर मूछो पर ताव दिया करेंगे।"

तुलसीदास दवे पांव आकर दालान मे प्रवेश करते है। गंगेश्वर को देखकर कहते हैं—"मुझे ससुराल की हवेली का मोह नही गगेश्वर। ससुर की दी हुई वहा की एक रत्नावली ही मेरे लिए यथेष्ट हे। मैने तुम्हारी सारी बातें दहलीज मे खडे होकर सुन ली हैं। इससे अधिक अच्छा होगा कि मैं रत्नावली और तारापति को लेकर इस क्षेत्र से कही और चला जाऊं।"

पति के क्रोध को रत्नावली ने किसी हद तक समर्थन की दृष्टि से देखा।

गगेश्वर पहले तो चूहे की तरह से दुबके पर दूसरे ही क्षण सिंह की तरह दहाडकर बोले—"यह जो सारे ग्रंथ आप हमारे यहा से उठा लाए हैं वह हमारे हवाले कर दीजिए। मैं चला जाऊंगा।"

"ग्रन्थ बप्पा ने मुझे दिए है। मैं नही लाया।"

"पर वे हमारी पैतृक सम्पत्ति है। मेरे पिता छोटी आयु मे मर गए थे। पुस्तको का बंटवारा नही हुआ था।"

बात काटकर रत्नावली तेजी से बोलीं—"इनके आगे बोलो तो बोलो पर मेरे आगे भी झूठ बोलोगे गगे भैया? मेरे बप्पा को बेईमान बताते हो? यह ग्रन्थ तुम्हारी पैतृक सम्पत्ति हैं?"

"तारीगांव के वासुदेव काका के हैं। पर उससे क्या होता है। (तुलसीदास की ओर देखकर) न्यायरत्न वासुदेव त्रिपाठी निःसन्तान थे इसलिए अपने ग्रन्थ हमारे यहा रखवा गए। इनका बंटवारा होना चाहिए कि नही?"

"कैसा बटवारा?" रत्नावली बच्चे को सीधा करके गोद मे लेती हुई तेज पड़ी। दो डग आगे बढकर फिर कहा—"किसे दे गए थे त्रिपाठी जी?"

"हमारे कक्का को जिनका उत्तराधिकारी मैं हूं?"

"झूठे कही के। मुझे दे गए थे। बप्पा को जो यो मिथ्या दोष लगाओगे तो बताए देती हू मुझसे बुरा और कोई न होगा। (पति की ओर देखकर) बप्पा इतने सतर्क रहे है कि पैतृक सम्पत्ति का एक लोटा तक मुझे नही दिया। पैतृक सम्पत्ति का अपना भाग भी उन्होंने इन्हें ही दे दिया।"

"और काकी के गहने, जो तुम्हे मिले?"

सुनकर तुलसी पंडित की त्योरिया भी चढ गईं, वे बोले—"गगेश्वर, अब तुम मेरे हाथो पिटकर ही मानोगे। अपनी माता के आभूषण यह न पाती तो कौन पाता?"

"अरे यह निर्लज्ज हैं। अपने झूठ का झंडा ऊंचा किए रखना इनकी जन्म की आदत हैं। बचपन मे इतनी-इतनी मार खाकर भी न सुधरे तो अब क्या सुधरेंगे। और मुझसे तो इन्हे ऐसा बैर है कि पाएं तो कच्चा ही चबा जाए। अब तक तुमने ही कहा था अब मैं भी कहती हूं कि भविष्य मे गगे भैया मेरे घर की देहरी फिर कभी न चढ़ें। पक गई हूं इनके कुबोलो से। यह निर्लज्ज, मूढ और कुल-कलंकी हैं।"

"जाने दो रत्ना तुम्हारे बड़े…"

"बड़े है तो अपना बड़प्पन दिखाएं। मैं अब इन्हें सहन नही करूंगी।" कहकर रत्नावली अपने बच्चे के साथ तेजी से ऊपर चली गई।

गंगेश्वर ने फिर नया पल्टा लिया, दु.खी स्वर और दार्शनिक मुद्रा धारण करके कहने लगे—"हाऽ, अभागे को भला कौन सौभाग्यवती या सौभाग्यवान सहन करेगा। पण्डिता रत्नावली जी घर बैठकर यजमानो के लिए जन्म-पत्रिकाएं बनाएंगी, पण्डित तुलसीदास जी दरबारो, साहूकारो मे कथा बाचेगे, जन्म-पत्रिकाएं विचारेगे—लक्ष्मी चार हाथो से इनका ही घर भरेगी। हम जैसे टुटपुंजियों की गुजर-बसर भला फिर क्योंकर हो सकती है। मेरे जैसे कुलीन स्वाभिमानी अभागे के लिए सपरिवार माहुर खाकर मर जाने के सिवा और कोई उपाय ही नही रहा। (नि.श्वास, फिर सहसा स्वर ऊचा करके) अच्छा रत्नू, तो फिर यह निर्लज्ज कुलागार अब तुमसे विदा लेता है। भविष्य मे तुम इसका मुख अब कभी नही देख पाओगी। आशीर्वाद। आशीर्वाद।" कहते हुए गगेश्वर चले गए।

भोजनोपरात विश्राम कक्ष मे पति-पत्नी पान चबाते हुए आमने-सामने बैठे थे। तारापति पिता के पास ही सो रहा था। तकिये के सहारे अधलेटे पिता का दाहिना हाथ पोले-पोले बड़े स्नेह से अपने बेटे के हाथ पर फिर रहा था और आंखे उसकी मा के मुखचन्द्र की चकोरी हो रही थी।

रत्ना ने मुस्कराकर कहा—"ऐसे घूरकर क्यो देख रहे हो मुझे ? इन पांच दिनों मे क्या कोई विशेष परिवर्तन आ गया है मुझमे ?"

"हा तुम, मुझे पहले से अधिक सुन्दर और प्रिय लग रही हो।"

"सुन्दरता मेरे रूप मे है या तुम्हारे लोभ मे ?"

"पहले तुम बताओ, चन्द्रमा और चांदनी मे कौन सुन्दर है ?"

सौभाग्यवती रत्नावली ने किंचित् इतराते हुए कहा—"तुम्ही जानो, मेरे लिए यह प्रश्न अविचारणीय है।

"क्यो ?"

"क्योकि मेरा चन्द्र और चादनी अविभाज्य है। (बेटे की ओर देखकर) चादनी को देखती हूं तो चन्द्र को बरबस ही देखने का लोभ होता है। इसी तरह चन्द्र को देखकर चादनी का।"

"तब रूप और लोभ मे अन्तर ही क्या रह गया प्रिये ? सुन्दरता दोनो छोरो तक एक-सी व्याप्त है। तुम्हे मन की बात बतलाऊं, कई वर्ष पहले एक बार मेरे मन मे यह प्रश्न जागा कि राम जी अधिक सुन्दर है अथवा उनके प्रति मेरी भक्ति।"

"फिर क्या निर्णय किया ?"

"वही जो अभी तुमने कहा। यह दोनों ही अभिन्न-अविभाज्य हैं। रूप प्रेम है और लोभ उसे पाने का मार्ग। मार्ग न हो तो मनुष्य मंजिल तक कैसे पहुचे ?"

"मान लो, कल को मेरा यह रूप शव बनकर···"

तुलसी झपटकर आगे झुके और अपनी बाईं हथेली रत्ना के मुख पर रख दी, कहा—"फिर कभी ऐसी बात मुह से न निकालना रतन। मेरा कलेजा धसकने लगता है।"

सुनकर रत्ना की आखों मे प्रेम की चमक और फिर इतराहट आई। पति का हाथ अपने मुह से हटाकर मुस्कराती हुई वह बोली—"मै अभी मरी नही

जा रही हूं कविराज, केवल एक यथार्थ/सत्य का निरूपण भर किया था मैंने। मनुष्य का रूप, प्रकृति की शोभा सब नश्वर है। फिर ऐसे आधार पर टेका देने से लाभ ही क्या जो विश्वास का ठोसपन न लिए हुए हो ?"

तुलसीदास गंभीर हो गए, सीधे तनकर बैठ गए। क्षण-भर मौन रहकर फिर कहा—"सच है, टिकने वाला तो सियाराम रूप ही है। सच है वह नर-नारी के व्यक्त-अव्यक्त रूप का अनन्त प्रतीक है। उसी का लोभ अनन्त और अजर है।"

"तो उन्ही के प्रति अपना लोभ बढाओ। मुझे घूर-घूर कर क्यो सताते हो ?"

पत्नी ने अपने मानाभिनय से गम्भीरता को जो रस-भरा मोड़ दिया वह तुलसीदास के भोले मन को छलने में सहज सफल हुआ। प्रसन्नता उनके चेहरे की कान्ति बन गई। बोले—"तुम बडी नटखट हो। सूत्रधार की भाति मुझ कठपुतली को अपनी अंगुलियों पर मनमाने ढंग से नचाती हो।" कहकर उन्होने रत्ना का हाथ पकड़कर अपनी ओर खीच लिया।

"यह क्या करते हो, हटो छोड़ो।" रत्ना के दबे स्वर वाले वाक्य पर अपनी बात आरोपित करते हुए तुलसीदास कहने लगे—"पहले अपनी बात का उत्तर सुनो। तुम्हारा आकर्षण ही मेरा राम-मार्ग है। तुम्हे और इस आंखो के तारे को श्री सीताराम ने ही अपने प्रति मेरी अनुरक्ति बढाने के लिए कृपा करके मुझे दिया है। तुम दोनो मिलकर ऐसा दर्पण बन जाते हो जिसमे मुझे रामरूप की प्रांत छवि दिखलाई देती है।" बाये हाथ से पत्नी की बाह दबाते और दाहिना तारापति के सिर पर फेरते हुए तुलसीदास भावमग्न हो गए। एक क्षण रुककर फिर कहने लगें—"एक बार बचपन मे राजा जी की बगिया से ढेर सारे सुन्दर फूल बटोरकर मैंने उनके सहारे राम जी की सुन्दरता देखना चाहा था। अब वही भाव सौन्दर्य अधिक मुखर होकर मुझे अपनी इस सोने-सी गृहस्थी मे देखने को मिल रहा है। तुमसे सच कहता हूं रत्नू, अब तो बाहर-भीतर कही जाता हूं तो तुम्हारे बिना मेरा मन उचट-उचट जाता है। तुम दोनो को छोड़कर मैं अब जीवित नही रह सकता।"

"ऐसा न कहो। तुम्हारा जीवन मुझसे श्रेष्ठ है। तारा हमारी आखो का तारा है। प्राणो का प्राण है। विवाह से पहले सोचती थी कि पति डाकू होता है जो कन्या को उसके मा-बाप से छीनकर पराये घर की बन्दिनी बना देता है। और अब लगता है कि एक नारी की सर्वश्रेष्ठ आकाक्षा यही होती है। तुम दोनों बने रहो। बस, मुझे और कुछ न चाहिए।"

तुलसी ने भी मुस्कराकर यही कहा—"तुम दोनों बने रहो, बस मुझे कुछ न चाहिए।" चार आखें आपस मे अटककर मुस्करा उठी। दो चेहरे खिल गए। फिर एकाएक रत्ना के चेहरे पर कठोरता आई, कहने लगी—"गंगे भैया मेरा यह सुख फूटी आंखो नही देख पाते। मुझसे तो वह ऐसा जलते हैं कि पूछो मत।"

"वह महामूर्ख और ईर्ष्यालु है।···पर क्या करे बेचारा, पेट पालने की समस्या सभी जीवधारियो के आगे होती है। मेरे यहा आ जाने से एक बेचारे गंगेश्वर ही क्या कई गांवो के ज्योतिषी मन्द पड़ गए हैं। उनकी ईर्ष्या स्वाभाविक है। किन्तु मैं भी क्या करूं ? तुम्ही बताओ, मेरी भी तो गृहस्थी है।"

"ऊंह, ऐसों की चिन्ता छोड़ो। गंगे भइया की कुण्डली में पागल होना लिखा है। एक बार मैंने बप्पा को बतलाया तो वह बोले कि उसके आगे कभी न कहना।"

"पागल तो वह हो चला है। महत्ता न पाने के कारण उसमे इतनी हीनता आ गई है कि अब तो इतना अल्ल-बल्ल बकने लगा है।"

"क्या कोई बात तुमने सुनी है?"

"वह पगला अब तो यह कहता डोलता है कि मैं ज्योतिषाचार्य पण्डित दीनबन्धु पाठक का पुत्र हूं। उन्होने मेरी माता से अनैतिक संबंध स्थापित किया था।"

रत्ना ने थरथराकर अपने कान बन्द कर लिए। मुख क्रोध और लाज से लाल हो गया। कहने लगी—"बस-बस, बप्पा के समान महान् संयमी और तपस्वी व्यक्ति के लिए ऐसी अनर्गल बात मुख से निकालने वाले को मैं कभी क्षमा न कर पाऊंगी। कभी नही।" आवेश की तेजी में उसकी आखे छलछला उठी।

प्रेम से पत्नी की बाह दबाते हुए तुलसी ने शान्त स्वर में कहा—"पागल की बात का विचार करना व्यर्थ है प्रिये! सारी दुनिया बप्पा को भी जानती है और गंगेश्वर को भी।"

"पर बप्पा यदि यह सुन लें तो उनकी आत्मा को कितना कष्ट पहुचेगा! बेचारों के अपना पुत्र नही था इसलिए बड़ी लगन से उन्होंने इन्हे पढ़ाया-लिखाया। मैं तो, तुमसे सच कहती हूँ कि, बिलकुल घेलुए में पढ गई। बप्पा इन्हे पढ़ाते थे तो मैं भी बैठ जाती थी। यह न पढे और मैं पढ गई। तुम सच्ची मानना, अच्छी शिष्या होने के नाते ही उन्होने बाद मे मेरी शिक्षा के संबंध मे विशेष रुचि लेना आरंभ किया था। गंगे भैया यदि तनिक भी उत्साह दिखलाते तो वे उन्हे ही अधिक रुचि से सिखलाते। मैं जानती हूं, उन्हे अपनी चौदह पीढ़ियो की गद्दी संभालने की कितनी चिन्ता थी।"

तुलसी बोले—"मैं समझता हूं। विवाह का प्रस्ताव करते हुए उन्होने मुझसे भी यही कहा था। वे चाहते थे कि मैं उन्ही के घर पर ही रहूं।"

"वे गंगे भइया से मन ही मन में ऊब चुके थे। हमारे कक्का ने अपनी दुश्चरित्रता के कारण हमारे घर का बहुत पैसा बर्बाद किया। यह नई कमाई तो सब मेरे बप्पा की ही है। फिर भी वे कहा करते थे कि मैं यही गांव में नया घर बनवा लूंगा और शेष पैतृक सम्पत्ति गंगे को सौपकर उसे अपने से अलग कर दूंगा। कहते थे कि मैं अपने जीते जी अपने होनेवाले जामाता को अपनी गद्दी पर बिठला जाऊंगा।"

"स्वाभिमानवश मैं भले ही उस ग्राम मे न रहा, तो भी यह मानता हूं कि इस क्षेत्र के बड़े-बड़े लोगो मे मेरी पहुच का कारण मेरी कथावाचकता के अतिरिक्त बप्पा भी है। वे अब भी सबसे यही कहते हैं कि तुलसीदास के पास जाओ।"

रत्नावली सहसा तुलसीदास का अपने कन्धे पर धरा हाथ झटककर उठ खड़ी हुई, रूखे, दुख-भरे स्वर मे कहा—"मैं अभागी यदि पुत्र होती, तो उन्हे कभी अपनी गद्दी की चिन्ता न होती। अब कुछ भी कहा जाय, ज्योतिर्विद्यामार्तण्ड पाठकों की गद्दी उजड़ गई।" कहकर रत्नावली तेजी से कमरे के बाहर निकलकर

नीचे की सीढिया उतरने लगी।

तुलसीदास हक्का-वक्का रह गए। पिछले दो वर्षों के अपने वैवाहिक जीवन मे उन्होने रत्नावली को कई बार इस हीन भावना से ग्रस्त होते हुए देखा है। जब यह हीनता उसे सताती है तो कभी-कभी वह मन ही मन में उग्र भी हो उठते है। अपनी पत्नी के रूप और गुणो पर प्राणपण से मुग्ध होकर भी तुलसीदास रत्ना के स्वभाव की इस तिक्तता से कही पर वहुत खिन्न भी है। इस हीनभाव के जागने पर रत्नावली कभी-कभी उनके प्रति ईर्ष्यालु भी हो जाती है। तुलसीदास के अन्त सौन्दर्य-वोघ को इससे धक्का लगता है। उस धक्के से अपने-आपको वचाने के लिए उनकी चेतना भीतर ही भीतर विकल हो उठती है। यथार्थ वाहर और भीतर दो स्तरो पर अपने-आपको समझने के लिए मचल उठता है। एक मन कहता है कि भगवान के प्रति रखा जानेवाला अनुराग ही टिकाऊ होता है किन्तु दूसरी ओर वे रत्ना और अव तारापति के प्रति अपना आकर्पण प्रतिपल वढ़ाने से नही चूकते। रत्ना का यह दोप भी उन्हे पूर्ण चन्द्र के कलंक-सा ही सुन्दर लगता है।

रात मे उन्होने अपनी पत्नी से कहा—"सुनो, मैंने यह निश्चय किया है कि अव काशी को अपनी कमाई का केन्द्र वनाऊंगा।"

"परन्तु मैं अपने वप्पा को अकेला छोड़कर कही नही जाऊंगी।"

"मैं जानता हूं। वप्पा को ध्यान मे रखते हुए तुम्हारी यह इच्छा मुझे अनुचित भी नही लगती। तुम कुछ दिनों अपने मैके मे रह लोगी। वप्पा के संन्यासी मन को तारापति ब्रह्मानन्दवत् रिझाएगा। एक यह लाभ भी होगा कि यजमानो के लिए जो जन्मपत्रिकाएं तुम इस समय तैयार कर रही हो उनकी दक्षिणा की राशि गंगेश्वर को मिल जाएगी। वह मूर्ख ईर्ष्यालु भी अपने वढते पागलपन से वच जाएगा।"

"तुम मुझे इतने दिनो छोडकर रह सकोगे?"

तुलसी का स्वर तुरत उदास हो गया, वोले—"वड़ी देर से मन को इसी ठांव पोढा कर रहा हूं। पांच-सात दिनो के लिए वाहर जाता हू तो तुम्हारे लिए मेरे प्राण वावले हो उठते हैं। काशी का यह फेरा कम से कम दो-तीन मास तो ले ही लेगा।"

"मैं समझती हूं कि तुम्हे अपने मन को पोढ़ा करना ही चाहिए। काशी की कमाई को यहां वाले कूत न पाएंगे। हम लोग दूसरों की ईर्ष्या से वचेंगे। वप्पा के जीवन मे भी रस आ जाएगा। मैं उनसे ज्योतिष चर्चा करूंगी, तारा उनके आसपास रहेगा। वेचारे कितने प्रसन्न जाएंगे।" रत्नावली पिता के पास अपने मैके के घर मे रहने के विचारमात्र ही से उल्लसित हो उठी थी किन्तु तुलसीदास का मन अभी कुछ भी निश्चय नही कर पा रहा था। एक ओर काशी की याद आती है, पुराने साथियो से मिलने को जी चाहता है, घुमक्कडी की पुरानी आदत भी पैरों मे खुजली मचा रही है किन्तु दूसरी ओर रत्ना के विना अव उन्हे काशी क्या वैकुण्ठ मे रहना भी सुहा नही सकता। रत्ना के विना घर से वाहर रहने पर उन्हे रातो नीद नही आती। उसका मुखचन्द्र, उसकी वातें तुलसी का

अहर्निशि अपने-आप मे रमाए रहती है। रत्ना का बेटा ऐसा सम्मोहक जादू है कि वे चाहे तो भी उससे छूट नही सकते।

दूसरे दिन सबेरे कलेऊ करने के उपरात तुलसीदास दालान मे घुटनो दौड़ते अपने बेटे को 'पकड़ो-पकड़ो' करते हुए हसा रहे थे। बच्चा अपने बाप को छकाने के लिए किलकारियां मारकर और भी तेज भागता था।

उसके पैरों मे पडी चांदी की पैंजनियो के घुघुरू, पायलो के घूघुरू रूनझुन स्वर उठाकर पिता का आनन्द बढा रहे थे। तभी रत्ना ने बैठक के कमरे से भीतर आते हुए कहा—"सुनते हो, मैंने प्रश्न कुण्डली बनाकर देख लिया। यह यात्रा तुम्हारे लिए बड़े महत्त्व की सिद्ध होगी। राम का नाम लेकर और अपना जी कड़ा करके तुम काशी चले जाओ।"

सुनकर तुलसीदास का आनंद-भरा चेहरा कुम्हला गया। विचार मे पड़ते हुए बोले—"हा ऽऽ, पर···"

"पर वर कुछ नहीं। इतनी भक्ति और वैराग्य की बाते करते हो और थोड़े दिनों के लिए मेरे बिना संयम से नही रह सकते ? तुम्हारे जैसे व्यक्ति को यह शोभा नही देता।"

रत्नावली की बात सुनकर तुलसीदास को झटका लगा। लज्जा का बोध भी हुआ। वे बोले—"दूसरो को उपदेश देना सरल होता है पर स्वयं आचरण करना अति कठिन। फिर भी आत्म-संयम करना आवश्यक है। ठीक है, मैं काशी जाऊंगा।" × × ×

आत्मालोचन का एक चक्र पूरा हुआ। बाबा स्थिर और परम शातिमग्न बैठे थे। मानस रत्नावली उनके चरणो पर झुकी। उसकी यौवनोल्लास-भरी चपल चंदन-सी काया सहसा अपना वार्द्धम्य पा गई। अब रत्नावली वैसी ही थी जैसी कि बाबा ने अंतिम क्षणों मे उसे देखा था। बूढा माई ने बूढ़े बाबा से हंसकर कहा—"अब तो कल से मेरे आत्मालोचन के दिन आ गए। तुम उबरे; मुझे अभी डूबकर उबरना शेष है। अच्छा, अब कल रात फिर आऊंगी।"

शांत और सुस्थिर गति से अपना बाया हाथ बढ़ाकर बाबा ने मैया को अपने बामांग मे समेट लिया। उनकी आखे मुद गईं। बाबा और मैया के स्थान पर राम और जानकी दृश्यमान हुए। तुलसी की काया गद्गद हो उठी।

२७

बाबा की चामत्कारिक नीरोगता और उससे भी अधिक उनकी कृपा से उनके प्रबल शत्रु रविदत्त तांत्रिक का मृत्यु के मुख मे जाकर भी सकुशल बाहर निकल आने की बात दूसरे ही दिन काशी के बच्चे-बच्चे की जबान पर चामत्कारिक अतिशयोक्तियो के नगीनो से जड़कर फैल चुकी थी। बाबा के दर्शनो के

लिए भक्तों का ताता-सा लग गया। उन्ही दिनों काशी और जौनपुर नगरों पर शाही उमरा आगानूर के रूप मे एक बहुत बड़ी विपत्ति आई हुई थी। आगानूर ने काशी और जौनपुर के वडे-वड़े जौहरियों-सर्राफों और कोठी वालों को एक दिन अपने यहा बुलाया। काशी के लोग पहले पकड बुलाए गए। विना कारण वतलाए हुए ही आगानूर ने उन्हे वन्दीगृह मे वन्द कर देने की आज्ञा दी। पहले दिन उन्हे अन्न-पानी तक के लिए तरसाया गया। दूसरे दिन भोजन और जल भेजा गया, किन्तु चांडालों के हाथ। धर्म के कारण किसी ने भी उसे छुआ तक नही। शाम को जब पानी बिना दो-चार सेठों के वेहोश होने की खबर आगानूर तक पहुची तो एक ब्राह्मण गर्म पानी लेकर सेठो के सूखे गले सीचने के लिए भेजा गया। तीन दिनों तक कैदखाने मे वन्द सेठ-साहूकार, सर्राफ-दलाल आदि पीड़ा सहते रहे। बाहर उनके परिवार के लोग चिन्ता के मारे पीले पड़ गए। कैद किए जाने का कारण न मालूम होने से सबके मन चिन्ता से घनीभूत थे।

तीसरे दिन जौनपुर के सेठ-साहूकार और दलाल भी पकडकर आ गए। वे लोग भी वहुत घवड़ाए हुए थे। वन्दीगृह मे वन्द सेठों ने वहा के कर्मचारियो की मार्फत रिश्वत का प्रलोभन देकर अपने पकड़े जाने का कारण जानना चाहा। बाहर उनके सगे-सम्वन्धी भी यही कर रहे थे। सरकारी चाकरों की जेवो मे रिश्वत के पैसे पहुंचकर भी न तो वन्दियों को और न उनके घरवालो को ही पकड़े जाने का कारण ज्ञात हो सका। इन गिरफ्तारियो से नगर में बड़ा आतंक छाया हुआ था। लोग मुह खोलकर आलोचना करने से भी डरते थे।

प० गंगाराम यही चिन्ता लेकर बाबा के पास आए।

"कहो गगाराम, चिन्तित क्यो दिखलाई पड रहे हो ?"

"क्या कहे रामबोला, इस देश की ग्रह-दशा अभी बड़ी खराव है। नगर की घटना तो तुमने सुनी ही होगी।"

वावा वोले—"हा, परन्तु क्या किया जाए। अकबर शाह के राज मे फिर भी सुनवाई हो जाती थी, परन्तु जवसे यह जहागीर राज आया है, फिर असुरगण मदमत्त हो उठे है।"

"अरे चुप-चुप, दीवालो के भी कान होते हैं। तुलसी, यदि यह असुर तुम्हे भी पकड़ ले गए तो सच मानो नगर में बड़ी आफत आ जाएगी।"

"राम करे सो होय। लगता है तुम्हारे कुछ यजमान भी वन्दी है।"

"छः-सात। यहा के भी और जौनपुर के भी।"

"तुम्हारी गणना क्या कहती है ?"

"इस समय मुझे अपने ऊपर विश्वास नही रहा तुलसी। इसीसे घवराकर मैं तुम्हारे पास आया हू।"

"फिर भी तुमने कुछ विचार तो किया ही होगा।"

"मेरे हिसाब से तो आज इस संकट को टल जाना चाहिए।"

वावा विचारमग्न हो गए, वोले—"राम-कृपा से तुम्हारा वचन निष्फल नही जाएगा, गंगा। मैं भी समझता हू कि यह सकट आज टल जाएगा। वल्कि समझो, टल ही गया। थोड़ी ही देर मे तुम्हे यह शुभ संवाद अवश्य मिलेगा।"

गंगाराम के चेहरे पर चमक आ गई। बाबा के पास ही बैठे हुए बेनीमाधव और राजा भगत की ओर देखकर वे कहने लगे—"तुलसी ऐसा मित्र भी बड़े भाग्य से मिलता है भाई। एक बार जवानी मे 'रामाज्ञा प्रश्न' रचकर इन्होंने मेरी जान बचाई थी और आज भी इनके कथन पर मुझे भरपूर विश्वास है। अब मैं स्वयं समझता हू कि पडित के लिए केवल शास्त्र ही नही वरन् रामरूप आत्मविश्वास भी आवश्यक होता है।"

कथा का नया सूत्र मिलने की सम्भावना देखी तो बेनीमाधव ललचा उठे, दीनतापूर्वक पण्डित जी से कहा—"वह कौन-सी घटना थी महाराज ?"

"अरे, एक राजकुमार आखेट खेलने गए थे। वे अपने साथियों से भटक गए। उनके खोने की सूचना जब राजा-रानी तक पहुंची तो वे पुत्र-शोक से दहल उठे। काशी-भर के ज्योतिषियों को उन्होंने अपने यहा बुलवाया। घोषित किया कि जो भी राजकुमार के सकुशल लौट आने की सही सूचना देगा उसे वे एक लाख मुद्राएं भेंट करेगे। एक ओर एक लाख का आकर्षण और दूसरी ओर पंडितों की भविष्यवाणियो मे विरोधाभास के कारण बड़ी घबराहट हो रही थी। हम अपने घर मे बड़ी चिन्ता मे बैठे थे। तभी घर का कुंडा खड़का।" × × ×

काशी के प्रह्लाद घाट की एक गली मे युवा पंडित गंगाराम अपने बैठके के द्वार बन्द किए, दीवार का सहारा लगाए, गुमसुम, बड़ी चिन्ता में खोए हुए बैठे है। उनके सामने कई पोथी-पंचाग खुले रखे हैं। बाहर का कुडा खडक रहा है। गगाराम इस समय अपने-आप मे दुखी है। किसीसे मिलने या बात करने की इच्छा नही होती है। जब कुछ देर कुडी बराबर खड़कती रहती है तो खीझ-भरे स्वर मे पूछते है—"कौन है ?"

बाहर से आवाज आई—"हम तुलसीदास। पं० गंगाराम जी घर पर है ?"

पं० गंगाराम के चेहरे पर उल्लास की किरणें फूट पडी। सुस्त बेजान-सी चिन्ताग्रस्त काया मे बिजली दौड़ गई। दौडे, आकर द्वार खोले। चबूतरे पर तुलसीदास हंसते हुए खड़े थे। गली में इनकी दो गठरियां लादे हुए एक मजूर खड़ा था। गंगाराम ने झपटकर तुलसीदास को बाहों में भरते हुए कहा—"वाह-वाह, तुम तो मानो शुभ शकुन बनकर इस समय मुझसे भेंटने आए हो।" फिर घर के भीतर की ओर मुह करके नौकर को आवाज दी—"सुमेरू !"

सुमेरू कदाचित् किसी काम से बाहर ही आ रहा था। इसलिए पुकारते ही सामने आ गया।

"सामान भीतर पहुंचाओ। किसी शिष्य से कहो कि एक लोटा जल लेकर आए और मजूरे को थोड़ा पिसान लाकर दे दो।" जल्दी-जल्दी सब आदेश देते हुए भी गंगाराम तुलसीदास को अपनी बांहो मे बांधे रहे। फिर तुरन्त ही उनकी ओर देखकर हसने लगे। उन्हे खीचकर वे चबूतरे पर पड़े तखत पर बैठ गए। पूछा—"कहा से आ रहे हो ?"

"घर—राजापुर से।"

गगाराम ने उल्लसित स्वर मे आखे नचाते हुए कहा—"तुम्हारे इस घर

शब्द मे घरवाली की ध्वनि भी मुझे कही पर सुनाई पड़ती है।"

दोनों मित्र एक साथ ठहाका मारकर हंस पडे। तभी भीतर से एक ब्राह्मण कुमार हाथ मे जल का लोटा और अंगोछा लिए हुए आया। तुलसीदास ने लोटा लेने के लिए हाथ बढाया किन्तु गंगाराम ने तुरन्त ही मना करते हुए कहा—"नही, यह सेवा इसे ही करने दो। इसे भला ऐसा सौभाग्य कहां मिलेगा !" हाथपैर धोए-पोछे फिर दोनो मित्र बैठक मे आकर बैठ गए।

तुलसीदास बोले—"बड़े पोथी-पत्रे फैलाए बैठे हो। लगता है बहुत व्यस्त हो।"

पं० गंगाराम ने उदासीन भाव से बात को टालते हुए रूखी हंसी हंसकर कहा—"जीविका जीव से भी अधिक प्यारी होती है न।"

"ठीक कहा, वही समस्या मुझे भी यहां घसीट लाई है। सोचा, अपनी काशी के भी इसी बहाने से दर्शन कर लूंगा।"

"भले आए। काशी के पंडित तो इस समय लाला के फेर मे पड़ गए हैं। जीविका-प्रतिष्ठा और लक्ष्मी मिलकर हम सभी को तिगनी का नाच नचा रही है।"

तुलसीदास बोले—"सुन चुका हूं।"

"कहा ?"

"अभी-अभी इस गली मे प्रवेश करने के कुछ पूर्व ही मार्ग में दो पंडित तंबोली की दूकान पर बैठे यही चर्चा कर रहे थे। सुनकर लगा कि बुरे शासन की चक्की मे पिस-पिसकर हमारा ज्ञान कुंठित हो चला है। तभी तो यह निस्तेजता छाई हुई है।"

लज्जावश सिर झुकाकर गंगाराम बोले—"ठीक कहते हो। सच यह है कि हम लोग लाख के लोभ मे फंसकर भ्रमित बुद्धि हो गए हैं। भी ग्रह-सधि का फल विचारना कठिन कार्य है। हो सके तो हमारी लाज बचाओ भाई।"

"लाज बचानेवाले तो श्री सीताराम ही हैं, गंगा। अच्छा देखो, स्नान-ध्यानादि से निपटकर हम रामाज्ञा लेने का प्रयत्न अवश्य करेंगे।"

रात मे चौकी के अगल-बगल दो दीपक जलाए हुए तुलसीदास बैठे लिख रहे हैं। आकाश मे आधी रात के बाद चन्द्रमा उदय होता है, अपनी चादनी से रात को चमकाता है और फिर ढलने लगता है। तुलसीदास बीतते हुए समय की गति से अचेत लिखते ही चले जा रहे हैं। दियों मे तेल कम होता है तो पास ही में रखे हुए पात्र से तेल डाल लेते है, कभी-कभी बत्ती सुधारने की भी आवश्यकता पड जाती है। बाहरी दुनिया से उनका बस इतना ही नाता बना हुआ है।

ब्राह्मवेला आ लगी। आकाश चिड़ियो की चहचहाहट से गूंज उठा, और तुलसीदास का मुखमंडल भी आनन्द तरंगों से लहर उठा। तभी ऊपर की सीढ़ियां चढकर अपने चौबारे की ओर आते हुए गगाराम पर तुलसीदास की दृष्टि गई। वे बडे उत्साह और आनन्द-भरे स्वर मे चहके—"रामाज्ञा मिल चुकी गंगा, काशी की विजय होगी।"

गंगाराम के पैरो में फुर्ती आ गई। वे तेजी से डग बढाते हुए कमरे में आए। तुलसीदास भी अपने आसन से खड़े होते हुए एक चैन-भरी मस्त अंगडाई लेकर अपने वदन को खोलने लगे।

गगाराम ने फैले हुए कागजो को देखकर पूछा--"क्या पाया ? जान पड़ता है सारी रात जगे हो ?"

तुलसी बोले--"तुम लाख मुद्राओ के दरबार में नाचते रहे और मै रात-भर राम जी के दरवार मे उनकी चाकरी बजाता रहा। गंगास्नान करके तुम सीधे राजा जी के यहा चले जाओ। कुवर जी को न तो किसी वन्य पशु ने नुकसान पहुंचाया है और न वे किसी प्रकार के शत्रु-चक्र ही मे फंसे है। दरअसल उन पर और काशी के पडितो पर इन ढाई दिनो तक माया का प्रभाव रहा··· सवा पहर दिन चढने तक राजकुमार सकुशल घर लौट आएगे।"

"सत्य कहते हो तुलसी ?"

अपने लिखे हुए पत्रो को क्रम से संजोते हुए तुलसीदास ने एक बार मुख उठाकर पैनी दृष्टि से अपने मित्र को देखा और कहा--"हनुमान जी अब तक मेरे लिए कभी झूठे नही हुए गंगा। संकट पड़ने पर कपीश्वर को ही गोहराता हूं। वे संकट-मोचन ही मेरे लिए रामाज्ञा लेकर आए हैं।"

गंगाराम गद्गद स्वर मे बोले--"तुम्हारी वाणी मे संजीवनी है। यह श्रद्धा, यह विश्वास काशी के विद्वानों मे अब कही देखने को भी नही मिलता। यदि तुम्हारी यह वाणी सफल हुई मित्र तो सच कहता हूं इस नगर मे तुम्हे···"

"बस-बस, मन के भावो को अभी मन ही मे रहने दो। इन सब बातो पर फिर विचार हो जाएगा। एक वचन मैं तुमसे और भी लूगा गंगा, किसीसे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रश्न मैंने हल किया है।"

दोपहर के समय पालकी पर चढ़कर बाजे-गाजे और राजा के दंडधरों के साथ पंडित गंगाराम घर लौट रहे थे। गली चलते कई लोग उनकी प्रशंसा मे उद्गार भी प्रकट कर देते थे--"जय हो महराज, आपने काशी के पंडितो की लाज रख ली।"

"अरे सबेरे हमसे छुट्टन गुरू कहे कि महादेव, गंगाराम की मति भ्रमित हो गई है। इस समय तो ढाई पहर की भद्रा चल रही है और वह कहता है कि सवा पहर में लौट आएगा।···मगर वाह रे पंडित जी, आप तो वहीं आसन मारके बैठ गए और कहा कि या तो अपनी भविष्यवाणी के सफल होने पर उजला मुंह लेकर यहा से घर जाऊगा, नही तो सीधे जाकर गगाजी मे डूब मरूंगा।"

"अरे यह महान् जोतसी है। इनकी निष्ठा बड़ी सच्ची है। तभी तो जै-जैकार मच रही है भाई।"

पण्डित गंगाराम की सवारी घर पहुंच चुकी थी, किन्तु गलियां उनकी कीर्ति से अब भी गूंज रही थी।

गगाराम जी की बैठक मे दोनो मित्र झपटकर एक-दूसरे के प्रगाढ आलिंगन मे बंध गए। गंगाराम ने कहा--"तुलसी, तुम मेरे खरे मित्र और भाई

सिद्ध हुए।"

तुलसीदास का चेहरा शांति-तेज से चमक उठा। आलिंगन में बंधे ही बंधे उनकी आंखें मुंद गईं। भाव-भरी वाणी मे उद्‌गार फूटे—"सब राम की कृपा है। हनुमान जी का प्रताप है।"

आलिंगन-मुक्त होकर अपने मित्र का हाथ पकड़कर बैठाने का उपक्रम करते हुए वे फिर बोले—"हां, अब सुचित्त होकर सारा विवरण मुझे सुनाओ।"

"भीतर चलो! यहां कोई-न कोई आता-जाता रहेगा। उससे हमारी वार्तो मे व्यवधान पड़ सकता है।" दोनों मित्र घर के भीतर वाले आंगन की ओर बढ़ चले। चलते हुए तुलसीदास के कंधे पर गंगाराम बड़े प्रेम से अपना हाथ रखकर बोले—"आज मान लिया मित्र कि श्रद्धा और विश्वास के विना कोई विद्या, कोई कर्म अथवा वचन सफल सिद्ध नही हो सकता। अब तक तुम मेरे गुरुभाई ही थे किन्तु अब तो गुरु बन गए।"

"क्या बकते हो गंगा! मैं···तुम्हारे लिए वही का वही रामबोला हूं। बचपन मे तुमने भी तो मुझे कितना सहारा दिया था।"

घर के भीतर वाले दालान मे वे चौकी पर रखे काठ के एक संदूक के पास पहुच गए। तुलसी को आग्रहपूर्वक बैठाकर स्वयं भी बैठते हुए गंगाराम ने कहा—"मुझसे वचन लेकर तुमने सबेरे से अब तक मुझे इतना घुटाया है कि क्या कहूं।" जनेऊ मे बधी हुई ताली बढ़ाकर संदूक का ताला खोलते-खोलते एकाएक रुककर गगाराम ने फिर कहा—"लोग मेरी प्रशसा करते थे और मेरा मन धिक्कारता था कि तू मित्र के यश का लुटेरा है।"

तुलसीदास ने दोबारा झिडका, कहा—"अपने इन शब्दो से मुझे दुखी न करो गगा। मैंने किया ही क्या है? फिर यह क्यों नही सोचते कि तुम मेरी एक काव्य-रात्रि के लिए बहाना बने।"

ताला तब तक खुल चुका था। संदूक का भारी ढकना उठ गया। संदूक के भीतर थैलिया ही थैलियां चुनी हुई थी। पण्डित गंगाराम ने झुककर दोनों हाथो से एक थैली को उठाकर तखत पर रखा और फिर थैली का मुंह खोलकर चादी के रुपयो की अजुली भरकर उन्हे तुलसीदास के सामने रखते हुए वे बोले—"राजा जी ने लाख घोषित किए थे किन्तु सवा लाख दिए। यह सब धन तुम्हारा है।···देखो, देखो तुलसी, अब तुम बोल नही सकते। तुम्हारे कहे से यश मैंने ग्रहण कर लिया किन्तु यह धन तो तुम्हे स्वीकार करना ही होगा।"

तुलसीदास ने शांत किन्तु दृढ स्वर मे कहा—"नही गंगा, यह धन तुम्हारा है। मुझे तो राम जी ने रात मे ही पुरस्कृत कर दिया।"

"वह सब ठीक है किन्तु···"

"किन्तु-परन्तु कुछ भी नही, यह धन तुम्हारा है। मैं यदि इसे ग्रहण करूंगा तो मेरी निष्ठा मे आंच आ जाएगी।"

किन्तु गगाराम ने अपना हठ न छोड़ा तब तुलसी ने कहा—"अच्छा बढोत्तरी के पच्चीस हजार मेरे हैं। यह एक लाख तुम रख लो।"

"नही, यह न होगा।"

"तब इस पेटी को ज्यों की त्यों बंद करके गंगाजी में प्रवाहित कर दो ।"

"मेरी बात मान लो मित्र । तुम भी आखिर गृहस्थ हो और जीविका के लिए यहां आए हो ।"

थोड़ी-बहुत बहस के बाद अंत में यह निश्चय हुआ कि एक लाख पण्डित गंगाराम ग्रहण करेंगे, एक हजार रुपया निर्धनों में बांटा जाएगा, बारह हजार तुलसीदास ग्रहण करेंगे-और शेष बारह हजार किसी साहूकार की कोठी मे जमा करवा दिया जाएगा जो तुलसीदास की इच्छानुसार किसी भी अच्छे कार्य में सुविचार करके लगाया जाएगा । × × ×

गंगाराम से यह कथा सुनकर बेनीमाधव जी बोले—"कलिकाल मे यह त्याग-भावना कम ही देखने को मिलती हैं । आप दोनों ही मित्र धन्य हैं ।"

२८

पण्डित गंगाराम के जाने के बाद बाबा की शान्ति से लहराती मन गंगा मे एक मछली बार-बार उछल कर जल को चंचल बनाने लगी—और वह थी रत्नावली । रत्नावली के युवा और वृद्धावस्था के रूप कभी अलग-अलग और कभी प्राय: साथ ही साथ मन मे उभरने लगे । 'मैंने कहीं न कहीं उसके प्रति अन्याय अवश्य किया है । उसके अंतकाल में भले ही मैंने उसको पूर्ण संतोष देने की चेष्टा की परन्तु क्या वही मेरे कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है ? रत्ना की कठिन तपस्या की कसक मिट जाती यदि मै उसके अंतकाल से कुछ अधिक पहले पहुच जाता । कुछ समय वह भी हरी-भरी रह लेती तो क्या मेरा कुछ बिगड जाता ? पिछले माघ के महीने में दो बार रत्नावली को पास बुलाकर रखने की प्रेरणा हुई थी, पर दोनो बार माया-प्रबन्ध मानकर मैंने उसे झुठला दिया । मैंने यह क्यो किया ? मैं रघुवर के दर्शन करने के लिए कराह रहा हूं । वह बेचारी भी मेरे लिए वैसे ही सिसक रही थी । उन सिसकियो को मैंने अनसुना, क्यों कर दिया ? राम को मानव-मन के मर्म मे वहां देखने से चूक क्यों गया ?'

स्नान करते, व्यायाम करते, किसी से बातें करते, पूरी सजगता बरतने के कारण केवल सायकालीन सध्यादि ब्रह्म-कर्मों और ध्यान के समय को छोडकर, जब-तब मन गंगा मे वह मछली उछलती ही रही और बाबा इन प्रश्नों मे से एक न एक से बराबर टकराते ही रहे । इस तरह से वे प्राय पूरी शाम सहज न रह सके । रात का निरालापन आया । पं० गगाराम ने प्रसंगवश बीती बात सुनाकर आगे की कड़ी जोड़ दी थी । बाबा मन के प्रश्नो से उलझते-उलझते एकाएक स्वयं ही बोल उठे—"आओ रत्ना, आज हम तुम्हारा हिसाब-किताब चुकता कर ही डाले । रत्नावली-शक्ति जब तक पूर्णरूपेण राम-शक्ति न बनेगी तब तक वह मुझे छुटकारा न देगी ।"

"छुटकारा कैसा जी ? गंठजोड़े-से हम श्रीराम-जानकी के चरणो मे लीन होगे। अब अकेले उस दरबार में तुम्हारी रसाई नही हो सकती। जहां मुझे छोडा था वहां से साथ ले चलो।" बाबा के अन्तर मे रत्ना मैया अपना त्रिया हठ साधे बोल रही थी। बाबा कुछ क्षणों तक मौन रहे और फिर उनकी आंखों के आगे पुराने दृश्य लहराने लगे। × × ×

राजापुर के नौका घाट पर नाव आकर लगी। आकाश घटाटोप हो रहा था। बीच-बीच मे बिजली चमक उठती थी। सवारियां उतरने लगी। बहुतो की आंखे बार-बार आकाश की ओर उठ जाती थी। एक वृद्ध कृषक ने किनारे की ओर बढते हुए नाव वाले के हाथ मे टका रखकर कहा—"कैसी बे-रुत की घटा है। पानी जरूर बरसेगा।"

नाववाला बोला—"अरे अब बरसै चाहे न बरसै, हम तो अपने घर पहुंच गए।"

"तुम तो पहुंच गए पर हमें अभी डेढ कोस नापना पडेगा। हे राम जी ! हे बजरंगवली ! घड़ी-भर न बरसौ स्वामीनाथ, तौ हम घर पहुंच जायं।"

तुलसीदास इसी वृद्ध के पीछे-पीछे बढते हुए मल्लाह के पास आए और उसके हाथो मे रुपया रखने लगे। केवट ने संकोच से हाथ सिकोड लिया और कहा—"अरे महराज, आप न दे।"

"क्यों ?"

"अरे आपके बैठे से तो हमारी नाव पवित्र हुइ गई।"

"अरे भैया ! आ गए ?" किनारे से राजा भगत तुलसी को देखकर चिल्लाए। उन्हें देखते हुए तुलसीदास के मन की कली खिल गई। उत्साह से चिल्लाकर कहा—"ए राजा, किसी डोंगी वाले को पकड लो। (नाव वाले से) लो-लो रखो, संकोच न करो। जब हम कमाते है तो तुम्हारी कमाई क्यो छीनें ?" नाववाले के हाथ मे रुपया रखकर अपनी गठरी उठाए हुए वे जल्दी-जल्दी किनारे पर उतरने लगे। राजा ने अपना एक हाथ बढ़ाकर गठरी ली और दूसरे से तुलसीदास का हाथ पकड़ लिया। किनारे पर आकर दोनों मित्रों ने एक दूसरे को स्नेह-भरी दृष्टि से देखा। राजा बोले—"चंगे तो लग रहे हो भैया।"

"हा, खूब चंगे हैं। हम तो तुम्हारे लिए ही इधर आए है, नही तो उसे पार से ही ससुराल चले जाते।"

"ऐसी क्या उतावली है, भला। भौजी और मुन्ना दोनों मजे मे है। कल नाऊ को भेज के खबर पठाय देंगे।"

"हां, अच्छा, यही ठीक है।" तुलसी पण्डित ने कहने को तो हा कह दी पर उनका मन अभी इस निश्चय पर दरअसल पहुंचा नही था। राजा से बोले —"हम तो तुम्हे हुण्डी देने के लिए इधर आ गए। सोचा, कल चित्रकूट चले जाओगे तो हरजीमल सेठ के यहा से भुना लाओगे। होली पर खर्चा-पानी आ जाएगा।"

"अच्छा किया जो इस बहाने इधर ही चले आए। इस समै तो हमारे घर

ही चले चलो। आओ।" कहकर राजा ने बांह थामी और बढ चले।

"हम समझते हैं राजा, कि चले ही जायं।" तुलसीदास के आगे बढ़ते हुए डग फिर किनारे की ओर मुड़ने लगे। राजा ने पलट कर फिर बांह कसी, कहा—"देखते नही, पानी लदा है। हवा तेज चल रही है। फिर गंगेसुर और उनकी घर-वाली का सुभाव तो जानते ही हो।...नही-नही, इस समैं जाना उचित नही। आओ।"

"हमारा मन कहता है कि चले ही जायं-। वैसे गंगेश्वर का व्यवहार इस समय कैसा है?"

"व्योहार तो सब ठीक है। भौजी ने बड़ी मदद की है न उनकी। बाकी जमाईराज का बे बुलाए पहुंचना उचित नहीं। आगे फिर जैसा तुम समझो वैसा करो।"

कथावाचक कविवर पण्डित तुलसीदास शास्त्री के पैर राजा की बात से बंध गए—'लोक प्रचलित मान्यता के अनुसार अचानक ससुराल जाना उचित नही है।...पर इतने पास आकर रत्ना को बिना देखे मुझसे रहा कैसे जायगा? तारा को देखने के लिए भी जी ललचता है। पर पानी बरसा तो पहुंचते-पहुचते एकदम भीग जाएंगे। सुवेश नही रहेगा।...न सही। गठरी लेता भी चलूं। भीगने से तो बचेगी नही।...अब जो भी हो।...तुलसी, तू इतना काम-मतवाला हो रहा है? दूसरो को आत्मसंयम बरतने का उपदेश देता है। तेरा राम प्रेम बड़ा है या तेरी काम-वासना?' अपने ही प्रश्नों पर आप झुंझलाहट आ गई। मन चिढ़ गया, 'रामानुराग अपनी जगह है, पर मैं गृहस्थ हूं। अपनी पत्नी के प्रति ऐसी चाह रखना न अधर्म है और न अस्वाभाविक ही। चाहे जो हो, मैं जाऊंगा।' मन के हठ ठानते ही स्वर निश्चयात्मक हो गया। राजा से कहा—"इतने पास आकर बच्चे को देखे बिना मुझसे रहा नही जायगा राजा। तुम यह हुण्डी ले लो। सत्रह हजार की है। इसमे से दो हजार रुपये तुम्हारे है। देखो, नाही न करना, तुम्हे राम जी की सौंह।...पहले हमारी पूरी बात सुन लो, अपने दो हजार और हमारे लिए एक शत मुद्राएं ले आना। बाकी कोठी मे ही अपनी भौजी और हमारे नाम से जमा कर आना।" अपनी ही बात ऊपर रखने के लिए तुलसी पण्डित ने वार्ता-क्रम ऐसा धाराप्रवाह रखा जिससे राजा कुछ बोल ही न सके। उनके हाथ से गठरी लेकर कपड़ो के बीच मे तहाकर रखी गई हुण्डी निकाल कर राजा को दी, फिर गठरी बांधी और एक छोटी नाव वाले भगोले केवट को पहचान कर आवाज देने लगे।

नाव नदी मे आधी दूर ही पहुची होगी कि बिजली कहीं कडकड़ाकर गिरी और हवा-पानी का तूफान आ गया। तेज हवा से लहराती, ऊंची-ऊंची लहरो के थपेड़े खाती हुई उनकी नाव कभी-कभी तो अब उल्टी-अब उल्टी वाली स्थिति मे आ जाती थी। जब केवट थकने लगा तो तुलसीदास ने पतवारें संभाल ली। जीवन की चाह मे वे मृत्यु को जीतने लगे।

ससुराल के द्वारे पर उन्हे बडी देर तक कुण्डी खटखटानी पडी। आवाजो पर आवाजें दी तब जाके गंगेश्वर के कानो भनक पड़ी।

"कौन है ?"

"अरे खोलो भाई। हम हैं हम।"

"शास्त्री जी ?" भीतर से अडकना हटा, कुण्डी खडकी और द्वार खुल गया। आंधी और पानी के झोंके की तरह ही शास्त्री जी महाराज ने घर के भीतर प्रवेश किया और अब तक बेहद सताने वाले मेघशत्रु के अपराजेय प्रखर बाणों को निष्फल करने के लिए उन्होंने चट से द्वार बंद कर लिए। गंगेश्वर बोले—"हटिए हम बन्द किए लेते हैं। आप तो बिलकुल भीग गए।"

तुलसीदास शास्त्री के चिपके हुए गीले वस्त्रों का पानी टपक-टपककर दहलीज का फर्श गीला कर रहा था। वे सर्दी के मारे कांप रहे थे। एक हाथ मे जलती कुप्पी थामे, दूसरे से झटपट कुण्डी और अडकना लगाकर गंगेश्वर हल्की विद्रूप भरी खी-खी करते हुए बोले—"एकदम भीगी बिल्ली जैसे लग रहे हैं आप। हे-हे-हे।"

भीतर से गंगेश्वर की पत्नी की आवाज आई—"अरे कौन आया है ?"

"बे-बुलाये मेहमान। हिः-हिः।"

तुलसी पण्डित को अपने साले की यह 'ही-ही खी-खी' भली न लगी। भीतर दालान में गंगेश्वर की पत्नी अपनी कोठरी के सामने खड़ी थी। तुलसीदास को देखकर बोली—"आप ?"

"अरे अंगौछा लाइए पहले। आप और बाप को पीछे याद कीजिएगा।... बडी सर्दी है। राम-राम-राम।" तुलसीदास का स्वर और सारा शरीर कांप रहा था। तब तक पति का स्वर सुनकर रत्नावली भी ऊपर से झपड़-झपड सीढ़ियां उतरकर दालान में आई। पति को देखकर चेहरा खिला। प्रिया का धुंधला-सा आकार देखते ही प्रिय के वदन मे उल्लास की गर्मी आ गई, बोले—"पुटलिया खोलो। बीच मे धोती दबी है। स्यात् वह गीली नही हुई होगी।"

तखत पर रखी गीली पोटली उठाकर बहन की ओर बढ़ाते हुए गंगेश्वर ने कहा—"लेओ, देख लेओ, सूखी न होय तो अपनी भौजी से एक कोरी धोती निकलवा लो। पर फतुही और दुशाला भी तो गीला है। क्या ओढोगे ?"

गंगेश्वर की पत्नी अंगौछा लिए हुए तब तक आ पहुंची थी, हंसकर कहा—"जिस गर्माई के लिए आए हैं वह तो सामने खड़ी है, फिर ओढ़ने-बिछाने की चिन्ता ही क्या है ?"

रत्ना लाज से गडी गीली पोटली को यों सरकाकर बैठ गई कि चेहरा आड में हो गया। गंगेश्वर मुस्कराए। सलहज से अंगौछा लेकर तुलसीदास सर्दी की सिसियाहट को खींची हुई खिलखिलाहट मे मिश्रित करते हुए बोले—"हा-हा-हा, आपबीती सुना रही हो भौजी ? हम तो राम रसायन की गर्मी मे रहते हैं, कहो तो रात-भर ऐसे ही खड़े रहे।"

आड़ में ही मुह किए हुए रत्ना बोली—"धोती गीली तो नही है पर सीली-सी है।"

गंगेश्वर अपनी पत्नी से बोले—"कहा तो, कोरी धोती निकाल लाओ। जमाइयो का तो काम ही है हाथ झुलाते आना और ससुराल से कुछ न कुछ

झटक ले जाना।"

रत्नावली को बुरा लगा। खड़ी होकर धोती चुनते हुए ऊपर से भोली और भीतर से पैनी होकर बोली—"जमाइयों जमाइयों मे भी अन्तर होता है। रावणो की आड़ लेकर राम को नकारते वाले, कभी पण्डितो की श्रेणी मे नही गिने जाते भैया।" धोती चुनकर पति की ओर बढाकर कहा—"यह लो। दुशाला ऊपर से लाती हूं।"

पिछले दो महीनों से सारे घर का खर्चा उठाने वाली बहन के बोल सुनते ही भैया-भौजी के विनोद को मानो साप सूघ गया। गंगे की बहू तुरन्त ही दूसरी दालान की ओर पग बढाते हुए बोली—"धोती लाती हूं न।"

"आवश्यकता नही।" कहती हुई रत्नावली ऊपर चढ गई। तुलसीदास साले-सलहज के प्रति अपनी अर्द्धांगिनी के चढे तेवरो से ही तन-मन को प्रफुल्लित करने वाली गर्मी पा गए। उसी समय बडी भतीजी गोड़सी मे अगारे दहकाकर ले आई—"राम-राम, फूफा।"

"आशीर्वाद बिटिया। राम-राम।"

"कहाँ बैठेंगे?"

"इसे यही धर। ढिबरी उठाके पहले बैठके का दिया बाल। वही बैठेंगे।" गंगेश्वर ने अपनी बेटी को आदेश दिया।

लड़की के हाथों से गोड़सी लेकर उसे जमीन पर रखकर उकड़ू बैठते हुए तुलसीदास बोले—"अब तो यह बडी हो गई है गंगेश्वर।"

लडकी ढिबरी उठाकर दहलीज की ओर बढी। किन्तु जैसे ही वह ऊपर की सीढियो के सामने से गुजरी वैसे ही उसने गोद मे तारापति को लेकर अपनी बुआ को उतरते देखा। उन्हे दिया दिखाने के लिए वह वही खडी हो गई। बच्चे को देखकर पूछा—"मुन्ना सो रहा है बुआ?"

"हूं।" रत्नावली ने छोटा-सा उत्तर दिया। उसकी आखे आग तापते बैठे पति की ओर थी। बेटे के साथ आती हुई प्रिया को देखकर तुलसी पण्डित का हिया हरख उठा। बच्चे को गोद मे लेने के लिए वे एक बार तो उचके, फिर पराये घर का विचार करके थम गए। रत्ना ने पास आकर अपने दाहिने हाथ मे लटका हुआ लाल जरीदार दुशाला बढा दिया। तुलसी उठकर आग से तनिक दूर खड़े हो गए। रत्ना की बांह पर लटका दुशाला उठाते हुए स्पर्श का सुख भी इतने दिनो बाद अनुभव किया। चोला मदमस्त हो गया। ढिबरी का प्रकाश दहलीज की ओर बढ़ते हुए अब दूर हो गया था। फिर भी दुशाले पर दृष्टि डालते हुए पूछा—"यह मेरे दुशाले ही जैसा दूसरा कहा से आ गया?"

"बप्पा का है। वे इसे दे गए हैं।"

दुशाला ओढ़ते हुए तारापति की ओर भावभीनी दृष्टि से देख रहे तुलसीदास ने पत्नी की बात से चौककर पूछा—"कही गए है बप्पा?"

बहन के कुछ कहने से पहले ही गंगेश्वर बोल उठे—"बसंत पंचमी के दिन तीर्थयात्रा पर गए हैं। हमसे कह गए है कि लौटकर आने की संभावना अधिक नही है। अपनी विशेष जमा-पूजी सब तारापति को ही दे गए हैं।"

रत्नावली को बुरा लगा, पूछा—"कौन-सी विशेष संपत्ति थी जो..."

"अरे वहिनी, गंजेड़ी-भंगेड़ी की बातों का बुरा क्यों मानती हो। यह तो जिस थाली में खाते है उसी मे छेद करते हैं।" गंगेश्वर की पत्नी ने कहा।

"चुप कर, नही तो संन्यास लेके निकल जाऊंगा।"

अच्छी तरह से दुशाला ओढ़कर, पत्नी की गोद से अपने बेटे को लेने के लिए हाथ बढाते हुए तुलसी पण्डित बोले—"सन्यासी बनकर फिर भौजी के आगे ही भीख मांगने आओगे।"

"वह तो सभी आते है। नारी बिना किसी की गति नही, न हमारे जैसे फक्कड़ों की, न तुम्हारे जैसे परमपवित्र शास्त्रियों की। यात्रा से आए तो सीधे भागे-भागे यही चले आए। एक रात भी तो सबर नही हुई। हा-हा-हा।" पति की बात सुनकर तुलसीदास की सलहज हंस पड़ी।

पिता की गोद में आते ही तारापति चौककर जाग पड़ा। उसे देखने की खुशी मे तुलसी ने साले के विनोद को झेल लिया। बात बनाते हुए बोले—"मैं तो इसके मोह मे आया हूं। चलो, चलके बैठे भाई। अरे वर्षा तो थम गई लगती है। (चलते हुए दालान से आकाश को झाककर) तारे भी निकल आए।"

गंगेश्वर गोड़सी उढाते हुए तुलसी से बोला—"शास्त्री जी, थकान लग रही हो तो भाग-बांग घोंट दें तुम्हारे लिए?"

"अरे भैया, भाग तो तुम्हारे जैसे परम पुरुषार्थियों के लिए ही शिवजी ने बनाई है। हम तो अपने कर्मानुसार साक्षात् भाग बनकर ही पैदा हुए हैं, पिसते हैं, छनते है।"

"और उसका नशा हमारी ननदियां को चढता है।" कहकर सलहज खिलखिला पड़ी। तुलसीदास और गंगेश्वर भी हस पड़े। लाज-भरे क्रोध मे रत्नावली अपनी भावज को धक्का देती हुई बोली—"जाओ भौजी तुम बड़ी वो हो।"

आधी-पौन घड़ी के बाद भोजन इत्यादि करके तुलसीदास और रत्नावली जब अपने कमरे मे पहुचे तो चहक रहे थे, तुलसी ने कहा—"विश्वामित्र सच कह गए है कि जाया ही घर होती है। आज मैं परम आनन्दमग्न हूं।"

रत्नावली बच्चे को थपककर सुलाने और उसे अच्छी तरह उढाने के बाद पति की खाट पर आकर बैठ गई और बोली—"अब बताओ, काशी मे कैसी रही?"

तुलसीदास तकिये का सहारा लेकर मस्ती से बैठते हुए बोले—"शंकरपुरी मेरे लिए सदैव भाग्यशालिनी रही है। जानती हो, इस बीच मे मैंने कितना कमाया?"

"मैं क्या जानूं। मेरे हाथ मे लाकर रखते तो मैं भी जानती।"

"तुम्हारे लिए ही तो कमाकर लाया हू। तुम और यह मेरा तारापति। मेरी कमाई की प्रेरणा ही तुम दोनो हो। अन्यथा भिखारी को क्या चाहिए।"

"बड़े भिखारी विचारे! पण्डितो को मैंने बहुत देखा है। जब लक्ष्मी नही मिलती तो दार्शनिक बन जाते है और जब मिलती है तो राजा-महाराजा भी उनके आगे भला क्या ठाट करेंगे, ऐसे रहते है।"

पत्नी की बात सुनकर तुलसीदास हंस पड़े, फिर कहा—"लक्ष्मी जी ने इस बार मेरी अद्भुद परीक्षा ली, लेकिन राम-कृपा से सफल हुआ। लोभ से बचा और अर्थसिद्धि भी अच्छी हो गई।" कहकर तुलसीदास ने रामाज्ञा प्रश्न रचे जाने की कथा और सवा लाख का इनाम मिलने की बात सुनाई, फिर पूछा—"मैंने ठीक किया न?"

रत्नावली के मन मे एक लाख रुपया निकल जाने की ऋचोट थी। उसने कोई उत्तर न दिया। तुलसी ने फिर पूछा—"क्या तुम इसे अनुचित मानती हो रत्ना?" पैताने की ओर गुड़मुड़ी मारकर लेटे हुए, रत्ना बोली—"धन तो वास्तव मे राम जी ने हमे ही दिया था।"

तुलसीदास गम्भीर हो गए, बोले—"स्वार्थ से तनिक ऊपर उठकर सोचो रत्ना। मै अपने बालबन्धु का अधिकार हनन करता? मैंने तो उन्हे यह भी नही कहने दिया कि प्रश्न मैंने विचारा था।"

"इसीलिए तो और भी कहती हू कि धन हमारा था। तुमने अपने मित्र की साख बढा दी। एक नई विद्या दे आए, जिससे वे लाखों कमाएंगे। हमारे भाग्य मे तो यह पहला सवा लाख आया था।"

रूठी पत्नी की ओर बढकर खुशामदी मुद्रा में उसकी बांह पर बाह रखकर तुलसी बोले—"जिसके पास अनमोल रत्नावली हो उसे सवा लाख की भला चिन्ता ही क्या हो सकती है। प्रिये! घबराओ मत, बहुत कमाऊंगा। मै तुम्हे रत्नजडित हिडोले पर बिठलाकर तुम्हारे लाड़ लड़ाऊंगा। और इतना कमाकर रख जाऊंगा कि वह धन पीढियो न चुकेगा।"

पति का हाथ झटककर फुर्ती से बैठते हुए रत्नावली ने पूछा—"अच्छा, जाने दो उसे, लाख दे आए मगर बाकी रुपया कहा है?"

"बारह हजार रुपया तो मैं काशी मे हनुमान जी का मन्दिर बनवाने के लिए एक कोठी मे जमा कर आया हू। जिनकी कृपा से मुझे रामाज्ञा मिली और जीवन की सारी समस्याए हल होती हैं उनके प्रति अपनी निष्ठा को बनाए रखना मेरा कर्तव्य था। तीन हजार रुपया और धर्म-कार्यों मे खर्च हुआ। दो पुराने सहपाठियों की कन्याओ का विवाह करवाया। एक दरिद्र ब्राह्मण को घर खरीदवा दिया। ऐसे ही धर्म-कर्म मे दान किया। बाकी बचे दस हजार सो वह और फिर ऐसे ही दो-तीन तान्त्रिक अनुष्ठानो मे, कुछ ज्योतिष विद्या की कृपा से सात हजार रुपया और मिला। वह सत्रह हजार की हुण्डी भुनाने के लिए राजा को देकर ही मैं यहा आया हू। घर चलो तो वह राशि तुम्हें सौंप दूंगा। हां, राजा के निमित्त भी मैंने दो हजार रुपये उसमे से अलग कर दिए है। बुरा तो नही किया?"

"मै क्या जानू।" मान-भरे स्वर मे रत्ना अपनी नकबेसर घुमाते हुए मुह फुलाकर बोली, फिर कुछ रुककर कहने लगी—"लक्ष्मी कहती है कि जब मै आऊं तो पहले मुझे घर से निकालने की उतावली मत करो। हमारे बप्पा कहा करते थे कि दान-पुण्य करना अच्छी बात है पर गृहस्थ को सोच-समझकर ही सब कुछ करना चाहिए।"

तुलसीदास ने रूठी प्रिया को बाहों मे भरते हुए कहा—"देखो प्रिये, तुम

भी जानती हो और मैं भी जानता हूं, मेरी जन्म-कुण्डली मे संधि के ग्रह है। या तो करोड़पति वनूंगा या फिर विरक्त।"

"तो वन जाइए न विरक्त, कौन रोकता है आपको ?"

"तुम रोकती हो!"

"मैं क्यो रोकने लगी। तुम्ही लालची भौंरे से मेरे आसपास मंडराते हो।"

रत्नावली ने पति की वाहो से छिटकना चाहा। किन्तु और कस गई। तुलसीदास वोले—"मैं स्वीकार करता हू कि तुम्हारे द्वार का भिखारी हूं और सदा वना रहूंगा।"

"कामी पुरुप अपनी लालच मे स्त्रियों के आगे ऐसी ही वाते वनाया करते है। कल को मैं मर जाऊं···"

तुलसीदास ने चट से रत्नावली के मुख पर अपना हाथ रख दिया और गहराए कण्ठ से वोले—"अव कभी ऐसी वात मुह से न निकालना। मैं इसे सह नही सकता।"

एक क्षण गम्भीर मौन का वीता। पत्नी जान गई कि पति रिसाने हैं। अपने मुह पर रखा उनका हाथ अपने हाथ में लेकर प्यार से उसे दवाते हुए पति के कंधे पर अपना सिर डालकर वोली—"तुम तो हंसी को भी वुरा मान जाते हो।"

"मैं हसी मे भी यह वात नही सह सकता। रत्नावली के विना अव तुलसीदास अपनी कल्पना ही नही कर सकता।"

पति का हाथ छोडकर उनके गले मे हाथ डालते हुए रत्नावली वोली—"अच्छा अव कभी नही कहूंगी, पर एक वात गम्भीरतापूर्वक पूछती हू, वुरा तो नही मानोगे ?"

"मैं समझ गया, क्या कहना चाहती हो, किन्तु रत्नू तुम भी यह समझ लो कि तुम और केवल तुम ही मेरा मायापाश हो। एक जगह मुझे पुत्र से भी इतना अधिक मोह नही है। तुम न रहो तो उसे किसीको भी सौंपके मैं विरक्त हो जाऊंगा।"

सुनकर रत्नावली तन गई। तीखे स्वर मे कहा—"स्त्री और पुरुप मे यही तो अन्तर होता हैं। नारी भले ही कामवश माता क्यो न वने किन्तु माता वनकर वह एक जगह निष्काम भी हो जाती है। और पुरुप पिता वनकर भी दायित्व-वोध भली प्रकार से अनुभव नही करता। सच पूछो तो वह किसी के प्रति अपना दायित्व अनुभव नही करता। वह निरे चाम का लोभी है, जीव मे रमे राम का नही।"

तुलसीदास के कलेजे पर मानो गाज गिरी। वधे पानी मे जैसे पत्थर गिरने से लहरे उठती है वैसे ही उनके शव्दहीन भाव तरंगित हो उठे। थोड़ी देर तक तो उन्हे अपने मस्तिष्क की सनसनाहट और हृदय की धड़कनो के आगे और कुछ सुनाई ही न पड़ा। फिर मन घवराने लगा, पत्नी की लुभावनी काया का स्पर्श उन्हे भीतर ही भीतर घुटाने लगा। 'मैं कामी हू, मैं कामी हूं, पामर हूं। राम को छोड़कर चाम चाहा। तो उसके लिए मुझे यह वाते सुननी पड़ रही हैं। और कहा तक सुनोगे तुलसी ? कहा तक सुनोगे ? क्यो सुनोगे ? क्या कापुरुष हो ?'

रत्नावली ने देखा कि पति मौन हो गए हैं। तो फिर बोली—"वुरा मान गए ?" तुलसीदास ने कोई उत्तर न दिया, रत्ना ने फिर कहा—"मैं क्षमा

चाहती हूं।"

तुलसीदास गम्भीर स्वर मे बोले—"तुम्हें क्षमा मांगने की आवश्यकता नही। तुमने सच ही कहा, मैं कामी हूं। काम के वश होकर ही कदाचित् मैंने दीवाने की तरह तुम्हे चाहा है। मैंने रत्नावली को नही चाहा, या चाहा है तो अपनी चाहत को ठीक से मैं पहचान नही पाया।"

रत्नावली ने देखा कि पति सचमुच दुखी है तो फिर उनसे लिपटते हुए बोली—"काम तो स्त्री-पुरुषो के बीच मे प्रेम बढ़ाने का बहाना मात्र होता है। क्या मै इच्छा नही करती। मैंने तो हंसी मे ताना दिया था। तुम तो सचमुच रूठ गए।"

रत्नावली की आखे भर आई। इस मनावन से तुलसी कुछ नरम पड़े, कहा—"रूठा नही रत्ना, तुम्हारी वाणी से स्वयं सरस्वती ने जो ज्ञान-बोध दिया उससे मौन अवश्य हो गया था।"

"अरे भूलो यह बात, सारा जीवन पड़ा है, फिर यह बातें कर लेना। तुम लेटो, मै पैर दबाऊं।"

"नही, मै गुरु से पैर नही दबवा सकता।"

रत्ना रूठ गई—"यह कैसा विनोद ? मै तुम्हारी गुरु कब से हो गई ?"

रूखी हंसी हसकर तुलसी ने कहा—"अभी कुछ ही क्षणो पहले तुमने मुझे गुरु मंत्र दिया है। तुमने मुझे सच्चे प्रेम का मार्ग दिखलाया है। खरी गुरु हो।"

रत्ना रोने लगी। कहा—"इतना लज्जित करोगे, तो सच कहती हू, कुएं मे जाकर डूब मरूंगी।"

तारापति उसी समय चौंककर सहसा जोर से रो उठा। रत्नावली उसके रोने पर भी ध्यान न दे सकी। आप ही बैठी रोती रही। जब बच्चे का रोना बढ़ा तब खाट से उठकर उस चौकी पर चली गई जहां बच्चा लेटा था।

तुलसीदास के मन में इस समय न तो रत्ना ही थी और न तारापति ही। उनके अन्तर मे केवल एक ही गूंज बार-बार उठ रही थी, 'तुलसी तू झूठा है, झूठा है। कभी कहता था राम से प्रेम करता हू। राम को चाहते-चाहते मोहिनी का मतवाला बन बैठा, मोहिनी से मुक्त हुआ तो रत्नावली का दास बन गया। मुझे कामवश ही नारी प्यारी लगी। मैंने न उसे चाहा और न राम को ही। दोनो ही से दगादारी की। पण्डित-उपदेशक-भण्डा तुझे धिक्कार है। तू स्वार्थी है प्रेमी नही।'

यों आत्मदर्शन फूटा तो मन ने चाहा कि ढाढस बांध लें पर निचली तहो मे धिक्-धिक् गूज रहा था। तुलसीदास का मन और भारी हो गया। जल्दी-जल्दी दो-तीन सिसासे छोड़ी। मन की तह-तह मे आत्मग्लानि की गूज भरी थी। 'तू स्वार्थी है। प्रेमी नही···प्रेमी नही।'

बच्चे को दूध पिलाकर-सुलाकर रत्नावली फिर पति की खाट पर आ गई। रत्नावली के स्पर्शमात्र से ही तुलसीदास का मन ग्लानि से भर उठा—'मैंने इसे धोखा दिया। मैंने अपनी रामरूप सत्यनिष्ठा को भी धोखा दिया। मैं कुटिल, खल, कामी हू, धिक् तुलसीदास धिक्।'

तुलसीदास के मुख पर झुककर रत्नावली ने प्यार-भरे धीमे स्वर में पूछा—"सो गए ?"

तुलसीदास ढोंग साधे आखे मूदे पडे रहे। प्रिया के होठ, उसकी गर्म सांसों का स्पर्श, अपने ऊपर उसके शरीर का हल्का-सा लदाव उन्हे फिर मतवाला बनाने लगा, किन्तु हठ उन्हे भीतर से कस रहा था। मन कहने लगा—'अब नही तुलसी, अब नही। अब लौं नसानी अब न नसैहों।···चुंबन उत्तेजक है, मादक है, किन्तु प्रलोभन छोड़कर तुलसी। चाम का लोभ तज, राम को भज! राम को भज! अब लौं नसानी अब न नसैहौं।' काव्यतरंग झख बन गई। रत्नावली धीरे-धीरे पति के पैर दबाने लगी। नारीरूपी बहेलिया अपने जाल से निकले हुए पंछी को फिर से फसाने के लिए दाने डालने लगा। अपनी काया पर नारी का मचलता हुआ मादक हाथ पुरुष की काम-चेतना को रोष दिलाने लगा। काम की शक्ति के आगे राम हारने लगे। 'नही, मेरे राम अब नही हारेंगे। अब मैं प्रेम का निष्काम रूप देखकर ही रहूंगा।'···

अब लौं नसानी अब न नसैहौ।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौ॥

रत्नावली हारकर सो गई। अपने कलेजे पर रखे हुए उसके हाथ के बोझ को तुलसीदास असह्य भार मानकर सहते रहे। राम-राम जपता हुआ उनका मन बीच-बीच में बहुत उछलता-मचलता रहा। कई बार जी चाहा कि रत्नावली को अपने अंकपाश मे भरकर चूम ले। किन्तु मचल-मचलकर वे फिर-फिर थम गए। तुलसी ने ठानी सो ठानी। 'नारी की आकर्षण शक्ति और सौन्दर्य ने दो बार हमे राम से विलग कर दिया, नही तो इतने वर्षो मे यह अभागा तुलसी सौभाग्यवान बन गया होता। शंकराचार्य सच ही कह गए है, मोक्षार्थी के लिए नारी नरक का द्वार है। आयु प्रतिक्षण छीज रही है। यौवन दिनोदिन बासी पड़ता चला जाएगा। जो दिन जाता है वह फिर लौटकर नही आता। यह काल जगत्-भक्षक है। रत्ना ने उस समय ठीक ही कहा था, यह भी किसी दिन मर जाएगी। सभी जीवधारी मरते है, फिर ऐसे से क्यो न प्रेम करे जो अजर-अमर हो, जो हसी मे भी कभी ताने न दे। ना-ना अब तो—

'करे एक रघुनाथ संग, बाध जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस, पतिनी के उपदेस॥'

आधी रात बीत चुकी थी। रत्नावली सो रही थी। मन मे एकाएक आदेशों के ढोल-से बजने लगे—'मत जा, प्रेम-मार्ग कठिन है। मत जा।' किन्तु दूसरा मन अपनी ही आन साधे रहा। काव्यतरंग झख बनकर लहरा रही थी। 'नही। राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौ।'

दबे पाव उठे। बच्चे के पास जाकर एक बार उसे देखा, पत्नी को अपना ओढ़ा हुआ दुशाला उढाया। पत्नी के सिरहाने रखी ऊनी चदरिया उठाई, ओढी, मौनभाव से हाथ जोड़े, दबे पाव नीचे उतरे। चोर की तरह चुपके से द्वार खोला, फिर उसे धीरे से खीचकर बन्द किया। और अब एक मुक्त संसार तुलसीदास के सामने था। सनसनाती हवा की तरह ही वे अपने नये भावो मे बहे चले जा

रहे थे। काव्यतरंग झख बनकर लहराती ही रही, 'अब लौ नसानी अब न नसैहौ। अब लौ नसानी अब न नसैहौं।'

२९

सारी रात बीत गई, तुलसी के न पैर थके और न मन। ऐसा लगता था कि घर और घरवालों की पकड़ाई से दूर होने के लिए वे पृथ्वी के दूसरे छोर तक चलते ही चले जाएगे। हृदय और मस्तिष्क मे राम को पाने के लिए मानो पूरा समझौता हो चुका था। अब वे राम के सिवा और कुछ नही चाहते है। धन-वैभव, पत्नी-पुत्र, मित्र, नाते-गोतिये उन्हे किसी से भी सरोकार नही रहा।

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
रामरूप स्वाती जलद, चातक तुलसीदास ॥

यमुना के किनारे-किनारे वे रात-भर मे कितने कोस चले यह कहना स्वय उनके लिए भी असंभव था। हां, ब्राह्म वेला मे मुर्गो की बागे उन्हे इतना होश अवश्य दे गई कि प्रात.कालीन कर्मो से निवृत्त हो जाने का समय आ लगा है। एक जगह वे स्नानादि कर्मो के लिए रुक गए। धरती पर बैठने लगे तो लगा कि उनसे बैठा न जाएगा। कमर एकदम से अकड़ गई थी। किसी तरह बैठे तो लगा कि टागे पिरा रही है। तुलसीदास को अपने ऊपर दया आई। उन्हे लगा कि बचपन से लेकर अब तक केवल कष्ट ही कष्ट सहा है। जेठ की चिलचिलाती धूप-सा उनका दुर्भाग्य उन्हे तपाता ही रहा है। कही भी तो छाव नही मिली, और जो मिली वह भी इतने कम समय तक ही सुलभ रही कि उन्हे ऐहिक सुख की तृप्ति का अनुभव न हो पाया।···अपने हाथो से अपने पैर दबाते हुए तुलसीदास की आंखो मे आंसू आ गए। आसुओ ने निकलते ही उनके वैराग्य को सचेत कर दिया, 'तू क्या राजगद्दी पर बैठकर सुख से राम-दर्शन करने निकला है रे? कबीरदास कितनी सच्ची बात कहते थे कि सीस काटि भुइ मां धरै, तापर राखै पाव। अहकार और उससे उत्पन्न होने वाले सुखो-दुखों की ओर ध्यान देने मे अब काम नही चलेगा तुलसीदास। चाकर की अपनी कोई इच्छा नही होती। साहब की मर्जी ही उसकी मर्जी है। चल, उठ रे मूढ, आत्मसेवा का यह स्वाग छोड़ और अपने नित्य कर्मो मे लग। उठ-उठ, तू तनिक भी नही थका है और यदि थका भी है तो क्या इस कारण से तू अपने नियम-कर्मादि भी छोड़ देगा? उठ-उठ!' उत्तेजित किए गए उत्साह ने शरीर की अकड़न खोल दी। कर्त्तव्य की निष्ठा ने पीड़ा की चेतना दबा दी। सबसे अधिक अखरन तो उन्हे व्यायाम करने मे हुई। परन्तु व्यायाम भी चूकि उनका नित्य नियम था इसलिए आज उसका पालन करना उनके हठ के वास्ते मानो एक धार्मिक आवश्यकता-सी बन गया था। 'रे मन तू छाव चाहता है न, अब मै तुझे वही न लेने दूंगा।

मिलेगी तो तुझे श्री जानकी-जीवन के वरदहस्त की छत्रछाया ही मिलेगी, नही तो दुखो से पिस-पिसकर तू यों ही मिट जाएगा।'

स्नान-ध्यान, व्यायाम, संध्या वन्दन आदि सभी कर्मो से छुट्टी पाकर तुलसीदास ने हठपूर्वक चलना आरंभ कर दिया। पैर अब उतने तेज नही चल पा रहे थे।

मन मे चलने का हठ तो था किन्तु काया विश्राम पाने के लिए अधीर थी। कहा जाएं, यह प्रश्न अभी उनके मन मे ठीक तरह से उभर तो नही रहा था किन्तु यह कामना अवश्य कुनमुनाने लगी थी कि कही ऐसी जगह चलकर बैठें जहा उनके और राम के बीच मे तीसरा न आ सके। चूकि हठ के मोटे पर्दे के नीचे थकन के अतिरिक्त उनकी भूख भी दबी-दबी भडक रही थी इसलिए उनका हठ-प्रेरित चेतन मन यह भी सोच रहा था कि वह ऐसी जगह जाएं जहां उन्हे कुछ भोजन मिल सके। मन में चित्रकूट के शान्त वनप्रान्तर की सुखद स्मृतिया भी उभर रही थी किन्तु वहा वे जाने से हिचक रहे थे।

पैर चलते हुए लड़खडा रहे थे किन्तु हठ अदमनीय था। आंखों की पुतलियां हठ के शिकंजे में कसी हुई अचल-अडिग थी किन्तु उनके भीतर भयकर दीवानापन भी चल रहा था। उन आखो मे रामहठ तो था किन्तु राम नही था। पुराने बीते हुए जीवन के क्षणो को लौटकर न देखने की कसम तो चमक रही थी किन्तु रत्नावली बरबस बीच-बीच मे झाक जाती थी। इसीसे उनका दीवानापन उग्र होता चला जा रहा था। रात-भर की जागी आखे यो भी लाल थी किन्तु उस लाली मे मन का दीवानापन मानो अंगार सुलगा रहा था।

बीच मे दो छोटी-छोटी बस्तिया भी पडी किन्तु वहां वे न रुके। उनकी लड़खड़ाती चाल, उनकी अंगारे जैसी आखे और कसा हुआ मुख देखकर पहली बस्ती के पास खेलते हुए बच्चो ने उन्हे पागल समझकर छेड़ना आरम्भ कर दिया। तुलसीदास की चलती हुई मानसिक स्थिति मे उनके स्वाभिमान को स्वाभाविक रूप से ठेस लगी और वे वहां न ठहरे। दूसरी बस्ती दूर से ही झलकी, पर वे उधर से कतराकर फिर नदी किनारे के जंगल की ओर मुड़ गए।

दोपहर हो गई। सूरज ठीक सिर पर आ गया। पैर इतने लड़खडाने लगे कि चलते-चलते एक जगह ठोकर खाकर गिरे। शरीर की चोट ने मन को धमक दी। 'क्यो नही मानता रे मन, ज्ञानी होकर भी अज्ञानी बनता है। विश्राम कर, फिर चल।'

'पर कहा विश्राम करे?' उठकर बैठ गए। आखो के अंगारे अब राख की गुदड़ी ओढकर चमक रहे थे, उनमे थकन और हताशा की पर्तें-सी जम गई थी। कण्ठ भी सूख रहा था। अपने गले को सहलाते हुए उन्होने नदी की ओर देखा। पेड़ो के झुरमुट से पानी झाक रहा था। बस, उठकर वहा तक चले भर जाएं तो प्यास बुझ जाए। लेकिन चले कैसे, काया उठ ही नही पा रही थी। पानी है, प्यास है, पर प्यासे के पास पानी तक पहुचने की शक्ति नही है। मृगमरीचिका की मन स्थिति मे रत्नावली पानी की लुटिया लिए बार-बार साग्रह सामने आ जाती है। कानों मे उसका स्वर गूजता है, "पी लो-पी लो, अपने को मत

सताओ। आ जाओ। लौट आओ।' 'नही। अब लौ नसानी अब न नसैहौ। अब न नसैहौ। अब तो राम को ही लूगा। राम ही मेरी तृष्णा हरेगे।'

"राम-राम-राम" सूने मे उनका स्वर मुक्त होकर राम-राम की बावली पुकार कर रहा था। आखों के अंगारे अपनी राख झाडकर फिर चमकने लगे। पेडों के झुरमुट से झांकता हुआ पानी भी ललचाने लगा। गला सूख रहा था। दीवानगी ने पूरी शक्ति लगाकर एक बार उन्हे फिर खडा कर दिया। वे नदी की ओर चले। प्यासे की आस लहरा रही थी। बस है कितनी दूर। वो झलक रहे हैं राम, नदी किनारे बैठे हुए अपनी हथेली का चुल्लू बनाकर जानकी जी को पानी पिला रहे हैं। आंखों ने ऐसा साफ दृश्य देखा कि मन में आनन्द के शतशत झरने फूट पडे। उनकी काया मे सहसा ऐसी स्फूर्ति आ गई कि वह दौडने का प्रयत्न करने लगे। आखें जमुना तट पर टिकी थीं, पैर लडखडाते हुए भी जोश-भरे थे। मन की दीवानगी ने केवल अपना चोला बदला था किन्तु वह अपनी सशक्त स्थिति में ज्यों की त्यों अब भी कायम थी। दौड़ मे देखा नही, सामने वाले पेड़ की झुकी टहनी से उनका सिर सीधा टकराया। आंखों के आगे अंधेरा छा गया। मत्थे पर लगी करारी खरोंच से खून उभर आया था। पैरों ने जवाब दे दिया। शरीर निर्जीव-सा होकर गिर पड़ा।

जब आंखें खुलीं तो देखा कि एक काली, गोल मुखवाली, नाक-नक्शे से सुहानी स्त्री अपनी गोद में उनका सिर रखे हुए दोने में भरे पानी से उनके सिर का घाव धो रही है।

तुलसी के मन में न नारी आई और न नर। वह स्त्री एक सहारा थी, भरोसा थी, निर्बल का बल थी। मन को बड़ा अच्छा लगा। देनेवाले से मांगने की चाह जागी—"पानी-पानी।" तुलसीदास फिर मूर्च्छित हो गए थे।

आदिम जाति की उस युवती ने उनका उपचार किया, पानी लाई, पिलाया, फिर उन्हे सहारा देकर बैठाया। नारी के गदराए शरीर का स्पर्श विराग की चेतना के साथ भी बुरा न लगा। टूटे को इस समय सहारा चाहिए, मन रे, कोई तर्क न कर, चुप बैठ, सुख ले। यह न नारी है न नर है, केवल निराधार का आधार है। तुलसीदास के मन को इस समय सहारे की इतनी अधिक आवश्यकता थी कि वे उसे स्वीकार करने के लिए हर तर्क को उसी हठ से नकार सकते थे, जिसके बूते पर वह रात-भर और अब तक चलते चले आए थे, दुख सहते चले आए थे। पानी पिलाकर पेड के सहारे उसने उन्हे बिठला दिया, फिर कहा—"मेरा घर दूर नही। तुम्हारी देह जर से तप रही है। वहा चले चलो तो मै तुम्हारे घाव पर लेप करूंगी। तुम्हे दूध गरम करके पिला दूगी।"

घर शब्द कान मे टकराया, आंखों मे फिर हठ की ज्योति बढी, कहा—"नहीं।"

"कोई तुम्हे मारेगा नहीं। मेरे घर मे कोई मरद-मानुस है ही नही। मैं अपनी मालकिन आप हू। कोई कुछ न कहेगा। आओ-आओ, उठो।" युवती उन्हे उठाने के लिए झुकी, काया से काया लगी। तुलसीदास सिहर उठे। उसे हाथ से झटककर कहा—"जाओ माई, मुझे अकेला छोड़ दो।"

युवती झटका खाकर उठ खड़ी हुई, आखे तरेरकर कहा—"नही चलते तो न सही, पर मुझे माई क्यो कहते हो ? मैं क्या तुम्हारी माई जैसी हूं ?"

तुलसीदास को इस समय तर्कों से चिढ थी, पर अपनी उपकारिणी के प्रति वे कठोर नहीं होना चाहते थे, विनम्र स्वर में कहा—"वैरागी के लिए सभी स्त्रिया मा और बहन होती है। तुमने मेरा उपकार किया है मैं तुम्हे बहन कह कर पुकारूंगा।"

"न माई, न वहिनी, हम है रामकली ! तुम्हारे मन में औरत को लेकर अब भी पाप जागता होगा, सो माई-बहिनी कहके उसे बाड़े मे घेरते हो। मेरे मरद को मरे पाच बरस हो गए पर मेरा मरद मेरे मन मे अब भी बैठा है। बाकी सारे मरद मेरे लिए वैसे ही है जैसे ककड़-पत्थर, गाय-बैल, संग-संगाती। तुम अपने को बड़ा मरद समझते हो तो न चलो। मैं कोई तुम्हारे साथ घर-बैठउवा करने तो जा नही रही हूं। आए बडे वैरागी कही के।" रामकली गुस्से के मारे पैर पटकती हुई चली गई। बाबा पुकारते ही रहे—"रामकली ! रामकली !" फिर ऊपर का स्वर तो मौन हो गया पर मन पुकारता रहा, 'रामकली-रामकली।' उनका ज्वर बढ गया था। वे सारी ध्वनियो और गूजो की गठरी समेटकर मूर्च्छित हो चुके थे।

दोपहरी ढली, किसीके झिझोडने और वैरागी-वैरागी कहने से आंखें खुली। रामकली सामने थी। उनसे कह रही थी—"लो, दूध पी लो।"

तुलसीदास की आंखों में श्रद्धा जाग उठी। कुछ न कहा। उसने उन्हे अपने शरीर का सहारा देकर बिठलाया और अपने हाथों मिट्टी के तौले से दूध पिलाने लगी। तुलसीदास आंखें मूदें सुख से दूध पीते रहे। दूध पीने के बाद आंखें खोलकर तृप्ति एव कृतज्ञता की दृष्टि से रामकली को देखा। वह बोली—"देखो तुम्हारा जर बढ़ गया है। तुम तप रहे हो। अब धूप ढल रही है। थोडी देर मे ठंडक बढ़ेगी तो जडाने लगोगे। मेरे घर चले आओ, दो दिनों में चंगे हो जाओगे, फिर चले जाना।"

तुलसीदास के मन मे संकोच जागा, रामकली के शरीर का स्पर्श-बोध भी जागा और वे तुरन्त ज्वर के आवेश मे तनकर बैठ गए।

रामकली हंसी, कहा—"पाप जागा ? कैसे वैरागी हो ? मेरे मन मे तो मेरा मरद बैठा है पर तुम्हारा मन साइत सूना है। सूने घर में तो भूत रहते है भूत।" कहकर रामकली खिलखिला उठी।

ज्वर के आवेश में मैली-कुचैली कृष्णसुन्दरी रामकली की खिलखिलाहट ने मानो आस्था की चांदनी बिछा दी। झोक मे बोले—"राम जाने क्या लीला है, पर तू खरी रामकली है। चल, मुझे सहारा दे। अब मेरे मन मे राम है, वहां कोई भूत नहीं है।" रामकली ने तुरन्त उन्हे उठाया, सहारा दिया और वे सुख से उसकी झोंपडी की ओर चल दिए। वन के वृक्षो के पत्ते हवा मे हिलकर तुलसी के मन मे रामगूज उठा रहे थे। ऐसे लगता था कि हिलती डाले एक झोंका 'रा' का लेती है और दूसरा 'म' का। रामकली का एक डग 'रा' बनकर बढ़ता है और दूसरा 'म' बनकर। स्वयं अपनी चाल भी उन्हे

ऐसी ही लगी। जो कुछ भी गतिमान् है सबकी एक ही लय है—राम-राम-राम। × × ×

३०

सन्त बेनीमाधव उस दिन बड़े ही दुखी और उदास थे। बाबा अखाड़े मे कुछ लड़को को कुश्ती के दांव-पेच सिखा रहे थे। शत्रु यदि शक्ति मे प्रबल हो तो उसे किन-किन दाव-पेचो से पराजित करना चाहिए, इसी का प्रदर्शन कर रहे थे। अखाडे मे जोश और उल्लास का वातावरण था। एक तगडे जवान पट्ठे को, जो उनसे स्वाभाविक रूप मे कही अधिक शक्तिशाली लगता था, बाबा ने ऐसी तरकीब से पछाड़ा कि लड़के 'वाह बाबा, वाह बाबा' करने लगे। राजा भगत भी वही खड़े हुए मजा ले रहे थे, बाबा बोले—"आओ बुढऊ, एक पकड हमारी-तुम्हारी भी हो जाए।"

सब लोग हंस पड़े। राजा ने हंसते हुए कहा—"अरे अब तुमसे क्या लडे। जिन दाव-पेंचों से तुम हमे मारोगे भैया, उन्ही से हम भी तुम्हे पछाड़ेंगे। दोनो पहलवान चित्त होकर गिरेगे और यह लड़के हंसेगे।" बाबा हंसते हुए अखाडे से बाहर चले आए और राजा के कन्धे पर हाथ थपथपाकर कहा—"ठीक ही है, हम दोनों जन्म-भर एक ही शत्रु से लडते रहे है, अब आपस मे क्या लड़े। वैसे राजा, एक दिन इस अखाड़े में बुढवा दगल हो जाए। नगर-भर के बुड्ढों को बुलाया जाए कि आओ कुश्ती लड़ो। देखे तो सही कि बुड्ढो में अब तक कितने जवान है।"

मगलू बड़े जोर से हसा, कहने लगा—"वाह बाबा, बड़ा मजा आएगा। हमसे कहो तो कल ही दंगल करवाय दे साला। मजा आ जाएगा।"

बाबा बोले—"अरे भाई, दगल और मजा तुम्हारे साले है फिर हम क्या बोले।"

लड़के खिलखिलाकर हस पड़े। मंगलू लज्जा से जीभ निकालकर अपने दोनो कान पकडते हुए ऐसी मुद्रा मे खड़ा हो गया कि अखाडे की हसी दोबाला हो गई। बाबा अखाड़े के अहाते से बाहर निकलने के लिए राजा के साथ बढते हुए एकाएक रुक गए और मुड़कर गम्भीर स्वर मे मगलू से बोले—"मंगलू, हम तुम्हे इस गालीरूपी शत्रु को पछाड़ने की एक तरकीब बतावे?"

"हां, बताय देव बाबा।" मगलू दौडकर बाबा के चरण पकडकर बैठ गया, गिडगिडाकर बोला—"अरे बाबा जो तुम हमरी यह आदत छुडाय देव तौ क्या कहे, तुम्हारे यह चरन धोय-धोय के पिएंगे साले।"

इस बार तो अट्टहास के बादल ही गडगड़ा उठे। अखाडे के द्वार पर खड़े सन्त बेनीमाधव से लेकर अखाडे से अहाते मे नहाते-धोते, मालिश करते, मुग्दर हिलाते और अपने वातावरण से बंधी हुई नित्य की सारी क्रियाओ मे व्यस्त

दस-पन्द्रह आदमियों की भीड़ अपने सब काम छोड़कर हंस पड़ी। यहा तक कि बाबा भी उस मुक्त अट्टहास की लहर से बच न सके। लेकिन उनके चरणो में बैठे हुए मगलू की आंखें अपनी विवशता से छलछला उठी थी।

बाबा ने उसे देखा और तुरंत अपनी सहज गंभीर मुद्रा मे आ गए। झुककर अपने दोनो हाथों से मंगलू को उठाया और उससे बोले—"इस लोक-हंसाई की चिन्ता न कर रे पहलवान। तू अपने शत्रु से लड़े जा। अच्छा, मैं तुझे एक तरकीब बताता हू सुन. जैसे तेरे मुह से गाली निकले, तू राम-राम कहके तुरंत दुइ बैठकें लगाय लिया कर। लोग हंसें तो परवाह न करना, समझा रे।"

मंगलू की आंसुओ-डूबी आंखो मे आस्था की ऐसी चमक आई मानो काले बादलो को छेदकर सूर्य चमकने लगा हो। दूसरे लोग भी इस बात से अपनी सहज गम्भीर मनःस्थिति मे आने लगे। मंगलू बोला—"सच बाबा, आदत छूट जाएगी ?"

"आदत ? अरे, जहा राम-नाम की हुंकार भरके तू बैठकें लगावेगा तो आदत क्या भूत-पिशाच-ब्रह्मराक्षस तक तुझे हाथ जोड़ते हुए दुम दबाकर भाग जाएंगे।"

द्वार पर खड़े सन्त बेनीमाधव के मुख पर बाबा की बात मंत्र-सी छप गई थी।

अखाड़े से अपनी कोठरी की तरफ आते हुए मार्ग मे राजा बोले—"हमने तुम्हारे भीतर एक खूबी देखी भैया। तुम दवाई तो सब रोगों मे एक ही बांटते हो पर इसके अनोपान मैं हरएक के हिसाब से ऐसा उलट-फेर करते हो कि तुम्हारी दवाई अचूक हुइ जाती है। हमे मरकही गायों के पैर छूने का नुस्खा बताया रहा।"

भगत जी के कन्धे पर बाबा की एक बांह तो पहले ही से टिकी हुई थी, अब चलते-चलते दूसरी से गम्भीर-उदास संत बेनीमाधव की बाह को भी घेरते हुए बाबा भगत जी से बोले—"इन्द्रियरूपी गौवों को वश मे करने वाला ही गोस्वामी बनता है राजा। इसीलिए मठ के गोस्वामी पद का त्याग करने के बाद भी मैंने लोगों के द्वारा आदरपूर्वक कहे जाने वाले इस शब्द पर कभी सकोच नही किया। मुझे गोस्वामी बनना अच्छा लगता है। जब तुम्हारी गोशाला देखता था तब बार-बार यह शब्द मुझे अपने यथार्थ से प्रेरित करता था। लेकिन तुम्हे जो नुस्खा उस समय बताया, राजा, उस पर मैं तब स्वयं पूरी तरह से अमल नही कर पाया था।" कहते हुए सहसा बेनीमाधव की ओर मुह करके उन्होने अपनी बात जारी रखी, कहने लगे—"कथनी और करनी मे बडा अन्तर होता है, बेनीमाधव, दूर से पहाड देखो तो लुभाता है; मन मे ललक होती है कि इसकी चोटी पर चढे, और ऐसा लगता है कि उस चोटी पर पहुंचना बस बायें हाथ का खेल है, यो सोचा और वो पहुच गए।"

एक घुटी सास की उभरन के साथ-साथ ही सन्त बेनीमाघव का रुघा हुआ कण्ठ-स्वर अकस्मात् फूटा। वे बोले—'हा गुरू जी, इस मृगमरीचिका ने ही मुझे अब तक दौड़ाया है। आदर्श भोले मन के विश्वास को लेकर इतना तेज दौड़ पड़ता है कि मैं उसके साथ नही दौड़ पाता। इस आगे-पीछे के संघर्ष से

ही मन मथते-मथते कभी अत्यधिक निराश हो जाता हूं। लगता है, जितना सोचा था उसका एक चौथाई भी इस जीवन मे न कर पाऊंगा।"

बाबा अपनी कोठरी के सामने पहुच चुके थे। रामू घाट पर बैठा कुछ पंडितों से बतिया रहा था। बाबा को आया देखकर तुरंत आगे बढकर कोठरी की कुण्डी और द्वार खोले। प्रवेश करते हुए बाबा ने बेनीमाधव से कहा—"आओ बैठो, हम तुम्हे एक पुरानी बात सुनाते है। घर त्यागकर जब हम निकले तो कुछ दिन एक बनवासिनी शबरी के घर पर ज्वरग्रस्त होकर हमे रहना पड़ा था। बेनीमाधव, इस कामपीडित उपदेशक तुलसीदास की अहता को धो-धोकर स्वच्छ करने के लिए ही बजरंगबली ने रामकली के रूप मे मेरी परीक्षा ली थी। अपने मैले-कुचैलेपन मे गदराया यौवन और सौन्दर्य छिपाये हुए थी वह रामकली। उसकी बातों के कोड़े खा-खाकर ही तीन दिनों मे मैं अपने भीतर ही भीतर हीन भावना से बावला हो उठा था। कितनी महत्ता थी उस जय-योग-साधन में, हीन सिद्ध-योगिनी मे कि देख-देखकर लगता था कि मेरा सारा पाण्डित्य नितांत खोखला है। उसके यहा से विदा होने के कई दिन के बाद चित्रकूट में पर्वत की चोटी पर एक दिन मैं बड़ा ही उदास बैठा था। थोड़ी देर पहले तुम्हारे चेहरे की गम्भीर उदासी देखकर मुझे अपनी उस दिन की उदासी सहसा याद आ गई।" × × ×

चित्रकूट मे पर्वत के एक सूने स्थल पर तुलसी गहरी उदास मुद्रा मे बैठे सूनी आंखो से शून्य को ही देख रहे है। एक साधु पीछे से आता है, उनके सिर पर अपना हाथ रखता है, तुलसी चौंककर मुडकर उसे देखते है। साधु मुस्कराता है, शात स्वर मे कहता है—"केवल चाहने से ही सब कुछ नही मिलता भगत। अपनी चाहना को पूरी करने के लिए भगवान को भी नर देह धरकर हाथ-पैर और मन-बुद्धि चलानी पड़ती है।"

तुलसी की आखे छलछला आई। साधु के पैर पकडकर बोले—"मेरा यही तो अभिशाप है, महात्मा जी, कि जो जानता हू उसे मानता नही। मेरे पढ़े हुए सारे अक्षर और तोते की तरह रटा हुआ अर्थ-बोध निःसार है। समझ मे नही आता क्या करूं!"

"कहो और सुनो।" साधु का स्वर शांत और सधा हुआ था। तुलसीदास को ऐसा लगा कि साधु का स्वर नरहरि बाबा के स्वर से बहुत मिलता-जुलता है। वे कह रहे थे—"राम कहो, राम सुनो। तुम कुछ दिनों तक हठपूर्वक अपने पोथियों के ज्ञान को, अपनी सारी चिन्तन पद्धति को बन्द कर दो।"

"क्या ज्ञान-विज्ञान झूठा है?" तुलसी ने सहसा पूछा।

"नही, किन्तु उसका तोतारटत प्रयोग अर्थहीन है। भ्रामक है।"

"किन्तु हठ की प्रबल पहरेदारी मे भी मन के प्रपच अपने राग-विराग को लेकर षड्यंत्र करते ही रहते है, उनका क्या करू?"

"अपने हठ का पहरा और कड़ा करो बेटा। राम कहो, राम सुनो और कुछ न कहो, कुछ न सुनो। सतत् अभ्यास से तुम्हारी सास-सास मे यह गूंज भर जाएगी और फिर अपने-आप ही तुम्हे अपने सारे अध्ययन और पांडित्य का खरा

अर्थबोध हो जायगा। राम कहो और राम सुनो। कहो और सुनो।" × × ×

"कहो और सुनो, राम कहो, राम सुनो।" कहकर बाबा ने बड़े स्नेह से संत जी को देखा और उनके कन्धे को थपथपाकर आंखों से ऐसा स्नेह वर्षण किया कि संत जी हरे हो गए।

३१

वेनीमाधव जी का मन पिछले कुछ दिनों से बड़ा तरंगी हो रहा था। गुरू जी के जीवन-प्रसंग सुनते-सुनते उनका अपनापन स्वयं अपने ही प्रश्नों का कटीला जंगल बनकर दुखदाई हो गया था। 'पचपन पार हो गए, साठे की लपेट मे आ चले, पर वेनीमाधव, तुमने अब तक पाया क्या? पाने की वात केवल सोचते ही रह गए।'

मन कुछ पाने के लिए तड़प रहा है। उस 'कुछ' का हल्का-सा आभास मन को होता है, पर उसे स्पष्ट न देख पाने की उलझन, देखने की लालसा, अपनी सामर्थ्य की सीमा पहचान लेने से उपजा हुआ लज्जा-बोध, विवशता और चिढ़ की भट्ठियो मे तपते हुए अंततोगत्वा अपनी शक्ति की सीमा के भीतर ही उस 'कुछ' की उपलब्धियों को उपलब्ध करने के लिए मचलने लगता है। राम-मिलन यदि इस जन्म मे संभव नही तो फिर (लाज अपने ही से लज्जित हो उठती है) कामसुख ही सही···ब्रह्मानंद सहोदर है।

लेकिन वेनीमाधव यह सुख भी अपने-आपको नही दे पाते। उनका मन बड़ा घील और संकोच-भरा है। कुछ ब्रह्मचारी होने का डंका बजने के कारण, कुछ घर्म-बोध वश और कुछ अपनी भीतरी तहों से उठने वाली राम-मिलन की चाह के मोह में। ऐसे मौके आने पर अक्सर वे कामतृप्ति के लिए आए हुए अवसर को तरह दे जाते है और फिर पछताते है। पछतावे मे राम-राम की उत्ताल तरंगे भी उठती है और काम-सुख-साघन खोजने की दवी-ढंकी लालसा भी। साघूबाज भक्तिनो की यों तो कही कमी नही, पर उनके साथ मिलने से संतमंडली मे बात बड़ी तेजी से फैल जाती है। ऐसी कोई समवयस्का विघवा भक्तिन मिले जिसके बारे मे किसी की बुरी राय न बनी हो, जैसे स्वयं उनकी साख बंधी है, फिर वह भी अपनी ओर से इसी भूख की मारी हो तो बात बन जाए। पर ऐसे अवसर जीवन मे जल्दी-जल्दी नही आते। कभी-कभार ऐसी हरियाली मिलती अवश्य रही है, पर यो सारी उमर रेगिस्तान-सी ही बीती। अब मन मे पलटने की चाह होती है। सन जी का मन अपने भीतर के द्वंद्व मे थक गया है, कुछ-कुछ पक भी गया है। उनका जी करता है कि अब दो मे से एक घाट पर ही उनकी इच्छा की नाव लग जाए।

इघर कई महीनो से गुरू जी के साथ रहते हुए उनकी रामचाहना को सतत्

बल अवश्य मिला है, पर केवल इस रूप मे कि अब वे नारी के संबंध मे नही सोचते। काम-वासना की ओर बढते हुए मन पर निषेध की अर्गला लगाने मे वे सफल हुए है पर एक दिशा के बंद हो जाने पर चूकि उनकी दूसरी दिशा नही खुली इसीलिए मन मे कचोट है।

बाबा से 'कहो और सुनो' मंत्र पाकर वैसा ही हठ साधकर वे जैसे-जैसे राम को पाने का हठ करने लगे वैसे-वैसे ही दिन बीतने पर फिर से उनकी काम-तृष्णा सहसा उस हठ की जड़ काटने मे सक्रिय होने लगी। जिस शत्रु को मरा हुआ मान लिया था, वह फिर से सजीव हो उठा। इससे वे अधिक अनमने हो गए। संयोग से एक दिन उन्हे बाबा के साथ बिताने के लिए एकांत क्षण मिल गए। बात बाबा ने ही आरंभ की। बाहर से प्रसन्न पर भीतर से उदास बेनीमाधव जी की मुख-भंगिमाएं निहारकर बाबा एकाएक अपने पालथी बंधे पैर का दाहिना तलवा सहलाते हुए बोले—"हांफो मत बेनीमाधव, और हफाई चढे भी तो अपनी दया विचार के रुको मत। मन मे राम-राम की दौड़ लगाते ही चले जावो। जब काया थक-थक कर हारेगी तो तुम्हारे मनोलोक का सूर्य अपने-आप ही उदित हो जाएगा।"

बेनीमाधव जी का सिर मन की लज्जा और गंभीर विचार से झुक गया, आखें भी छलछला आई। उन्हे पोछते हुए बोले—"क्या कहूं, गुरू जी, इतने वर्षों से पारस के साथ रहकर भी यह लोहा-लोहा ही रहा। मुझपर राम जी की कृपा ही नही होती। बड़ा अभागा हूं।"

प्यार से झिड़कते हुए बाबा बोले—"दौड़ तो लगाते नही और फिर राम जी को कोसते हो! ध्यान, उत्साह के बिना थोड़े ही जम पाता है। जब तक यह नही समझोगे तब तक तुम्हारा ध्यान एकाग्र कैसे होगा?"

"क्या करू गुरू जी, प्रयत्न तो बहुत करता हूं पर···" कहते-कहते बेनीमाधव चुप हो गए।

बाबा ने हंसकर कहा—"पर, पर क्या, मैं बहुरी ढूढन गई रही किनारे बैठ—क्यो? यही हाल है न तुम्हारा? बेटा, पहले अपने उत्साह को चेताओ। देखो मे तुम्हें अपने ही जीवन के दृष्टात देता हूं।" × × ×

चित्रकूट मे ब्रह्मदत्त घटवाले के घर अपनी कोठरी मे तुलसीदास पद्मासन साधे माला जप रहे है। सामने दीवार पर सफेदी से एक सूर्य अंकित है और उस पर गेरू से 'राम' लिखा है। तुलसीदास की आंखे शब्द को देख रही है। होठ निश्चल है, मन मे राम गूज रहे है।

गूजते-गूंजते सहसा आखो से भानु-कुल-मणि राम का नाम लोप जाता है। आखो के आगे सफेदी छा जाती है और उस सफेदी से एक आकार उभरता है। स्पष्ट होती है शोकमूर्ति रत्नावली। मन से भी राम शब्द लोप हो गया है और मार्मिक वेदना की टीसें उठने लगी है। तुलसीदास के चेहरे पर शांति और एकाग्रता की सधी ज्योति पवन झकोले झेलती दिये की लौ के समान काप उठी। फिर मन मे चेतावनी की हुकार, चेहरे और आखो मे सधाव के लिए प्रयत्न आरंभ होता है और फिर दीवार पर लिखे, तथा मन मे गूजते राम शब्द की झलके

स्पष्ट हो जाती है। क्रम चलता है, फिर गूज से तारापति उठता है और आंखों मे स्पष्ट झलक पड़ता है। मन प्रसन्न होकर ललकता है; फिर अंतर की हुंकार-भरी चेतावनी; फिर रामधुन और शब्द का दर्शन।

इसी तरह जप की प्रक्रिया मे ध्यान को विंव मे रमाने मे मन वार-वार विछल-विछल जाता था। कभी मोहिनी, कभी नंददास की प्रेयसी, कभी नरहरि स्वामी, पार्वती अम्मा, शेष सनातन गुरु जी और भी अनेक भूले-विसरे चित्र मन मे उभर आते और उन चित्रो में निहित भावो की तरंगे कलेजे में संगीत-सी वज उठती थी। मन समानांतर गति पर दौडता था। जप भी चलता था और जप की तह मे पुराने प्रसंग भी आप ही आप उभरते थे। कभी भोजन का स्वाद, कभी नारी की झलक, कभी दर्शन-अध्यात्म की कोई वात और कभी-कभी ऐसी गहरी उदासी भी अपने-आप ही उन पर छा जाती थी कि राम जप का छकडा दलदल मे अटक-अटक जाता था। तुलसीदास उदास होकर उठ खडे हुए, कोठरी से वाहर चले आए। दालान के दूसरे सिरे पर ब्रह्मदत्त का ५-६ वर्ष का वेटा वैठा हुआ पहाडे रट रहा था—"पद्रा दूनी तीऽत्तिया पैंताला चक्को साठ पना पी छोत्त छाका नव्वे सत्ते पंजे अट्ठे वीसे नौ पैंतीसे दाहम डेऽऽढ सौ।"

वच्चा वड़े उत्साह से रट रहा है। फिर वह उत्साह मंद पड जाता है। फि 'दाहम डेढ सौ' कहते-कहते तक जमुहाई आती है, फिर उसे जल्दी-जल्दी जम्हाइयां आती है। पहाड़ा रटता हुआ स्वर मंद पडने लगता है, कभी सिर, कभी गाल, कभी वांह और जांघ मे खुजली मचने लगती है। फिर आकाश मे उड़ते चील को देखते-देखते स्वर ही मौन हो जाता है। घर के भीतर से किसी बुड्ढे की आवाज आती है—"क्यो वे। चुप हो गया ?" वच्चा फिर चौककर ऊंचे स्वर मे 'पंद्रह दूना तीस तियो पैंताला' की धुन पकड़ लेता है। तुलसीदास खड़े-खड़े देख रहे हैं, मुस्कराते है, स्वयं अपने से ही कहने लगते है—"भय के विन भी प्रीति नही होती। पर मैं किसका भय करू, राम का ? नही, जिस मालिक का चाकर वनने की चाह है उसके प्रति निरर्थक भय रखकर चलना उचित नही।" × × ×

वेनीमाधव को वावा सुना रहे थे—"राम घाट पर एक लंगड़ी वुढिया रहती थी। वह वडी ही लोभी थी। अपने आस-पास वैठे अंधे फकीरो के आगे पडने वाले अनाज या टको की चोरी करने मे सदा उसकी नीयत रहती थी। वह उचक-उचककर ऐसे अंधों के पैसे और अनाज चुराती थी कि देखने वाले हंस-हंस पड़ते थे। न जाने कितने वार वह मारी-पीटी गई, कितनी-कितनी कलहे हुई, निकाली गई परतु वह फिर वही की वही आ जमती थी और वही का वही काम करती थी। जव वह मरी तो उसके पास पूरे पांच हजार रुपये निकले। मैं सोचने लगा कि जैसे इस बुढिया को अर्थ संचय के लोभ ने लुभाया था, वैसे ही मुझे राम-नाम सचय का लोभ होना चाहिए। जैसे वह दूसरो की चोरी करती थी, वैसे ही मुझे भी अपने मन मे उठने वाले दूसरे भावो से अर्थ संचय करना चाहिए। मान लो, मन मे रत्नावली झांकी तो मैंने उससे उत्पन्न मन के आनद को रामा-

र्पित कर दिया। किसी भोजन का स्वाद जागा तो उसका लालच भी राम ही को सौंपने लगा। बस्ती मे एक पण्डित जी रहा करते थे। उन्होने कामशास्त्र का गहरा अध्ययन किया था। वे पद्मिनी-चित्रणी-शंखिनी-हस्तिनी आदि नारी के चारो प्रकारो को पहचानते थे और अपने यार तमोली की दूकान के चबूतरे पर बैठे हुए प्राय इन्ही की चर्चा किया करते थे।" × × ×

छैला पण्डित गली के बाजार मे तमोली की दूकान के चबूतरे पर बैठे हैं। एक-दो और भी निठल्ले चुहलिये उनके पास ही खड़े या बैठे है। बातें चल रही हैं। एक कह रहा है—"अरे गुरू, इस बस्ती मे पद्मिनी, चित्रिनी एकौ नही है, सभी हथिनिया, संखिनिया ही है।"

छैला पण्डित पान की पीक गली मे टप से थूककर मुस्कराते हुए शात स्वर मे बोले—"अरे बेटा, शंखिनिया और हस्तिनिया तो है ही पर उनका भी अपना एक आनन्द होता है। मैंने यहा की एक सुन्दरी चित्रणी को भी बड़े दन्द-फन्द से पाया था। हा, पद्मिनी एक भी नहीं मिली।"

चबूतरे पर छैला पण्डित के पास ही बैठे हुए एक व्यक्ति ने कहा—"गुरू, तुम तो खैर पहुचे हुए लोग हो, बाकी हमने तुम्हारे मुख से पद्मिनी का जैसा बखान सुना है वैसी एक लड़की हमारी नजर मे पड़ी जरूर है।"

छैला पण्डित के सारे शरीर मे उत्साह आ गया। कहने वाले के हाथ पर हाथ रखकर धीमे किन्तु उतावली-भरे स्वर में पूछा—"कहां! ···कहां देखी, पद्मिनी ?"

तीनों बात करने वाले व्यक्ति पास-पास सिमट आए। बात उठाने वाले व्यक्ति ने धीरे से कहा—"गेंदिया भंगिन की लड़की अनारो।"

गली मे खड़े-खडे सुन रहे युवा ने उदास होकर अपना मुह बिचकाया, बोला —"छिः, मैले का टोकरा।"

छैला पण्डित झुझला गए, कहा—"रसज्ञ भौरा फूलों की जात नही देखना। फूल सुन्दर हो, पराग-भरा हो, श्रेष्ठ हो, बस और क्या चाहिए।"

"सिरेठ ही तो नही है गुरू।"

"जब ये बताते है कि पद्मिनी है तब श्रेष्ठ नही हुई तो क्या हुई ? चलो बिरजू, एक बार हमे दिखलाओ।" छैला पण्डित अपने साथ बैठे हुए व्यक्ति को हाथ पकड़कर उठाते हुए आप भी उठकर खड़े हो गए। × × ×

बाबा कह रहे थे—"मैं उसका उत्साह देखकर दंग हो गया। उसकी बाते जितनी घिनौनी थी उसका उत्साह उतना ही तेजस्वी था। मैंने उस छैला पण्डित की अनेक झलके देखी थी। वह मूछे मरोडता हुआ आखो मे रस के हण्डे उड़ेलकर कभी इस और कभी उस स्त्री का पीछा करता ही रहता था। एक बार एक सूनी गली मे किसी कृष्णसुन्दरी को घेरकर बर्फी का दोना दिखाकर प्रणय निवेदन कर रहा था। उसने दोना झटककर जमीन मे गिरा दिया है। छैला उसे बाहों मे घेरता है। स्त्री द्वन्द्व करते हुए छैला को उठाकर पटक

देती है और उसका गला घोटने लगी। छैला माई-माई की गुहार लगाने लगा। इतना भोगने के बाद भी काम-लिप्सा के प्रति उसका उत्साह तनिक भी मन्द नही पडता। वह फिर किसी स्त्री को उसी तरह घेरता है और अपनी टेंट मे खुसे पैसे दिखाता। लड़के हसते, आवाजे कसते, 'पटाए जाओ गुरू, पटाए जाओ।' मैं सोचता, इसकी काम-लिप्सा अत्यन्त घिनौनी भले हो पर उसके प्रति इसकी बावली निष्ठा प्रणम्य है। श्रीराम के लिए मेरे मन मे ऐसा ही उत्साह जग जाए। बजरगबीर, अतुल उत्साह के धनी, मेरी भी राम-लगन ऐसी ही प्रबल बना दो। मैंने काम, क्रोध, मोह, लोभ सब मे अपने राम को रमाने का खेल खेलना आरंभ किया, पापी के पाप मे भी भक्तिकामी को अपने आराध्य के प्रति दिव्य प्रेरणा मिल सकती है। मैंने चित्रकूट मे अथक भाव से इस प्रेरणा को साधा। रामनाम मेरी सांस-सास मे गूजने लगा। और तब फिर परीक्षा की घडी आई।" × × ×

ब्रह्मदत्त घटवाले के घर मे अपनी कोठरी मे तुलसीदास बैठे जप कर रहे हैं। राजा भगत कोठरी मे प्रवेश करते हैं। तुलसीदास का ध्यान विचलित नही होता। राजा कुछ देर खड़े रहने के बाद उनकी चौकी के पास बैठ जाते हैं किन्तु तुलसी का ध्यान भंग नही होता है। उनके कानो मे मृदंगों और झांझो का सम्मिलित स्वर राम-राम बनकर गूज रहा है। राजा को खांसी आ जाती है और वह खासी तुलसी के मन की एकरसता मे व्याघात पहुचाती है। आखे खुलती तो है पर उनमे उजाला क्रमश. ही आता है। राजा को देखकर वे प्रसन्न होते हैं, कहते हैं—"कहो राजन् फिर वही आग्रह लेकर आए हो?"

उदास स्वर मे राजा ने नख से धरती को खुरचते हुए कहा—"हम तुमसे कुछ भी कहने नही आए भइया, तुम अब राम जी के हो, हमारे थोड़े ही रहे।"

तुलसी ने शातभाव से कहा—"राम जी सबके है, फिर उनका चाकर भला सबका चेरा क्यो न होगा?"

"तो भौजी मे राम को क्यों नही देखते हो? और कितना दण्ड देओगे बिचारी को?" राजा के स्वर मे आक्रोश था।

तुलसीदास ने अपना सिर झुका लिया, फिर गम्भीर स्वर मे उत्तर दिया—"तुम्हारी भौजी के प्रति मेरे मन मे कोई दुर्भावना नही है, राजा। उन्होने मेरे प्रति अनत उपकार किया है।"

"और तुम राम रूपी छुरी लेकर कसाई की तरह उस बेचारी को मारने पर ही तुल गए हो। ये तुम्हारी भगती है या स्वारथ? तुम्हारा पुन्न है या पाप? ऐसी औरत लाखो-करोड़ो मे ढूढे नही मिल सकती। तुम्हारे लिए मेरे मन मे जैसा अच्छा भाव था वैसा ही अब करोध हरदम बना रहता है। सारी बस्ती, आर-पार के गाव भौजी बिचारी का कष्ट देखकर हाय-हाय कर रहे हैं और एक तुम हो जो हमारे बार-बार आने पर भी हमसे कतराते रहे। जो ऐसे ही हमसे मुह फेरना था तो नेह क्यो लगाया था?"

तुलसीदास ने अपनी शांति तब भी न खोई। वे सरककर चौकी के कोने पर आ गए और राजा के कधे पर अपना हाथ रखकर कहा—"तुम्हारे आक्रोश

के लिए मेरे मन में सहानुभूति है, रत्नावली के लिए तो मेरा मन अनंत शुभ कामनाओं से भरा हुआ है।"

राजा ने उनकी बात पर अपनी बात चढाते हुए उत्तेजित स्वर मे कहा—"तो फिर भौजी से ही यह-सब कहो। एक बार उनसे मिल लोगे···"

बात काटकर तुलसी ने दृढ स्वर मे कहा—"यह असभव है।"

"क्यो ?"

"मैं अब विरक्त हो चुका। मेरा मार्ग बदल नही सकता। मिलकर क्या करूगा ?"

राजा ने गम्भीर उदास स्वर मे कहा—"तुम्हे मालूम है भैया, मुन्ना नही रहा।"

तुलसीदास के मन मे महीनों के श्रम से जमाई हुई शाति पल के हजारवें अंश मे ही बालू की दीवार की तरह ढहने लगी। अचानक मुह से निकला—"मेरा तारापति ! कहा गया ?"

"राम जी के घर।"

"राम जी के घर।" स्वगत बड़बडाते हुए तुलसीदास की आखो के आगे अंधेरा छा गया। मन में ऐसा आभास हुआ कि जैसे उनके भीतर रमी हुई लय बिखर रही हो और कलेजे मे छुरा भुकता चला जा रहा हो। खाए-लड़खड़ाए स्वर मे आप ही आप पूछ बैठे—"क्या हुआ था उसे ?"

"बड़ी माता निकली थी, उसी मे चला गया।"

तुलसीदास की आखे छलछला उठी। मन करुण होकर अपने राम को गुहारने लगा—"यह तुमने क्या किया राम ? यह कैसी परीक्षा ली ?" और अबकी तह में दबा अपना ही एक और आदेश-भरा स्वर गूजा। हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश यह सब विधि के हाथ मे है। अपना जप न छोड़। राम की माया मे तू बोल्दने वाला कौन है ?"

राजा धीमे, करुण स्वर मे कह रहे थे—"भौजी तुमसे कुछ नही चाहती, बस एक बार तुमसे मिल लेना चाहती है। तुम्हारे दरसन करके उन्हे सब कुछ मिल जाएगा।"

तुलसी के आसू थम गए। कराहता कलेजा सहसा कठोर हो गया, बोले—"अब मैं चित्रकूट से कही नही जाऊंगा।"

"भौजी यहीं आई है।"

राजा की इस बात से तुलसीदास फिर चौंके, चौकी से उठकर कोठरी मे चक्कर लगाने लगे। एकाएक दीवार पर लिखे हुए राम शब्द से उनकी दृष्टि जुडी। ठिठककर खड़े हो गए और शब्द की ओर देखते हुए ही राजा से कहा—"मैं विरक्त हू। मेरे न कोई स्त्री है न कोई बेटा।"

बाहर दालान मे बैठी हुई रत्नावली सिर भुकाए सब चुपचाप सुन रही थी। एकाएक उठी और भीतर आ गई। तुलसीदास ने द्वार पर पत्नी को खड़े देखा। आंखो से आखे मिली। कुछ क्षण बधी रही। फिर एकाएक तुलसी ने सिर भुकाकर रूखे स्वर मे कहा—"यह तुमने उचित नही किया, रत्ना।"

"दु.ख मे उचित-अनुचित का ध्यान नही रह जाता। सहारा मांगने आई हूं।"

"सहारा राम से मागो।"

"मै तुम्हारे हृदय मे रमते हुए राम ही से सहारा लेने आई हूं।"

तुलसीदास चुप, जिस दीवार पर राम लिखा था उसीसे सटकर खड़े हो गए। रत्नावली उनकी चौकी के पास आकर खडी हो गई थी। राजा उसके भीतर आते ही उठकर बाहर चले गए थे। रत्ना ने रोते हुए कहा—"मेरा मुन्ना नही रहा, उसमे तुम्हे देख लेती थी, अब किसके सहारे जिऊं?"

"सहारा केवल राम का है रत्ना।"

"मैं तुम्हारे जप-तप-ध्यान मे तनिक भी बाधा न बनूगी।"

"यह माना परन्तु नारी पुरुष के लिए प्रलोभन होती है।"

"मैं राम जी की सौह खाती हू, तुम्हे किसी भी प्रकार से लुभाने का प्रयत्न नही करूगी। कहोगे तो मैं तुम्हारे सामने तक नही आऊंगी। मुझे केवल अपने पास रहने दो। तुम निकट से अपने राम को निहारा करना, और मैं दूर से तुम्हे देखा करूगी।"

"बात कहने-सुनने मे बडी अच्छी लगती है, किन्तु हवा रहेगी तो आग अपने-आप ही भड़केगी।"

"मुझे तो अपने ऊपर विश्वास है। क्या तुम्हे अपने ऊपर विश्वास नही है?"

"अब यह प्रश्न ही नही उठता देवी, जो त्याग चुका सो त्याग चुका।"

"तुम्हारी झोली मे यह खरी-कपूर, सब कुछ तो झलक रहा है। इनको अपनाओगे और पत्नी को त्यागोगे, क्या यह उचित है? अग्नि को साक्षी देकर विधिवत् तुमने जिसकी बांह गही थी···"

"उसी ने तो मेरी वह बाह रामजी को पकडा दी। तुम्हारा आजीवन उपकार मानूगा रत्नावली। जो दिया है उसे अब मुझसे वापस न मांगो। आज से यह चंदन-कपूर आदि झोली का स्वांग भी छोड़ता हूं। जितना नि.संग रह सकू उतना ही भला है।"

रत्नावली सहसा उठकर उनके पास आ गई, उनकी टांगो को अपनी बाहों से बाधकर, उनके चरणो पर अपना सिर रखकर वह बिलख-बिलखकर रोने लगी—"मुझे न त्यागो स्वामिन्। मुझे न त्यागो।"

तुलसी अपने कलेजे मे तूफान छिपाए पत्थर से खड़े रहे। मन कह रहा था—'माया मे न बंधना तुलसी। आज नही तो कल नारी का संग तुम्हे फिर से कामानुरक्त बना ही देगा। हे जानकी मैया, मेरी रक्षा करो। हे बजरंग, मेरी बाह गहो, मुझे अब राम-पथ से विलग न करो।'

रत्नावली का करुण क्रदन और प्रलाप चलता रहा। तुलसी बोले—"मैं खड़े-खडे थक गया हूं, रत्नावली, मुझे बैठने दो।"

रत्नावली ने धीरे-धीरे अपने हाथ सरका लिए। मुक्त होकर तुलसीदास ने डग आगे बढाते हुए कहा—"तुम्हारे और अपने भोजन की व्यवस्था कर आऊं। आता हूं।"

रत्नावली सहसा घबराकर बोली—"तुम जा रहे हो?"

"आता हू।" कहकर तुलसीदास तेजी से द्वार के बाहर निकल गए। राजा भगत दालान मे खड़े थे, तुलसी को देखकर पूछा—"कहां जा रहे हो भइया ?"

"फिर बताऊंगा।" कहकर तुलसीदास बिना रुके ही मुख्य द्वार की ओर तेजी से बढ़ गए और गली मे निकलकर उन्होने दौड़ना आरंभ कर दिया। × × ×

"मैने राम की ऐसी लगन साधी कि फिर जो कुछ भी राह मे आया उसे हटाकर भाग चला।"

वेनीमाधव जी ने उत्सुक होकर पूछा—"तो आपने चित्रकूट भी त्याग दिया ?"

"मेरे लिए वह अनिवार्य था।"

"फिर कहा गए आप ?"

"सीता माई के माहरे, जगदम्बा के बिना मेरे मोहाकुल मन को और कौन शात कर सकता था ?"

बाबा अपनी कोठरी की दीवार पर चित्रित श्रीराम-जानकी की छवि को निहारने लगे। क्रमश. वे छविया सजीव-सी हो उठी। बाबा उन्हे देखते हुए गद्गद आनंदलीन हो गए।"

बेनीमाधव अपने गुरु की यह अपूर्व तेजोमयी छवि निहार रहे थे। उनका मन कह रहा था—'राम यो मिलते है वेनीमाधव—यो मिलते है।'

३२

गुरू जी के संस्मरण संत वेनीमाधव की विचार प्रतिक्रिया को तीव्र गति प्रदान कर गए। मन में जो विकार थे, अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने के लिए मानो पूरी सेना सजाकर मोर्चे पर आ डटे। विकार डके की चोट पर न्याय की दुहाई देकर उनके मन मे गरजने लगे, 'हमारी भूख भरे बिना तुम एक डग भी आगे नही बढ सकोगे संत जी, हमारी माग समझो। हमारा तप परखो। हम बार-बार हठ नही करते, तुम्हारे प्रार्थना-मार्ग मे हम रोज-रोज रोड़े नही अटकाते··· किन्तु काया का धर्म कभी न कभी तो आखिर पुकार ही उठेगा। और उसमे भी हम तुम्हारे लिए कितनी उदारता बरतकर कितना त्याग कर चुके है। हम तुमसे दूसरे साधु-संतो की तरह आठो पहर चेलियां फसाने की चिन्ता भी नही कराते। हम तो आप प्रतिष्ठा के लिए वदनाम भक्तिनो और साधुनियो के सम्पर्क से अपने को सतर्कतापूर्वक सदा दूर रखते है। हम मात्र इतना ही तो चाहते हे कि बरस-छ· महीने मे कभी हमको भी ऐसा अवसर दे दिया करो जिससे लोक-समाज में तुम्हारे राम पंथगामी की मान-प्रतिष्ठा को भी आच न आए और हमारा काया-धर्म भी निभ जाए। हे राम, कितने संयम से सधी इस एकमात्र कायिक कामना की लाज भी तुम नही निभा सकते ? देखो तुम्हारी दुनिया में इस समय कैसी-कैसी दुष्प्रवृत्तियों का सफल

प्रचार हो रहा है। दुष्टजन, परदारा परधन-लोलुप हर तरह से फल-फूल रहे हैं, राज कर रहे हैं। हमारे साधु-महन्त, सत-वैरागी-गुसाइयों आदि मे जो जितने अधिक बुरे काम करते हैं वे उतने अधिक पुजते भी हैं। सज्जनो को कोई नही पूछता। ऐसे कठिन कलिकाल मे कम से कम पाप कामना करने वाले अपने इस दास की क्या एक छोटी-सी माग भी पूरी नही कर सकते ?'

अह के इस तर्जन-गर्जन के बीच मे कई वार मन की भीतरी तह से एक और स्वर उठने का प्रयत्न करता था, पर जब भी विकारशील अहम् को यह आभास होता तभी वह और भी अधिक विफरकर बोलने लगता। अत मे उसकी बात समाप्त हो गई और भीतर वाला स्वर गूज ही उठा, 'लाखो ऊचे-ऊचे वृक्षो की ओर न देखो वेनीमाधव, धरती पर जमकर फैली हुई दूव को देखो। ये ऊचे-ऊचे वृक्ष किसी भी आधी मे उखड़कर गिर सकते हे। पर दूब को चाहे जितना भी रौदो या काटो वह धरती पर उतनी ही गहरी जड़े जमाकर फैलती चली जाती है। तुम्हारे गुरु दूव हैं वेनीमाधव। उन्होने अपनी दीनता मे ही यह वैभव सिद्ध किया है। इतने वर्षों तक इतने निकट रहकर भी क्या तुमने अपने गुरु मे किसी भी प्रकार का विकार उभरता देखा है ?'

'हा, देखा है, पूज्यपाद गुरू जी महराज अव भी—मोसो कौन कुटिल खल कामो···गाया करते है।'

'उनकी खलता-कुटिलता और काम-प्रवृत्ति किस सतह पर छनकर किस रूपै मे बोल रही हे, क्या इसको कभी तुमने पहचानने का प्रयत्न किया है वेनीमाधव ? जल की लहरें दिखलाई देती है परन्तु हवा की अदृश्यमान लहरे केवल स्पर्श से ही अनुभव की जाती हैं। अपने-आपको खोजो वेनीमाधव, नादान न वनो। जितना कामानन्द तुमने प्राप्त किया है वह अपने अनुभव मे क्या एक-सा नही है ? फिर उससे उच्चतर अनुभव की ओर क्यो नही बढ़ते ? एक सुख देखा, अब दूसरा देखो, जो इससे भी अधिक सुन्दर और दिव्य सतोपकारी है।'

अह का स्वर विनम्र हुआ। गिटगिड़ाकर बोला—'वही तो चाहता हू नाथ। असल मे मैं वही चाहता हू। पर क्या करू दुर्वल हूं। तुम्हारे सहारे के लिए गिड़-गिड़ाता हू। एक वार मुझे फिर वही प्रकाश दिखला दो, जो मेरी उन्नीस वर्ष की आयु मे तुमने मुझे दिखलाया था। नारी के द्वारा ही मेरे उर-अन्तर मे वह प्रकाश आलोकित किया और उसीके हाथो वह ज्योति बुझवा भी दी। यह तुम्हारा कैसा अन्याय है राम कि मुझे एक साथ दो सिरो पर नचा-नचाकर बावला करते चलते हो। मुझे चैन नही देते। जैसा भी हूं तुम्हारा शरणागत हू। मेरी वाह गहो प्रभु।'

सन्त जी अपनी कोठरी मे बैठे शान्तभाव से आसू बहाने लगे। तभी रामू ने धीरे से द्वार खोलकर दवे पाव कोठरी मे प्रवेश करने का भरसक जतन किया, पर सन्त जी का चुटीला-चौकन्ना मन तनिक-सी आहट पाकर ही सजग हो गया। जुड़े हुए हाथो को अलग-अलग करके दोनो आखो के आसू पोछने के काम मे लगा दिया और अपने भरे स्वर को सभालते हुए वे चटपट बोल उठे—"कहो रामू कैसे आए ?"

"प्रभु जी ने आपका स्मरण किया है। आप किसी कारणवश उदास हे

संत जी ?"

उठकर सन्त बेनीमाधव ने अगौछे से फिर एक बार अपना मुंह पोछा और आगे बढते हुए कहा—"मनुष्य का मन है भैया, जब कभी भटक जाता है तो रो पड़ता है।"

"मैंने प्रभु जी को उनके करुण क्षणो में अनेक बार देखा है। उनकी आखें कभी-कभी सील तो जाती है पर आंसू बहाते मैंने उन्हे कभी नही देखा।"

सन्त जी सुनकर गम्भीर हो गए। सीढिया उतरकर नीचे आते हुए रामू के कधे पर हाथ रखकर बड़े स्नेह से उन्होंने पूछा—"क्यो रामू भैया, तुम्हारे मन को क्या कभी विकार नही घेरते ?"

सहजभाव से हसकर रामू ने कहा—"विकार और संस्कार तो मन की तरंगें है संत जी, अपने-अपने ढंग से सभी के मन को घेरती है, पर मुझे उनके सबंध मे सोचने का अभी तक अवकाश नही मिल पाया।"

"क्यो ? आत्मालोचन करना ब्रह्मचारी का काम है।"

"मुझे अभी तक एक बार उसकी आवश्यकता नही पड़ी। प्रभु जी के ध्यान से अवकाश ही नही मिल पाता। वह पढने-पढाने का काम भी उन्ही की आज्ञा से करता हूं।"

"कभी थकते नही रामू ?"

रामू एक क्षण मौन रहा, फिर कहा—"अभी तक यह सब बाते मैंने कभी सोची नही है सन्त जी। प्रभु जी ने एक बार कहा था, मुझे गृहस्थ बनना है। समय आने पर वे बतलाएंगे। बस यही चिन्ता कभी-कभी सता जाती है कि जाने कब प्रभु जी आदेश करे, अन्यथा अभी तक उन्हे छोड़कर और किसी का ध्यान मेरे मन मे प्राय नही रहा।"

सन्त जी ने रामू को अपनी बाह मे भर लिया और कहा—"तुम आयु मे छोटे हो पर योग मे मुझसे बड़े हो रामू। मुझे तुमसे ईर्ष्या हो रही है।"

रामू हंस पडा, बोला—"दीनों के प्रति सज्जनों की ईर्ष्या भी वरदान होती है सन्त जी। आप हर रूप में मेरा मंगल ही करेंगे।"

बाबा अपनी कोठरी के आगे राजा भगत के साथ बैठे बाते कर रहे थे। बेनीमाधव जी को देखकर बोले—"आओ बेनीमाधव, आज हम एक कन्या को देखने और बात पक्की करने जा रहे है।"

"किसका विवाह कराएगे गुरू जी ?" संत जी ने हसकर पूछा। स्वयं उन्हे ही अपनी हंसी खोखली लगी।

राजा भगत बोले—"अपना व्याह रचावेंगे बाबा। अब सौ बरस के होने आए, उनके जवानी फिर से फूटने वाली है न।"

बाबा खिलखिलाकर हंस पड़े, कहा—"अरे हमारे ब्याह की चिन्ता तो पहले भी तुम्ही ने की थी और अब भी चिता से तुम्ही कराओगे। हम तो अपने रामू के लिए जानकी मैया की एक चेरी लाने जा रहे है।"

सुनकर रामू लज्जित हो गया। वह बाबा की कोठरी मे चला गया। राजा भगत के कन्धे पर हाथ रखकर जाने के लिए बढते हुए बाबा ने ऊंचे स्वर मे रामू को

आदेश दिया—"अरे रामू बेटा, टोडर का भतीजा आवे तो कहना, कल चौथे पहर हम उससे मिलेंगे। कल दिन मे भी हमे चेतराम साहु के यहा निमत्रण पर जाना है।"

मार्ग मे चलते हुए वेनीमाधव जी ने बाबा से एकाएक पूछा—"आप अपने मन के मोह-विकारों को शात करने के लिए ही मिथिला गए थे अथवा यों ही मन की साधारण तरंग मे ?"

"सच तो यह है कि चित्रकूट से इतनी दूर भाग जाना चाहता था जहां राजा अथवा रत्नावली फिर न पहुंच सकें। चलते-चलते एक जगह पता चला कि जगदम्बा का नैहर पास में है। प्राचीन जनकपुरी, धनुषभंग का पवित्र स्थल देखने की ललक मे हम उधर ही चल पड़े।"

"वहां आपको क्या अनुभव मिला ?"

"मेरा काव्य पुरुष वहा जाकर सचेत हुआ।"

" 'जानकी मंगल' की रचना कदाचित् आपने वही की थी ?"

आगे वाली गली के नुक्कड पर कुछ भीड थी। हसी के ठहाके भी गूज रहे थे। किसी ने रामबोला बाबा को आते हुए देख लिया। फुसफुसाहट शुरू हुई, "बाबा आ रहे है, बाबा।" बहुत-से चेहरे पलटकर बाबा को देखने लगे और हुजूम छंट गया। सामने मंगलू डण्ड लगा रहा था। बाबा उसे देखकर खिल उठे। बेनीमाधव से कहा—"मेरे काव्य पुरुष ने ऐसी ही डण्ड-बैठकें जनकपुरी मे लगाई थी।"

"जै सियाराम बाबा।" कई लोगो ने तेज डग बढाते हुए आकर बाबा के चरण छूना शुरू किया।

"जै सियाराम, जै सियाराम ! अरे, मंगलू, काहे की भीड लगाए हो भैया ?"

मंगलू स्वय भी बाबा के पास आ पहुचा था। उनके चरणस्पर्श करते हुए उसने स्वयं ही उत्तर दिया—"कुछ नही बाबा ये गाली स्स···।" मुह से गाली का पहला शब्द निकलते ही मंगलू ने बात करना बन्द करके तुरंत अपने दोनों कान पकड़े और जल्दी-जल्दी पांच बैठकें राम-राम करते हुए लगा डाली।

लोग-बाग फिर हंस पड़े, बाबा ने मुस्कराते हुए मगलू को हौसला दिया--"डटे रहो पहलवान, राम जी तुम्हे अवश्य विजय देंगे।"

आत्मसघर्ष-भरे उत्तेजित चेहरे को ऊचा उठाकर तेजस्वी दृष्टि से बाबा को देखते हुए मंगलू बोला—"अरे राम जी तो जब दया करेंगे तब करेंगे, पहले तो हम ही अपनी इस आदत साली···" मुह से गाली निकलते ही मंगलू की बैठकें और लोगो की हसी फिर शुरू हो गई। बाबा मुस्कराते हुए आगे बढ चले। बेनीमाधव से कहा—"इसकी हठ शक्ति ठीक मेरी ही जैसी है किन्तु मैंने अपना मन साधने के लिए दूसरा उपाय किया था।"

राजा बोले—"तुमने क्या उपाय किया था भैया ?"

"हमने कुछ नही किया, जानकी मैया ने रास्ता बतलाया।" × × ×

मिथिला क्षेत्र मे पण्डे यात्रियों को प्राचीन स्थलो का विवरण दे रहे है—यहा राजा जनक ने हल चलाते हुए सीता जी को पाया था। यहा राम जी ने धनुषभग किया था। जानकी मैया ने उनके गले मे जयमाल डाली थी, सीता

स्वयंवर हुआ था। यहा राजा जनक की फुलवारी थी। यात्रियों के पीछे-पीछे तुलसीदास यह सारे विवरण सुनते चले जा रहे है। सारा हरा-भरा क्षेत्र और मन्दिरों की इमारतें अपना वर्तमान रूप खोकर तुलसीदास की कल्पना मे पुराने दृश्य उमगाने लगी। राजा का महल, राम जी की बरात के तम्बुओ का नगर, स्वयबर, जनकदुलारी के द्वारा श्रीराम जी के गले मे जयमाला डाले जाने का दृश्य, विवाह मण्डप की हलचल, ज्योनार और उत्साह से गाई जानेवाली स्त्रियों की गालिया, सारे दृश्य भावुक तुलसीदास के आखों के आगे आने लगे। × × ×

"मैंने उल्लसित होकर गीत गाए। जानकी मैया के दरबार मे सारी नारियो की कल्पना की। लुहारिन-अहीरिन-तमोलिन-दर्जिन-मोचिन-बारिन-नाइन आदि हर स्त्री के रूप मे विवाह के अवसर का उल्लास निहारा। राजा दशरथ के राजसी ठाट के अनुरूप ही उनका विलास वर्णन किया। राम-जानकी की भक्ति के प्रभाव से मेरे मन का शृंगार उमंगकर भी विकाररहित हुआ। मन के घोडे पर सयम की लगाम कसी। हर स्त्री जानकी मैया की दासी थी, फिर भला मैं उनके प्रति कोई कलुषित भाव अपने मन मे कैसे आने देता? मानव-मन बडा अद्भुत होता है बेनीमाधव। जब तक वह संस्कार धारता नही तभी तक विकार-ग्रस्त रहता है, और एक बार वह निश्चय कर ले तो जादू की तरह उसकी दृष्टि बदलकर कुछ और की और ही हो जाती है।"

दक्षेश्वर के पास एक गली मे, एक कच्चे-पक्के छोटे-से घर मे बाबा तखत पर बिराजमान है। पण्डित गगाराम भी उन्ही के पास बैठे है। महल्लेवालो की छोटी-सी भीड़ उन्हे घेरे खडी है। एक प्रौढा उनकी चौकीके पास बैठी हुई हाथ जोडकर कह रही है—"मेरे पास दान-दहेज देने को कुछ नही है महराज। खाली कुश-कन्या सौपूगी।"

"अरी राम-भक्तिन, तेरे पास कन्या है। कन्यादान तथा विद्यादान से बडा और कौन-सा दान होता है?"

बेनीमाधव जी बाबा की चौकी के पीछे खड़े थे। उनकी दृष्टि बाबा के सामने काला लूगा पहने हुई उस प्रौढा स्त्री की ओर ही लगी थी। अपनी कच्ची-पक्की दाढी पर धीरे-धीरे हाथ फेरते हुए उनका मन तरंगित हो रहा था, 'सुन्दर है। यदि मेरी पत्नी होती तो लगभग इसी आयु की होती।···धत्-धत्, हट रे मन् यहा से।' बेनीमाधव जी ने उधर से अपना मुह हटा लिया।

उसी समय कुछ स्त्रियां एक नवयुवती को लेकर आती है। बाबा उस लडकी को देखकर प्रसन्न होते है। लाज-संकोच से भरी वह नवयुवती आकर बाबा के चरणों में अपना मत्था टेकती है। उसकी पीठ थपथपाकर बाबा कहते है—"ठीक है, ठीक है।"

बाबा रामू के लिए बहू पसंद कर रहे थे और बेनीमाधव अपने मन के खिल-वाड़ की प्रस्तावित संगिनी को फिर रसीली दृष्टि से निरख रहे थे।

बाबा ने बहू को कगन पहनाया, उसके सिर पर अक्षत डाले और प्रेम से

अपना हाथ फेरा। फिर आस-पास खड़ी भीड की ओर देखकर बोले—"कित्ती वड़ी वरात लावे ?"

एक बूढ़ा हाथ जोडकर बोला—"आपसे क्या छिपाव है महराज, ये चमेलो तो अभी वतला ही चुकी कि इसके पास कुश-कन्या है। विचारी ने घर के वर्तन वेच-वेच के खा डाले हैं।"

'विचारी चमेलो' के लिए सहानुभूति के शब्द सुनकर वेनीमाधव ने एक वार फिर उस प्रौढा को देखा—देखना तो सहानुभूति से चाहा पर भूखी दृष्टि रसीली हो गई। मन फिर लहराने लगा, 'दुखी है वेचारी। इसके चेहरे पर मदन की वह मार भी है जो भली और लोकभीरु विधवा स्त्री के चेहरे पर दिखलाई पड़ा करती है। स्वयं मेरे मुख पर भी तो मन की सूनी उदासी—धत्-धत् रे मन, फिर वहका !' वेनीमाधव ने फिर अपना मुख फेर लिया। वावा उस समय कह रहे थे—"घवराओ मत, समधिन, जैराम साव तुम्हारी तरफ का सब खर्चा उठावेंगे। और हमारा खर्चा टोडर का वेटा आनन्दराम और पोता कन्हई मिलकर उठायेंगे।"

पण्डित गंगाराम वोले—"खर्चे की चिन्ता तुम्हे नही करनी होगी, तुलसीदास। मैंने कन्या पक्ष की यह व्यवस्था अपने जिम्मे ले ली है। हमारा एक यजमान इस घर की मरम्मत कराने का भार ग्रहण करना स्वीकार कर चुका है। वात यह है कि यह तुम्हारी होनेवाली समधिन चाहती हैं कि उनकी वेटी और दामाद उनके साथ ही रहे। तुम्हारे यहां तो नई गृहस्थी वसाने की जगह है नही, इसलिए हमे भी यह प्रस्ताव कुछ बुरा नही लगता।"

वावा वोले—"चलो यह भी ठीक है। वैसे ब्रह्मनाल में रामू का पैतृक घर भी है। उसकी पुरानी गृहस्थी का कुछ सामान और गहने इत्यादि हैं जो मैंने टोडर के यहा रखवा दिए है, किन्तु तुम्हारा प्रस्ताव रुचिकर है।" घर से लगे हुए एक खण्डहर की ओर दृष्टि डालकर वावा ने पूछा—"गंगाराम, यह पास वाली जमीन क्या विकाऊ है ?"

समधिन वोली—"हा महराज, यह घर दीनदयाल दुवे का था। उनका पोता अव जौनपुर मे रहता है। एक वार आया था तो हमसे कह गया था कि सौ रुपये मे वह वेचने को राजी है। कोई गाहक हो तो वह तैयार हो जायगा।"

वावा वोले—"हम तैयार हे। हमे उस घर के सौ रुपये मिल रहे है। वाकी जो कमी-वेशी होगी सो भी पूरी कर दी जाएगी। गगाराम, तुम इस जमीन को भी इस घर मे मिला लो।"

प्रौढा वोली—"हमे तो महराज जैसे आपकी आज्ञा होयगी वैसा करेंगे। इस गरीवनी की कन्या आपने अपनी सरन मे ले ली यही मेरा सवसे वडा भाग है। हम गगा काका से कभी उरिन नही हो सकेंगी।"

रसीली दृष्टि से देखते हुए वेनीमाधव का मन कह रहा था—'तू मेरे विकल मन का सहारा वन जा। तू मेरे कलेजे मे फास-सी चुभ गई है। तेरे विना अव मुझसे रहा नही जायगा।'

वेनीमाधव कामना-भरा लहराता मन लेकर लौटे। रास्ते-भर उनके मन मे

भय और कामना की लुकाछिपी चलती रही। भय लगता था कि बाबा उनके मन को भापकर फटकारेंगे। कामना होती थी कि लोक-लाज के निभाव के साथ उनका यह काम ज्वर इस स्त्री की कृपा से उतर जाय। रास्ते चलते हुए उनकी खोई आखें अपनी मनभावती कल्पना के चित्र देखती चली जा रही थी। कल्पना मे वेनीमाधव और वह स्त्री आमने-सामने होते, एक-दूसरे को रसमग्न होकर निहारते, वेनीमाधव उसके कंधे पर हाथ रखकर दूसरे हाथ से उसकी ठोड़ी ऊंची उठाते···

"धत्तेरी की राम भगतिनिया!" अपनी नाक पर वार-बार बैठती हुई एक मक्खी को हटाते हुए गुरू जी ने जैसे ही धत् कहा वैसे ही वेनीमाधव भय से चौक-कर उनकी ओर देखने लगे।

बाबा की दृष्टि भी उनकी ओर मुडी, बोले—"मक्खी भी बडी हठीली होती है वेनीमाधव, जहां से उड़ाओ वही आ-आकर बैठती है।"

वेनीमाधव का सहमा हुआ कलेजा धडका, मन ने कहा—'गुरू जी ने तेरे चोर को पकड लिया है।'

बाबा कह रहे थे—"रामू का विवाह करके मुझे ऐसा ही लगेगा राजा, कि जैसे तारापति को गृहस्थ वना रहा हूं।"

राजा के मुह से एक ठंडी सास निकल गई, बोले—"अब उन पुरानी बातो का ध्यान हमे न दिलाओ भैया। कलेजा मुंह को आने लगता है।"

बाबा बोले—"क्यों? अरे मैं तो अपने रहे-सहे मोह-विकारो को इसी प्रकार से धोता हूं। वह देखने गया तो स्वाभाविक रूप से अपने वेटे की याद आई। मेरा वह वेटा ही तो अव रामू वनकर मेरे पास है। तारापति के ध्यान से उपजी उदासी क्षण के एक छोटे अश मे ही रामू के ध्यान से मेरा आनन्द वन गई। (वेनीमाधव की ओर देखकर) विचारवान पुरुषों के लिए मन से सदा लडना भी अच्छी वात नही होती वेनीमाधव। मंगलू जैसे अविकसित वुद्धि के लोगो का मन ही उस उपाय से सुधर सकता है, हमारा-तुम्हारा नही। समझे?"

वेनीमाधव समझ गए, लज्जित भी हुए। मुंह से केवल एक धीमा-सा शब्द फूटा—"हां गुरू जी।"

तुलसीदास कह रहे थे—"मैंने तुम्हें अभी वतलाया था न कि मैं अपने विकारों को भी राम-रग मे रंग लेता था। राम प्रसंग से जुडते ही विकार भी संस्कार वनने लगते है। किसी भी स्त्री को देखो और तुरत ही यह ध्यान करो कि यह जगदम्वा की दासी है।"

वेनीमाधव का मन लज्जा और दुख से अभिभूत हो रहा था। उनकी आखे छलक आईं। रुधे हुए कठ से कहा—"मन वड़ा प्रवल शत्रु होता है गुरू जी, मेरे अपराधो का अन्त नही।"

"तुम अपने मन को खाली क्यो छोडते हो? उसे अपने आराध्य की विभिन्न लीलाओ के चिन्तन से भरा रखो न। मैने मिथिला मे अपने विकारो को जानकी मगन मनाकर धोया था। यह जीवरूपी सीता सुहागिन आत्मारूपी राम पर रीझ उठी है। उस रिझवार के ध्यान से मन भयमुक्त होकर विकसित हुआ। मन

मैली चांदी-सा काला था, ध्यान से मंजते-मंजते उजला हो गया। भांग से भी भोंडा यह तुलसी राम कृपा से मुनिराज कहलाने लगा।"

"आप समर्थ है गुरू जी, मैं वहुत दुर्वल हूं। आजीवन मन से लडते हुए भी अव तक उसे जीत नहीं पाया।"

"हार-जीत की चिन्ता छोड़ो वत्स, चावल का दाना मुख में दवाकर वार-वार दीवार पर चढने और गिरनेवाली उस चीटी के समान अपराजेय उत्साही वनो, जो सात बार गिरकर भी अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुचकर ही मानी। पछतावे से बुरा और कोई शत्रु नही होता। पछतावे मे विताए जानेवाले अपने अनमोल क्षणो को राम धुन से भर दो।"

"गुरू जी मेरे लिए राम से अधिक वडा सहारा आप हैं।"

"तो मेरा ही ध्यान किया करो, वैसे ही सोचो जैसे मैं सोचता था। मिथिला मे अहर्निशि मैंने केवल राम जी की ब्याह-वरात का ही ध्यान किया। सारे पकवानो का स्वाद मन मे आ गया। सारा राम-रंग-आनन्द और आमोद मैंने राम जी की वरात मे एक अत्यन्त दीन वराती के समान मनाया। 'जानकी मंगल' काव्य की रचना उसी उत्साह मे हुई। और तुम जानो कि इतना वडा प्रवन्ध काव्य मैने उससे पहले नही लिखा था।" सहसा कहते-कहते वे राजा की ओर मुड़ गए और बोले—"राजा!"

"हां भैया।"

"हमारी ओर से वेनीमाधव को समधी बनाय के वेटा ब्याहने भेज दिया जाय?"

"तुम्ही चलना भैया, वरात की शोभा कुछ और ही हो जायगी।"

"नही हम जायगे तो भीड-भाड़ वहुत वढ जायगी। वेनीमाधव हमारी समधिन के जोडीदार समधी जचेगे। ज्योनार के साथ गालिया खाएगे तो इनकी वुद्धि ठिकाने आ जायगी।" वेनीमाधव नतशिर, भारी मन लेकर चले जा रहे थे। लज्जा उनके रोम-रोम मे शूल-सी चुभ रही थी। मन कह रहा था, 'ऐसे त्रिकालज्ञ गुरु की उपस्थिति मे भी मेरे मन मे पाप-विकार आया? गुरू जी सब जान जाते हैं। मै वडा ही नीच हूं, पतित हूं।'

मैदान से गुजर रहे थे। दूर तक दूव-घास फैली हुई थी। देखकर वावा बोले—"देखो वेनीमाधव, इस ऊबड-खावड धरती को पकड़कर भी दूव जमी है और फैलती ही चली जाती है। राम भक्ति रूपी धरती तो वड़ी समतल है। उस पर अपनी मति रूपी दूब जमाओ। वहुत दूर तक पहुच जाओगे।"

३३

विवाह के उपरांत वावा ने जब रामू को ससुराल वाले घर मे रहने की आज्ञा दी तो वह रोने लगा, बोला—"प्रभु जी मेरे लिए इन चरणों से दूर रहना

कठिन है। इनकी सेवा के अतिरिक्त मैंने आज तक कभी कुछ सोचा ही नही है। आप मुझे यह दण्ड न दें।"

"यह दण्ड नही है पुत्र। मैं चाहता हूं कि मेरे जीवनकाल मे तू व्यवस्थित होकर बैठ जा। अपनी पाठशाला चला और मानस की कथा सुनाया कर। उससे तेरी जीविका सुचारु रूप से चलेगी। वेनीमाधव मेरे पास है। राजा के लिए भी हमारी इच्छा तो यही है कि वे अब अपने गाव लौट जायं।"

पास बैठे हुए राजा बोले—"अब अन्त काल मे तुम काहे को हमे अपने से दूर करते हो भैया ?"

बाबा बोले—"बाल-बच्चों मे जाओ, राजा, हम···"

"नही भैया, अब हमे कोई मोह नही रहा। तुम्हारा साथ नही छोड़ेंगे। इस संबंध मे अब कुछ न कहो।"

रामू अपने नये घर मे रहने के लिए चला गया। राजा भगत और संत जी बाबा के पास ही रहे। वेनीमाधव का मन अभी पूरी तरह से अपने वश मे न हो पाया था। अधिक श्रम करने का अभ्यास भी उन्हे नही था। बाबा की नियमित सेवा करने के लिए उन्हे अपनी इस ढलती आयु मे अधिक कायिक श्रम और मानसिक सतर्कता बरतनी पड़ी। इससे उनकी थकान और बढ गई थी। रामू की सास अब प्रायः बाबा के दर्शनार्थ आती थी। वेनीमाधव के लिए वे क्षण आग की लपटों से गुजरनेवाले हुआ करते थे। उनका मन लड़खड़ा उठता था। वे जानते थे कि बाबा को उनके मन की हलचलों की थाह मालूम है। एक दिन समधिन के सामने ही बाबा ने कहा—"मन को वश मे करना कोई हमारी समधिन से सीखे।"

बाबा के आगे भूमि पर मत्था टेककर समधिन गद्गद स्वर मे बोली—"अरे महराज, हमारे मे इत्ता बल कहा ? राम जी निभाते है।"

"तेरे चेहरे पर आत्मसंयम की छाप छपी है। तू अब मेरा एक कहा मान ले तो सत्य कहता हूं तर जायगी।"

"आज्ञा होय महराज, आप जो कहेंगे तो मेरे भले के लिए ही कहेगे।"

"अपने बेटी-दामाद को तू राम-जानकी मान और नित्य सवेरे यहां आकर हम तीन प्राणियो का भोजन बना जाय कर। जो सिद्धि औरो को जप से प्राप्त होती है वह तुझे इस भाव से आप ही आप मिल जाएगी।"

रामू की सास का प्रतिदिन आना वेनीमाधव के जीवन मे एक नये सधाव का कारण बना। जिस स्त्री के प्रति उनका मनोविकार जागा था वह एक तो ऊचे दर्जे की चरित्रवान थी और दूसरे उन्हे बाबा की पैनी अन्तर्दृष्टि का भय भी सताता था। भय से राम-प्रीति जागी। स्त्री-मोह दबने लगा। गुरू जी अपनी समधिन का इतना मान करते थे कि वेनीमाधव के मन मे भी उनके प्रति आदर-भाव बढने लगा था। गुरू जी की समधिन के प्रति अपने मन मे कलुष लाने से वे स्वय ही डरने लगे और यह डर उन्हे सवारने लगा। एक दिन एकान्त मे वेनीमाधव गुरू जी के पास बैठे हुए थे। गुरू जी बोले—"विचारो की निर्मलता मनुष्य के चेहरे पर छा जाती है। जब हम जानकी मैया के दरबार मे रहे तो हमे बराबर

यह भय वना रहता था कि यहां यदि हम किसी पर कुदृष्टि डालेंगे तो जगज्जननी हमसे कुपित हो जायंगी। इस भय ने ही हमारे मन को साध दिया। यों ही सचेत रहोगे तो तुम्हें मनचाही सिद्धि अवश्य प्राप्त होगी।"

कई महीनों के वाद गुरुमुख से अपने प्रति सराहना का यह वाक्य सुनकर वेनीमाधव के हृदय को अपार हर्ष हुआ। उनके चरणों में मस्तक नवाकर वे वोले—"मैं अव, राम-श्याम-शंकर-वजरंग-गुरु-पिता-माता सव कुछ आपको ही मानता हूं। आपके जीवन-चरित्र को ही निरन्तर अपने ध्यान में रखता हूं। आपका ध्यान ही मुझे सद्गति प्रदान करता है और करेगा।"

"हां, अव तो मुझे भी ऐसा ही लगने लगा है। वत्स, आत्मकथा सुनाकर मैं तुम्हारी सेवा करूंगा। कल से नियमित रूप से दिन में तुम्हें अपने जीवन-प्रसंग सुनाऊंगा। मेरा आत्मालोचन होगा और तुम्हें आत्मालोचन के लिए स्फूर्ति प्राप्त होगी।"

दूसरे दिन लगभग पचास वर्ष पूर्व के अपने अनुभव सुनाते हुए वावा वोले—"मिथिला से हम सचमुच खूव भरे-पुरे होकर लौटे थे। काशी और प्रयाग के वीच में एक स्थान सीतामढी के नाम से प्रसिद्ध है। वहां वाल्मीकि जी का आश्रम वखाना जाता है। राम जी की आज्ञा से लखनलाल जगदम्वा को वहीं छोड़ गए थे। लव-कुश कुमारों ने वहीं जन्म पाया। वहां एक सीतावट है, वेनीमाधव। तपस्विनी जानकी प्राय: उसी वट वृक्ष के नीचे वैठकर राम जी का ध्यान किया करती थी।" × × ×

गंगा के समीप वृक्षराज सीतावट के नीचे जगदम्वा के चरण कमलों का ध्यान करके तुलसीदास आनंदविभोर हो गए। प्रणाम करने के वाद कुछ देर तक टकटकी वांधकर तुलसीदास उस वृक्ष के तने की ओर देखते रहे। कल्पना सजीव हो उठी। वट के नीचे तापसवेशधारिणी जगज्जननी रामवल्लभा हथेली पर ठोड़ी टेके हुए वालक लव-कुश का धनुष चलाना देख रही हैं। महर्षि वाल्मीकि उन्हें लक्ष्य वतला रहे हैं।

कल्पना का दृश्य ओझल हो जाता है। वृक्ष की परिक्रमा और प्रणाम करके तुलसीदास गंगा तट की ओर चलते हुए एकाएक पलटकर फिर वटवृक्ष को देखने लगे। लटकती हुई वरगद की जटाओं ने उनकी कल्पना को फिर स्फूर्त किया। वटवृक्ष उन्हें जटाजूटधारी शिव जी के रूप में दिखाई दिया। तुलसीदास मुग्ध होकर काव्यतरंग में चढ़ गए।

मरकत वरन परन, फल मानिक-से,
लसै जटाजूट जनु रूखवेष हरु है।
सुषमा को ढेर कैंधौ, सुकृत-सुमेरु कैंधौं,
संपदा सकल मुद मंगल को घरु है।
देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइये,
प्रतीति मानि तुलसी, विचारि काको थरु है॥
सुरसरि निकट सुहावनी अवनि सोहै,
रामरमनी को वटु कलि कामतरु है॥

रात मे तुलसीदास गंगातट पर एक तखत पर सो रहे थे। उन्हे स्वप्न मे वटवृक्ष के नीचे जानकी मैया विराजमान दिखाई दी। स्वप्न मे तुलसी उनके चरणो मे झुके हुए कह रहे है—"मेरा मार्ग मुझे दिखाओ अब। अब मैं भी तुम्हारे ही समान राम-दर्शन की चाह लिए बैठा हू।"

स्वप्न मे सीता जी तुलसीदास से कहती हैं—"अयोध्या जाओ, तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।" कहकर वे अदृश्य हो गई। फिर उन्हे गंगातट के पास खडे हनुमान जी दिखलाई दिए। आकाश से लेकर धरती तक उनका विराट रूप स्वप्न मे देखकर सोते हुए तुलसी सहसा चौक गए। चरणो मे प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर आनंद मुद्रा मे अपने परम सहायक और आराध्य बजरंगवली को निहारने लगे। मूर्ति क्रमश छोटी होती जाती है। हनुमान जी मनुष्य के आकार मे आ जाते है, वाल्मीकि बन जाते हैं। तुलसीदास कपीश्वर के स्थान पर कवीश्वर को देखकर गद्गद हो उठते है। हाथ जोडकर कहते है—"हे कविता-शाखा पर विराजमान मधुर-मधुर अक्षरो मे राम-राम की कुहुक भरने वाले कोकिल, तुम्हे प्रणाम है।"

वाल्मीकि कहते है—"इस कलिकाल के निराशा अंधकार मे मेरा काम क्या तू कर सकेगा, तुलसी ?"

"आज्ञा करें आदिकवि।"

"भाषा मे रामायण की रचना कर! इससे तेरा और लोक का कल्याण होगा।" कवीश्वर फिर कपीश्वर के रूप मे दिखलाई देते है। गगन स्वर गूजता है—"अयोध्या जा, रामायण की रचना कर।"

स्वप्न आलोप हो जाता है। तुलसीदास की आंख खुल जाती है। ब्राह्मवेला आ चुकी थी। विचारमग्न होकर दूर धुंधले मे झलकते हुए सीतावट और वाल्मीकि आश्रम को प्रणाम करके तुलसीदास बोले—"अंब, क्या यह सचमुच ही तुम्हारी आज्ञा थी या मेरे भावुक मन का छलावा-भर है ? मैं क्या सचमुच वह काम कर सकता हूं जो महर्षि वाल्मीकि कर गए ?"

प्रश्न उठकर रह गया किन्तु उत्तर न मिला। तुलसीदास गम्भीर सोच और असमंजस मे पड़ गए।

अपने ब्राह्मकर्मो से मुक्त होने पर तुलसीदास एक बार फिर सीतावट के पास गए। वहा उन्हे एक हट्टे-कट्टे पहलवान जैसे बलशाली और तेजस्वी साधु मिले। जगदम्बा के चरण चिह्नों के सामने घुटने टेककर बैठे तुलसीदास की आत्मानन्दलोन छवि देखकर वे बड़े मुग्ध हो गए और एकटक एक होकर उन्हे देखने लगे। आत्मनिवेदन करके थोड़ी देर बाद तुलसीदास जब उठे तो उन्होने आगे बढकर पूछा—"महात्मन्, आप किस सम्प्रदाय के है ?"

तुलसीदास ने झुककर साधु को प्रणाम किया और कहा—"मैं किसी संप्रदाय में दीक्षित नही हुआ, स्वामी जी। राम जी का चेरा हूं, उन्ही का नाम जानता हूं। नाम भी रामबोला ही है।"

साधु जी उनका कंधा थपथपाते हुए बोले—"यों तो विरक्तो का कोई सगा संबंधी नही होता पर तुम तो मेरे किसी जन्म के भाई समान लगते हो। मैं

अयोध्या जा रहा हूं। क्या तुम मेरे साथ चलोगे ?"

तुलसीदास स्तब्ध और आश्चर्यचकित होकर उस साधु को देखने लगे। मन मे प्रश्न उठा, 'क्या यह सयोगमात्र है अथवा जगदम्बा का आदेश ?'

तुलसी को मौन देखकर साधु ने मीठे स्वर मे कहा—"यदि इच्छा न हो तो मेरा कोई विशेष आग्रह नही है : तुम्हारी भावुक भक्ति से प्रभावित होकर मैंने सहजभाव से यह प्रस्ताव कर दिया, और कोई बात न थी।"

"आपकी यह सहज बात मेरे लिए साक्षात् हनुमान जी का आदेश बन गई है। यह प्रस्ताव करने के लिए मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हू।" × × ×

"प्रयाग तक तो हमारा उनका साथ रहा। और फिर एक दिन हम जो सवेरे उठे तो साधु जी का कही पता ही नही था। अस्तु, हम तो निश्चय कर ही चुके थे। अयोध्या की ओर पयान किया, जिस मार्ग से तापसवेषधारी श्रीराम, जानकी और लखनलाल सुमन्त के साथ अयोध्या से प्रयाग आए थे उसी पर चले। सारा मार्ग मेरी कल्पना के लिए हरा-भरा रहा। और जब मैंने अयोध्या मे प्रवेश किया तब तक तो मैं राम-विह्वल हो चुका था।" कहते-कहते बाबा का चेहरा एक अलौकिक तेज से दमकने लगा था। बेनीमाधव चकित होकर उन्हे देखने लगे। दो पल मौन रहकर बाबा फिर कहने लगे—"मैंने कभी किसी प्रकार का नशा नही किया है। पर दूसरो से नशे का विवरण सुनकर मैं यह अनुभव कर सकता हूं कि मेरा अन्तर्मन उस समय राम-मतवाला हो गया था। ऊपर की काया तुलसीदास थी पर उसके भीतर राम थे। मैंने अयोध्या मे प्रवेश क्या किया मानो राम ने मेरे उर अन्तर मे प्रवेश किया।" × × ×

खण्डहरो-टीलो-भरी अयोध्या। बीच-बीच मे खण्डित मूर्तिया भी देखने को मिल जाती थी। तुलसीदास को दिखलाई दिया कि दक्षिणाग मे हनुमान और लक्ष्मण के साथ श्रीराम-जानकी अयोध्या के आकाश मे खडे हुए है। तुलसी मुग्ध होकर आकाश की ओर देख रहे है और बढते चले जाते है। थोडी दूर पर बन्दरो की आपसी लडाई का शोर उन्हें होश मे ले आता है। अपने-आप ही कह उठते हैं—"सब कुछ कैसा अद्भुत् उल्लासप्रद है, आनन्द है भय भी है।··· बजरंगबली सहाय होंगे। वही मेरा भाग्य-निर्देश करेंगे।"

चलते हुए तुलसीदास उसी मठ पर आए जहां पंच सस्कार कराने के लिए नरहरि बाबा उन्हे लेकर आए थे।

मठ मे अनेक साधु थे। कोई भांग घोट रहा था, कोई खीर-मालपुये की चर्चा छेड़ रहा था। एक साधु दूसरे पर अपनी लंगोटी चुराने का आरोप लगाकर लड रहा था। तुलसी को वहा किसी के भी हृदय मे राम न दिखलाई दिए। भांग घोटते हुए साधु से कहा—"जै सियाराम महाराज।"

"जै शियाराम, कहा शे आवना भया ?"

"इस समय तो सीतावट के दर्शन करके आया हूं। लगभग छत्तीस-सैंतीस वर्षों के बाद मैं यहा आया हूं। पहले पूज्यपाद नरहरि बाबा के साथ आया था।"

"भला, भला। बड़ी पुरानी बात है। हमने नरहरि बावा का नाम-भर ही शुना है।" कहकर वह फिर भांग घोटने में दत्त-चित्त हो गया।

तुलसीदास ने सविनय कहा—"इस मठ मे क्या मुझे रहने का स्थान मिल सकेगा ?"

सिल पर वट्टा रगड़ते हुए साधु बोला—"मिल क्यों नही शकता। शाधुओं की शेवा करो तो मैं महंत जी शे कह दूंगा।"

"आपकी बड़ी कृपा है।"

"क्रिरपा-उरपा कुछ नहीं, तुम्हें हमारा चेला बनना पड़ेगा। भोरहरे की कागा बीशी और दोपहर की शत्यानाशी तथा शायंकाल की भोग-बिलाशी भांग तुम्हे ही पीशनी होगी। राजी हो तो महंत जी शे जगह दिला देंगे।"

तुलसीदास बोले—"मैं यथासाध्य आपकी यह सेवा कर दूगा।"

"और देखो, जितनी देर हमारी भाग घोटोगे उतनी देर राम-राम जरूर जपोगे।"

तुलसीदास ने गद्गद होकर कुछ कहना चाहा, पर भंगघोटने साधु जी अपने स्वर को और ऊंचा चढ़ाकर बोलने लगे—"हम एकै घूट नें परख जाते है कि ये राम-राम जप के पीशी गई है या नही।···नही-नही, पहले हमारी बात शुनो, जित्ती बादाम, कालीमिर्च इत्यादि-इत्यादि हम तुम्हे देंगे उत्ती शब हमारी भाग मे बोलै। और जो एक भी कम हुई तो बच्चू कमर पै दुइ लात मारकर हम तुम्हें यहां शे निकाल बाहर करेंगे, याद रखना।"

तुलसीदास ने हाथ जोड़कर कहा—"मैं बड़े प्रेम से राम-राम जपूगा और जो सामग्री आप मुझे देंगे उसमे से एक भी पत्ती भांग या एक भी दाना काली-मिर्च आपको कम नही मिलेगी।"

"और शुनो," स्वर धीमा करके और फिर से संकेत देकर तुलसीदास को अपने पास बुलाकर साधु जी बोले—"महंत जी जो है न, वो जब हमशे अपनी भाग घुटवाए तो लपक के उनके शामने कहना कि गुरू जी, हम महत जी की भांग घोटेंगे।"

"अच्छा महाराज।"

"महराज-वहराज कुछ नहीं। हमें गुरू जी कहके पुकारा करो। और शुनो, यहां जो चेलिया आवै तो उनके शामने तुम्हें हमारे गोड़ भी दबाने होगे।"

तुलसीदास संकोच मे पड़ गए, कहा—"आपने मुझे अपनी भांग घोटते समय राम जपने का मंत्र दिया इसलिए आपको गुरू जी कहूंगा। आपके चरण भी राम-राम जपकर ही चापूगा। परन्तु स्त्रियों की उपस्थिति मे मैं आपके पास नही आऊंगा।"

भगघोटने साधु ने आंखे तरेरी, फिर पूछा—"क्या तुम शचमुच के ब्रह्मचारी हो ?"

"हां गुरू जी।"

"राम जी की शौगंध खाके कहो कि ब्रह्मचारी हूं।"

"रामजी साक्षी है, मैं ब्रह्मचर्य व्रतधारी हूं।"

"तो भागो यहा शे। एकदम दूर चले जावो। हियां जो शशुर अशली ब्रह्मचारी रहेगा यह आज नही तो काल, कल नही तो परशो शारी की शारी चेलिया अपनी ओर खीचकर ले जायगा। शाला। राडें शशुरिया तो अशली ब्रह्मचारी को ही अपना खशम बनावे के फेर मे रहती है। तुम देखने में भी शुन्दर हो। भागो-भागो। अशली ब्रह्मचारी का कलयुग के मठो में काम नही है।" कहकर साधु जी बड़े जोर से अपनी भाग घोटने लगे।

तुलसीदास साधु की बातें सुनकर विचित्र मनस्थिति मे पड़ गए। एक तरफ तो यह साधु राम-राम जपने का मन्त्र देता है और दूसरी ओर असली ब्रह्मचारी का निन्दक भी है। सब मिलाकर इसकी बाते बहकी-बहकी-सी है। वे उठ खड़े हुए, हाथ जोड़कर कहा—"अच्छा तो चलता हू। राम-राम।" तुलसीदास चलने लगे तो साधु ने आखे तरेरकर कहा—"हिया तो शब शाधू महातमा तर माल चाभते है और भगतिनन शे रशजोग शाधते है। और ये शरऊ हिया ब्रह्मचर्य फैलइहै। कलयुग का शतयुग बनावे चले है। घोघावशंत नही तो।"

साधु का बड़बड़ाना चलता रहा। तुलसीदास बाहर आए। एक अन्य प्रौढ साधु फाटक पर मिले। इन्हे देखकर कहा—"जै सियाराम।"

"जै सियाराम, महाराज।"

"अयोध्या मे नये आए हैं कदाचित् ?"

"हां महाराज, गोलोकवासी नरहरि बाबा के साथ बचपन मे एकबार यहां आया था। यही मैंने पच सस्कार पाए थे। इसीलिए यहा शरण लेने आया था।"

"भंगड़ गुरू से आप की क्या बाते हुई ?"

तुलसीदास खिसियानी हंसी हसकर बोले—"क्या कहूं महाराज, विचित्र महात्मा है।"

"हा, बाते अवश्य विचित्र करते है पर इस मठरूपी जल मे कमलवत् रहने वाले एक वही व्यक्ति है, पर भला ही होगा जो आप यहां न ठहरें। बाहर आइए।"

प्रौढ साधु ने अपनी बातो से तुलसीदास के मन मे हल्की-सी उत्कंठा जगा दी। गली मे मठ के फाटक से दस कदम आगे बढकर साधु बोले—"यह भगड अखण्ड ब्रह्मचारी है। सिद्ध पुरुष है। इस मठ का वातावरण अब पहले जैसा नही रहा। नरहरि बाबा का आगमन मुझे याद है। आपके संस्कारादि होने का प्रसंग भी अब मुझे याद आ रहा है। मैं तब यही रहता था। उस समय मेरी आयु पद्रह-सोलह वर्ष की रही होगी। बड़े महन्त जी के गोलोकवासी होने के बाद अब यहा कोई सच्चा साधक नही रह पाता। यह राम जी की अयोध्या अब विचित्र हो गई है।"

तुलसीदास उदास हो गए, बोले—"यहां चिन्तन-मनन के क्षण बिताने के लिए बडे भाव से आया था किन्तु पापी पेट को सहारा तो चाहिए ही।"

साधु बोले—"आप लिखना-पढना जानते है ?"

"हा, महाराज। राम-कृपा से काशी मे शिक्षा पाई है।"

"तो आइए, मैं आपको रामानुजी सम्प्रदाय के मठ मे ले चलता हूं। उनका

हिसाब-किताब रखनेवाला कोठारी बीमार है. मरणासन्न है। वहां के महन्त जी अभी दो दिनो पहले ही हमारे आगे हिसाब-किताब के सम्बन्ध मे दुखी हो रहे थे।"

तुलसीदास फिर संकोच मे पड़ गए, कहा—"महाराज, यह रुपिया-टका और साज-सामानो की चिन्ता मे पड़ूगा तो ··"

"अरे यह मठ का हिसाब-किताब है, कोई महाजन की कोठी का तो है नही। व्यर्थ मे भावुक न बनो। दुनिया साधे बिना दीन नहीं सधता। राम सरकार भी जब दुनिया मे आते हैं तो उसके समान ही व्योहार करते हैं।"

"आपकी इस बात ने मुझे प्रभावित किया, ठीक है, मैं कोठारी का काम संभाल लूगा।" × × ×

३४

बाबा सन्त जी को सुना रहे थे—"रामानुजी सम्प्रदाय के मठ में मैं कोठारी बन गया। महन्त जी यो तो भले थे। कुशल, लोक-व्यवहारी थे। हाकिम-हुक्कामो, धनी मानियों से प्राय. मिलते-जुलते रहते थे परन्तु चापलूसी बहुत पसंद करते थे। जो व्यक्ति हर समय उनके दरबार मे बैठा रहे, उनकी हां में हा मिलाता रहे, उनकी रक्षिता-प्रिया को सराहे और मान दे, वही उनका स्नेहभाजन बन सकता था। वे मेरे काम से तो सतुष्ट थे परन्तु दरबारदारी न कर पाने के कारण वे असंतुष्ट भी रहते थे। मैं जब हिसाब-किताब लिखता तो मन मे ऐसा अनुभव करता था कि राम जी की कचहरी मे ही काम कर रहा हू। और बाकी समय अयोध्या के विभिन्न स्थलों पर डोला करता था। पंडे तीर्थयात्रियो को बतलाते···यहा सीताराम का महल था, यहां सीता जी रसोई बनाती थी, यहा राम जी का दरबार लगता था, इस कुण्ड पर दतुवन-कुल्ला करने आते थे। यहा गुरु से पढते थे। यहां भरत जी ने राम बनवास के दिनो मे निवास किया था।" × × ×

अयोध्या के विभिन्न स्थलों के दृश्य पर दृश्य आते चले जाते। उजड़े टीलो में अथवा खण्डहर मन्दिरो के आस-पास राम जी की अयोध्या की कल्पना करते हुए तुलसीदास गद्गद हो जाते थे। अयोध्या की भूमि मे चलता-फिरता हर चेहरा उनकी दृष्टि मे अपना वर्तमान रूप खोकर रामकालीन बन जाता था। वे अपने काम के समय को छोड़कर प्राय. हर समय अपनी कल्पना की अयोध्या मे ही रहा करते थे। राजा दशरथ, उनकी तीनो रानियां, भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न, वशिष्ठ, विश्वामित्र सभी प्राचीन पुरुष उन्हे किसी न किसी चेहरे मे झलक उठते, पर राम जी का बिम्ब एक बार भी उनके सामने न आया। वे एकान्त मे बैठकर बार-बार रूप का ध्यान करते थे किन्तु राम न प्रकट हुए। उनकी जगह हनुमान जी का आकार उनके मनोलोक मे मुस्कराता हुआ झलक उठता था। हनुमान जी की कल्पना उन्हें इतनी सिद्ध हो गई थी कि कभी-कभी तो उन्हे लगता कि

वे उनके सामने मांसल रूप मे दृश्यमान है।

राम को ध्यान मे लाने का आग्रह दिनोंदिन वढ़ता ही गया। 'राम वाम दिशि जानकी लखन दाहिनी ओर' यह छवि वह अपने ध्यान मे आंकते। मन का आग्रह वढ़ने पर उन्हें गोरे लखनलाल और गोरी सीता जी तो वहुत हद तक झलक जाती थी परन्तु उनके वीच मे राम का श्यामल विम्व उभरते-उभरते ही अदृश्य हो जाता था। राम के रूप के वजाय कभी कोई दीन-हीन दाढी वाले कंगले की छवि, कभी कोई क्रूर राक्षसाकार चेहरा, कभी सूर्य, कभी नृत्य-मुद्रा मे नारी। इसी तरह अनचाहे विम्व झलकते, पर मनचाहे राम का ध्यान नही सधता था। तुलसीदास अपने मन मे वहुत ही खिन्न रहने लगे—'हे प्रभु, आप ध्यान में भी अपने इस दास पर कृपा नही करते। तव क्या उसकी प्रत्यक्ष दर्शन की कामना अधूरी ही रह जाएगी? यह दास कुछ नही चाहता, केवल आपके निकट रहने को भीख मांगता है।'

अपनी असफलता पर तुलसीदास एकान्त में आंसू वहाते थे। जल से विलग मछली के समान छटपटाते थे। वजरंगवली से लड़ते थे, 'केसरीकिशोर, वड़े-वड़े दरवारो के ऊंचे ओहदेदार मुहलगे सेवक अपने स्वामियों से हम जैसे दीन-दुखियो का भला कराने की कला दिखलाने में सफल हो जाते है। आप कहे और रघुकुल-मुकुट-मणि रामभद्र न माने यह वात हर प्रकार से अविश्वसनीय है। आप मेरे लिए राम जी से क्यो नही कहते ? आप मेरे ध्यान मे आते है, मुस्कराते है, अभयमुद्रा मे आश्वस्त भी करते हैं पर राम जी से मेरे लिए कहते क्यो नही ? हनुमान हठीले, इस अकिंचन ने अपने वुर वचपन से आप ही की वांह गही है, फिर भी आप उसकी नही सुनते हैं।'

अपनी असफलता से तुलसीदास मे एक जगह खिसियान और हीन भावना भी आने लगी, 'मैं इतने संयम-नियम से रहता हू किन्तु तव भी भगवान मुझसे प्रसन्न नही होते। और काले हृदय वाले भक्त, विरक्त होने का ढोंग करनेवाले मानवीय दृष्टि से हीनतम लोग इस समाज मे श्रेष्ठ भक्त माने जाकर पूजा पाते हैं। उनमे से अनेको के विषय में यहां तक वखाना जाता है कि आप उन्हे प्रत्यक्ष दर्शन देते है। यह क्या इस दीन सेवक के प्रति आपका अन्याय नही है प्रभु ?··· नही है। राम सो भलो कौन, मो सो कौन खोटो। मैं दुर्मति अपने ही परम करुणामय स्वामी के लिए ऐसे कुटिल विचार रखता हूं। जिन्होंने अहल्या के साथ न्याय किया, शवरी के अज्ञान को न देखकर उसके प्रेम को सराहा, लोक-कल्याण के लिए रावण और राक्षस कुल का वध किया, उस परम न्यायी और अनन्त करुणामय साहव को मैं अपने मोहवश अन्यायी कह रहा हूं, यह क्या मेरा छोटा अपराध है ? मुझे धिक्कार है, धिक्कार है। रामभद्र, मुझे क्षमा करो। जगदम्वा, राम वल्लभा, वच्चे की खोट को मां क्षमा कर दिया करती है। मालिक के मन से तुम्ही मेरे प्रति रोष को हटा सकती हो। मैया, जो सीधे साहव से कहने मे आपको संकोच हो तो लखन जी से कह दीजिए। वह तो मुंहफट है, राम उन्हे चाहते भी अधिक हैं, वह कह देंगे तो मेरा भला हो जाएगा। कह दो मां, कह दो।'

भोली भावुकता मे वहते-वहते तुलसीदास ऐसे आत्मविभोर हो जाते थे कि उनके लौकिक कर्तव्यो पर कभी-कभी आंच आ जाया करती थी। उन्हे महन्त जी

की डांट मुनने को मिलती। ईर्ष्यालु साधुओ की खोटी निन्दा और झिड़किया भी मिलती। वे इससे दुखी होकर और भी अधिक क्रोध मे राम-रट लगाते। परन्तु इसका प्रभाव भी अच्छा न हुआ। जिस दिन बहुत आग्रह बढता उस दिन उनके ध्यान मे रत्नावली बार-बार झलक उठती थी। गली-सड़क मे स्त्रियो को देखना उनके लिए भारी पड जाता था। तुलसी एकान्त मे भूमि पर मत्था रगड-रगडकर गुहारते है—'हे राम, मेरी यह परीक्षा न लो प्रभु, मुझे इस धुंधले प्रकाश से तीव्र आलोक के लोक मे ले चलो। अब कामाधकार के पाताल मे न ढकेलो नाथ, दया करो।' × × ×

"काम और राम के बीच मे चुनाव के क्षण आने पर निश्चय ही मेरी चेतना उठकर मुझे काम-प्रलोभनो से बचा लेती थी। दर्शन-साहित्य और कला के संस्कारो से जिस सौंदर्य की चाह राम-रूप लेकर मेरे मन मे जागी थी, उससे लुभावने से लुभावना नारी-सौंदर्य भी मेरे मन की कसौटी पर चढकर फीका पड़ जाता था। कुछ भक्तिनो ने मुझे अपने प्रलोभन में फांसना चाहा किन्तु राम ने बचा लिया। मेरी भक्ति-निष्ठा दूसरे साधुओ के मन मे ईर्ष्या जगाने लगी।" × × ×

एक दिन छबीली मालिन फूलो की डलिया लिए मठ मे प्रवेश करती है। आंगन मे बाबा मुक्तानन्द कही से आई हुई सब्जियो को डले से छाट-छाट कर उन्हे अलग-अलग रख रहे थे। छबीली को देखते ही उनकी बाछे खिल गई, बोले—"जै सियाराम छबीलो।"

छबीली ने कोई उत्तर न दिया, मुह घुमाकर देखा तक नही, भारी चाल से आगन पार करने लगी। मुक्तानन्द उसके पीछे-पीछे दौड़े। पास पहुंचकर कहा—"छबीलो महारानी, महन्त जी से आज हमे दस टके दिलवाय देव। तुम्हारा बड़ा उपकार होगा। उसमे से दो तुम ले लेना।"

बड़ी अदा से अपनी मुट्ठी बंधा बाया हाथ कमर पर टेककर खड़ी होते हुए छबीली ने कहा—"बाकी आठ का क्या करोगे ?"

मुक्तानन्द ने धीमे उदास स्वर मे कहा—"हमारी चेली का मरद बीमार पड़ा है, बहुत बीमार है। जगतू बैद साला ऐसा लालची है कि मुफत मे औषध देने को तैयार नही।"

"तो तुम्हे चेली के मरद से क्या मतलब ? वह मरेगा तो चेली आठो पहर तुम्हारी सेवा में रहेगी।"

"छबीलो, तुम तो समझदार होकर भी नासमझी की बात करती हो।"

"क्यो ?"

"अरे मरद रहेगा, तभी तो वह उसे धोखा देकर हमारे साथ प्रेम निबाहेगी, और जो वह मर गया तो फिर जग मे मेरा पाप उजागर होने से बच न पाएगा। इसीलिए उसके मरद को जिलाए रखना चाहता हूं।"

"तुम्हारे पापों को अजुध्या जी मे कौन नही जानता ?"

"वैसे तो छबीलो रानी तुम्हारे पाप को भी सब बखानते है। जिसको हमारे

महंत जी से काम कराना होता है वह तुम्हारे ही पैर पकड़ता है।"

छबीली के होठो पर गुमान-भरी मुस्कराहट खेल गई, फिर ठुनककर कहा—"मेरा तो मरद तक जानता है। हजारों बार निगोड़े ने मुझे मारा-पीटा भी पर महत जी की सेवा से मोहे अलग नही कर पाया। मेरा पिरेम-भाव सच्चा है।"

"अरे प्रेम नही, तुम तो साकछात भग्ती करती हो भग्ती। एक महात्मा ने प्रेम-भग्ती का जो अरथ हमको समझाया रहा सो प्रतच्छ प्रमाण मे उसे हमने तुम्ही मे देखा। ऐसा प्रेम तो किसी गोपी ने भी कृष्ण भगवान से नही किया होगा, जैसा तुम महंत जी से करती हो। दस टके दिलाय देव, तुम्हारे लिए कौन बड़ी बात है।"

छबीली इठलाती हुई खड़ी रही। वह इस मुद्रा मे मुक्तानन्ददास को देख रही थी कि हम तुम्हारी खुशामद से खुश है, पर थोड़ी-सी चिरौरी और करो तो हम संतुष्ट होकर तुम्हारा काम करा दे। मुस्कराकर बोली—"गनेसी महराज कहते रहे कि तुम सुहागा के पैर दबाते हो।"

मुक्तानंददास सुनकर उत्तेजित हो गए, बोले—"गनेशी साला बड़ा दुष्ट है। अरे, मेरी चेलिन तो फिर भी तेलिन है पर गनेशी तो नीच से नीच जाति की स्त्रियो के पैर दबाता है। सूप बोले तो बोले, चलनी क्या बोले जिसमे बहत्तर छेद। (खुशामद मे मुस्कराकर) और वैसे तो जो हनुमानशरणदास हमसे कहता रहा कि महंत जी भी तुम्हारे पैर…"

"धत्! आओ, हम कुठारी जी से तुम्हे पैसे दिलवा दें। तुम्हे तावे के टके ही तो चाहिए न?"

"मुझे सोने, चादी, जवाहरात का मोह नही है छबीलो भक्तिन।"

भीतर के छोटे आगन मे प्रवेश करते हुए छबीली ने धीमे स्वर मे मुक्तानद से पूछा—"बाबा, ये कुठारी जी का भेद अभी तक नही खुला। इसके पास कौन है?"

मुक्तानंद बोले—"अरे छबीलो, वो खरा भगत है।"

"हटो भी, कलयुग मे कोई खरा भगत नही होत। ये दिन मे कही जाता-आता तो जरूर है। बाबा-बैरागियो मे कोठारी जी जैसा सुन्दर कोई नही है। जरूर किसी बड़े घर की औरत से इसका नाता होगा।"

"रामजाने छबीलो, बाकी हमने तो जिस-तिस से यही सुना है कि जलमभूमि वाली महजिद के पास इकंत मे बैठा-बैठा माला जपा करता है। इसका जोग किसी तरह से भिरष्ट हो तो हमारे मन को चैन पड़े। हम सब पुराने-पुराने पहुचे हुए सिद्ध-बैरागी लोग और महंत जी जैसे महत्तमा बिना दर्शन के रह जाएं। और यह ससुरा माला जप-जप के दर्शन पा जाए, ई तो बडा अन्याय होगा छबीलो। देखो साला बही-खाता छोड़के आखे मूदें माला जप रहा है।"

सामने कोठरी मे तुलसीदास ध्यानमग्न होकर गोमुखी मे हाथ डाले माला जप रहे थे। उनके समाने बही, कलम-दावात और कुछ छुट्टे लिखे हुए कागज रखे थे। कोठरी मे आर-पार दो द्वार थे। महंत जी के कक्ष मे जाने का रास्ता भी उधर ही से था। छबीली ने इठलाते हुए कोठरी से प्रवेश किया और कहा—"जै सियाराम कुठारी जी।"

जपते-जपते तुलसीदास ने अपनी आखे खोली, आखो ही आंखो मे उसके

सियराम का प्रति उत्तर दिया।

"कोठारी जी, इन्हें तांबे के दस टके दे देव। इन्हे जरूरी काम है।"

अपनी ओर देखती छबीली की प्यासी आंखो और कामुक मुद्राओं से दृष्टि हटाकर मुक्तानंददास की ओर देखते हुए तुलसीदास ने कहा—"महंत जी की आज्ञा के बिना मैं आपको धन नही दे सकूगा।"

तुलसी के द्वारा अपने को नजरंदाज किए जाने से छबीलो चिढ़ गई, बोली—"हम कह रहे है। इन्हे दस टके देव।"

छबीलो की ओर बिना देखे ही तुलसीदास ने कहा—"बिना महंत जी की आज्ञा से मैं ऐसा नही करूंगा। क्षमा चाहता हूं।"

छबीलो का मिजाज घमण्ड की अटारी पर चढ गया, बोली—"मेरी बात काटते हो ? अपने को बड़ा सुन्दर, बड़ा भगत मानते हो ? मैं बड़े-बड़े राजे-महराजो की अकड़ भी नही सह सकती, तुम कौन चीज हो !"

तुलसी ने शान्त स्वर मे आखे नीची करके कहा—"महंत जी की आज्ञा के बिना मैं मठ का एक तिनका भी किसीको नहीं दे सकता। मुझे क्षमा करो।"

छबीलो गुस्से में भरी धमधम पैर पटकती हुई भीतर चली गई। मुक्तानन्द वही खड़े रहे, कहा—"कोठारी जी, ये बड़ी दुष्टा है, अभी जाके महंत जी के उल्टे-सीधे कान भरेगी।"

तुलसी बोले—"मुझे सच की परवाह है झूठ की नही। आपको पैसो की आवश्यकता क्यों पड़ी ?"

मुक्तानद जी झेंप गए, कहा—"आप सन्त है, आपसे झूठ बोलने को जी नहीं चाहता, पर कहने मे भी संकोच लगता है।"

"तो महंत जी से कह देते। धन के लिए एक कुलटा स्त्री का सहारा लेना आप जैसों को शोभा नही देता।"

तभी भीतर से एक गर्जन-भरी पुकार आई—"तुलसीदास !"

"आया महाराज।" तुलसीदास गोमुखी वही रखकर झटपट भीतर गए। छोटा-सा दालान पार करके उन्होने महंत जी के कमरे मे प्रवेश किया। सजा-बजा गुलाबी कक्ष था। चादर-तकिया, यहा तक कि कमरे की दीवारे भी, बसती रंग से पुती हुई थी। महंत जी गोल तकिये के सहारे छबीली के द्वारा लिया हुआ गजरा पहने बैठे दाहिने हाथ से फूलो का गुच्छा उठाए, उसे अपनी नाक के सामने घुमा रहे थे। मालिन चौकी से हटकर नीचे बैठी हुई पानदान खोल रही थी। कमरे के भीतर प्रवेश करते हुए तुलसीदास का मन घृणा से कस गया। उन्होंने द्वार के पास ही खड़े होकर महंत जी से पूछा—"आज्ञा महाराज !"

"तुमने हमारी छबीलो भक्तिन का अपमान क्यो किया जो है सो ?"

"मैं जाने-अनजाने किसीका अपमान नही करता महाराज।"

"तुमने उसकी बात क्यों नही मानी ?"

"किस अधिकार से मानता ?"

"जब इस भक्तिन की बात मैं मानता हूं तो तू कानी कौड़ी का मनई भला कैसे नही मानेगा ?" महंत जी झपटकर बोले।

"देवार्पित सम्पत्ति की एक कानी-कौड़ी भी व्यर्थ खर्च करने का अधिकार न्यायत: स्वयं आपको भी नही है, पर आपकी फिर भी सुन लेता हू। इसकी आज्ञा नही मानूगा।"

"मेरे सामने कहते हो कि नही मानोगे? कृष्ण भगवान रुकमिणी आदि सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियो का अपमान सह सकते थे जो है सो प्रन्तु अपनी प्रिया राधा का अपमान उन्हे एक क्षण के लिए भी सहन नही हो सकता था जो है सो। प्रेम का आदर्श बहुत ऊंचा है। तुम्हारे जैसे मालाफिराऊ व्यक्ति प्रेम की महिमा का पार नही पा सकते, समझे?"

तुलसीदास सिर झुकाए चुप खड़े रहे।

छबीलो बड़े सुहाग, संतोष और ठसक के साथ बैठी पान लगा रही थी। महंत जी ने कहा—"यह न समझना कि अपनी भक्ती से तुम लोक-दृष्टि मे भी हम लोगो से ऊचे उठ गए हो।"

"मैं इस प्रकार की बातें स्वप्न मे भी नही सोचता महाराज, और न परकीया प्रेम के महात्म्य पर ही विचार करता हू। मेरे मर्यादा पुरुषोत्तम सरकार तो एकपत्नीव्रती है। यदि आपकी पत्नी होती तो कदाचित् उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर लेता।"

लगाया हुआ पान का बीडा उठकर महंत जी को देते समय छबीलो ने आंखें तरेरकर तुलसीदास को देखा और तीखे स्वर मे कहा—"मुझे नीचा दिखाय के कोई इस मठ मे रह नही सकेगा। बड़े महराज, इससे कह देव।"

पान लेते समय अपनी परकीया प्रिया का हाथ स्पर्श करते हुए महंत जी भी साथ ही साथ गरजे—"हा, मैं यह सहन नही करूगा जो है सो।"

तुलसीदास ने हाथ जोड़कर कहा—"तब महाराज तालियो का गुच्छा लाकर मैं सौपे देता हू। आप एकबार भण्डार घर संभालने की कृपा करें। मुझसे आपकी सेवा न हो सकेगी।"

सुनकर महंत जी की आंखें लाल हो गईं, बोले—"मैं तुम्हारा अजुध्या जी मे टिकना असभव कर दूंगा जो है सो।"

"वह आपके हाथ मे नही है महाराज, जब तक अयोध्यापति की दृष्टि मुझ अकिंचन पर सीधी रहेगी तब तक कोई लम्पट, कुचाली, व्यभिचारी, चाहे वह कितना ही बड़ा सत्तावान हो, तुलसीदास को यहा से नही निकाल सकता। जै सियाराम।" शांत भाव से बात उठाकर भी तुलसीदास अपना सात्विक आक्रोश रोक न पाए। पुण्यात्मा का स्वाभिमान पापियों के दम्भ के आगे झुक न पाया। वह तेजी से द्वार के बाहर निकल गए, फिर पलटकर कहा—"ताली, कूची संभाल ले, मैं अब यहा एक क्षण भी नही ठहरूंगा।" × × ×

"हमारे मन मे उस समय बड़ा क्रोध उपजा। एक बात और कहू, व्यभिचारिणी स्त्रियो के लिए मेरे मन मे ऐसी घृणा बैठ गई कि पूछो मत। कभी-कभी तो ऐसा लगता था कि मैं प्रतिक्रियावश स्त्री जाति से ही घृणा करने लगा हूं, पर वस्तुत: ऐसा नही था। रत्नावली अब भी मेरे मन पर अनेक प्रकार के सुन्दर

संस्कारो का प्रतिविम्ब बनकर छाई हुई थी। उसके गुणों के प्रति अनुराग रखकर भी मन से अलिप्त रहूं इसलिए जगज्जननी का ध्यान करता था।"

"मठ को छोडकर फिर आप कहां गए गुरू जी ?"

"अयोध्या मे ही रहा और कहा जाता। मांग के खाना और रात में मस्जिद के बाहर फकीरो के वीच मे सोना, यही मेरा क्रम बन गया।" कहते हुए बाबा की आखे झीनी होकर किसी अलक्ष्य केन्द्रविन्दु पर ठिक गई। कुछ रुककर फिर कहने लगे—"उन दिनो अयोध्या से लेकर काशी तक भीपण अकाल फैला हुआ था। प्रायः हर समय बस्ती में भूखे ग्रामीणो के झुण्ड के झुण्ड आते हुए दिखलाई दिया करते थे।" × × ×

३५

फटे हाल, काल की कठोर मार से पिटे हुए चेहरो वालो की सैकड़ो करुण आंखे इधर-उधर हर गली-कूचे मे, हर द्वार पर आशा की एक बुझी-सी चमक लिए हुए हर समय दिखलाई पडा करती है। "येऽम्माराज ! येऽम्माई-बाप ! दाया हुइ जाय—बहुत भूखे हन।"

बड़ी-बड़ी हवेलियो के दरवाग भीड़ को डण्डों से धमकाकर पीछे हटाते हुए नजर आ रहे है। भूखे जन रोटी के वजाय मार और गालिया खा रहे है। कही-कही सदाव्रत भी वंट रहा है। दो मुट्ठी लैया, चना या मोटा नाज पाने के लिए भूखी भीड़ इस उतावली से आगे वढती है कि आपस मे धक्का-मुक्की हो जाती है। जगह-जगह गाली-गलौज, मार-पीट। बच्चे कुचल जाते है। कमजोर वूढे-वूढिया उतावले जवानो के धक्को से चुटीले हो जाते है। कभी-कभी पीछे रह जानेवाले जवान स्त्री-पुरुष गिरे हुए वूढो के ऊपर से फ़लांगते हुए ऐसे अन्धाधुन्ध भागते है कि उनकी ठोकरों से गिरे हुए दुर्वलो की चीत्कारे वातावरण को भी करुण वना देती है।

तुलसीदास दर्द से छलकती आंखों से यत्र-तत्र यह सारे दृश्य देख रहे है।

एक जनेऊधारी फटेहाल ब्राह्मण ने अपनी रोटी खा लेने के वाद अपने सामने की पगत मे वैठे हुए एक डोम की अधखाई रोटी को लालच-भरी दृष्टि से ताका और सयाने कौवे की तरह घात लगाकर वह उसकी रोटी उसके हाथ से छीनकर ले भागा। एक देहाती खाते-खाते गरजा—"ए दूवे, अरे ई का करयं ? अरे नीच कौम की जूठी ले भागा ?"

उतावली से जूंठी रोटी का टुकड़ा अपने मुह की ओर वढाते हुए वह वोला—"पेट की जात एक है।" और रोटी का टुकडा जल्दी से अपने मुह मे ठूस लिया। वह व्यक्ति, जिसकी रोटी छीनी गई थी, खूनी आखे लिए वावला वनकर झपटता हुआ आया। उसने खाते हुए ब्राह्मण को धक्का मारकर गिरा दिया और उसकी छाती पर पैर रखकर उसका गला दवाने लगा। ब्राह्मण के मुह से कौर छूट गया। डोम ने

उसे उठाने के लिए ब्राह्मण का गला छोड़कर हाथ बढ़ाया ही था कि तीसरा भूखा उस उगले-कौर को उठा ले भागा। तुलसीदास 'हे राम!' कहकर रो पड़े।

दो तगड़े लठैत मुच्छाडिये जवान दस-पंद्रह फटेहाल, जर्जर किन्तु सलोने नाक-नक्शोवाली जवान लड़कियो को लिए हुए पीपल के तले बैठे हे। एक सफेदपोश अधेड़ उन लड़कियों का निरीक्षण कर रहा है। किसी की ठोढी ऊपर उठाकर चेहरा देखता है, किसी के गाल पर चुटकी काटता है। उसकी सुरमीली आखे किसी-किसीको देख-देखकर भूखे भेडिये की जीभ जैसी बाहर निकल पडती है। वह एक लठैत से कहता है—"झब्बूलाल, माल बहुत उम्दा नही लाए। ये सबकी-सब ससुरियां बस चौका-बासन और झाड़ू-बुहारू करने लायक ही है। इन्हे कोई नही खरीदेगा।"

लठैत मुस्कराकर बोला—"इनमे से कितनी को देखकर तुम ललचाए हो। तुम्हारी आंखे हमसे छिपी थोडे है। सौदा कायदे से करो कल्लू खां। हम तुम्हारी बातो मे नही आवेंगे। महजिद मे कई सिपाही हमसे घर बसाने के लिए औरतें माग चुके हैं। हम इनका अलग-अलग सौदा करेंगे तो जादा लाभ पाएंगे।"

"ज्यादा बक-बक मत करो। अजुध्या मे कल्लू खा के रहते तुम्हारे बाप-दादों की भी यह मजाल नही है कि किसी दूसरे से इनका सौदा कर सको। मैं इन सबके आठ रुपये दूगा। सबको मेरे हाते में छोड़ आओ।"

"आठ तो बहुत ही कम है कल्लू खां। रुपये में दो औरते खरीदोगे? हमारी मेहनत देखो। आज की महंगाई देखो।"

"सब देखा-भाला है। पद्रह लडकियां है। मैं तुम्हे आठ आने ज्यादा दे रहा हूं। इनको खिला-पिलाकर किसीको दिखाने लायक बनाने मे मेरी कितनी लागत लगेगी, यह भी तो सोचो। तुम्हारा क्या, देस मे इतने कहत-अकाल पड़ रहे है, ससुरी चीटियो की तरह गली-गली मे औरतें रेंगती दिखलाई पड़ रही है। इन्हे बटोरने में भला कोई मेहनत पड़ती है?"

अलग खड़ा लठैत झड़पकर बोला—"आठ रुपये मे हम सौदा नही करेंगे झब्बू।" कहकर उसने अपने पास बैठी हुई लडकी को हल्की-सी ठोकर लगाकर कहा—"उठो, हम सीधे महजिद के बाजार मे जा रहे थे। इन्होने बीच मे ही अटका लिया।"

"तेरी साले की ऐसी-तैसी, (आवाज ऊंची उठाकर) ओरे उसमान खा! बकरीदी! आ तो जाओ सब जने। साले, तेरी इन सारी भेड़-बकरियों को अभी लंगड़ी-लूली बनवाए देता हूं और तुम दोनो की तो हड्डी-पसलियो का चूरन बनवा दूगा। कल्लू खा के महल्ले से माल लेकर निकल जाना आसान काम नही है बेट्टा।"

झब्बूलाल गिडगिडा कर हाथ जोड़ते हुए बोला—"खा साहेब, हम तो तुम्हारी परजा है परजा। दिल्ली के बादसाय औरो के होगे हमारे तो तुम्ही बादसाय सलामत हो। ये सुकुरुवा बड़ा बेअकल है, चुप नही रहता साला। (सुकुरू से) देखता क्या है छिमा मांग, खां साहेब से।"

खा साहब बोले—"मैं अपनी खुशी से आठ दे रहा था, अब सात ही दूगा। और फिर हुज्जत की तो ···"

"नही-नही खा साहब, हम आपसे हुज्जत-तकरार थोड़े ही करेगे। हम तो आपकी परजा है।"

तुलसीदास देख रहे है। उनका मुख गंभीर, विचारमग्न है।

रामघाट पर कगलो की भीड़ रात मे सो रही है। कुत्ते भूक रहे है। तुलसी दास को नीद नही आ रही, टहलते हुए वहां चले आए है। एक घटवाले के सूने तखत पर बैठ जाते है। वे दु:खाभिभूत है। तखत से कुछ दूर पर ही गुडमुडी मारकर लेटे हुए एक कगले ने सिर उठाकर तुलसीदास की ओर देखा, पूछा—"को आय ?"

सांत्वना-भरे स्वर मे आगे बढकर उससे कहा—"घबराओ मत रामभगत, तुम लोगो को कोई हानि पहुंचाने के लिए नही आया हू। राम जी की लीला देख रहा हू।"

वह व्यक्ति उठकर बैठ गया और कांपती हुई आवाज मे बोला—"हा भैया, हम लोग अब बस देखने-भर को ही रह गए है। सुनते थे कि कभी यहां रामराज रहा। अब तो राम जी की अयुध्या मे भी रावण का राज है। हम पंचो की कौन सुनेगा। (सांस भरकर) भेड़-बकरियां भी ऐसे नही हंकाई जाती जैसे हम अपने गांव से हाके गए। क्या कहे !"

"किसी ने तुम लोगों को गाव से निकाल दिया ?"

"अरे, भइया, जब राजा ही लुटेरा हुइ जाय तब परजा का भला कही ठिकाना लग सकता है। हमारा दस बीघे का खेत रहा, राजा जी ने जबरजस्ती जुतवाय लिया।"

"वह राजा है या भूमिचोर ? हे राम ! राम-राम। इस कलिकाल मे सारा समाज, क्या छोटे क्या बड़े सब एक ही लाठी से हाके जा रहे है। गोड-गवांर-नृपाल, महामहिपाल सबके साथ अब साम-दाम-भेदादि की नीति नही रही। दड—केवल कराल दण्ड ! हे राम ! कैसे जिये ये दुनिया ?" × × ×

पुरानी पीडाओं का तीव्र ध्यानाकर्षण इस समय भी बाबा के मुखतेज को अपने भीतर खीच रहा था। उनके चेहरे पर और स्वर पर गभीर उदासी छाई हुई थी। बेनीमाधव जी के चेहरे पर भी करुणा बरस रही थी। बाबा कह रहे थे—"मैंने इतने भयानक दृश्य देखे कि जी पक गया। इन अकालों का कारण इन्द्र का कोप नही था बल्कि राज-समाज की ऐश्वर्य-लिप्सा थी। क्या हिंदू राजे-महाराजे, क्या मुगल-पठान, सभी बडे पाप-परायण है। उनकी चेतना से धर्म शब्द का ही लोप हो गया था। जो जितना बडा हाकिम उसे उतनी ही औरतो का रनिवास चाहिए। किसी की दस; किसी की पचास; सौ, दो सौ, पांच सौ और दिल्ली के रनिवास मे तो सुना कि पाच हजार रमणिया थी। इनके खर्चे के लिए नित्य ही प्रजा के प्राण खीचे जाते थे। राजा विलासी तो उनके चाकर इनसे भी दस हाथ आगे। खड़ी फसल काट ले जायं, गाय-बैल आदि पशु हाक

लें, कौन-सा ऐसा आसुरी कर्म था जो ये कर्मचारी नही करते।"

संत जी कहने लगे—"आपका वो कवित्त—खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि···"

बाबा की स्मृति सुनते ही जाग उठी। उत्साह मे आ गए, लेकिन चेहरे पर विचारो का कसाव और गंभीरता वैसी ही विराजमान थी। स्मृति की स्फूर्ति केवल वाणी की उतावली बनकर ही सामने आई, कहने लगे—"इसी रचना से तो मुझे मानस-रचना की स्फूर्ति मिली थी। महर्षि वाल्मीकि ने क्रौंचमिथुन का वध देखकर अपने उर अन्तर मे जो करुणा का स्रोत पाया था वह राम जी ने असंख्य निरीह जन की यातनाएं दिखा-दिखाकर मेरे मन मे फोड़ दिया।"

सत जी ने पूछा—"रामायण-रचना के हेतु तात्कालिक कारण क्या था गुरू जी?"

"रामघाट पर एक छोटी-सी कोठरी मे एक बूढ़े पंडित जी रहा करते थे। ठिगने से दुबले-पतले, मुंह मे एक दांत नही।" × × ×

सबेरे का समय है। रामघाट पर स्नान करने वाले भद्र वर्ग के नर-नारियों की भीड़ है। आज बसंत पचमी का दिन है। सरयू तट के मैदान मे कई सौ मरभुखों की भीड़ एकत्र है। धनी नर-नारिया रामघाट पर नहाकर इन मरभुखों के आगे मुट्ठी-दो मुट्ठी अन्न डालकर स्वर्ग मे अपना स्थान बनाएंगे और इस धरती-पर आज के दिन सैकड़ों का पेट भरेगा। तट पर आसन बिछाए और आगे एक कपड़े पर रोली-अक्षत-फूल रखकर अनेक वैरागी और भिक्षुक ब्राह्मण धर्म कथाएं सुनाकर अपनी जीविका कमा रहे थे। पोपले पंडित जी घाट के बहुत निकट ही अपनी कोठरी के सामने बैठे थे। तुलसी भगत उन्ही के पास गुमसुम आती-जाती-नहाती, भीख देती-लेती भीड़ के दृश्यो में खोए हुए बैठे थे। बेचारे पण्डित जी का स्वर बुढापे के कारण इतना कमजोर हो गया था कि दूर तक पहुच ही न पाता था। रही-सही शक्ति मुख की दन्तविहीनता ने समाप्त कर दी थी।

बेचारे का प्रवचन कोई नही सुन रहा था। आगे थोड़ी दूर पर बेसुरे किंतु मस्त लहकदार स्वर मे एक वैरागी जोर-जोर से राम जी की रसोई मे बने छप्पन भोगो का विवरण देकर अपने आस-पास बैठी भक्तों की भीड़ को हंसा रहा था, उनके मुंहों में पानी ला रहा था। इन वैरागी जी के सामने बिछे हुए कपड़े पर अनाज और पैसे बरस रहे थे। बूढे पण्डित जी की चद्दर पर अक्षत-फूल को छोड़कर और कुछ भी नही पड़ा था। एक लाला जी और उनके साथ व्यापार कर्म करने वाले पण्डित जी स्नान करके बूढे पण्डित जी के पास आए। "पण्डित जी चरन छुवें, गुरू पाय लागी।" करने के बाद लाला बोले—"अरे पण्डित जी, अभी तक तुम्हारा टाट सूना पडा है। किसीने बोहनी नही कराई?"

पण्डित जी अपनी सफेद बुर्राक खोपड़ी पर हाथ फेरकर उदास स्वर में बोले—"अरे बेटा, वाणी मे बसा मेरा भाग्य अब दुर्बल हो गया है।"

लाला ने अपनी टेंट से ताम्बे का एक टका निकालकर फूलो पर रखा। पंडित जी ने अपने झोले से आधी मुट्ठी खिचड़ी के दाने डाल दिए, बोले—"हा, तुम्हारी

आवाज ने ही भाग्य मन्द किया है पर कलिकाल में किसीका भी धन्धा चल ही नही रहा। रोज की लूटपाट रोज का दंगा। ये देखो कंगलो की भीड। ससुरे हम बस्ती वालों के ऊपर ऐसे टूटते है जैसे मुरदे के ऊपर गिद्ध-कौवे।"

लाला बोले—"पण्डित जी, हम तो तुमसे कई बार कह चुके कि अपनी ये कोठरी और जमीन तुम हमारे हाथ बेच देव। पचास रुपये हम कुछ कम नहीं दे रहे है। चलो तुम ब्राह्मण देवता हो तो हम इक्यावन में भी खुशी से सौदा कर लेंगे।"

बूढे पण्डित जी चुप रहे। बैपारी पण्डित ने लाला से पूछा—"इस जमीन का क्या करोगे, शिवंदीन ?"

"अरे हम अपने बाप के नाम से यहा एक छतरी बनवाना चाहते हैं। साधु-बैरागी आवै, बैठे ध्यान करें, पुन्न होय। मगर ये महराज जी सुनते ही नही।"

बूढे पण्डित जी हसे, बोले—"मेरे बाप-दादों की जगह पर तुम्हारे बाप-दादो का नाम लिखा जाएगा ? यह सौदा हम जीते जी न करेंगे, लाला।"

लाला मुह फुलाकर उठे, बोले—"ये इक्यावन जो तुम्हे दे रहा हूं उतने मे तो किसी कंगले किसान के दस-पाच बीघे खेत कानूनगो को पटायके अपने नाम चढवा लूंगा। तुम्हारी उल्टी मति है पण्डित जी, तभी दुख भोगते हो।"

लाला और उसके साथी चले गए। पण्डित जी अपने-आप ही तेहे में बडबड़ाने लगे—"रुपये का मोह दिखाय रहा है। अरे कभी मेरे स्वर मे भी शक्ति थी। ऐसी कथा बाचता था कि पैसो और अनाज का ढेर लगा रहता था मेरे आगे। हमे-पैसो का मोह दिखाय रहा है। भूखा मर जाऊंगा पर तेरे ऐसे दुष्टों का पैसा नही खाऊंगा, जो असुरो से दूसरो की लूटी गई जमीनों का सौदा करता है।" दुबले-पतले पण्डित जी ने क्रोध मे अपने मसूढ़े भीचे। उनके मन पर फिर दूसरा ताव चढा तो फूलो के ऊपर रखा हुआ लाला का टका क्रोध-भरे कापते हाथ से उठाकर बालू पर फेक दिया—"नही रखूगा इसका पैसा, चाहे आज मुझे भूखा ही रहना पडे।"

तुलसी भगत जी पास ही मे बैठे हुए यह तमाशा देख रहे थे। एकाएक सहानुभूति से भरकर खिसक आए और कहा—'पण्डित जी, आप पिता मैं पुत्र, इस भाव से एक प्रस्ताव करूं, सुनिएगा ?"

पण्डित जी उन्हे ध्यान से देखने लगे, बोले—"तुम्हे हम देखते तो नित्य हैं किंतु पहचानते नही।"

"मैं भी अब राम-शरण मे आ गया हूं महाराज। यहीं अहिरौने मे सरजू ग्वाले के चबूतरे पर रोटी बनाता हूं और मसीत मे सोता हूं। आप मुझे अपने स्थान पर प्रवचन करने दे। जो चढत चढे सो आपकी। ब्राह्मण हूं, आपके लिए खिचड़ी बना दूगा, मेरा भी पेट भर जाएगा।"

पण्डित जी कुछ अकड़-भरे स्वर मे बोले—"भक्ती कर लेना और बात है किन्तु कथा बाचना और प्रवचन करना हर एक के बस की बात नही होती। यह भी एक कला है।"

तुलसी मुस्कराए, कहा—"आपको मेरा प्रस्ताव यदि बुरा लगा हो तो जाने

दें। मैंने तो आपके सात्विक तपोभाव का सम्मान करने के कारण ही यह प्रस्ताव किया था।"

पण्डित जी तुलसी भगत की मीठी बातों से शांत हुए, बोले—"कभी कथा बांची है?"

"हां महाराज, गृहस्थाश्रम मे इसी कर्म से मेरी जीविका चलती थी।"

"अच्छा तो आओ, हमारे आसन पर बैठो और अपना हुनर हमे दिखलाओ।" कहकर पण्डित जी कापते हुए अपने आसन से उठने लगे। तुलसी भगत ने चट से आगे बढकर उन्हे सहारा दिया और कंधे से अपना अंगोछा उतार उनके बैठने के लिए बिछा दिया, फिर कहा—"आपको हृदय मे राम रूप श्रोता मानकर मैं अपना हुनर दिखलाऊंगा। आज्ञा है?"

"हा, हा। बैठो-बैठो। जै सिद्धिदाता गणेश। जै कोशलपति रामचन्द्र।" कह कर पण्डित जी अपने होठो ही होठों मे कुछ बुदबुदाने लगे। तुलसी भगत ने उनके पैर छुए और पण्डित जी के टूटे कुशासन के टुकडे पर पाल्थी मारकर बैठ गए। दस-पाच पल अपने इष्टदेव का ध्यान किया और फिर अपने मधुर-सुरीले कण्ठ से कवित्त पढना आरम्भ किया—

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि, बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी। जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोचबस, कहैं एक एकन सो कहा जाई का करी। बेदहूं पुरान कही लोकहूं बिलोकियत, सांकरे सबै पै, राम रावरे कृपा करी। दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबन्धु दुरित दहन देखि तुलसी हहाकरी।"

स्वर के जादू ने भीड को बांध लिया। इस कवित्त मे काल का ऐसा यथार्थ और करुण चित्रण था कि लोग-बाग वाह-वाह कर उठे। तुलसी ने और भी तन्मय होकर पूरे दरबारी ढंग से अनादि-अनंत परब्रह्म राजाराम की वन्दना करते हुए उनकी उम्रदराज होने का आशीर्वाद दिया। प्रवचन आरम्भ हुआ—इतना दु:ख-दैन्य-अत्याचार पृथ्वी पर है, यह माना, किन्तु राम करुणा के सागर है। राम सर्व समर्थ है। दशरथनन्दन राम अपने जन की विपदा हरने के लिए इस धरती पर फिर आएगे। वे दीनो का दु:ख हरण करेगे। पापियो को डण्ड देंगे और पुण्यात्माओं का सब प्रकार से मंगल करेंगे। यह अयोध्या बडी पावन नगरी है। यहा स्वय भगवान ने नर-देह धारण करके ससार-भर के पापियो का संहार किया था। इसी अयोध्या मे महाराज दशरथ के महलो मे अवध के जन-जन का प्राण मोहने वाले चार राजकुमार आंगन मे खेल रहे है···। तुलसी भगत वर्तमान के दुखो से भरी अयोध्या से भूतकाल की वैभवशालिनी अयोध्या मे अपने श्रोताओं का मन खीच ले गए। थोड़ी ही देर मे उनके आगे खासी भीड़ जुड़कर श्रोता रूप मे बैठ गई।

दूसरे कथावाचकों, विशेष रूप से उस बेसुरे किन्तु मस्त बैरागी को जलन हुई कि यह नया कथावाचक कौन आ गया। तुलसीदास पुराणो की कथाए और राम जी के बखान सुनाते हुए अपने दोहे-कविता सुनाते, बीच-बीच मे वाल्मीकीय रामायण के श्लोक भी गाते चलते थे। उनका प्रवचन ऐसा जमा कि जो नहाकर

लौटता वही उनकी श्रोतामण्डली मे जुड जाता था। जब प्रवचन समाप्त हुआ तो बूढे पण्डित जी के छोटे-से अगौछे पर इतना अनाज और पैसे पड चुके थे कि वे उनके फटे अगौछे की छोटी-सी सीमा लाघकर बालू तक पर फैल गए थे। भक्तमण्डली बहुत प्रसन्न थी। कइयो ने कहा कि महाराज कल फिर कथा सुनाइएगा।

दोपहर के समय पैसे और अनाज बटोरते हुए बूढे पण्डित जी के हाथो में जवानी आ गई थी। गद्गद्-भाव से बोले—"बेटा तुम तो बड़े मंजे हुए, बड़े ही सिद्ध कथावाचक हो। वाह, वाह, आनंद आ गया। कैसी मधुर वाणी है कि वाह! सुन्दर शुद्ध उच्चारण और भाव तो ऐसे है कि बस क्या कहै। ये भाषा के कवित्त क्या तुम्हारे रचे हुए है या किसी और के?"

बालू मे बिखरे अन्न के दानो को बटोरते हुए तुलसीदास ने विनीत किन्तु उल्लसित स्वर मे कहा—"हमारे है। और किसके हो सकते है!"

"धन्य हो, धन्य हो, तुम भैया नित्य हमारे आसन पर बैठके कथा सुनाओ।"

"नही महाराज, फिर तो वही दैनिक जीविका का प्रपच गले मढ़ जाएगा जो छोडके आया हूं।"

पैसे बटोरते-बटोरते पण्डित जी के हाथ रुक गए। कुछ तीखेपन से झिड़कते हुए कहा—"अरे पेट तो चाहे साधु बैरागी हो या घर-गृहस्थी वाला, सभी को भरना पड़ता है। पेट की माया से भला कौन मुक्त भया है! आखिर माग के ही खाते हो न!"

गंभीर होकर तुलसी बोले—"हा महाराज, सरयू ग्वाला हमे नित्य सायंकाल को आधा सेर दूध पिला देता है। राम उसका भला करें।"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"तुलसी। लोग मुझे रामबोला कहकर भी पुकारते है।"

"तुमने हमे पिता कहकर सम्बोधित किया रहा। अब हमारी आज्ञा है कि यही बैठो और हमारी कोठरी मे ही रहा भी करो। वह मूर्ख हमारी पैतृक कोठरी खरीदना चाहता है। अरे, जो इतने पैसे नित्य आवेगे तो छ· महीने के भीतर मैं अपनी इस सारी जमीन पर हाता घेरवाय लूंगा। मरते समय मुझे यह संतोष तो होगा कि मेरे स्थान पर एक सद्ब्राह्मण राम-कथा सुनाता है।"

तुलसी चुप रहे। अपने अंगोछे को झाड़कर शेष अनाज उसमें बाधते रहे। पण्डित जी फिर बोले—"जो इतना अन्न हमारी चढत मे नित्य चढ़ेगा तो हम तुम भी खाएंगे तथा दो-चार और भूखों का पेट भी भर जाया करेगा। हमारी बात मान लो रामबोला।"

तुलसीदास बोले—"आपका यह आदेश मेरे लिए सब प्रकार से मंगलकारी है। आज के प्रवचन का जनता के ऊपर भी सुप्रभाव पडा है। अच्छा तो आज से जब लग अयोध्या जी में रहूंगा मैं आपके साथ ही रहूंगा।"

३६

दूसरे-तीसरे-चौथे दिन और इसी प्रकार हर दिन रामघाट पर तुलसीदास की राम-कथा आरंभ हो गई। वे अपने रचे हुए राम संबंधी काव्य सुनाकर अयोध्यावासियों का मन मोहने लगे। अयोध्या में एक नया स्वर आया था जो पण्डितों औ अपढ गंवारो के लिए समान रूप से आकर्षक था। उसके शब्दो से अमृत बरसता था। तुलसी भगत की कथावाचन शैली ने घाट पर बैठने वाले भिक्षुक, कथावाचको की ही नही बल्कि अयोध्या के जाने-माने रामायणियों की साख भी गिरा दी। लोग-बाग कहते कि ऐसी कथा और कोई नहीं बांचता। होली तक तुलसीदास की ऐसी धूम मच चुकी थी कि अयोध्या का बच्चा-बच्चा उन्हे पहचान गया था।

पडितों में चर्चा छिडी। एक ने कहा—"कौन है ये तुलसी भगत ? कहां से आ गया यह दुष्ट ?"

"अरे रामानुजियो के अखाड़े में कोठारी था, वहां कुछ माल-वाल मारा, सो निकाला गया।"

इसपर एक तीसरे पण्डित जी बीच मे बोल उठे, कहा—"वैदेहीवल्लभ, यह बात सवा सोलह गडे मिथ्या है। मैंने उस मठ के लोगों से सुना था कि छबीलो मालिन के आदेशो की अवहेलना करने पर ही महंत जी इससे विगड गए, सो छोडकर चला आया। आदमी चरित्रवान है।"

वैदेहीवल्लभचरणकमलरजधूलिदास जी त्योरिया चढाकर बोले—"तो यहां ही कौन दुष्चरित्र बैठा है ! हाकिम की विधवा भौजाई हम पर रीझ गई, कहा कि घडी-घडी मे मेरा ग्रह-नक्षत्र विचारो और यही पड़े रहो। मैं अन्न-धन से तुम्हारा घर भर दूंगी। कहा कि यदि मुसलमान हो जाओ तो तुम्हे सरकारी ओहदेदार बनवा दूगी। मैंने कहा कि न मुसलमान बनूगा और न नित्यप्रति तुम्हारे यहा आऊंगा। मै निर्लोभी ब्राह्मण हूं।"

पहले पण्डित जी मुस्कराकर बोले—"पर वैदेहीवल्लभचरण, तुम जाते तो वहां रोज हो। और हमने सुना है कि वह तुम्हे अपने हाथ से मिष्टान्न खिलाती है, और तुम उसके पैर भी दबाते हो।"

"रामदत्त, देखो यदि तुम इस प्रकार मेरे संबंध में झूठी-सच्ची उडाओगे तो मैं भी, क्या नाम के, तुम्हारी पोल खोल दूगा। तुम भी तो गंगू तेली की सातवी सुहागिन के पैर दबाते हो। हे-हे-हे···"

रामदत्त ने हेकड़ी-भरे स्वर मे उत्तर दिया—"मैं नही, वही मेरे पैर दबाती है। पर इससे क्या, हम दुष्चरित्र थोड़े ही है। अरे यह तो कलिकाल मे जीविका के लिए सभी को करना पड़ता है। पैसा तो इस समय ब्राह्मण को रमणी ही देती है भाई। उन्ही मे प्रेम और भक्ति-भाव है। बाकी तो घोर कलिकाल आ गया है समझो।"

तीसरे पण्डित सुदर्शन बोले—"कुछ भी कहो, हमारी नगरी के सभी सम्पन्न

ब्राह्मण दुराचारी है। मैं ही मन्द भाग्य हूँ, कोई ऐसी चेली फंसी नही, सो कहो तो अपने-आपको सदाचारी कह लू।"

श्री वैदेहीवल्लभचरणकमलरजधूलिदास जी समझाते हुए बोले—"अरे भैया, बात हमारी-तुम्हारी नही, तुलसी की चली थी। यदि उसकी ख्याति ऐसे ही बढती चली तो एक दिन निश्चय ही वह सभी विलासिनी पैसेवालियो को अपनी चेली बनाकर मूड़ लेगा। हम सब टापते ही रह जाएगे।"

सुदर्शन बोले—"सबको अपने ही समान न-समझो। मैंने तुलसी को अपनी आखो से देखा है। उसके मुख पर तेज बरसता है तेज, उसे जानने वाले सभी लोग कहते है कि वह खरा राम-भक्त है।"

रामदत्त यह सुनकर चिढ गए, कहा—"जब तुम भी ऐसे बढ-बढ़कर उसकी प्रशसा करोगे तो फिर छुट्टी हो गई हमारी। अरे कोई ऐसा षड्यन्त्र रचो कि जिससे उसका मुख काला हो, यहा से जाय। नही तो किसी दिन यह अवश्य ही हमारी निन्दा का कारण बनेगा।"

वैदेहीवल्लभचरणकमलरजधूलिदास जी षड्यंत्रकारी के दबे स्वर मे बोले—"राम जी की किरपा से हमारे उर, अन्त.करण मे अभी-अभी एक विचार प्रगटायमान भया है महाराज।"

"क्या ?"

"महत रामलोचनशरणदास जी विचारे उस बदनाम गेंदिया दाई के पजे में फस गए है। वह उनसे गर्भवती हो गई है और अब कहती है कि जाहिर जहान मे हमे अपनी रखैल बनाकर रखो। बेचारे आजकल बड़े दुखी है।"

"तो इससे हम तुलसी का क्या बिगाड़ सकते है ?" सुदर्शन ने पूछा।

"हम महत जी से कहेगे कि गेंदा को कुछ पैसे देकर यह पट्टी पढावें कि तुलसी जब कथा कहता हो तभी वह जाकर कहे कि हमे गर्भवती बनाकर अब आप राम-भक्ति का ढोग रचा रहे हो !"

रामदत्त की आखें चमक उठी, बोले—"तुम्हारी योजना बडी अच्छी है। सुना है कि आजकल वह 'जानकी मगल' नामक अपना भाषा मे लिखा काव्य सुनावता है। इसी बीच में गेंदा यदि यह नाटक रचावें और उसे कलकित कर दे तो हमारा सबका ही मगल हो।"

सुदर्शन बोले—"ठीक है, रामलोचनशरण जी उसे जो द्रव्य देंगे वह तो उसका होगा ही, मैं भी उसके हाथ थोडे-बहुत पूज दूंगा। यह वैदेहीवल्लभ भी पोढे असामी है, कुछ न कुछ यह भी उसकी नजर-भेंट कर देंगे।"

"तो सुदर्शन, तुम आज ही गेंदिया को पटा लो।"

सुदर्शन पण्डित बोले—"जिस दिन आप लोगो के समान मुझे स्त्रियो के पटाने का ज्ञान सिद्ध हो जाएगा, उस दिन मैं भी आप लोगो के समान ही सम्पन्न बन जाऊगा।"

वैदेहीवल्लभचरणकमलरजधूलिदास जी का मुह फूल गया। झुंझलाकर बोले—"तुम बार-बार हमारे चरित्रो पर उंगली क्यो उठावते हो जी ? अरे यह तो हमारी जीविका कमावने की नीति है। इसका वास्तो में दुश्चरित्रता से तनिक

भी संबंध नही है।"

सुदर्शन ने कहा—"स्त्रियो से बात करते मुझे बड़ी लज्जा आती है। मैं तो अपनी घरवाली से भी खुलकर बात नही कर पाता।"

रामदत्त बोले—"अच्छा तो यह काम हमी करवा देंगे। हो सका तो कल, नही तो परसो गेंदिया उसकी कथा मे अपनी कथा जोडने को पहुच जाएगी।"

पण्डितो की यह बाते होने के तीसरे ही दिन गेंदा तुलसीदास की प्रवचन सभा मे पहुंच गई। राम-जानकी के विवाह का वर्णन सुनते हुए सभा तन्मय हो रही थी। एकाएक गेदिया आगे की पंक्ति में घसकर हाथ बढाकर बोली—"अरे वाह रे मुरदुए, हमे (अपने बढे हुए पेट की ओर संकेत करके) इस झमेले मे डालकर यहा बैठे भगतबाजी कर रहे हो ? वाह रे ढोंगी, वाह !"

कथा मे विघ्न पड़ने से कुछ व्यक्ति नाराज हो गए, बोले—"निकालो इस दुष्टा को। ये कौन आ गई यहां ?"

पीछे से कोई बोला—"अरे यह तो गेंदिया है, गेंदिया। अजुध्याजी के रसियो के हाथो मे सचमुच गेद की तरह उछलती है। इस दुष्टा को जरूर ही किसी ने हमारे भगत जी को कलंकित करने के लिए भेजा है।"

गेदा आखे मटकाकर और हाथ बढाकर बोली—"मुझे कोई क्यो भेजने लगा ! अरे आप ही मेरे पास घुस-घुसकर यह आता था, झूठ-मूठ कहे कि रोटी देंगे, कपड़ा देंगे और अब यहा दूसरी चेलियो को फसाने के लिए ढोग की दुकान लगाए बैठा है, नीच कही का।"

कथा मे विघ्न पड गया। तुलसीदास शांत स्वर से सबको चुप कराते हुए बोले—"सज्जनो, मैं आठो पहर आपकी दृष्टि मे रहता हू। यहां के बाद मेरा अधिक समय जन्मभूमि के पास बैठे ही बीतता है। जिसको शंका हो, वह कही भी किसी भी समय परीक्षा ले सकता है।"

बड़ी चेचामेची मची। गेदिया ने बडा नाटक साधा, पर उसका जादू चल न सका। एक जवान व्यक्ति ने उठकर जब उसके झोंटे पकड़कर खीचा और धरती पर धक्का देने लगा तो तुलसीदास घबराकर अपने आसन से खड़े हो गए और कहा—"ना भैया ना, नारी पर हाथ उठाने से सीता महरानी दुखी होंगी। वे आप इसे दण्ड देगी। छोड़ो, इसे छोड़ो।" कहते हुए वे उस व्यक्ति के पास आ गए और गेंदा को मारने के लिए उसका उठा हुआ हाथ पकड लिया।

गर्भावस्था मे इस धक्का-मुक्की से गेदा जोर से कराहकर मूर्छित हो गई। तुलसीदास आखें मूंदकर हाथ जोडते हुए प्रार्थनारत हो गए, "हे जगदम्ब, यदि स्वप्न मे भी अयोध्या की किसी नारी के लिए मेरे मन मे विकार आया हो तो मुझे अवश्य दण्ड देना।"

इस घटना के बाद से अयोध्या मे तुलसी भगत की महिमा अनायास ही बहुत बढ गई। लोगो मे यह बात भी फैल गई कि रामलोचनशरण और वैदेही-वल्लभचरणकमलरजधूलिदास आदि ने षड्यंत्र करके तुलसीदास को अपमानित कराना चाहा था। यही नही, यह खबर भी फैली कि गेंदिया के पति ने उसे

अपने घर से निकाल दिया है ।

पूजे जानेवाले व्यक्तियो के चरित्र पर अयोध्या मे दबी-ढकी बातें तो गली-गली मे हुआ ही करती थी किन्तु इस घटना के बाद अयोध्या के जवान मुखर हो उठे थे । तुलसीदास का व्यक्तित्व, सदाचार के प्रति आस्था का प्रतीक बन गया । उनके प्रवचन मे अधिक भीड़ होने लगी । होली के तीन दिन पहले जब 'जानकी मगल' पूरा हुआ तब अन्तिम दिन आरती में इतना अन्न-धन चढ़ा, जितना पहले कभी किसी कथावाचक की आरती मे नही चढा था ।

एक प्रौढ श्रोता ने कहा—"भगत जी अब तो रामनौमी तक कथा-वार्ताएं सब बन्द रहेगी, पर रामनौमी के बाद आप फिर बराबर कथा सुनाइए । जैसा भाव आपकी कथा सुनकर हमारे मन मे आता है वैसा और किसी की कथा मे नही आता ।"

कई लोगो ने प्राय एक साथ ही इस प्रस्ताव का साग्रह समर्थन किया । तुलसीदास सुनकर आनदाभिभूत हो गए, बोले—"अच्छा, रामनवमी के दिन अवश्य सुनाएगे ।"

"उस दिन तो महाराज यहां कथा कहने की मनाही है ।"

तुलसीदास के मन मे यह बात चुभ गई। बूढ़े पण्डित जी से बोले—"पिताजी, राम जी के विवाह के उपलक्ष्य मे अयोध्यावासियो की ज्योनार होनी चाहिए । जगदम्बा अन्नपूर्णा ने भण्डार भर दिया है ।"

बूढे पण्डित जी ने उल्लसित होकर कहा— 'हा बेटा, हो जाय । अयोध्या मे मंगल तो मनाना ही चाहिए ।"

एक विरक्त प्रौढवय के ब्राह्मण वहा बैठे हुए थे, बोले—"भगत जी एक अरदास मे भी करूगा । आज्ञा है ?"

"कहिए, कहिए, महाराज ।" तुलसी ने मीठी वाणी मे उनका उत्साह बढाते हुए कहा ।

"कहना यह है भगत जी, कि हमारे चारो राजकुमारो का ब्याह तो भया, पर अब बहुओ को अयोध्या भी तो लाइए, तभी ज्यौनार होय ।" एक वृद्ध वणिक सुनकर गद्गद हो गए, बोले—"वाह बाबा जी, धन्य हो, हमारे मन मे भी उठ तो रही थी यह बात, पर हम कह नही पा रहे थे । भगत जी की कबिताई सुनकर चोला मगन हो जाता है । हमी नही, सब लोग यही कहते है ।"

बूढ़े पण्डित जी उल्लसित स्वर मे बोले—"बड़ी शुभ बात है । सुनकर बड़ा हर्ष हो रहा है, तुलसी बेटा ।"

"हा, पिताजी ।"

"देखा पुत्र, हम अयोध्यावासियो की यह इच्छा है । समझ लो कि साक्षात् राम जी की ही इच्छा है । राम जी के घर की बोली मे रामायण की रचना होनी ही चाहिए । हमने सुना है कि बंगभाषा में और द्राविड़ी भाषा मे भी रामायणे लिखी गई है ।"

"हा पिताजी, यह सत्य है । काशी मे पढते समय मुझे महात्मा कंबन और कृत्तिवास जी की रामायणो के कुछ अंश सुनने को मिले थे ।"

"बस तो महराज, आप हमारी भी इच्छा पूरी कीजिए। अरे जब आन गांव के लोग अपानी-अपानी बोली मे गाते है तो हमे भी ऐसा औसर जरूर मिलना चाहिए महराज।" लाला जी ने गद्गद भाव से कहा।

विरक्त जी भी बोल उठे—"हमारे भगत जी को राम जी ने भगती भी दी है और काव्यकला भी। सोने मे सुहागा है। आपको रामायण-रचना करनी ही चाहिए महराज। उससे बडा लोक-मंगल होयगा।"

"स्वयं मेरा भी मंगल होगा महाराज। पिताजी ने सच ही कहा कि यह राम जी की आज्ञा है। सीतामढी मे स्वयं जगज्जननी ने मुझे यह आदेश दिया, बजरंग वीर और वाल्मीकि जी भी मुझे यही आदेश दे चुके है।" कहते हुए तुलसीदास की आखे मुद गई; चेहरे पर मधुर भाव-कम्प आ गया। हाथ जोड़कर बैठे-ही-बैठे सबके सामने भूमि पर मस्तक नवाया, फिर शात आनन्दमय मुद्रा मे कहा—"रामायण रचकर मेरी मुक्ति होगी। आठों पहर राम के ध्यान मे रमे रहने का बहाना मिल जायगा। मेरी भक्ति का रूप भी संवरेगा।"

स्वयं तुलसी के मन मे कई दिनों से वड़ा ऊहा-पोह मचता रहा था, लेकिन सबेरे जब उनके प्रवचन सुनने वाला भक्त समाज जुटता तो वे सब कुछ भूल जाते और तन्मय रामभक्ति रसमग्न होकर काव्य और प्रवचन सुनाते हुए स्वयं भी आत्म-विभोर हो जाते थे। अपने मुख्य श्रोता के रूप मे उन्होने बूढे पण्डित जी को बैठाया था। आरम्भ मे वे केवल उन्हीको सुनाते थे। पण्डित जी मे उन्होने अपनी भावना विशुद्ध ज्ञान-स्वरूप कपीश्वर के रूप मे परिलक्षित की थी। पंडित जी सचमुच सच्चे श्रोता थे। उनकी तन्मयता तुलसी को प्रेरित करती थी। फिर जनता भी उनके ध्यान मे सुखद प्रेरणा बनकर समाने लगी। कथा सुनाने से अर्जित आत्मलीनता का दिव्य सुख पाया। खाली समय मे अपने बौद्धिक मन से लड़ते-झगड़ते, हारते-जीतते हुए वे मन के उस धरातल पर पहुच गए जहा कहनेवाला और सुननेवाला एक ही हो गया था। तुलसी कहते और तुलसी ही सुनते थे। यह स्थिति उन्हे दिनोदिन अधिकाधिक तन्मय बनाने लगी थी।

एक दिन राम-जन्म-भूमि-स्थल पर बनी हुई बाबरी मस्जिद की ओर चले गए। एक सूफी संत सिपाहियों और जनसाधारण की भीड़ को मलिक मुहम्मद जायसी का 'पद्मावत' काव्य सुना रहे थे। दोहे-चौपाइयों में रची हुई वह दिव्य प्रेम कथा सूफी महात्मा के सुमधुर कण्ठ से सुनाई जाकर ऐसी मनोहर बन गई थी कि स्वयं तुलसी भी उस रस मे बह गए और बडी देर तक सुनते रहे। वहां से लौटते हुए उनके मन मे पहला विचार यही आया कि यदि रामायण रचूगा तो दोहे-चौपाइयो मे ही। जन-मन को बांधने की शक्ति उनमे बहुत है।

छंद से मन बंध जाने पर रामकथा आठों पहर तुलसी के मन मे घुमड़ने लगी। मिथिला और सीतामढ़ी मे उमगे हुए भावदृश्य और भी अधिक उमंग के साथ उभरकर तुलसी के मन को बांधने लगे। चूकि 'जानकी मंगल' रच चुके थे इसलिए स्वयवर मंडप से ही रामकथा के दृश्य उनके मन मे उभर रहे थे। राम-लक्ष्मण जब स्वयंवर सभा मे आते है तो उसका वर्णन किस प्रकार हो? श्रीमद्-भागवत मे कृष्ण जी जब कस के अखाड़े मे उतरते हैं तब का वर्णन बड़े ही आलं-

कारिक ढंग से किया गया है। बड़ा सुन्दर लगता है। मुझे भी ऐसा वर्णन करना चाहिए। मुझे कथातत्त्व मूलरूप से वाल्मीकि रचित रामायण से ही ग्रहण करना चाहिए और अध्यात्म रामायण का प्रतीक तत्त्व भी उसमे जोड़ना चाहिए।

आठों पहर तुलसी की आखों के आगे रामचरित्र के विभिन्न दृश्य ही दिखलाई पड़ते थे। इस प्रक्रिया मे उन्हे यह अनुभव होने लगा कि राम का विम्ब भी अब कभी-कभी उनके मन में स्पष्ट होकर झलकता है। कितने सुन्दर है राम ! सौंदर्य उनकी काया मे, बल मे, गुणों में है। हाय, जो कही यह रूप साकार होकर पृथ्वी पर उतर आए तो पृथ्वी पर कैसा आनन्द छा जाय। हे राम जी पधारो, एक बार दीन-दुखियो को दर्शन देकर कृतार्थ करो। आओ राम, आओ। बस अब आ ही जाओ।

रामनवमी की तिथि निकट थी। अयोध्या मे उसे लेकर हलचल भी आरम्भ हो गई थी। जब से जन्मभूमि के मन्दिर को तोड़कर मस्जिद बनाई गई है, तब से भावुक भक्त अपने आराध्य की जन्मभूमि मे प्रवेश करने से रोक दिए गए हैं। प्रतिवर्ष यों तो सारे भारत मे रामनवमी का पावन दिन आनन्द से आता है पर अयोध्या में वह तिथि मानो तलवार की धार पर चलकर ही आती है। भावुक भक्तों की विह्वलता और शूर-वीरो का रणबांकुरापन प्रतिवर्ष होली बीतते ही बढ़ने लगता है। गाव दर गाव के लडवैये न्योते जाते है, उनकी बड़ी-बड़ी गुप्त योजनाएं बनती है, आक्रमण होते है। राम-जन्मभूमि का क्षेत्र शहीदो के लहू से हर साल सींचा जाता है। ऐसी मान्यता है कि विजेताओं के हाथो से अपने परब्रह्म की पावन अवतार भूमि को मुक्त कराने मे जो अपने प्राण निछावर करते है, उनके लिए स्वर्ग के द्वार खुल जाते है। इसलिए शासकों के द्वारा नवरात्रि आरभ होते ही किसी भी सार्वजनिक स्थान पर राम-कथा सुनाने पर पाबदी लगा दी जाती हैं। राम जी का जन्मदिन भक्तो के घरों मे गुपचुप मनाया जाता हैं। पहले तो वर्ष मे किसी भी समय नगर मे खुलेआम कोई धार्मिक कृत्य करना एकदम मना था पर शेरशाह के पुत्र के समय जब हेमचन्द्र बक्काल उनके प्रमुख सहायक थे तब से अयोध्यावासियों को थोड़ी-सी छूट मिल गई थी। तुलसी के मन मे यह बातें चुभी, खीलन बन गईं। राम की जन्मभूमि मे रामकथा न कही जाए यह अन्याय उन्हे सहन नहीं होता था।

तुलसीदास के कानों मे आगामी रामनवमी के दिन होनेवाले संघर्ष की बातें पड़ने लगी। उस दिन अयोध्या में बड़ा बखेड़ा होगा। ऐसा लगता था कि अबकी या तो राम जी की अयोध्या में उनकी भक्त जनता ही रहेगी या फिर बाबर की मस्जिद ही। लोगबाग अक्सर निडर और मुखर होकर यह कहते हुए सुनाई पडते थे कि उन्हे इस बार कोई भी शक्ति राम-जन्मभूमि मे जाकर पूजा करने से रोक नही सकेगी।

बस्ती मे फैली हुई यह दबी-दबी अफवाहे तुलसीदास को एक विचित्र स्फूर्ति देती थी। वे प्रतिदिन ठीक मध्याह्न के समय बाबरी मस्जिद की ओर अवश्य जाया करते थे। मस्जिद के पीछे कुछ दूर पर उजड़ा हुआ एक प्राचीन टीला और था। तुलसी भगत उसपर एक ऐसी जगह बैठा करते थे जहा से जन्मभूमि

वाली मस्जिद उन्हे स्पष्ट दिखलाई दिया करती थी। वे बड़ी देर तक वहा बैठे रहा करते थे। यों मस्जिद के सामने बैठनेवाले मुसलमान फकीरों से भी उनका मेलजोल था। टीले से लौटते समय वे एक बार उनसे मिलने के लिए आते थे।

इन दिनो मस्जिद के आसपास, उनके बैठने के स्थान, उस टीले तक मुगल फौज की छावनिया लगी हुई थी। तुलसीदास एक सिपाही के द्वारा घुडके जाकर अपने नित्य के ध्यान-स्थान से हटा दिए गए। मस्जिद के सामने जाने का तो प्रश्न ही नही उठता था। भावुक तुलसीदास को यह बहुत अखरा। इस प्रतिबन्ध के विरुद्ध उनका मन खौलने लगा, 'रामभद्र, आप साक्षी है, मैंने इस मस्जिद से अपने मन मे कभी कोई दुर्भाव नही रखा। पूजा भूमि इस रूप मे भी पूज्य है। अब भी वहा निर्गुण निराकार परब्रह्म के प्रति ही माथा झुकाया जाता है। रामानुजीय मठ से हटने पर मैं यही सोने आता था। यहा के लोगो से घुल-मिलकर रहता था, तब मैं फकीर था, अब हिन्दू हो गया! हे राम जी, इस अन्याय को मिटाने के लिए एक बार आप फिर अवतार लीजिए।' प्रार्थना करते-करते ही लोभ लगा, 'मेरे जीवनकाल में ही पधारिये नाथ! एक बार मैं अपनी आखो से आपको देख लू। आपके द्वारा छोड़े गए ताजे पदचिह्नों से अपने मस्तक का स्पर्श करने का अवसर पा जाऊं…।'

मन ऐसा तडप उठा कि फिर चैन ही नही आता था। 'राम जी आ जायं… एक बार आ जायं।…प्रत्यक्ष न आए तो काव्य रूप मे ही मेरे मन मे प्रकट हो जाय। भाषा मे रामकाव्य का लोकमंगलमय रूप प्रकट हो।' इस प्रार्थना ही से यह विचार उमगा कि मैं रामनवमी के दिन ही अपनी काव्यरचना आरम्भ करूंगा।

अयोध्या मे बुधवार के दिन रामनवमी मनाई जानेवाली थी। तुलसीदास एक पण्डित जी के यहा पंचाग देखने गए। उन्होने देखा कि नवमी मंगल के दिन मध्याह्न वेला मे ही आ जाती है। उन्होंने ज्योतिषी से कहा—"राम जी का जन्म मध्याह्न मे हुआ था। तिथि जब उस समय आ जाती है तो फिर आप लोग मंगल को ही रामनवमी क्यों नही मनाते?"

ज्योतिषी पडित जी बड़ी ठसक के साथ बोले—"जिस दिन सूर्योदय से ही नवमी रहे उसी दिन हमे उसे मनाना चाहिए।" तुलसी ने अपने मन मे कहा—'तुम किसी दिन मनाओ, मैं तो मंगल को ही अपने राम का काव्यावतार होते हुए देखूगा। बजरगबली का वार है, उन्ही की आज्ञा से यह काव्यरचना करूगा। अत: मेरी रामनवमी मगल को ही मनेगी। उस दिन अयोध्या मे मंगल ही मंगल होगा।' तुलसीदास ने मंगल के दिन ही रामायण-रचना का शुभ सकल्प किया।

३७

दुर्गा अष्टमी के दिन तुलसीदास लिखने के लिए कागद, कलम, दवात आदि सामान खरीदने शृंगारहाट गए। नगर मे सनसनी थी। दुकाने खुली थी पर

गाहक बहुत कम थे। हर दुकानदार अपनी दुकान के एक-आध पट ही खोले हुए बैठा था। हरेक के चेहरे पर भय की आशंका और गुमसुमपन की छाप थी। लोगबाग आखों-आखों मे ही अधिक बात करते थे।

यह दृश्य तुलसीदास के मन मे चलते हुए चित्रों से एकदम विपरीत था। 'जानकी मगल' काव्य का रचयिता रामकथा का अगला प्रकरण जोडते हुए अपने मन मे देख रहा था कि राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न दशरथ के चारों कुमार अपनी वधुओं के साथ राजधानी मे प्रवेश कर रहे है। लौटती बरात का स्वागत करने के लिए पूरे नगर मे सजावट हो रही है। तोरण सजे है। जगह-जगह वन्दनवार सजे है। घर-घर के आगे मंगल कलश लिए नारिया खडी है। जनता मे अपार हर्षोल्लास है। और उसके विपरीत यह मुर्दनी, यह सन्नाटा! हे राम! पीडा भीतर दर भीतर घुटी और उतनी ही गहराई से आशा का एक नया स्वर भी फूटा—"सब मंगल होगा, अवश्य मंगल होगा।" तुलसीदास के मन पर अपनी आस्था का एक अजीब नशा-सा छा गया। उन्हे उस समय किसी भय अथवा अममल की छाया तक नही छू सकती थी। एक कागज वाले की दुकान पर गए।

"जै सियाराम, साहु जी।"

"आइए, महराज पधारिए, पधारिए। मेरे बडे भाग जो आप आए। कहिए क्या अज्ञा है?"

टेंट मे बधी चादी की एक मुहर निकालकर उसे दुकानदार की ओर बढाते हुए उन्होने कहा—"हमे कागद, कलम, स्याही और मिट्टी की एक दवात दे दीजिए। इस राशि मे जितने का कागद मिल सके उतना दे दीजिए, कागद घुटा हुआ चिकना दीजिएगा।"

दुकानदार उठकर पेटी से कागज निकालते हुए एकाएक सिर घुमाकर पूछने लगा—"भगत जी, कविताई मे कथा लिखेंगे न!"

तुलसी मुस्कराए, कहा—"हां, साहु जी, यही विचार है।"

"जरूर लिखिए महराज। जब आप सियाराम जी के ब्याह की कथा बाच रहे थे तो हम पहले के दो दिनो तक सुन्ने गए थे। फिर भाई को जर आ गया सो दुकान से मेरा उठना न हो सका। आप तो ऐसी कथा बाचते है महराज कि रस बरस-बरस पडता है।"

तुलसीदास बोले—"रामकथा का सच्चा भाव तो आप सबके मन मे है साव जी। मुझे उसीको देख-देखकर तो सुनाने की स्फूर्ति मिलती है।"

दुकानदार ने कागज के पन्ने, और उसकी नाप की दो लकड़ी की पट्टिया, लाल खारुवे का एक बस्ता, पीतल की दवात, स्याही की पुड़िया और सेठे की दो कलम के साथ उनकी चादी की मुहर भी लौटा दी।

"अरे, यह क्या साव जी।"

दुकानदार हाथ जोड़कर बोला—"महराज, गाहक तो बीसियो आते है पर मेरा खरा लाभ तो आप ही कराएगे। इन पर आप राम की कथा लिखेगे। उसे मैं भी सुनूगा और सैकडो दूसरे लोग भी रस पाएगे। आप मेरी यह छोटी-सी भेंट सकारें भगत जी।"

कागज आदि लेकर जब वे अपनी कोठरी मे लौटे तो उन्हे लगा कि जैसे सामने सरयूजी से नहाकर राम जी घाट की तरफ बढ रहे है। उनका बलिष्ठ सुन्दर शरीर, उनका दिव्य तेजवान मुख, जल से भीगी हुई केशराशि, सब कुछ इतना स्पष्ट था कि तुलसीदास को लगता था जैसे राम सचमुच ही सामने खड़े हो। लाख प्रयत्न करने पर भी आज से पहले तुलसीदास राम का बिम्ब अपने मन मे इतने स्पष्ट रूप से कभी नही देख सके थे। वे आत्ममोहित होकर खड़े हो गए, उन्हे अपना भान तक नही रह गया था।

उसी समय किसी कारण से बूढ़े पण्डित जी अपनी कोठरी से बाहर निकले। सामने तुलसीदास को खड़े देखा, धीरे-धीरे चलकर वे पास आए, कहा, "अरे, तुलसी, यो क्यो खडा है, बेटा ?"

पोपले मुह से निकली अस्पष्ट आवाज तुलसी के ध्यान मे धक्के सी-लगी, आखो की स्थिर पुतलिया एकाएक डगमगा गईं। आंखों के आगे एक बार अधेरा सा छा गया और जब उनमे फिर से देखने की शक्ति लौटी तो घाट के राम अलोप हो चुके थे, सामने बूढ़े पण्डित जी खड़े थे। उस दिन वे प्रायः गुमसुम ही रहे, अपने मे तन्मय। रह-रहकर उनके चेहरे पर आनन्द की लहरें-सी दौड़ जाती थी। वे एक धुन मे रम गए थे। मंगलवार के दिन सवेरे से तुलसीदास ऐसे सचेत भाव से यह मध्याह्न वेला के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे, जैसे बहुत दिनों बाद अपनी हवेली मे लौटने वाले मालिक की अगवानी के लिए चतुर चाकर फुर्तीला और चाक-चौवन्द होता है।

कोठरी के पास ही एक छोटा-सा चबूतरा था। तुलसीदास ने सवेरे ही से उसे अपने हाथ से लीपा-पोता था। वहा उन्होने कागज-कलम-दवात और कुशासन भी लाकर रख दिया था। काव्यतरग सवेरे ही से हल्की-हल्की लहराने लगी थी, लेकिन कवि संयमी-साधक भी था। मध्याह्न से पहले वह अपने शब्दो को उभरने न देगा। राम जी स्वय शब्द के रूप मे अवतरित होगे।

मध्याह्न वेला के लगभग आधी-पौन घड़ी पहले ही अयोध्या मे जगह-जगह डौंढ़ी पिटी—"खल्क खुदा का, मुल्क हिन्दोस्तान का, अमल शाहंशाह जलालुद्दीन अकबर शाह का ···।" दिल्ली से सरकारी आदेश आया था कि बाबरी मस्जिद के भीतर मैदान मे चबूतरा बनाकर लोग उसपर नवमी के दिन राम जी की पूजा कर सकते है। अयोध्या की गली-गली मे आनन्द छा गया था। भगवान रामचन्द्र की जयकारों के साथ-साथ अकबर शाह की जय-जयकार भी सुनाई पड़ जा रही थी। तुलसी आनन्द से भर उठे।

सूर्य ठीक सिर पर आ गया था। मौसम गरम हो चुका था। धूप अब कुछ-कुछ तपाने लगी थी, किन्तु तुलसीदास के लिए तो वह दिव्य आनन्द से भरी हुई थी। वे चबूतरे पर बैठ गए। गुरु वन्दना का दोहा लिखा और फिर कलम दौड़ चली···

जबते राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए॥···

३८

काव्य तेजी से गतिमान था। अयोध्या में ऋद्धि-सिद्धि-भरे सुखद दिन बीतने लगे। राजा दशरथ के दरबार की रौनक चौगुनी हो गई। भरत जी और शत्रुघ्न जी अपने मामा के साथ अपनी ननिहाल कैकय देश की सैर को चले गए। तभी एक दिन राजा दशरथ ने अपने कान के पास पके हुए केश को देखा। तुरन्त ही उन्होने राम को युवराज पद देने का निश्चय कर लिया। प्रजा मे यह समाचार सुनकर आनन्द छा गया। रनिवास में रामचन्द्र की तीनों माताएं हर्ष और उछाह मे भर कंचन थाल भर-भर मोती-मानिक लुटाने लगी। गुरु वशिष्ठ ने तिलक की लगन शोधी।···काव्यगंगा मन्थर गति से बह रही थी।

तुलसीदास इन दिनो सवेरे से ही लिखने बैठ जाते और मध्याह्न तक उसी तरंग में डूबते-उतराते रमते रहते थे।

बूढ़े पण्डित जी कोठरी के बाहर अपने चबूतरे पर बैठते और तुलसीदास के नये भक्तो को कोठरी के पास जाकर उनके दर्शन करने से रोकते थे। बस्ती में यह बात बडी तेजी से फैली थी कि 'जानकी मंगल' कथा के अन्तिम दिन जब भगत जी को यह बात मालूम हुई कि अयोध्या में रामनवमी पर प्रतिबन्ध लगा है तो वे तडप उठे और उन्होने ध्यान लगाकर कहा कि घबराओ मत, सब मंगल ही मंगल होगा। सच्चे भगत के वरदानस्वरूप ही दिल्ली से रामनवमी मनाने का शाही हुकुम आ गया। तुलसी सच्चे भगत है। अब वे रामायण लिख रहे हैं जिसके पूरे होते ही राम जी फिर से अवतार लेंगे। तुलसी भगत की सच्ची-झूठी महिमा भी उनके काव्य के साथ ही साथ क्रमशः आगे बढ रही थी।

रामनवमी के तीन-चार दिनों के बाद ही दुष्टों की सभा फिर जुडी। इस बार सब लोग महत वैदेहीवल्लभचरणकमलरजधूलिदास जी महाराज के ऊपर वाले चौबारे मे एकत्र हुए। महात्मा वैदहीवल्लभ बोले—"महंत जी, यह तुलसी भगत हम सबकी मान-मर्यादाओ को फलागता भया और, क्या नाम करके, अयोध्यावासियो के सिर पर चढायमान होता भया चला जा रहा है। ये वास्तौ मे बडी चिन्ता का विषै है।"

कथावाचस्पति पण्डित शिवदीन बोले—"और तो सब ठीक ही है, पर वह जो अब रामायण लिख रहा है सो समझ लो कि हमारे विरुद्ध एक भीसणतम खड्यंत्र रच रहा है। उस दम्भी का दुस्साहस तो देखिए। आदिकवि महर्सि वाल्मीकि जी के परमपुनीत काव्य के रहते भये भाखा मे काव्य रचना क्या उचित बात है? मतलब यह कि वह तो कथा बाचने की सारी परिपाटी ही बदल डालेगा।"

महत वैदेहीवल्लभचरणकमलरजधूलिदास जी ने कहा—"अभी से इतना अधिक भयभीत होने की आवश्यकता नही है शिउदीन जी। क्या नाम करके, देखना चाहिए कि वह काव्य सफल भी होता है या नही।"

पण्डित रामदत्त बोले—"कवि वह निःसंदेह उच्च श्रेणी का है। इसमे दो

मत कदापि नही हो सकते । अरे, अपनी कवित्त शक्ति ही से तो उसने अयोध्या-वासियो को आकर्षित किया है ।"

वैदेहीवल्लभ जी ने मुह बिचकाकर कहा—"हांऽऽ, सत्य मे वह गाता मधुर ढग से है । सारा जादू उसके गले मे है ।"

शिवदीन बोले—"अरे, तो फिर किसी तिकड़म से उसको सिन्दूर खिलाय देव, गला आप ही बैठ जाएगा ।"

सुदर्शन पण्डित बोले—"यह असंभव है, हमने सुना है कि वह आजकल केवल फलाहार करता है । दूध पीता है ।"

रामदत्त बोले—"देखिए, आप लोग तो घर बैठे बातें कर रहे है । मैंने उसे स्वय सुना है । एक दिन बातें कर चुका हूं । वह कवि श्रेष्ठ तो है ही किन्तु प्रकाण्ड पडित भी है । अरे आचार्य शेष सनातन जी का शिष्य है, भाई ।"

शिवदीन बोले—"तुम तो उसके बड़े प्रशंसक बन गए हो जी । एक जरा-से भुनगे को हाथी बनाकर हमारे सामने खडा कर रहे हो । यदि वह सास्त्रार्थ से ही उखाडा जा सके तो मैं उसका सामना करने को सहर्स तैयार हूं । मेरी तर्क सक्ति के आगे वह मच्छर भला कहा तक भनभना पाएगा ।"

"आपके तर्कों का आधार क्या होगा ?" महंत जी ने पूछा ।

"राम के सगुण और निर्गुण रूप । मैं कबीर वाली चाल पकड़ूंगा—'दशरथ सुत तिहु लोक बखाना । राम नाम का मरम है आना ।' अर्थात जो दशरथ-नन्दन रघुनाथ को सुमिरे सो अज्ञानी है ।"

रामदत्त हाथ बढ़ाकर बोले—"कथावाचस्पति जी महराज, अयोध्या मे बैठके यह तर्क दोगे ? तुम्हारी खोपड़ी मे जितने बाल बचे है वे सभी एक ही दिन मे झड जाएंगे ।"

"तुमने हमे क्या पागल समझ रखा है जी ? अरे, मैं इस अयोध्या को एकदम आध्यात्मिक रूप दे दूगा । राजा दसरथ दस इन्द्रियो के प्रतीक बन जाएंगे और उनकी तीनों रानिया सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के रूप मे बखानी जाएंगी । तुम समझते क्या हो ?"

प्राय. उसी समय तुलसी भगत कुब्जा मंथरा की कुटिलाई का वर्णन कर रहे थे—

देखि मंथरा नगर बनावा । मंजुल मंगल बाज बधावा ।
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू । राम-तिलक सुनि भा उर दाहू ।।
करै बिचारु कुबुद्धि कुजाती । होइ अकाज कवनि बिधि राती ।
देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गंव तकहि लेउ केहि भाती ।।

राम-जन्मभूमि वाली मस्जिद में जब से राम जी का चबूतरा बन गया था और लोगों को वहां जाने दिया जाता था, तब से अयोध्यावासियों को थोडा-बहुत सतोष तो अवश्य ही हो गया था । मस्जिद के सिपाहियो का व्यवहार भी अब पहले से अधिक सुधर गया था । हिन्दू-मुसलमानो में कटुता कम हो गई थी । यद्यपि कुछ कट्टरपथी मुसलमान अकबर की इस नीति के घोर विरोधी थे, पर

उनकी चल नही पाती थी । तुलसीदास अब नियम से, लिखने के पहले, मस्जिद के भीतर चबूतरे पर विराजमान रघुनाथ जी के दर्शन करने जाया करते थे । एक दिन एक नागरिक ने उनसे कहा—"भगत जी, बहुत दिनों से आपने कथा नही बाची । हमने रामघाट पर आपकी कथा जब से सुनी है तब से ही आपका गुणगान किया करता हू ।"

तुलसी मुस्कराकर बोले—"मैं तो राम के ही गुणगान करता हूं, भाई । आपको जो अच्छा लगता है वह राम का नाम ही है ।"

"अरे राम-राम तो सभी करते है, भगत जी, पर जैसा भाव आप में है वैसा और किसी मे नही है ।"

पास में खड़े हुए कुछ अन्य व्यक्ति भी जोश के साथ इस बात का समर्थन करने लगे । बातों ही बातों मे लोगों का यह आग्रह बढा कि एक दिन फिर कथा सुनाइए । आप जो नया काव्य लिख रहे है, हम उसी को सुनना चाहते है ।

"अच्छा गंगा दशहरे के दिन रामघाट पर सुनाऊंगा ।" × × ×

"गंगा दशहरे के दिन वाली कथा ने एक ओर जहा मुझे अपार प्रोत्साहन दिया वही दूसरी ओर वह मेरे लिए नये संकटो का कारण भी बन गई ।"

"वह कैसे गुरु जी ?" सन्त बेनीमाधव ने पूछा ।

बाबा बोले—"उसकी कुछ चौपाइयां और दोहे अयोध्या में जगह-जगह गाए-गुनगुनाए जाने लगे । मेरे विरोधियों को इससे कष्ट होना स्वाभाविक ही था । इसमें किसी का दोष न मानो बेनीमाधव, यह मनुष्य की प्रकृति ही है । आगे बढनेवाली शक्ति को ईर्ष्यालु लोग पीछे ढकेलने का प्रयत्न करते ही है । रामघाट पर जहां मैं रहता था वहा कुछ बन्दर भी रहते थे । उनसे मेरा बडा नेह-नाता था । जब मैं चबूतरे पर बैठता था तो बन्दरो के बच्चे मेरे आस-पास ही ऊधम मचाया करते थे । एक दिन रात को मैं और मेरे धर्मपिता कोठरी के बाहर सो रहे थे ।" × × ×

आधी रात का समय है, तुलसी और बूढे पण्डित धरती पर चटाई बिछाए सो रहे है । कोठरी के पीछे वाले भाग में एकाएक मनुष्यों की चीत्कारो और बन्दरो के चिंचियाने-खौखियाने के स्वर एक साथ उठे । तुलसी और बूढे पण्डित जी की नीद खुल गई । वे उसी ओर भागे, देखा कि कोठरी की दीवार के पीछे एक व्यक्ति बेहोश पड़ा है । बन्दरों का सरदार दीवाल से सटकर बैठा हुआ गुर्रा रहा है और कुछ बन्दर चीं-ची करते हुए दूर भागे जा रहे हैं । उनके साथ ही भागते हुए मनुष्यों के पैरो की आहट भी आ रही है ।

मनुष्यों और बन्दरो की चीख-पुकार ने घाट पर सोने वाले कुछ और लोगो

उसके पास ही बैठा गुर्रा रहा था।

तुलसीदास ने उसके सिर पर दो बार हाथ फेरा—"शान्त हो जाओ भूरे, शान्त हो!" कहकर तुलसीदास ने अपना बायां हाथ, जो पड़े हुए व्यक्ति की बाह पर रखा तो वह खून से चिपचिपा उठा। तब तक दो-तीन लोग वहां आ गए थे। भूरा वहां से हटकर अलग बैठ गया।

एक बोला—"चोर है, ससुरा सेंध काटिसि है।"

तुलसी बोले—"तभी तो भूरे ने इस पर आक्रमण किया। इसकी कलाई में बड़ी जोर से काटा है, उससे बड़ा लहू बह रहा है। मूर्च्छित भी हो गया है। दिया लाओ गुरुवचन।"

दिया आया, सेंध के अन्दर घुसी हुई चोर की गर्दन बाहर निकाली गई। कोई सेंध की काट देखने लगा, किसी ने पास ही पड़ी कुदाल भी खोज निकाली। कोई इसी मसले पर विचार करता रहा कि इस कोठरी मे सेंध लगाने का भला अर्थ ही क्या है। चढ़त मे चढ़ी हुई धनराशि तो उसी समय कंगलों को बांट दी गई जबकि गंगा दशहरे के दिन दो सम्पन्न भक्तों ने बूढ़े पण्डित जी की इच्छानुसार वहां एक छोटा-सा कथामण्डप और हाता बनवा देने का भार अपने ऊपर ले लिया था।

तुलसी उस समय चोर का उपचार कर रहे थे। उसके मुंह पर पानी के छींटे मार रहे थे। चोर होश में आया, पीड़ा से कराहा। तुलसी शांत स्वर में उससे बोले, "डरो मत, अब तुमसे कोई मार-पीट नही करेगा। भूरे ने तुम्हें काफी दण्ड दे दिया है। लेकिन यहा क्या चुराने आए थे भाई? फकीरों के घर में भला क्या धरा है?"

चोर रोने लगा—"हमसे बड़ा पाप भया महाराज, वैदेहीवल्लभ महाराज ने हमें आपकी पोथी चुराने भेजा था, सो ये बन्दर जाने कहा से कूद पड़े। मेरा एक साथी, लगता है, भाग गया और मेरी ये दुर्गत भई। मुझे छिमा कीजिए महाराज, मैंने बड़ा पाप किया।"

गुरुवचन घटवाला यह सुनकर चिढ़-भरे स्वर में बोला—"ये वैदेहीवल्लभवा सार महा लंपर और कुचाली है। गेंदिया से भी उसीने नाटक कराया था।"

"अजुध्या जी में कुछ लोग तो सारे बड़े ही दुष्ट हैं। चार बुरों के कारण और सब साधुओं को कलक लगता है।"

"भला बताओ, पोथी चुराने का क्या तुक है?"

बूढ़े पण्डित जी बोले—"ये पोथी रच जाएगी तो इन ऐसों को कानी कौड़ी को भी कोई न पूछेगा। अरे कलयुग की माया बड़ी विचित्र है भइया।"

तुलसी गम्भीर विचारमग्न मुद्रा मे बैठे थे। उनका मन एक नये निश्चय पर पहुच रहा था। वे बोले—"जब मधूकरी मागकर खाता और पड़ा रहता था तब कोई बात न थी पर जबसे यह प्रतिष्ठा पापिनी बढ़ चली है तभी से रार भी बढ़ चली है·· मैं अब यहा रहूगा नही। काशी चला जाऊंगा।"

"क्यों भैया, क्यो? अरे हम सबके रहते ये दुष्ट तुम्हारा एक बाल तक बांका नही कर सकते।" गुरुवचन बोला।

"चिन्ता अपनी नही गुरुवचन, इस रचे जानेवाले महाकाव्य की है। सरस्वती ने मेरे जीवन मे ऐसा अमृतवर्षण पहले कभी नही किया, अब तो इसी मोह में फंसा रहना चाहता हूं भाई। रामायण रचते समय मैं पूर्ण शान्ति चाहता हूं। यह झगडा-झंझट चोरी-चकारी का भय मुझसे सहन नही होगा। आज हनुमान जी ने भूरे के रूप में इसकी रक्षा कर ली किन्तु कभी धोखा भी हो सकता है। मेरी विपत्ति पिताजी को भी घेर सकती है।"

बूढे पण्डित जी वोले—"तुम तनिक भी चिन्ता मत करो वेटा, मैं किसी से मिल-जुल कर सुरक्षा का चौकस प्रवन्ध कर लूगा।"

"नही पिताजी, मेरा मन कहता है कि कुछ दिनो के लिए मुझे यहा से टल जाना चाहिए। राम जी के घर मे ईर्ष्या-द्वेषादि की आंधिया उठाना उचित नही। शंकर जी विषपायी है। वहां कवियो और पण्डितो का समाज वड़ा होने के कारण कदाचित् मुझे ऐसी निम्नकोटि के ईर्ष्या-द्वेष का सामना न करना पड़े। मैं कल भोरहरे ही काशी चला जाऊंगा।"

३९

जिस समय तुलसी भगत प्रह्लाद घाट पर अपने मित्र पण्डित गंगाराम के यहां पहुचे उस समय डेढ पहर दिन चढ चुका था। गंगाराम जी का घर रंगा-पुता, पहले से कुछ वदला हुआ, अधिक भव्य लग रहा था। द्वार पर एक दर-वान भी खड़ा था। कन्धे पर अपनी रचनाओं का झोला लटकाए थके-मांदे तुलसी-दास को देखकर दरवान ने हाथ जोड़कर कहा—"दानसाला वाईं ओर है बाबा, चले जाइए।"

"मुझे पण्डित गंगाराम जी से मिलना है, दान लेने नही आया हूं।"

"वो तो महराज जी, इस समै काम कर रहे है। कोई बड़े जमीदार आए है, उनका।"

तुलसी की अहंता फूली। दरवान की वात काटकर यथासाध्य शान्त स्वर मे कहा—"ठीक है, परन्तु तुम उनसे जाकर इतना अवश्य कह दो कि तुलसीदास आए है।"

दरवान विनय दिखाकर तुरन्त चला गया और उसकी विनय ने तुलसीदास को धक्का दिया। मन वोला, 'रे मूढ तुलसी, अभी तेरा अहंकार नही गया! वेचारे दरवान पर रोव दिखाता है।' अपने अपराध के प्रायश्चित स्वरूप तुलसी-दास वही चवूतरे पर वैठकर राम-राम जपने लगे। राम नाम उनकी मति को सही राह पर हांकने वाला डण्डा था। कभी आनन्द गगा वनकर वह उन्हे अपने भीतर किलोलें भी कराता था; वही उनका मोह भी वन चला था। जपानुशा-सित होते ही तुलसी का मन शान्त हुआ। तभी भीतर से गंगाराम तेजी से डग भरते आते दिखाई दिए। तुलसीदास का चेहरा खिल उठा। वे अपने मित्र के

सम्मानार्थ उठकर खड़े हो गए और दो डग आगे बढ आए।

"अरे, तुलसी !" दोनों मित्र एक-दूसरे से आलिंगनबद्ध हो गए, फिर बांहों से उनकी पीठ बांधे हुए ही चेहरे से चेहरा मिलाकर अपना विस्मय झलकाते हुए गंगाराम ने पूछा—"यह क्या वेश बना रखा है ?"

तुलसी की दोनों बाहे गंगाराम की पीठ पर थी, दाहिनी हट गई। बाई के दबाव से उन्हे आगे बढ़ने का संकेत देकर स्वय एक डग बढ़ाते हुए वे मुस्कराकर बोले—"भीतर चलो। सब बतलाऊंगा।"

दालान मे नौकर खड़ा था। गंगाराम ने उसे उंगली और आंखों से तुलसीदास के पैर धुलाने का आदेश दिया और भीतर बैठके की ओर मुंह करके बोले—"अभी आया टोडर जी।"

भीतर से आवाज आई—"हा, हां, महाराज, हमे जल्दी नही है।"

तुलसी बोले—"तुम भीतर चलो, मै आया।" आंगन मे दालान के खम्भे से लगी सगमरमर की चौकी पर बैठकर तुलसीदास स्वयं अपने पांव धोने के लिए उद्यत हुए किन्तु नौकर ने उन्हे ऐसा न करने दिया। हाथ-मुह धोकर ताजे हुए, फिर अपनी झोली उठाने लगे। नौकर स्वयं उसे उठाने लपका किन्तु तुलसी ने बरज दिया—"मैं स्वयं ले जाऊंगा।" भीतर प्रवेश किया तो गंगाराम अपनी गद्दी पर बैठे-बैठे ही हिले और टोडर जी उनके सम्मान मे हाथ जोडकर खड़े हो गए। तुलसीदास की आंखे टोडर से मिली। दोनों ओर नेह की कनी पुतलियों मे चमकी। टोडर देखने मे सुदर्शन थे। बड़ी-बड़ी भव्य मूंछे, गले मे सोने का कण्ठा और मोती माला पड़ी थी। उंगलिया अगूठियों से जड़ी थी—दुपट्टा-अगरखा भी कीमती था।

पण्डित गंगाराम ने हाथ बढाकर तुलसी को अपने पास ही बुला लिया। एक ही गावतकिये का टेका लेकर दोनो मित्र बैठ गए। गंगाराम ने कहा—"ये हमारे टोडर जी यहां के एक बड़े सम्पन्न और धर्मनिष्ठ व्यक्ति है। इनसे मेरा परिचय अब पुराना हो चुका है।"

फिर टोडर से तुलसी का परिचय कराते हुये कहा—"टोडर जी, ये हमारे बचपन के साथी और सहपाठी सुकवि पण्डित तुलसीदास जी शास्त्री कथावाचस्पति है। और ज्योतिष विद्या मे तो मैं इन्हें अपने से श्रेष्ठ विद्वान मानता हू।"

"राम, राम ! टोडर जी, हमारे मित्र की अतिशयोक्तियो पर ध्यान न दे। मैं यदि गगा हू तो यह गंगासागर है।"

गगाराम हस पडे और बोले—"तब तो मैं भी तुम्हारी तरह से कहूंगा कि मै यदि तुलसीदास हू तो तुम साक्षात् तुलसी का बिरवा हो।"

हंसी-विनोद के क्षण बीतने के बाद टोडर ने पूछा—"महाराज, कहा से पधारे है ?"

"अयोध्या से आ रहा हू। अब यहीं रहने का विचार है।" फिर गंगाराम की ओर देखकर कहा—"आजकल सरस्वती देवी की मुझ पर असीम कृपा है। मुझे राममहिमामय बनाने के लिए वे मेरे सुमिरन करते ही दौडी चली आती है।"

"कोई बड़ा काव्य लिख रहे हो तुलसी ?"

"हा, जब से तुम्हारे यहां बैठकर रामाज्ञा प्रश्न रचा था तभी से सरस्वती मैया मुझ पर दयालु बनी हुई है। कई फुटकर छन्द लिखे, 'जानकी मंगल' नाम से एक प्रबन्ध काव्य की रचना भी कर डाली। और इन दिनो सम्पूर्ण राम-कथा लिखने की प्रेरणा मुझे बाधे हुए है।"

टोडर प्रसन्न होकर बोले—"अरे वाह महाराज, यह तो हमारे लिए बड़े ही आनन्द की बात है। कहां तक लिख डाली?"

"अभी एक सोपान चढा हू। विवाह के बाद राम-जानकी अयोध्या आए तब से लेकर उनके वनवास लेने और राजा दशरथ की मृत्यु के बाद चित्रकूट मे भरत भेंट होने तक का प्रसंग पूरा कर लिया।"

"तो फिर यह प्रथम सोपान कैसे हुआ?" गंगाराम ने पूछा और फिर कहा—"अरे भाई, राम-जन्म से लेकर राम-विवाह तक की कथा कायदे से प्रथम सोपान कही जानी चाहिए।"

"हा, तुम्हारी बात ठीक है। असल मे जानकी-मंगल की कथा सुनाते-सुनाते राम-भक्तो के आग्रह से मैं आगे की कथा लिखने बैठ गया। अब स्वयं भी सोचने लगा हूं कि इस महाकाव्य को 'जानकी मंगल' से अलग कर दूं और इसका एक बालकाण्ड भी रच डालू। अयोध्या में इस समय मुझे अनुकूल वातावरण न मिला। दुर्दैववश इस समय वहां कोई श्रेष्ठ विद्वान अथवा कवि न होने से मुझे हीन प्रकार की ईर्ष्या-द्वेष-दम्भादि वृत्तियों से लड़ना पड़ता था। काव्यरचना के आनन्द में विघ्न पड़ता था। इसलिए यहां चला आया।"

पण्डित गगाराम बोले—"बस तो अब तुम मौज से अपने उसी चौबारे में बैठकर काव्यरस सिद्ध करो, जिसमे तुम्हे रामाज्ञा मिली थी।"

टोडर तुरन्त आग्रह दिखलाते हुए बोल उठे—"पण्डित जी, आपके तो मित्र है, जब जी चाहे इन्हे अपने पास रख सकते है, पर इस समय तो मेरी इच्छा है कि मुझे इनकी सेवा करने का मौका मिले। आपको मैं परम शांत और रम्य स्थान दूगा महाराज।"

तुलसी बोले—"आपके प्रस्ताव के लिए कृतज्ञ हूं टोडर जी। यों गंगाराम का घर मेरा अपना ही घर है, पर इस समय मैं गृहस्थी के वातावरण मे नही रहना चाहता। मुझे एक ऐसी स्वतंत्र कोठरी दिला दीजिए जिसमे मैं अपना काव्य-साधन भी करूं और वैराग-साधन भी।"

गंगाराम गम्भीर हो गए, बोले—"तुलसी, तुम्हारा यह नया रूप मेरे लिए अभी रहस्यमय है। तुम अभी से वैराग्य क्यों धारण कर रहे हो?"

तुलसी ने मुस्कराकर कहा—"जब तक राम-कृपा नही होती, वैराग्य नही आता। मैं अभी पूर्ण विरक्त नही बन सका। काव्य के सहारे अपने को वसा बना अवश्य रहा हूं। मुझे आप कोई स्वतंत्र एकांत कोठरी दिला दें टोडर जी।"

"ऐसा स्थान मेरी नजर मे है महाराज। हनुमान फाटक पर मे चौकस प्रबन्ध कर दूगा। चाहे तो आज ही कर दू। वह स्थान मेरे एक नातेदार का है, मेरा ही समझिए।"

गंगाराम वोले—"अरे भाई, तुम इन्हें अभी से चंग पर न चढ़ाओ टोडर जी, अभी कुछ दिनों तो मैं इन्हे अपने ही पास रखूंगा।"

दो क्षण मौन रहा, फिर वात को नये सिरे से उठाते हुए गंगाराम टोडर से बोले—"तो भाई, हमारा प्रश्न विचार तो यही ठहरता है कि तुम्हारा और मंगल भगत का समझौता हो जाएगा। टोडर, मार-पीट, खून-खरावे की नौवत नही आएगी।"

"यही बात मेरी समझ में नही आती है महाराज, यो तो मंगल भी भला है और मैं भी भला हूं पर हठ मे न वह कम है और न मैं। वही किस्सा है कि नाले के आर-पार जाते हुए दो वकरे वीच मे रखे छोटे-से पटरे पर खड़े हैं और जव तक एक वकरा दूसरे को टक्कर देकर नाले मे गिरा न दे तव तक वह आगे नही वढ सकता।"

तुलसी वोले—"वात पूरी न जानने के कारण मैं ठीक तरह से तो नही कह सकता, पर मुझे भाई गंगाराम की वात उचित ही जान पड़ती है। वकरे तो पशु थे किन्तु आप मानव है, राम-चेतना-युक्त हैं। आप दोनों को वकरों जैसी टकराने की स्थिति से वचना ही चाहिए।"

गंगाराम बोले—"उचित वात कही। और बात भी कुछ नही, मंगलू अहिर भृगु आश्रम के पास रहता है। वहां उसकी दो-चार एकड भूमि है। इनके यहा वंधक पडी है। वह इनका रुपया चुका नही पाया। मियाद निकल चुकी है। अव मन में मोह है कि अपना यश वढाने के लिए यह उस स्थान पर एक धर्मशाला वनवा दे और फलो का वगीचा भी लगवा दें। इधर मंगलू इनसे और मियाद चाहता है। वह स्वय भी उस भूमि पर अपने यश के लिए कोई काम करना चाहता है।"

टोडर वोले—"मैं जानता हूं महाराज कि उसे चाहे जितनी मियाद दे दी जाए, वह अव मेरा ऋण चुकाने लायक नही रहा। पिछले साल पशुओ की वीमारी मे उसकी आधी से अधिक गायें मर चुकी हैं। परन्तु वह अपनी हेकड़ी नही छोडता।"

तुलसी ने टोडर से कहा—"टोडर जी, मेरा विचार यह कहता है कि आपको किसी महात्मा की कृपा से अक्षय यश मिलेगा। मेरे कहने से आप यह तकरार छोड़ दे।"

टोडर थोडा असमंजस मे पडे, फिर वोले—"आपकी जैसी आज्ञा हो महाराज, पर…"

"अव पर-वर न निकालो टोडर। तुलसी की इस बात का समर्थन तुम्हारी जन्मकुण्डली से भी होता है। मेरा ध्यान अव इस वात पर गया। मंगलू से लड़ना ठीक नही होगा। वह हठी जरूर है पर बड़ा ही भला और परोपकारी व्यक्ति है।"

"जव दो पण्डित एक ही मत के हो तो मुझे मानना ही चाहिए।"

पण्डित गगाराम जी उत्साह भरे स्वर मे वोले—"अरे ये कोरे पण्डित ज्योतिषी या कवि ही नही बडे राम-भक्त भी है। हो सकता है कि हमारे ये तुलसी ही आगे चलकर महात्मा सिद्ध हो और तुम्हे इनकी कृपा से यश मिले।"

तुलसी खिलखिलाकर हंस पड़े। पण्डित गंगाराम के हाथ पर हाथ मारकर कहा—"तुम्हारी विनोद वृत्ति अभी वैसी ही बनी हुई है। मुझे याद है टोडर जी कि गंगाराम हम लोगो के साथ पढनेवाले एक भोजनभट्ट छात्र, घोडू फाटक को भी मेरे संबंध मे ऐसे ही बहकाया करते थे।"

गंगाराम भी हंसे परन्तु फिर गम्भीर होकर बोले—"तुलसी, जब मनुष्य चाहता है तब कुछ नही होता है। जब ईश्वर चाहता है तब सब कुछ सिद्ध हो जाता है। और जब मनुष्य और ईश्वर दोनो मिलकर चाहते है तब कुछ भी असम्भव नही होता। तुम्हारे संबध में मेरी भविष्यवाणी गलत नही होगी। अरे, इसी प्रसग मे याद आया, टोडर, हम अपने मित्र के सम्मान मे यहा के प्रसिद्ध पण्डितो और कवियो की एक गोष्ठी करना चाहते है।"

"मैं सारा प्रबंध कर दूगा महाराज, और जहा तक हो सके मंगल को यहा बुलवाकर आप ही समझौता करवा दीजिए।"

"तब तो भाई तुम्हे आठ-दस दिन ठहरना पड़ेगा। मै कल सबेरे चुनार जा रहा हू।"

तुलसीदास एकाएक बोल उठे—"जब वह भी भला है और आप भी भले है तब बीच में बात चलाने के लिए आवश्यकता केवल एक तीसरे भले आदमी की ही है, चाहे उसकी जान-पहचान हो या न हो। मैं आपके साथ चलने को तैयार हू टोडर जी। अनेक वर्षों से भृगु आश्रम की ओर गया भी नही हू। फिर यह निश्चित है कि रामकृपा से मेरी बात खाली नही जाएगी क्योकि आप अपना दावा छोड़ रहे है।"

टोडर कुछ सोचकर बोले—"अच्छा, तो फिर मैं कल पहर-भर दिन चढे तक यहा आकर आपको साथ ले चलूगा। पण्डित जी तो उस समय यहा होगे नही।"

"हा, इसी कारण से आप मेरे लिए, हनुमान फाटक वाले उस स्थान का प्रबध भी आज ही कर लीजिएगा।"

आश्वासन मिलने पर तुलसीदास को लगा कि अब वे एक अत्यत अनुकूल वातावरण मे पहुच गए है। उनका काव्य निश्चय ही अब सुख से आगे बढ सकेगा। उन्हे संस्कृत भाषा के कवि समाज मे अपनी सस्कृत-काव्य-रचनाए सुनाने का अवसर मिलेगा। यह सब कल्पनाएं उनके अहम् को बडी तुष्टि दे रही थी। × × ×

वेनीमाधव को अपनी पूर्व कथा सुनाते-सुनाते तुलसीदास मौन हो गए। फिर कहा—"देखो, नियति कैसा खेल खेलती है। हम चाहते थे कि काशी मे अपनी कथा आरभ करने से पहले वहा के पण्डित समाज मे एक बार अपना सिक्का जमा ले तो उसका परिणाम शुभ होगा। अयोध्या मे पहले पण्डित समाज मे हेल-मेल नही बढाया इसीलिए उस समाज के कुटिल पुरुषो को हमारे विरुद्ध पैर जमाने का अवसर मिल गया। काशी मे यह न करेंगे। परतु प्रभु की वैसी इच्छा न थी। हम टोडर के साथ जो भृगु आश्रम गए तो वहा मगलू अहिर से बड़ा प्रेम हो गया। वह सचमुच भक्त आदमी था। फैसला तो खैर तुरंत ही

हो गया, कोई वात न थी ? फिर उसने हम दोनों को रोक लिया । उसने हमसे कहा कि आपकी वाते वडी सुन्दर है । हम गाव-जवार के लोगों को बुलाए लेते है। कल सवेरे प्रवचन कीजिए तव जाइएगा। और मेरा वह राम-कथा प्रवचन ही काशी और उसके आस-पास के क्षेत्रों में मेरे यश का कारण वन गया । वहुतों ने पूछा कि आप कहां कथा वाचेंगे । हम आया करेंगे । टोडर चट से वोल दिए कि हनुमान फाटक पर महात्मा जी रहेगे और वही इनकी कथा होगी। लौटते समय हमने टोडर से कहा— × × ×

"टोडर जी, आपने कथा का न्योता देकर मुझे वड़े असमंजस मे डाल दिया है ।"

"क्यों महात्मा जी ?"

"कृपा करके आप मुझे महात्मा न कहें । मैं साधारण मनुष्य हूं । थोड़ा-वहुत राम जी का नाम जप लेता हूं । वस इससे अधिक और मेरी कुछ पहुच नही है ।"

टोडर हाथ जोडकर वोले—"यदि मैंने आज आपका प्रवचन न सुना होता तो मैं मुख से यह शव्द आपके लिए एकाएक कभी न निकालता । महाराज, मैं ठहरा दुनियादार, लोक-व्यवहार में दिन-रात लगा रहता हूं । भले-वुरे सभी मिलते है । मैं संभलकर मुह से शव्द निकाला करता हूं, पर कथा के लिए स्थान वतलाकर मैंने क्या कुछ गलती की महात्मा जी ?"

"नही, वैसे तो कथा वांचना ही मेरी जीविका है और उसे छोड़ना भी नही चाहता । विरक्त के हेतु भी आज के समय मे स्वाभिमान से जीने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी जीविका अवश्य कमाए । कवीर साहेव अपने चरखे-करघे के धन्धे से वंधे थे इसलिए उनकी वाणी मुक्त थी । मैंने भी अयोध्या मे यही सवक सीखा । पर अभी कुछ दिनो यह करना नही चाहता था । उसी उद्देश्य से अयोध्या से कुछ धन भी ले आया हूं ।"

"अव अपनी दो रोटियो की चिंता का भार दया करके अपने इस दास पर ही छोड दें । आप आनन्द से अपनी रामायण लिखें । और आपसे मेरी अरदास तो यही है कि कथा अवश्य सुनाए । हम जैसे प्राणियो का भी उद्धार होना चाहिए महात्मा जी ।" × × ×

"मैं भला टोडर से यह कैसे कहता वेनीमाधव कि मेरा अहंकार सिद्ध कथावाचक और भाषा के कवि के रूप मे विख्यात होने से पहले काशी के पण्डित समाज मे प्रतिष्ठित होने के लिए तड़प रहा है । देखो यह विडवना कि एक ओर राम-भक्ति पाने के लिए मन तड़पता है और दूसरी ओर पण्डितो से संस्कृत के कवि के रूप मे वाहवाही पाने की छटपटाहट भी है। एक ओर दुनिया से विराग भी है और दूसरी ओर यह वाहवाही का लोभ भी । इसी द्वंद्व से मेरी सच्ची चाहना को निकालने के हेतु नियति ने मानो मेरे लिए काशी मे भी संघर्ष का एक वातावरण प्रस्तुत कर दिया ।"

"कैसा संघर्ष हुआ गुरू जी ?"

"टोडर ने अपने भुइहार समाज मे मेरी बड़ी प्रशंसा की। उधर मंगलू भगत और उनकी तरफ के लोग दूसरे दिन ही मेरे हनुमान फाटक वाले नये स्थान पर पहुच गए। स्वाभाविक रूप से प्रवचन का आयोजन हुआ। बस, फिर तो तुलसी भगत तुलसी भगत की धूम मचने लगी।" × × ×

हनुमान फाटक पर तुलसी के निवासस्थान पर बड़ी भीड़ जमा है। तुलसीदास अभी कही आस ही पास मे गए हुए है। जनता उनकी प्रतीक्षा मे है। लोगो में बाते चल रही है।

"भाई, बहुत देखे, पर इनके ऐसा कोई नही देखा।"

"कैसा सरूप है और कैसा मधुर कण्ठ पाया है। अरे प्रेम देखो उनका, सुनाते-सुनाते कैसा अपने मे रम जाते है। इनको राम जी जरूर दर्शन देते होगे भइया। हा भाई, जिसकी जैसी करनी उसको वैसा ही फल मिलता है। हम तो इसी महल्ले मे रहते है। आठो पहर देखते हैं। या तो बैठे-बैठे लिखा करते है या फिर धर्म-उपदेश दिया करते है। कोई ऐब नही। औरतो की ओर तो आखे उठाकर भी नही देखते। काशी मे ऐसे महातमा है तो जरूर, पर बहुत कम दिखाई देते है।"

थोड़ी ही देर मे तुलसीदास टोडर को साथ लिए आ गए। मजमा उनके सम्मान में उठ खड़ा हुआ। जै-जै सियाराम और हर-हर महादेव के जयकारे गूंजी और वैसे ही जाने कहां से ढेले आने लगे। तड़ातड-तड़ातड़ ढेलो की बौछार होने लगी। भीड़ मे कई लोग घायल हुए। कइयो ने उत्तेजनावश चीखना-पुकारना आरभ कर दिया। थोड़ी ही देर में भीड़ ढेलों की बौछार से त्रस्त होकर भागी। ढेले-आस-पास की छतो से आ रहे थे। तुलसीदास शात खड़े देखते रहे। उनके बायें कंधे पर एक लखौरी ईंट चोट करती हुई निकल गई थी। खून बह रहा था। टोडर अपने रूमाल से उसे पोछते हुए बोले—"यहां कुछ लोगो ने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया है। यह दुष्टता उन्होंने ही दिखलाई है।" तुलसीदास मौन रहे।

दूसरे दिन सवेरे ही सवेरे तुलसीदास जब गगास्नान से लौटकर आए तो उन्हे अपनी कोठरी की चौखट के आगे एक मरा हुआ कुत्ता, कुछ हड्डी के टुकड़े आदि पड़े दिखाई दिए। तुलसीदास के पैर झिझककर थम गए। मुंह से राम-राम शब्द निकला। तीसरे दिन जब भी कोई तुलसीदास के द्वार पर आता तभी उसके ऊपर ढेले बरसने लगते। चौथे दिन तुलसीदास टोडर से बोले—"भाई मैं यहां नही रहूंगा। हनुमान जी मुझे यहां रहने की आज्ञा नही देते।"

टोडर अकड़कर बोले—"अरे महात्मा जी, चार दिन इन्होंने उत्पात मचा लिया, अब देखिए, मैं भी अपना तमाशा दिखाऊंगा। अकबर बादशाह का राज है, सबको अपने धरम-करम की छूट है। ये लोग कोई सचमुच मुसलमान थोड़े ही हुए थे। बिरादरी में फूट पड़ गई, बस इन लोगो ने धर्म बदल दिया। बदला लेने के लिए हमे सताते है। मैं कल ही यहां के हाकिमो से मिलकर सारा प्रबध कर लूगा। आप यही डटे रहे।"

तुलसी रात मे अपनी कोठरी बंद करके दिये के सामने बैठे लिख रहे हैं। अत्रि ऋषि के आश्रम मे सीता सहित राम-लखन, दोनो भाई, विराजमान है। तुलसीदास दोहा लिख रहे है—

प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन शोभा निरखि।
मुनिवर बचन प्रवीन, जोरि पानि अस्तुति करत।

तुलसीदास तन्मय होकर लिख रहे है। अचानक देखते है कि बंद किवाड़ो के भीतर धुवा और आग घुसी चली आ रही है। तुलसीदास घबराकर उठ खड़े होते हैं। 'हे राम, यह कैसी परीक्षा। मेरी सारी काव्य रचनाएं नष्ट हो जाएंगी।' तुलसीदास क्षण-भर तो मूढवत् खड़े रहे, फिर झटपट अपनी झोली उतारी, अपने आगे फैले हुए कागज-पत्र जल्दी-जल्दी समेटकर उसमे रखे, उस पर अपना धोती-अंगौछा रखा और लोटे मे दवात-कलम डालकर झोली तैयार करके रखी। चौखट के एक कोने से लपटें भी निकलने लगी और बद कोठरी मे धुवा तो दम घोटने वाला हो गया था। कोने मे पानी का घड़ा रखा था। उससे लपटो वाले स्थान पर पानी डालने लगे। लपट शांत हुई, कुण्डी खोली। पूरी चौखट धीरे-धीरे आग पकड़ रही थी। तुलसीदास ने घड़े का पानी डालकर उसे बुझाया। अपनी झोली उठाई, बाहर निकलकर चौकन्नी दृष्टि से इधर-उधर देखने लगे, फिर प्रार्थना की, "हनुमान जी, मै आपकी ही आज्ञा से यह काव्यरचना कर रहा हूं। मुझे सुचित्त होकर लिखने दे।" कहकर वे अंधेरी गलियों में चल पड़े।

रात अभी पहर-भर ही चढी थी। नगर की सब गलियों मे अभी पूरी तरह से सन्नाटा नही हुआ था। जिस समय वे गोपाल मन्दिर की गली से गुजर रहे थे, उस समय मन्दिर में आरती के घण्टे-घड़ियाल बज रहे थे। तुलसीदास मंदिर मे चले गए।

आरती समाप्त हुई। पट बंद हुए। भक्तजन अपने-अपने घरो को चले। तुलसीदास ने तब वहा के एक कर्मचारी से कहा—'. अयोध्या जी से आया हूं। यहां हनुमान फाटक पर ठहरा था। कुछ दुष्ट प्रकृति के लोगों ने धर्म के नाम पर वहां मुझे तंग करना आरम्भ किया और आज तो कोठरी के किवाडों मे आग तक लगा दी। क्या मुझ निराश्रित को यहा रात-भर टिकने के लिए स्थान मिल सकेगा?"

एक क्षण तक तो पुजारी उन्हे देखता रहा, फिर कहा—"आवो हम तुम्हे सोने की जगह बतला दे।" × × ×

"गोपाल मंदिर मे अधिक दिनो तक टिक न सका।"

"क्या उन लोगो ने आपका विरोध किया गुरू जी।"

"हा, परन्तु मैं किसी को दोष नही देता। बात यह कि मेरी कथा के प्रशंसक शीघ्र ही मुझे खोजते हुए वहां पहुच गए। उनमे टोडर सबसे पहले पहुचे।"

"हां गुरू जी, मैं उन्ही के बारे मे सोच रहा था। वे बेचारे तो बहुत ही दुखी हुए होंगे।"

"पूछो मत, वहुत दुखी थे। अस्तु यह भीड-भाड़ और एक अपरिचित शरणार्थी का यह महत्त्व स्वाभाविक रूप से मेरे प्रति ईर्ष्या का कारण बना। मै उस समय अरण्यकाण्ड के लेखन मे इतना तन्मय था कि तुमसे क्या कहूं। मेरे सामने राम-कथा के बिंबो को छोड़कर एक और भी चित्र आता था। और वह था, कथा सुनने वाले भक्त नर-नारियो का। काल से पिटे, शासन से दुरदुराए, अपने भीतर से टूटे हुए निरीह नर-नारियो का समाज जब मेरी आंखो के सामने आता था तो ऐसा अनुभव करता था कि जब अपने साथ ही साथ इन मनुष्यो मे रामभद्र के अवतार की कामना करूंगा, तभी मुझे श्री युगल कमल चरणो मे खरी भक्ति मिलेगी।"

"आप ऐसा क्यो अनुभव करते थे गुरू जी ?"

बाबा हंसे, बोले—"जिसके पैरो में बिवाइया फटती है न, वही दूसरों के दर्द को समझ सकता है। जीवन तत्त्व और है ही क्या। उदारता और स्वाधीनता मि कर ही जीवन तत्त्व है। इन दोनो के मेल से प्रेम तत्त्व आप ही आप उमगता और निखरता है।"

क्या फिर गोपाल मदिर वाली कोठरी भी आपको छोड़नी पडी ?"

"हा, टोडर बड़े ही प्रेमी जीव थे। यो तो केवल चार गांवों के ही ठाकुर थे पर उनका कलेजा किसी बड़े से बडे साम्राज्य के विस्तार से कम न था। उन्होंने अस्सी घाट पर तुरन्त ही यह जमीन खरीद ली। मेरे लिए पहले तो एक मडैया छवा दी। फिर धीरे-धीरे मदिर-इमारत इत्यादि भी उन दिनो मे बनवाई जब हम अगली रामनवमी पर कुछ महीनो के लिए अयोध्या चले गए थे। परतु वह आगे की बात है। कथा-प्रेमी भीड वहा भी पहुच गई। नगर मे किसी तरह से ये किंवदती फैल गई कि मेरे शत्रुओ द्वारा सताए जाने पर हनुमान जी अपना विराट रूप धारण करके प्रकट हो गए थे, जिससे दुष्टो की भीड़ भाग गई। मेरे संबंध मे इतनी चामत्कारिक कथाए नगर मे फैल गई कि वहा पहुचने के चौथे-पांचवे दिन एक विशाल समुदाय मेरे सामने था। मै भूल गया पंडितो के ईर्ष्या-द्वेष की बात, भूल गया आने वाले संकटो की बात, अरण्यकाण्ड रच ही रहा था, उसे ही तन्मय होकर सुनाने लगा।" × × ×

तुलसीदास अरण्यकाण्ड सुना रहे है। जनता मत्रमुग्ध होकर सुन रही है। उनके स्वर मे ऐसा आकर्षण और वर्णन मे ऐसी चित्रमयता है कि लोगो को लगता है कि मानो सारे दृश्य उनकी आंखो के आगे घट रहे है। महर्षि अत्रि के आश्रम मे सीता-राम-लक्ष्मण का स्वागत होता है। अनुसूया सीता को उपदेश देती है। वन मे रहने वाले ऋषि-मुनि और तापस उनका अलौकिक रूप और बल देखकर उनमे परब्रह्म के दर्शन पाते है। तुलसीदास ने राम का ऐसा मार्मिक रूप आंका कि सुनने वालो के मन मे उस सुन्दरता को देखने की ललक उनके प्राणो की सारी शक्ति समेटकर उन्हे भाव रूप राम का दर्शन कराने लगी। टोडर तो ध्यानलीन हो गए थे।

कथा मे फल-फूल-अनाज पैसे चढ़ने लगे। तुलसीदास भीड़ के जाने के बाद

टोडर से बोले—"आज और कल सवेरे के लिए इतने दाल-चावल रखे लेता हूँ। बाकी सब गरीबो को बंटवाने की व्यवस्था आप कर दें और इन रुपये-टको का उपयोग कुछ नि.सहाय विधवाओ और दीन-दुखियो मे बाट कर करे।"

टोडर बोले—"महात्मा जी, आप तो बस लिखिए और सुनाइए। बाकी सारी चिन्ताए मेरे ऊपर छोड़ दीजिए। हमने एक और प्रबध भी कर दिया है, कुछ पहलवान यहा रहेगे। उनके लिए अखाड़ा भी बनवा दूगा। फिर कोई टिर्र-पिर्र करेगा तो···"

"तुम मेरी सुरक्षा की चिन्ता छोडो। मेरे बल राम है और सहायक बजरंगबली। बाकी अखाड़ा बन जाने से हमे सचमुच बड़ी प्रेरणा मिलेगी। हम तो सोचते है कि नगर में जगह-जगह अखाडे बन जाएं, अखाड़ो मे हनुमान जी की मूर्तिया स्थापित हो जाएं और चारो वर्णों के तरुण सबल बनें। एक बार राम जी की वानरसेना तैयार हो जाए तो फिर उन्हे प्रगट होते देर नही लगेगी। (बच्चो की तरह मचलकर) टोडर, अखाड़ा तुम जल्दी से जल्दी बनवा दो मित्र। पहले एक अखाड़ा मेरे यहा बन जाए, हमारे जवान तगड़े बनने लगे तो फिर मैं इस शकर जी के शहर में चारों ओर हनुमान अखाड़ों की गुहार लगाऊं। राम जी की सच्ची पूजा न्याय पक्ष की पूजा है। जब हमारे जवान हनुमान बली का आदर्श लेकर बली बनेगे तभी न्याय की प्रतिष्ठा और रक्षा भी हो सकेगी।" तुलसीदास के मन मे बड़ा उल्लास था। कुछ देर वे अपने ही मे मगन रहे फिर एकाएक पूछा, "अरे भाई, हमारे गगाराम की कुछ खैर-खबर मिली ? आठ-दस दिन को कह गये थे। अब लगभग डेढ महीना पूरा होने को आया···"

"पण्डित जी चुनार मे बीमार पड़ गए थे महात्मा जी। मैंने कल ही उनके घर आदमी भेजकर पुछवाया था। अब स्वस्थ है और बस दस-पांच दिनो के भीतर आने ही वाले है।"

"हा, हमारा विचार है कि एक बार यहा के विद्वत् समाज से भी हमारा नेह-नाता बंध जाय। हमें न जाने क्यों भीतर ही भीतर यह आभास होता है कि वह वर्ग हमारे लिए व्यर्थ ही मे संकटकारी भी हो सकता है।"

"अरे नही, महात्मा जी, आप चिता न कीजिए। एक दिन जहां सबको दिव्य ठडई-बूटी छनवाई, स्वादिष्ट भोजन छकाए, जरा इतर-फुलेल, हार-गजरे से मस्त किया नही कि सब हा जी-हां जी कहते डोलने लगेगे।"

तुलसी मुस्कराए, कहा—"बात इतनी सरल नही है टोडर। खैर होगा, राम करैं सो होय।" टोडर के जाने के बाद एकांत मे चूल्हे पर अपनी खिचड़ी पकाते हुए ध्यानमग्न बैठे थे। मन कह रहा था—'यश की चाह, धन की चाह और कामिनी की चाह, यह तीनो एक ही है तुलसी। इनमे अतर मत समझ। केवल स्त्री को ध्यान से हटा देने मात्र ही से तू निष्काम नही हुआ। यश की लालसा भी काम ही है। तू कुछ दिनो तक अपना कथा-व्यापार बद कर, नही तो तेरा दंभ फूल उठेगा।'

'कथा-व्यापार क्यो छोड़ू ? क्या इससे मेरी कीर्ति ही बढती है ? नही, टूटे हुए त्रस्त नर-नारियो को आस्था भी मिलती है। उनके जीवन मे रस आता

है। मैं जो काम केवल अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने की कामना से ही करूंगा वह कदापि सफलीभूत न होगा। मेरी भी ऐसे ही नाक कटेगी जैसे कथा प्रसंग में सूपनखा की नाक कटनेवाली है।'

तुलसीदास के चेहरे पर हंसी आ गई। हंड़िया का ढक्कन उठाकर खिचड़ी की स्थिति देखी और उसे कलछुल से हिलाते-हिलाते सहसा मन फिर बोला—'अच्छा, सूपनखा प्रसंग मे राम जी जो जरा-सी चकल्लस करें तो क्या बेजा होगा ? मर्यादा पुरुषोत्तम जगदबा के सामने स्वयं तो हंसी मे भी किसी अन्य स्त्री को प्रोत्साहन न देंगे।'···तुलसी गुनगुनाने लगे—

"सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता।
अहइ कुमार मोर लघु भ्राता॥
गइ लछिमन रिपु-भगिनी जानी।
प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥"

आखो के सामने दृश्य आने लगे। कुटी के बाहर एक ओर सियाराम जी बैठे है उनसे थोड़ी दूर पर लक्ष्मण जी वीरासन पर बैठे हैं। कामिनी शूर्पणखा रीझी और ललचाई हुई दृष्टि से लक्ष्मण को देख रही है। लक्ष्मण कहते है—

"सुन्दरि सुनु मैं उन्ह कर दासा।
पराधीन नहिं तोर सुपासा॥"

गुनगुनाहट मे पंक्तियो पर पंक्तिया बनती गई—

सीतहिं सभय देखि रघुराई।···

राम लक्ष्मण को संकेत करते हैं। लक्ष्मण आगे बढकर सूपनखा को पकड़कर गिरा देते और उसके नाक-कान काट लेते है।

एकाएक तुलसी का ध्यान टूटता है। झोपड़ी की फूस से बनी दीवारों का कोना, उसके आगे बना हुआ चूल्हा, उसके ऊपर चढी हुई मिट्टी मढी हंड़िया आखो के सामने आ जाती है। तुलसी की नाक मे अप्रिय गध आ रही है। खिचड़ी से जलाध उठने लगी थी। झट से हंड़िया उतारी, उसका ढकना खोलकर देखा। खिचड़ी की स्थिति देखकर हंसे और आप ही आप बोल उठे—"अच्छी सूपनखा की नाक की चिंता की, मेरी खिचडी ही जल गई। खैर अब इसकी चिंता छोडकर इन चौपाइयो को लिख डालू, फिर याद से उतर जाएंगी तो कठिनाई होगी।" × × ×

बेनीमाधव के बोलने से बाबा का ध्यान भूतकाल से वर्तमान मे आ गया। संत जी ने पूछा—"पण्डितो की वह सभा जो आप चाहते थे···?"

बाबा हंसे और बोले —"वह न हो पाई। पण्डितो ने पण्डित गंगाराम और टोडर दोनों ही को, हमारा पक्ष लेने के कारण निंदित किया। वही अयोध्या जैसी दशा हुई। हमारी लोकप्रियता कवि-पण्डित समाज की ईर्ष्या का कारण

वन गई ।"

"इस प्रतिकूल वातावरण का प्रभाव आपके काम मे निश्चय ही बाधक सिद्ध हुआ होगा गुरू जी ।"

"बाधक नही साधक सिद्ध हुआ, क्योकि हम खरे अर्थ में विरक्त होना सीख गए ।"

वेनीमाधव बोले—"गुरू जी, इतना त्याग कर चुकने के बाद भी आपने अपने को क्या उस समय तक विरक्त नही माना था ?"

"कैसे मानता वेनीमाधव, मैं अपने राम के प्रति अनुरक्त होते हुए भी अपनी काव्य प्रतिभा से ही अधिक लगाव रखता था। मुझे साधारण जन समाज से मिलनेवाला स्नेह उतना नही रिझाता था जितना कि अभिजात वर्ग से प्रतिष्ठा पाने की लालसा । फिर भला बतलाओ कि मैं अपने-आपको खरा रामानुरागी वीतरागी क्योकर मानता ? यह तो अरण्यकाण्ड रचते हुए जब सीता जी के विरह मे राम जी के विलाप का वर्णन करने लगा तो सहसा मुझे लगा कि—× × ×

रामायण रचते-रचते तुलसीदास ने एकाएक अपनी कलम रख दी और गहरी चिंता की मुद्रा मे सूनी उदास दृष्टि से अपनी कोठरी के बाहर चमकते प्रकाश को देखने लगे। मन कहता है, 'रे तुलसी, प्रतिष्ठा का दशानन तेरी भक्ति को हर ले गया है । तू काव्य मे जिस असीम भक्ति की बातें कर रहा है वह क्या सचमुच तेरे पास है ?'

'नही···हां है । मैं सूने मन से भक्ति की बात नही कर रहा हूं । मैं जन-जन मे राम के दर्शन करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता हूं ।'

'फिर दम्भी रावण-समाज मे प्रतिष्ठा पाने की लालसा तुझे क्यो सताती है ?'

तुलसीदास की प्रश्न-भरी आखो मे लज्जा का बोध झलका, आखे नीची हो गई। एक गर्म उसांस मुह से निकल गई। वे अनमने होकर एकाएक उठ खड़े हुए और अपनी कोठरी मे बावले चक्कर काटने लगे। मन झिड़क रहा था, 'कहा है तेरी राम-दर्शन की चाह ? तू झूठा है, लबार है ।'

'मैं काव्य रचते हुए राम जी का ही तो ध्यान धरता हू ।'

'झूठा है । तू केवल कथा प्रसगों को जोड़ने की चिन्ता करता है । तेरे मन मे राम का वास्तविक स्वरूप अब भी नही आया ।'

'कैसा है वह रूप ? कहां देखू, कहा खोजू, कहा पाऊं ?'

बाहर से कैलास जी का स्वर सुनाई पड़ने लगा। वह किसी से कह रहे थे—"मैं आपसे सच कहता हू कि अब मेघा भगत वह पहले के मेघा भगत नही रहे।"

जैराम साव और कैलास कवि बाते करते हुए भीतर आ चुके थे। जैराम हाथ जोड़कर जै सियाराम कहते हुए आगे बढे और तुलसी के चरण छूने को झुके।

कैलासनाथ बडी आत्मीयता-भरी दृष्टि से अपने बाल्य-बन्धु को देखते हुए बोले—"जै, श्री शिवराम ।"

"जै सियाराम, जै शंकर।" दोनो मित्र मुस्कराने लगे। बैठने पर तुलसीदास ने पूछा—"भाई जी के लिए तुम अभी क्या कह रहे थे कैलास ?"

"मैं झूठ नही कहता तुलसी, मैं इधर कई महीनो से भगत जी के स्वभाव मे अन्तर पा रहा हूं।"

"अभी कुछ ही दिन पहले मैं उनसे मिल आया हूं। वे मुझे स्वस्थ दिखे। मन से भी चंगे लगे। उनकी बातो में रस था, प्राण थे।"

"हां, यह सच है, पर मैं अनुभव से कहता हूं। मैं कवि हूं। मैं जब चाहूं किसी भी छन्द मे रस और भावो को समान शक्ति से बखान दूगा। परन्तु वह शक्ति मेरी पहले की कमाई हुई सिद्धि है, आज की नही। यदि मै अपने काव्य के भीतर कोई नई बात नही कहता, अपनी थकी हुई शब्द-योजना को ताजापन नही दे पाता तो सब कुछ बेकार है। मेघा भगत भी अब वैसे ही भगत हो गए है।"

तुलसी का चेहरा झुक गया। मन कह रहा था, 'तेरा भी यही हाल होने वाला है। तुलसीदास, पहले उछाह के झरने मे भक्तिरूपिणी विद्युत संचार करने वाली जिस जलधार से तू नहाया था वह अब तुझसे दूर हो चुकी है।'

'नही, नही, नही!' तुलसी के चेहरे पर कम्प आ गया। जैराम साहु कैलास जी से कह रहे थे—"भाई मुझे तो उनकी भक्ति अब ऊंची बढ गई मालूम होती है। भक्ति न होती तो भला वे रामलीला की सोच सकते थे ?"

"कैसी रामलीला, साव जी ?" तुलसी ने उत्सुक होकर पूछा।

कैलास बोले—"अरे उसी का तो निमंत्रण देने आए है हम। वाल्मीकीय रामायण के आधार पर उन्होने नटो से रामलीला का प्रसंग प्रस्तुत कराया है। कहते है प्राचीन काल मे लीलाएं होती थी। उनका अब फिर से प्रचलन होना चाहिए। कल राम-जन्म होगा।"

सुनकर तुलसी की सच्ची ललक सहसा जागी। उत्सुकता-भरे आत्मलीन स्वर मे पूछा—"राम-जन्म होगा ?"

"अरे आगरे वाले राजा टोडरमल है न, उनके बेटे राजा गोवर्धनधारी आज-कल नगर मे आए हुए है, सो उनको दिखलाने के लिए यह स्वाग हो रहा है।"

कैलास जी की इस बात से जैराम साहु के मुख पर खिन्नता चढी, बोले—"कवि जी, आप तो जिसके विरुद्ध हो जाते है उसमे फिर किसी अच्छाई को देख ही नही पाते। (तुलसी की ओर देखकर) महाराज जी, गुण-दोषो पर हमारी नजर जब तक कांटा-तोल न सधे तब तक क्या हम सच को परख सकते है ?"

"वाह, वाह, यह खरी वैश्य बुद्धि की बात है। कांटे-तोल बात आप ही कर सकते थे। मै स्वयं अपने भीतर इस समदृष्टि को पाने के लिए तड़प रहा हू। कल किस समय होगा राम-जन्म ?"

स्नेह से अपने मित्र की ओर देखकर हसकर कैलासनाथ ने कहा—"तुम्हारे अन्तर मे तो प्रतिक्षण हो ही रहा है। उस दिव्य छवि की झांकी मैं तुम्हारे नेत्रो मे पा रहा हू किन्तु मेघा भगत .."

"अरे अब झक छोडकर बात कर भाई।" तुलसी ने प्यार से झिड़कते हुए

कहा—"जैराम जी ठीक कहते हैं। तुम अब झक्की हो गए हो कैलास।"

कैलासनाथ ने मौन होकर सिर झुका लिया, पल-दो पल के बाद ठण्डे स्वर मे कहा—"झक्की क्या, अब मैं अपनी-पराई, सारी लोक-लीला से ऊब उठा हूं बन्धु। जो तुमको अपने बीच मे न पाता तो सच कहता हू कि मैं अब तक गगा में कूदकर अपने प्राण दे चुका होता। एक बडे मनसबदार आ रहे है तो मेघा भाई लीला दिखला रहे है। बाहरी भक्ति ढोंग की रजाई ओढ़..."

तुलसी हल्के-हल्के चिढ गए, कहा—"बस बहुत बक लिए भाई, अब तुम्हारी यह झक मुझे चिढाती है।"

कैलास कवि अपने स्वर को यथासाध्य शात बनाकर बोले—"देखो तुलसी, तुम हमारे बहुत पुराने साथी हो। यही मेघा भगत जी हमारे-तुम्हारे साथ का कारण बने। उनके प्रति मेरी श्रद्धा तुमसे छिपी नहीं है। पिछले बीस-बाईस वर्षों मे मैंने तुम्हे भी देखा है और उन्हें भी। कहो, हां।"

तुलसीदास ने हां तो न कहा किन्तु गम्भीर भाव से हा सूचक सिर हिलाया। कैलास जी बोले—"भगत जी की भक्ति-भावना तुमसे पहले चमकी। तुम्हारी चमक के बढते चरण मैंने आरंभ के दिनो मे भी देखे और अब यह विकसित रूप भी देख रहा हूं...कहो, हा।"

तुलसीदास गम्भीर रहे किन्तु मुस्कराहट की एक रेखा उनके होठों पर खिच ही गई। आखो मे विनोद की चमक भी आई, कहा—"हा।"

"इत्ते वर्षों मे हमारे परमपूज्य मेघा भगत जी कोल्हू के बैल की तरह राजे, रजवाड़े, सेठ, साहूकार इन्ही के घेरे मे नाच रहे हैं और तुम गली-गली बावले की तरह डोल-डोलकर सबके अन्दर नैतिकता की आंधी उठा रहे हो। उठा रहे हो कि नही?"

"हा।"

"क्यों?"

"मैं व्यक्ति की भीतर वाली सगुण-निर्गुण खण्डित आस्था को दशरथनन्दन राम की भक्ति से जोड़कर फिर खडा कर देना चाहता हू। मैं अकेले नही, पूरे समाज के साथ राममय होना चाहता हूं। मेघा भाई का भी उद्देश्य यही है, पर मार्ग दूसरा है।"

जैराम साहु और कैलास दोनो ही तन्मय होकर तुलसीदास की बाते सुन रहे थे, उनके स्वर के उतार-चढाव उनकी शात गम्भीर उत्तेजना के बहाव को देख रहे थे। बात समाप्त होने पर कैलास तुलसी के पैर छूने के लिए आगे बढे।

"है है, ये क्या करते हो जी?" के उत्तर मे तुलसी के हाथो से अपना हाथ छुड़ाकर पैर छूने का हठ ठानने हुए श्रद्धा विगलित स्वर में कहा—"तुम हमारे मित्र भने हो पर तुम सचमुच महान आत्मा हो। तुम्हारी कथनी और करनी मे भेद नही है। यह सबसे बड़ी बात है। भगत जी बैठे-बैठे तो जीवमात्र को अपने कलेजे का बूद-बूद भाव अर्पित कर देंगे, पर कहो कि उठकर जाएं तो नही। तुम्हारी तरह गली-गली डोलना उन्हे एक अप्रतिष्ठित कार्य लगता है।" अपनी बात कहते-कहते उत्तेजनावश कैलास जी तुलसी के पैर छूने का स्वयं अपना ही

आग्रह बिसार कर सीधे खड़े हो गए। उनकी बांहे छोडकर तुलसी ने मुस्कराकर कहा—"देखो, कैलास, मनुष्य अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही आगे बढता है। फिर हरएक की प्रकृति मे थोडा-बहुत अन्तर भी होता ही है। तुम कवि हो, बेलाग बात कहना तुम्हारी प्रकृति मे है। किन्तु तुम्हे यह भी देखना चाहिए कि आलोच्य व्यक्ति अपनी सामर्थ्य-भर सत्य को अपने जीवन मे निभा रहा है या नही। यदि निभा रहा है तो उसके सत्य को देखो, उसकी सामर्थ्य को नही। और यदि सामर्थ्य की आलोचना करना ही चाहते हो तो रचनात्मक दृष्टि से देखो।"

"खरी आलोचना करने मे कबीरदास जी मेरे आदर्श है। जहां झूठ को देखा वही खीच के ऐसा झापड़ मारते थे कि थोथे अहंकार की चमड़ी उतर जाती थी।"

"मैं महात्मा कबीरदास जी को उच्चतम आत्माओं मे से एक मानता हूं। उन्होने पराई बुराइयों की तीव्र आलोचना करके अपने को संवारा। परन्तु मैं अपनी और समाज की खरी आलोचना करके दोनो को एक निष्ठा से बांधकर उठाना चाहता हूं। टूटी झोपडियो के बीच मे अकेले महल की कोई शोभा नही होती है। वह अपनी सारी भव्यता और कलात्मकता मे क्रूर और गंवार लगता है। फिर भी सच्चे सन्तो की बातो को हमे औसत स्तर पर लाकर नही सोचना चाहिए।"

"क्यों? न्याय की तुला पर सभी बराबर होते है।"

"तुम्हे देशकाल का भी ध्यान रखना होगा कैलासनाथ। कबीरदास जी ने जिस समय निर्गुण निराकार की वंदना की थी उस समय नगर-नगर गाव-गांव में हमारे मन्दिर तोडे जा रहे थे, लोक समाज की आस्था तोड़ी जा रही थी। कबीर ने रामरूपी आस्था को निर्गुण बखानकर लोक मानस को पोढा बनाए रखा। यह क्या छोटी बात है। मैं कबीरदास जी का बडा आदर करता हूं।"

"लेकिन उनके चेलो के पीछे तो लट्ठ लेकर डोलते हो।" कैलास ने मुस्कराकर कहा।

"हा, आज के वातावरण मे उनके गालबजाऊ समर्थकों के पाखण्ड पर मै अवश्य प्रहार करूंगा। यह लोग टूटे हुए समाज की पीडा को नही पहचानते। पेड़ से गिरे दम तोड़ते हुए प्राणी को यह क्रूर दो लातें और मारते है।"

"तब मेघा भगत पर यदि मै वही आक्षेप करता हूं तो तुम चिढते क्यो हो?"

"बुरा इसलिए लगता है कि तुम मेघा भाई का गलत मूल्यांकन करते हो। उनकी सामर्थ्य की सीमा कुछ छोटी भले ही हो पर वे पूर्ण भावनिष्ठ है। खैर छोडो यह प्रसंग, बोलो लीला किस समय होगी?"

उत्तर जैराम साहु ने दिया—"ब्यालू जीमने के बाद होगी महराज जी। मेरे ही बगीचे मे आयोजन है। राजा गोवर्धनधारी और उनके गुरु पूज्यपाद नारायण भट्ट जी भी आपके इस दास के घर पर जूठन गिराने की कृपा करेंगे। हम लोग आपको लेने के लिए जल्दी चले आएगे। भैया कैलास जी आपको लिवाने इसी समय चले आएगे। कही चले न जाइएगा। आपको अपनी बगीची मे देखने के बाद फिर चाहे हाकिमो, साहूकारों की दुनियादारी मे रहू तो भी मेरे मन मे सब हरा-भरा रहेगा।"

जैराम साहु की बात ने तुलसीदास के मन को कही गहरे में स्पर्श किया, बोले—"जैराम जी, अपने प्रति आपके इस प्रेम भाव से मैं बड़ा ही आनंदित हुआ हूं। राम आपका भला करें।"

जैराम साहु हाथ जोड़कर बोले—"महराज जी, सच्चा भाव आप ही में देखने को मिलता है। मैं पण्डित कैलासनाथ जी की इस बात से सहमत हूं। आपके बिना अब मुझे चैन नहीं आता।"

सुनकर तुलसीदास सचेत हो गए, मन कहने लगा, 'सुन रे तुलसी, जब तक तेरे हृदय की बगिया में राम जी ऐसे ही नहीं रमेंगे तब तक तुझे अपनी काव्य और कथा आदि बाहरी क्रिया-कलापों में खरी निश्चिन्तता नहीं प्राप्त होगी।' उन्होंने उठकर खड़े होते हुए जैराम साहु के कंधे पर हाथ रखा और बोले—"जैराम जी, आप और कैलास इस समय मेरे लिए गुरुवत् सिद्ध हुए हैं, मैं आप दोनों के हृदयों में विराजमान ज्योतिस्वरूप सियाराम को प्रणाम करता हूं।"

४०

उसी दिन झुटपुटे वखत में तुलसीदास अपनी कुटिया के आगे चबूतरे पर आठ-दस आदमियों के बीच में घिरे बैठे बातें कर रहे थे। इतने में तनिक दूर पर एक आवाज सुनाई दी—"है कोई राम का प्यारा, जो इस बरमहत्तिया के पातकी को भोजन कराय दे? मैं तीन दिन से भूखा हूं। है कोई राम का प्यारा?"

किसीकी बात सुनते-सुनते लपककर तुलसीदास उठे और तेजी से उस आवाज की ओर चल पड़े।

"है कोई राम का प्यारा जो इस बरमहत्तिया के पातकी को…"

"आओ, भइया, मैं तुम्हें भोजन कराऊंगा।"

थके लड़खड़ाते पैर, सूखा-पिटा हुआ चेहरा और बुझी हुई आंखें, फिर से अपने भीतर उमड़ती हुई विश्वास गंगा का बोझ सहसा न उठा पाईं। चाहा हुआ जीवन जब मिल रहा है तब काया में उसका भार उठाने की मानो शक्ति ही नहीं बची थी। तुलसीदास की बात सुनकर, उन्हें देखकर वह इतना आह्लादित हुआ कि गिरने-गिरने को हुआ। तुलसीदास ने उसे दोनों हाथों से संभाल लिया और कहा—"आओ, आओ।" झोपड़ी के द्वार तक तुलसी के सहारे चलते हुए वह व्यक्ति रुदन-भरे धीमे स्वर में यही दो वाक्य दोहराता चला गया—"राम तुम बड़े दयालु हो, मैं बड़ा नीच हूं। राम तुम बड़े दयालु हो।…"

चबूतरे पर बैठे लोगबाग अचरज से यह तमाशा देख रहे थे। तुलसीदास ने उसे अपनी झोपड़ी के द्वार पर बैठाया और कहा—"यहां बैठो मैं पानी ले आऊं, हाथ-मुंह धो लो तो रोटी दूं।"

तुलसी भगत भीतर से लोटा भरकर जल लाए, उसके हाथ-पैर धुलाए। अपने कांपते हाथों से, चूंकि वह लोटा पकड़ नहीं सकता था इसलिए तुलसी ने

स्वयं उसके हाथ धोए-पैर धोए, कुल्ला कराया, जैसे मा छोटे बच्चे की सेवा करती है, फिर लाकर बिठलाया। भीतर गए। रोटी और दूध लाकर उसे दिया। आप ही उसे मीजकर उसके सामने रखी। वह खाता रहा और यह सामने बैठकर उसे देखते रहे। चबूतरे पर बैठे प्राय. सभी लोग अब इधर ही आकर खड़े हो गए थे। तुलसी भगत के इस काम पर कानों-कान कुछ आपसी बाते भी होने लगी थी। एक व्यक्ति के मन की उबलन बाहर निकलने को आतुर हो गई। वह तुलसी भगत के पास आकर बोला—"ये कौन जात है महराज ?"

तुलसीदास मुस्कराए, कहा—"अभी तो यह केवल रामजन है, जब खा लेगा तब जात और पाप का कारण पूछूगा।"

पेट मे कुछ पड चुका था। मन मे सतोष छाने लगा था। अपराधी के हाथ भी अब कांप नही रहे थे, वे सध गए थे। खाते-खाते रुककर उस ब्रह्महत्यारे ने कहा—"मैं रैदास जी की बिरादरी का हूं साहबो।"

"और ब्रह्महत्या करके फिर ब्राह्मणो से ही सेवा लेता है ?"

तुलसी ने दोनो हाथ उठाकर कहने वाले को शांत किया, कहा—"भूख और निराशा की ऐसी स्थिति मे तुम जरा अपनी कल्पना करके देखो, सुखदीन। जाति पाति, वर्ण-वर्ग आदि सब कुछ अपनी जगह पर ठीक है, पर एक जगह मनुष्य केवल मनुष्य होता है। घट-घट मे एक ही राम रमते है। अभी सब जने चुप रहो। चबूतरे पर चलकर बैठो। यह पहले सतोष से खा-पी ले तो इसके पाप का कारण पूछेंगे।" सो चुप तो हो गए किन्तु हर एक को यह बात थोड़ी या बहुत अखरी अवश्य थी। तुलसी भगत ने एक ब्रह्महत्यारे चमार को अपने कटोरे मे भोजन परोसा, उसके पैर धुलाए, यह धर्म और समाज के विरुद्ध काम किया। इसके बाद लोग सम्भवत· चले भी जाते किन्तु अपने मन की घृणा के बावजूद हरएक व्यक्ति अपराधी के अपराध की कथा सुनने को भी उत्सुक था, इसलिए सब लोग चबूतरे पर बैठ गए। आपस मे धीरे-धीरे बतियाने लगे—"यह अच्छी बात नही हुई। भूखा भले ही हो पर है तो अखिर ब्रह्महत्यारा ही।"

"और फिर ब्राह्मण ही पैर धोवै!"

"और ब्राह्मणो मे भी इनके जैसा भगत-महातमा। साला हौसला पा जाएगा तो दो-चार ब्राह्मणों की हत्या और कर आवेगा।"

"ठीक कहते हो, अरे हमारे ऋषि-मुनि जो धरम-नियम बनाय गए वह कोई गलत थोड़े ही हैं। बरमहत्या का पातकी जब तक ऐसे डोल-डोलकर न मरे तब तलक उसका परासचितै पूरा नही हुइ सकत है।"

आगे-आगे तुलसी भगत और पीछे-पीछे वह ब्रह्महत्यारा चबूतरे की तरफ आते दिखलाई दिए। सब लोग चुप हो गए। चबूतरे पर चढकर तुलसीदास ने उसे नीचे ही खड़े रहने का आदेश दिया और कहा—"अब तुम हम सबको अपने अपराध का कारण बताओ।" कहकर तुलसी बैठ गए।

हत्यारा हाथ जोडकर कुछ कहने से पहले रो पड़ा, बोला—"क्या कहै पंचौ, आप समभौ कि दवत है तौ चिउटी भी काट लेत है। हमारे गांव मे दातादीन महराज रहे। ब्याज-बट्टा भी करते रहे। तौ महराज, हम बिपता मे उनके रिनिया

भए। ई हमारी जवानी की बात है। तौ उन्हे जैसे हमारी घर वाली पर हक्क मिल गया। हम चुपाए रहे पचौ, सवल से निवल कैसे बोले ? फिर हमरी बिटेवा बड़ी भई। उहौ पर हक्क जमावै का जतन किहिन, तब क्या कहै पचौ। हमको करोध आय गया। करोध मे हमरी उंगलिया तनिक सकत पड गई। उनका गला दब गया। हम बड़े दुखी है महराज।" कहकर वह फिर रोने लगा।

तुलसीदास बोले—"वह जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी कर्म से अधम था। तुम्हारी जगह और भी कोई व्यक्ति होता तो वह आवेश मे ऐसा काम कर सकता था। खैर, अब तुम जाओ, कही दूर देश निकल जाओ। समझ लो कि तुम नया जन्म पा रहे हो। राम-राम जपो, मेहनत-मजूरी करो और जीवन मे जो खोया है उसे फिर से पा लो।"

उसके जाने के बाद एक व्यक्ति ने कहा—"उस बरामण का पाप तो बहुत बड़ा था, भगत जी, पर बरमहत्या तो उससे भी बडा पाप है।"

"मर्यादा पुरुषोत्तम रामभद्र ने भी ब्राह्मण रावण को मारा था। असुरधर्मी अपना वर्ण खो देता है। पापी सदा दण्ड के योग्य है।"

सवेरे घाट पर यह चर्चा फैलते-फैलते दिन चढे तक प्रायः नगर-भर मे फैल गई। क्या छोटे क्या बड़े सभी इसीकी चर्चा कर रहे थे। काशी की जनता मे तुलसीदास के इस काम के आलोचक अधिक निकले, प्रशंसक कम। उडते-उडते दोपहर तक तुलसीदास को भी यह समाचार मिल गया कि काशी के महान तान्त्रिक बटेश्वर मिश्र तुलसीदास को दण्ड देने के लिए कोई योजना बना रहे है।

टोडर ने भी यह सूचना पाई और सब काम छोडकर तुलसीदास के पास आए। उन्होने कहा—"महात्मा जी, मैं और मेरी सारी बिरादरी आपकी सेवा मे हाजिर है। हमारे रहते काशी मे कोई आपका बाल भी बांका नही कर सकता।"

तुलसीदास मुस्कराए, कहा—"अरे भाई तान्त्रिक तो मूठ मारेगा। तुम लोग मुझे उससे कैसे बचाओगे ?"

"अरे मै उसी का सफाया कर डालूगा। ऐसे नीच को मारने से मुझे ब्रह्म-हत्या का पाप भी नही लगेगा।"

तुलसीदास खिलखिलाकर हंस पड़े, कहा—"कौन ब्राह्मण तुम्हारे पक्ष मे व्यवस्था देगा ?"

"कोई न दे। राम जी की दृष्टि मे मै निष्पाप रहूगा; यह जानता हू। मैं आज ही बटेसुर महराज के यहा कहला दूगा कि···"

"नही, बटेश्वर मेरे गुरु-भाई है। खैर, छोडो इस प्रसग को। गगाराम कब आ रहे है ?"

"जोतशी जी आज ही कल मे आने वाले थे, यहा से लौटते समय मैं उनके घर जाकर पता लगा लूगा।"

कवि कैलास ने उसी समय आंधी के झोके की तरह प्रवेश किया और बड़े आवेश मे कहने लगे—"वह वैशाखनन्दन बटेश्वर तुम्हारे विरुद्ध जनमत को संगठित कर रहा है। वह तुम्हे यहा से निकलवाने के सपने देख रहा है। मैं अभी-अभी उसके घर जाकर चलती गली मे सबके सामने उसे चुनौती दे आया हू।

मूर्ख कहीं का ''दम्भी !'' उत्तेजनावश कैलास जी कांपने लगे।

तुलसीदास ने उनका हाथ पकडकर बैठाया। उन्हे शात होने को कहा, बोले—''तुम तो जानते ही हो कैलास कि वटेश्वर मेरे अग्रज गुरु भाई है। मेरे प्रति उनका रोष पुराना है। यह भी तुम जानते ही हो।''

''मैं सब जानता हूं और वह भी जानेगा कि किसी कड़े से पाला पड़ा है। आज सवेरे जब भगत जी के यहा बटेश्वर की यह खबर आई तभी से मैं क्रोध मे उबल रहा हूं।''

टोडर बोले—''पण्डित जी, मेरी भी सचमुच यही दशा है। यदि उन्होंने पण्डितो की पचायत करके नगर की कुछ चिरादरियों के जोर पर महात्मा जी को यहां से निकलवाया तो नगर मे हत्याकाड मच जाएगा। बहुत-सी छोटी-बड़ी जातियों के चौधरी मेरे भी साथ होंगे।''

कैलास फिर उत्तेजित हो गए, बोले—''मैं उसके मुंह पर कह आया हू, टोडर जी, कि तू अपने बाप-दादे के सात पीढियो के पोथी-पत्रे निकालकर हमे और हमारे तुलसीदास को मारने का उपाय सोच ले। हे वैशाखनन्दन, कवि की भविष्य-वाणी भी याद रखना कि तू जो करेगा वह तेरे ही ऊपर उलटकर पडेगा।''

दो उत्तेजित व्यक्तियों के बीच मे तुलसीदास अपने-आपको संयत रखने के लिए अपने मन में गूजता राम शब्द सुनते रहे। जब कैलास अपने जी का उबाल निकालकर थमे तब उन्होने दोनों को सम्बोधित करते हुए कहा—''आप दोनो ही मेरे मित्र और शुभचिन्तक है। आप दोनो ही कृपा करके ध्यान से सुने। बेचारे बटेश्वर स्वय ही अपने अंत के निकट आ गए हैं। आप उनके विरुद्ध कार्य करके व्यर्थ मे अपने-आपको कलंकित न करे। आप दोनो ही मित्र मेरे हाथ पर हाथ रखकर यह वचन दे कि इस संबध मे शात रहेगे। कुछ न करेगे।'' तुलसी ने अपने दाहिने हाथ का पजा आगे बढाया। टोडर को अपना मन अनुशासित करते देर न लगी, किन्तु कैलासनाथ के चेहरे पर अभी ताप चढ ही रहा था। तुलसी की स्नेह दृष्टि से आखे मिलते ही उन्होने आखे झुका ली और भुनभुनाते हुए कहा—''तुम्हारी यह भद्रता मुझे अच्छी नही लग रही है। पापी और दम्भी को दण्ड मिलना ही चाहिए।''

तुलसी बोले—''कल तुम जिस मानव-मर्म को सहज भाव से मेरे भीतर पहचान कर सराह सके थे उसी को आज बुरा बतला रहे हो ? कवि बडा लहरी होता है। अपनी ही समर्थित तरग को काटते हुए भी उसे देर नही लगती।'' कहकर तुलसीदास खिलखिलाकर हस पड़े। उनकी बच्चो जैसी मुक्त हंसी ने गंभीर और क्रुद्ध वातावरण पर वैसा ही प्रभाव डाला जैसे जेठ की धूप से तपी हुई धरती पर आषाढ के दौगड़े का पड़ता है।

टोडर सहज ही हंस पड़े। कैलास के क्रोध ने आंखो मे एक बार फिर पल्टा लेना चाहा, पर तुलसी की स्नेह और विनोद-भरी मुद्रा ने उन्हे हल्का कर दिया; स्वयं भी व्यंग्य विनोद साधकर बोले—''तुम भी तो कवि हो। तुम क्या कुछ कम लहरी हो।''

''हा, किन्तु मेरी लहरे अब राम समीरण से अधिक संचालित होती है, यद्यपि

अब भी वे पूरी तरह से मेरे वश में नहीं आईं। अच्छा छोडो यह प्रसंग। यह बताओ कि मेरे इस पाप से मेरा रामलीला देखने का पुण्य तो क्षीण नहीं हो गया ?"

कैलास थोडा अकड़कर बोले—"मेरा मेघा भगत और चाहे जो हो पर इस संबंध मे बडा शेर निकला। मैं कल तक जितना खिन्न था उतना ही आज उनसे संतुष्ट हूं।"

सुखी मन से तुलसी बोले—"मैं तुम्हारी आज की इस मन मुद्रा से बडा संतुष्ट हू। किन्तु यह बतलाओ कि नारायण भट्ट और राजा गोवर्धनधारी जैसे बडे-बडे लोग आ रहे हैं या…"

"वह भी बतला रहा हूं। आज जैसे ही उनके पास यह सूचना आई, वैसे ही उन्होंने मुझसे कहा, कैलास, नारायण भट्ट जी से तुम स्वयं जाकर पूछो। तुम स्वानुभव से उन्हे यह बतला सकोगे कि तुलसी कैसा व्यक्ति है। फिर आगे उनकी जो हां-ना हो सो मुझे बतलाना।"

टोडर ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—"भट्ट जी महराज क्या बोले ?"

"उन्होने कहा कि संतो-विरक्तो पर कोई सामाजिक प्रतिबन्ध नही लगाया जा सकता। संन्यासी शिखा और सूत्र का त्याग करके भी शूद्र नही कहलाता। तुलसीदास आनंद से हमारे साथ ही साथ रामलीला देखें। हमें कोई आपत्ति नहीं है।"

सुनकर तुलसीदास के मुख पर आनंद और संतोष की आभा आ गई। कैलास-नाथ अपने उत्साह के शिखर पर चढने लगे, बोले—"तभी तो मैं सीधा उस बैसाख नन्दन के घर सुनाने जा पहुंचा।"

तुलसी ने तुरन्त ही अपने मित्र के उत्साह की यह दिशा काटी, कहा—"अब वटेश्वर के पीछे पड़ गए हो ! घूम-फिरकर तुम्हारी झक वही की वही पहुंच रही है।"

कैलास हंसकर बोले—"मैंने आज उसे खूब-खूब तपाया। मैंने कहा, तू अपने आपको वटेश्वर समझता है। अरे तू तो इमली के चिये बराबर भी नही है। वह उठकर मुझे गालियां देने लगा। (हंसी)…पर वाह रे मेरे मेघा भगत, जब हमने उनसे प्रश्न किया कि मान लीजिए नारायण भट्ट ने आना अस्वीकार किया तो क्या आप रामलीला नही दिखाएंगे ? वे बोले—मैं और मेरा रामबोला देखेगा। तुम लोग तो साथ रहोगे ही ! रामलीला के प्रेमियो की कमी नही रहेगी।"

तुलसी बोले—"कैलास, नारायण भट्ट जी का संदेश तुमने अभी तक मेघा-भाई को पहुंचाया है अथवा कोरमकोर बरगदनाथ को इमली का चिया बना करके ही चले आए हो ?"

"अब जाऊंगा वहां, तुम्हारे यहां भी आए बिना मुझे चैन थोडे ही पड़ सकता था। चलो साथ ही साथ चलें। जैराम साव के रथ की बाट देखना बेकार है। बाहर हमारे टोडर जी का रथ तो खड़ा ही हुआ है।"

टोडर बोले—"हा, हां, हम महात्मा जी तथा आपको भदैनी छोड आएगे।"

सब लोग उठ पड़े। कुटिया से बाहर निकलकर कैलास ने उत्साह से टोडर की बाह पकड़कर प्रेम से दबाई और कहा—"देखो राम जी की लीला, जो देश

के सम्राट है उनका दीवान भी टोडर है और जो हृदय के सम्राट है उनके दीवान का नाम भी ··"

"टोडर ही है।" टोडर ने स्वयं ही कहा, और खिलखिलाकर हंस पड़े। कुटी का टट्टर बन्द करते हुए तुलसीदास भी हंसी के इस वातावरण मे घुले बिना रह न पाए।

४१

दोपहर ढलते ही भदैनी स्थित जैराम साहु की वगीची के सामने रथों और पालकियो का आगमन आरंभ हो गया। नगर के चुने हुए चालीस-पचास सेठ-महाजन, हाकिम-अमले और सुकवि-पण्डित्त समाज के लोग वहा पर आमन्त्रित थे। नौकरो-चाकरो की सेना आमन्त्रित अतिथियों की संख्या से लगभग ढाई गुनी अधिक थी। द्वार पर केले के खम्भो से वनाए गए कलात्मक तोरण और भीतर की सजावट आदि देखते ही वनती थी। चुनार के पत्थर की वनी हुई कलात्मक बारहदरी मे मखमली तोशक-तकिये-गलीचे विछे थे। सजावट और घूपगंध से महकते हुए इस स्थान मे मेघा भगत का आसन सबसे अलग लगा था। तुलसी को उन्होने अपने पास ही विठला रखा था। नगर के सम्भ्रात नागरिक आते, मेघा भगत को प्रणाम करते और फिर अपनी जगह पर बैठ जाते। कइयो ने मेघा भगत के साथ तुलसी भगत को भी प्रणाम किया; कई उन्हे बिना पहचाने ही निकल गए। अपनी-अपनी जगहो पर बैठकर उनमे तुलसी के संबध की ताजा चर्चा ही स्वाभाविक रूप से चल पड़ी। कुछ लोग आपस मे कुछ वात पकाकर मेघा भगत के पास आए और बडी विनय से कहा—"भगत जी, हमारा यही भाग्य है कि आप दो-दो महात्माओ के दर्शन एक साथ पा रहे है। हम तुलसीदास जी से कुछ वाते करना चाहते है।"

मेघा भगत बोले—"आज के वाद भी काशी मे तुलसीदास तथा आप लोग रहेगे। जव चाहे तव मिल सकते है। आज भरत को राम के पास ही रहने दीजिए।"

एक तगड़े-से पण्डित युवक ने, जिसकी सम्पन्नता का परिचय उसके गले मे पड़ी सोने की अठलडो जंजीर, वाहों का जोशन और हाथ की नगीने जड़ी अगूठिया करा रही थी, बोला—"तो इसका तात्पर्य यह भया कि आप अपने को राम का अवतार मानते है?"

मेघा भगत शान्त रहे, मुस्कराकर कहा—"मैंने उपमा दी थी। वैसे राम तो मुझे आप मे भी दिखलाई देते है।"

वह युवक फिर बोला—"हमे आपके भरत जी से उस ब्रह्महत्यारे की चकल्लस नही करनी है। हमे तो ऐसे ही थोड़ा-बहुत परिचय वढ़ाना है। सुना है, प्रात स्मरणीय आचार्यपाद शेष सनातन जी महाराज के शिष्य है और अब

महात्मा के रूप मे निवास करने के लिए यहां आए है, तो आलाप-संलाप करके अपना परिचय बढाना चाहते है।"

मेघा भगत की ओर देखकर तुलसी ने कुछ कहना चाहा किन्तु भगत जी पहले ही बोल पड़े—"आज के दिन वाद-विवाद नही होगा। अभी थोड़ी देर में भट्ट जी राजा टोडरमल के साथ आएंगे।"

"वह टोडरमल नही टोडरमल जी के पुत्र है महात्मा जी।"

"पुत्र ही सही, उनके आने पर यहा सरस काव्य सुनिए-सुनाइएगा, फिर रामलीला देखिएगा।"

युवा पंडित-मंडली निराश हुई। वे लोग अपनी जगह पर लौट गए। पर मन नही मान रहा था। मेघा के पास बैठे तुलसी को वे उसी तरह ललचाई दृष्टि से देख रहे थे जैसे बिल्ली कबूतर को ताकती है। तुलसी को देखकर उनके मन मे पिछले बहुत दिनो से काफी रोष और उपेक्षा का भाव भरा था। कुछ ही दिनो मे यह अनजाना व्यक्ति आकर काशी की जनता के हिये का हार बन गया है, अच्छे-अच्छे संस्कृतज्ञो मे भी कई लोग उसे श्रेष्ठ कवि मानते हैं। सम्पन्न घरो के युवा कवि-पंडित इस नये नामवर कवि से दो-दो चोचें लड़ाने के लिए मचल रहे थे। एक ने कहा—"अरे अब तो रहा नही जाता। उसको मेघा भगत के पास से हटाकर यहां लाना ही चाहिए। कुछ मजा लेना चाहिए। फिर तो बड़े लोग जहा आए तहा मजा गया सरवा।"

एक दुबला-पतला चालाक-सा युवक बोला—"अच्छा ठहरो। मैं लेके आता हू।"

वह युवक फुर्ती से उठकर फिर मेघा भगत के पास गया और हाथ जोड़कर बोला—"महात्माजी, हमारी महात्मा तुलसीदास से वार्तालाप करने की तीव्र इच्छा है, यदि आप हमारी इस सदेच्छा को फलीभूत न होने देगे तो हम लोग फिर भोजन नही करेंगे महाप्रभु।"

मेघा ने तुलसी को देखा, तुलसी मुस्कराकर बोले—"आज्ञा प्रदान करे। ब्राह्मणो को भूखे रखना उचित नही।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा। शाति रखना।" मेघा भगत से स्वीकृति पाते ही तुलसीदास उठकर वहा आ गए जहां युवक मण्डली बैठी थी। इन्हे इधर आया देखकर बैठे हुए प्रौढ वृद्ध भद्रजन भी आस-पास खिसक आए।

एक ने कहा—"महाराज इन दिनो आपका बड़ा यश फैला हुआ है। नाम तो नित्य ही सुनते थे, आज दर्शन का सौभाग्य भी मिल गया।"

तुलसी सविनय बोले—"भाई, यश राम जी का है, मैं तो उनका एक अकिंचन सेवकमात्र हूं।"

युवको मे से एक ने चहकाने वाला अन्दाज साधकर दबे विनोद और ऊपरी गम्भीरता के स्वर मे कहा—"सेवक तो आप अवश्य है। हमने सुना है कि आपने किसी अलखनिरंजनवादी साधु को उसकी राम के प्रति अवज्ञा के कारण लट्ठ मारा था।"

तुलसी हसे, कहा—"मेरे पास राम नाम की लाठी है, उसीसे मारा होगा।"

"हां-हां, जब जड-चेतन सभी में राम है तब लट्ठ मे भी है।"

"आपके इस व्यंग्य मे भी राम ही बोल रहे है।"

"कैसे ?"

"मूढ मे जैसे चेतना बोलती है और मूढ उसे सुनकर भी नही सुन पाता।" तुलसीदास का मीठे व्यंग्य-भरा प्रत्युत्तर सुनकर वह युवक चुप हो गया। किन्तु एक और व्यक्ति तुरन्त ही बोल पड़ा—"हा महराज, आप की बात खरी है। युग का प्रभाव देखिए, लोग मुर्दो की सड़ी-गली हड्डियो को पूजने लगे है, पर आपकी दृष्टि से देखा जाए तो वह भी राम ही का एक रूप है।"

"राम तो रावण मे भी कही उसकी अन्तश्चेतना बनकर विराजमान थे। मूढ ने उसे न सुना और अपनी हाड-मांस की काया का रव ही सुनता रहा। इसीलिए वैसा अन्त पाया।"

एक छोटे-मोटे हाकिम, एक प्रौढ व्यक्ति आगे बढकर त्यौरियो पर बल डालते हुए बोले— "तब तो महराज इन रूपो के झगड़े से वो अपने कबीरदास जी का सिद्धान्त ही क्या बुरा है ? साकार के इतने भेद है कि हम लोगो के लिए भूल-भुलैया-सी बन गई है। किस रूप मे राम है किस रूप मे नही है, किस रूप मे कहां राम छिपे हैं—भला बतलाइए, इन सब बातो को सोचते रहे तो अपनी रोजी-रोटी किस समय कमाएं ?"

एक उद्धत ब्राह्मण युवक ठठाकर हंस पड़ा, बोला—"हुलासराय जी, ये इनसे न पूछिए, बेपढ़ी-लिखी गंवार भीड ही इनके जैसो को और कबीरदास जैसे सधुक्कडो को अपनी ठगहरी विद्या का चमत्कार दिखलाने के लिए मिलती है। ये कबीरदास को मान लेंगे तो इनका धन्धा कैसे चलेगा। ह.-ह.-हः।" उसके साथ ही साथ सारी युवक मण्डली हस पड़ी।

तुलसीदास अन्दर मे तपे तो अवश्य किन्तु क्षणमात्र मे अपने को अनुशासित कर लिया। लोक व्यवहार मे इधर-इधर खो जानेवाला राम शब्द उनकी छाती मे बीचोबीच ऐसे आकर जड़ गया जैसे अगूठी मे नगीना। वे भी युवको के साथ ही खुलकर हस पडे, कहा—"ये आपने धन्धे वाली बात अच्छी कही। आजकल धर्म के पास राज तो है नही, इसलिए बेचारा छोटे-मोटे धन्धे करके ही जी पा रहा है। आप लोग सभी धर्म के धन्धेदार है, मुझसे बढकर रहस्य जानते है। हम और कबीरदास जी महाराज तो राम जी की दुकान के चाकर है। पहले जमाने मे आस्था से नगी अपनी प्रजा को कपडे पहनाने के लिए श्रीराम ने कबीरदास जी को भेजा। अब कपड़ो के साथ जेवर-गहने पहनने के दिन भी आ गए है, तो राम जी की दुकान मे हमारे मेघा भगत जैसी विभूतिया भी चाकरी बजा रही है।"

हाकिम हुलासराय जी बोले—"ये आपकी वस्त्र और गहने वाली बात हमारे समझ मे नही आई। महराज, तनिक फिर से समझाने की कृपा करे।"

तुलसीदास बोले—"देश काल के अनुरूप ही धर्म-बोध ढलता है। कबीर साहब ने जिस समय निर्गुण राम का प्रचार किया उस समय कैसा घोर अत्याचार हो रहा था। सारी मूर्तिया और मन्दिर ध्वस्त कर दिए गए थे। भद्र समाज

कायर बनकर विजेताओ के तलवे चाटने लगा था। और निर्धन-दीन-दुर्बल जन-समाज बेचारा हाहाकार कर उठा था। अनास्था के ऐसे गहन शून्य-भरे भारत रूपी महल के खण्डहर में कबीरदास यदि निर्गुनियां राम का दिया न बारते तो आज उसमे भूत ही भूत समा चुके होते।"

"तब आप गली-गली मे उनका तीव्र विरोध और सगुण का अन्ध प्रचार क्यो करते है।" एक बुद्धिवन्त और सौम्य लगने वाले युवक ने पूरी शिष्टता मे अपना तीखापन मिलाकर पूछा।

"मैं निर्गुण का विरोध कभी नही करता। सगुण-निर्गुण दोनो एक ही ब्रह्म के स्वरूप है। वे अकथ, अगाध, अनादि और अनूप है। मैं तो केवल उन लोगों का विरोध करता हूं जो कबीर साहब के वचनो की आड लेकर समाज की धार्मिक आस्थाओ के निकम्मे आलोचक हैं। कबीर साहब को राम-धाम-लाभ हुए सौ-डेढ सौ वर्ष बीत गए किन्तु तब से लेकर अब तक वे और उनके पथगामी तीव्र प्रहार करके भी जन-जन के हृदयमन्दिर से रावणहन्ता रामभद्र की मूर्ति भजित नही कर पाए। त्रस्त जनमानस के अडिग आधार-सी उस सगुण भक्ति पर निकम्मे प्रहार करके बेचारी जनता को सताते हैं, मरे हुओ को मारते है। ऐसे निकम्मे आलोचक लोक-देश-समाज के शत्रु होते है। मैं इसका विरोध करता हू।"

"आप कृष्ण जी के भी तो विरोधी है?"

"मैंने कृष्ण प्रेम मे गीत गाए है। राम-श्याम मे भेद नही है। पर इस समय मुझे इनका मुरलीधर गोपीरमण रूप नही लुभाता। मैं उन्हे धर्नुधारी, असुर संहारक और रामराज्य प्रतिष्ठापक के रूप मे निहारना चाहता हू।"

एक युवक ने बात का रग बदलते हुए पूछा—"हमने सुना है महराज कि विद्यार्थी काल मे पण्डित बटेश्वर जी मिश्र से आपका कोई झगड़ा हुआ था?"

"हमसे उनका कोई झगडा कभी नही हुआ। हमारे हनुमान जी से उनके भूत अवश्य डरकर भाग खडे हुए थे।" तुलसीदास के कहने के विनोदी ढंग से कुछ और लोग भी हस पड़े।

युवक ने फिर कहा—"वह आपके ऊपर कोई मारण प्रयोग कर सकते है। महान तांत्रिक है।"

"मारने और जिलाने वाले तो राम है। फिर यह सब बाते निरर्थक है।"

फिर उसी युवक ने प्रश्न किया—"अच्छा इसे छोड़िए, हमने सुना है कि इन्ही मेघा भगत के दरबार मे आपकी और यहा की किसी वेश्या की गायन कला मे होड़ लगी थी?"

तुलसीदास का चेहरा लज्जा और क्रोध से लाल हो गया, परन्तु अपने को सयत रखकर वे मुस्कराते हुए बोले—"हा, मेरे भीतर कला प्रदर्शन की होड़ जागी थी।"

"फिर कुछ इसक-मुहब्बत की कलाबाजिया भी बाई जी के साथ लगाई थी आपने?" युवको मे से कई निर्लज्जतापूर्वक हंसे।

हुलासराय ने तुरन्त टोका—"आप लोगो को एक महात्मा से ऐसे भद्दे सवाल

नही करने चाहिए।"

एक युवक बोला—"इसमें भद्दा कुछ नही है। हमारी सहज जिज्ञासा है। महात्मा जी, क्या बतला सकते है कि वह मोहिनीबाई अब कहां रहती है?"

तुलसी के मन मे वर्षों पहले की अंकित मोहिनी की छवि उभर उठी। परन्तु यह छवि उनके लिए इस समय मोहक न थी वरन् अपमान की आशंकाएं उभारने वाली बन गई थी। फिर भी तुलसीदास ने अपने मन को संयत रखा। भय और क्रोध को दबाकर स्थिर स्वर मे कहा—"नही।"

"मिलेंगे उससे? मैं मिला सकता हूं।"

इस प्रश्न के साथ हर युवक के चेहरे पर हिंसात्मक आनन्द की चमक आ गई। तुलसीदास ने चतुर कनखियो से हर चेहरा भाप लिया। चट से मुस्कराकर प्रश्न का उत्तर बड़ी दीनतापूर्वक दिया—"मिला सके तो मुझे राम से मिला दे।"

"राम से तो वह राम का प्यारा ब्रह्मघातकी चमार ही मिला सकता है। सुना है आपने उस ब्रह्महत्यारे के पैर भी धुलाए थे?"

"हा, दीन-दुर्बल और रोगी की सेवा करना मैं राम की सेवा करना ही मानता हू।"

"सुना है, आप जाति-पाति नही मानते?"

"मानता हू और नही भी मानता।"

"कैसे?"

"वर्णाश्रम धर्म को मानता हूं परन्तु प्रेम धर्म को वर्णाश्रम से भी ऊपर मानता हू।"

युवक मण्डली तुलसी की हाजिर जवाबी से अब चिढ उठी थी। उनमे से एक तीखा पड़ा, बोला—"आप क्या अवधूत है?"

दूसरा बोला—"अजी अवधूत-वौधूत कुछ भी नही। विशुद्ध पाखण्डी है ये। जो एक नीच-हत्यारे के पैर धोए, उसे भोजन कराए, वह ब्राह्मण भी कदापि नही हो सकता।"

"तो इनको ब्राह्मण कहता ही कौन है। यह किसी ब्राह्मणी कुलटा के गर्भ से उत्पन्न राजपूत है।"

तुलसी भीतर ही भीतर उबलने लगे किन्तु चुप रहे। राम शब्द उनका सहारा था।

दूसरे युवक ने तीसरे युवक की जाघ मे चिकोटी काटकर आंख मारी, फिर वह बोला—"भई, राजपूत-वाजपूत की तो हम नही जानते, पर सुना है कि ये कबीरदास की कौम के है।"

तुलसीदास उठ खड़े हुए। मन हाथ से छूट चला। उनका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा था, वे बोले—"धूत, अवधूत, रजपूत, जुलाहा जो जिसके मन मे आए जी भरके कहे। मुझे न किसीकी बेटी से अपना बेटा व्याहना है और न किसीकी जात ही बिगाड़नी है। तुलसी अपने राम का सरनाम गुलाम है, बाकी और जो जिसके मन मे आए कहता फिरे। फकीर आदमी, मांग के खाना

मस्जिद मे सोना। न लेना एक न देना दो। फिर आप लोगो के फेर मे क्यो पड़ू ?" कहकर वे उठ खड़े हुए।

एक युवक तुरंत उठा और उनकी राह रोक हाथ जोड़कर बोला—"हममे से कुछ लोगो ने नि.संदेह आपको अपमानित करने के लिए ही यहा बुलाया था, मैं जानता हू। आपके मत से मेरा विरोध भले ही हो पर मैं आपका सम्मान करता हू। हमारी मूर्खतापूर्ण और विद्रूप-भरी बातो का बुरा न मानें।"

तुलसी शान्त स्वर में बोले—"भैया, बुरा मानकर मेरा कुछ लाभ तो होने से रहा जो मानू। आप लोगो ने मेरे बहाने अपना थोडा-सा मनोरजन कर लिया, इसलिए अपने-आपको धन्य मानता हू।" तुलसीदास तेजी से चले आए और भगत जी के पास आकर शातिपूर्वक बैठ गए। सम्भ्रातो की भीड अब पहले से अधिक जुड चुकी थी। तुलसीदास के उत्तेजित हो जाने से सभा मे एक प्रकार का सनाका-सा छा गया था और सम्भ्रात समाज को बहुत रुचिकर नही लग रहा था। फिर भी दोषी प्रायः युवकों को ही बतलाया गया। सयोग से अधिक समय न बीत पाया था और जयराम साहु तथा काशी के दो-चार बड़े-बड़े धनी-धोरियो के साथ महान् पण्डित नारायण भट्ट और उनके महामहिम शिष्य राजा गोवर्धनधारी दास टण्डन बारहदरी मे पधारे। सभा मे बडी रौनक आ गई।

भोजनोपरान्त सभा फिर जुडी। कुछ कवियो ने अपनी सस्कृत भाषा की कविताए सुनाई। मेघा भगत ने किसी दूसरे कवि का नाम लिए जाने से पूर्व ही नारायण भट्ट जी को सम्बोधित करते हुए कहा—"आचार्य प्रवर, हमारे अनुज-सम प्रिय रामभक्त तुलसीदास की कविता अब सुनने की कृपा करे। आज हमारी रामलीला का प्रथम प्रदर्शन भी श्रीराम-जन्म-प्रसग को लेकर ही आरभ हो रहा है। तुलसीदास कृपा करके सभा को अपनी कोई रम्य रचना सुनाएं।"

नारायण भट्ट जैसे उद्‌भट और परम प्रतिष्ठित विद्वान के लिए काशी के कवि समाज मे एक नया चेहरा कोई विशेष आकर्षण नही रखता था। किन्तु तुलसी के स्वर और काव्य प्रतिभा ने उन्हे क्रमश. अपनी ओर खीच लिया। तुलसीदास सभा मे तन्मय होकर गा रहे थे—

"श्रीरामचन्द्र कृपालु भजमन हरण भव भय दारुणम् ॥··"

भजन के समाप्त होने पर सभा कुछ क्षणो तक तुलसी के जादू से बधी हुई मौन बैठी रह गई। सामने मंच से उसी समय जवनिका हटा दी गई और रामलीला का प्रदर्शन आरंभ हो गया।

लीला प्रदर्शन के बाद लौटते समय दुष्ट युवक मण्डली मे से एक बोला—"भई, कुछ भी कहो, सब मिलाकर यह तुलसीदास नाम का प्राणी है चमत्कारी, और दमदार भी है।"

"इसीलिए इसे शीघ्र उखाड फेंकना चाहिए।"

"इसकी एक चाभी तो आज हम लोगो को मिल ही गई है, जात-पात

पूछने से चिढ़ता है। घर चलो, बैठकर इसके मुण्डन संस्कार पर विचार किया जाएगा।" × × ×

४२

गुरु कथा धीरे-धीरे बेनीमाधव जी के लिए एक ऐसी प्रेरणा-भरी चुनौती बनती जा रही थी, जिसका सामना करने में उनका दिल दहलता था। उन्हे अपने लौकिक जीवन मे अपने गुरु के समान विकट संघर्ष कभी नही झेलना पड़ा था। वे अभी तक काम को ही राम नही बना पाए और गुरु जी काम-क्रोध-लोभ-मोहादि की शक्तियो को खींचकर कितने मनोयोग से अपनी रामनिष्ठा को प्रबल बना चुके है और अधिकाधिक बनाते रहे हैं। यह उनके लिए आश्चर्यजनक तो था ही, साथ ही उनका रहा-सहा हौसला भी दिनोदिन पस्त होता चला जा रहा था। बेनीमाधव अपने भीतर बराबर लघुता अनुभव करते जा रहे थे। वर्षों पहले जब वे इसी काशी मे गुरु-आश्रम के अंतेवासी थे तब भी गुरु जी के व्यक्तित्व के आगे उन्हे अपनी हीनता ने बेहद सताया था। तब गुरु जी ने ही उन्हे सूकरखेत जाकर अपना मुक्त विकास करने की सलाह दी थी। इन दिनो भी उनका एक मन फिर से भाग जाने को होता था। परन्तु दूसरे मन से वे अपनी इस इच्छा को बरजकर पीछे हटते थे।

एक दिन जेठ की लू-भरी दुपहरी मे अपनी कोठरी मे बेनीमाधव जी उदास बैठे थे। आकाश उनके मन के आकाश के समान ही दूर-दूर तक सूना था। कोठरी उनके अंतर की तरह ही तप रही थी। माला जपने मे मन नही लग रहा था, वे अपने आप से उबरना चाहते थे। गर्म हवा के तेज थपेड़ो से कोठरी का पुराना पर्दा फट गया था, हवा आ-आकर आग की लपटों-सी काया को छू जाती थी। पर्दे के निचले बांस का दाहिना कोना सुतली टूट जाने से दीवाल मे जड़े कुण्डे से मुक्त होकर बार-बार उड़कर दीवार से फटाफट लगता था। वह ध्वनि सीधे उनके मस्तिष्क की शिराओ पर ही वार करती थी। बेनीमाधव बाहर-भीतर से झुंझलाकर उठे, अपनी छोटी-सी कोठरी मे दो-चार बार तेज चहलकदमी की और फिर लू के झोके की तरह ही कोठरी से बाहर निकल आए।

बगलवाली कोठरी मे पर्दे की झिरी से झांककर देखा, राजा भगत सीधे तने बैठे गोमुखी मे हाथ डाले माला जप रहे थे। उनकी आंखे मुंदी हुई थी। किसी साधक की यह तल्लीनता इस समय बेनीमाधव के लिए शांतिदायक न होकर लघुता, चिढ और झुंझलाहट उपजाने वाली थी। वे वहा से हट आए। नीचे उतरे, कुएं वाले दालान मे रामू दो विद्यार्थियो को पढ़ा रहा था। रामू से वे अब ईर्ष्या नही करना चाहते, किन्तु क्या करें, हो ही जाती है। राजा भगत तो खैर गुरु जी के सखा है, ऊंचे साधक हैं, किन्तु रामू आयु मे उनके पुत्र समान होते हुए भी आत्मसंयम की दृष्टि से उनसे कही अधिक कसा हुआ है। वह छोटी-

सी ग्रायु मे ही ऐसा सब गया है और वे अब भी मानसिक झकोलों से नही उबरे। हीनतावश एक ठण्डी सांस उनके कलेजे से फूटकर निकल गई। भवन के बाहर निकल आए। एक बार जी चाहा कि घाट की ओर निकल जायं और किसी सीढ़ी पर गंगा मे गले-गले डूबकर बैठ जायं, फिर गुरु जी की कोठरी की ओर देखा। टोडर ने कोठरी के आगे छप्पर छवा दिया था, जो चारो ओर से एक प्रवेश द्वार को छोड़कर बन्द था, इसीलिए लू की तपन बाबा की कोठरी मे सीधे नही पहुच पाती थी। बेनीमाधव उसी ओर चले गए। छप्पर मे प्रवेश करने पर देखा कि कोठरी के दोनो द्वार खुले हुए थे और अबरे मे उनके गुरु जी चौकी पर बैठे अपने घुटने पर थाप देते हुए आखे मीचे कुछ गुन-गुनाते हुए झूम रहे थे। वह शुभ्रवसन-गौरवर्ण की तेजस्वी काया कोठरी के अंधेरे को प्रकाशवान कर रही थी। बेनीमाधव बाहर ही बाहर खड़े-खड़े अपने गुरू जी को देखते रहे। उनके मन के नाचते बवण्डर बाबा को देखते हुए मानो थम गए थे। मरुस्थल मे चलते-चलते मानो वे हरियाली के सामने आ गए थे।

बाबा ने सहसा आखें खोली, बेनीमाधव को देखा, बोले—"आओ वत्स, बड़े समय से आए। अभी कुछ देर पहले मुझे तुम्हारी याद भी आई थी। तुम आज अपने से बहुत उखड़े हुए हो, है न ?"

बेनीमाधव जी के मन मे एक क्षण के लिए भी झिझक न आई, वे बोले—"हा गुरू जी, लगता है कि एक यथार्थ को झुठलाया नही जा सकता।" कहकर बेनीमाधव रुके। उन्होने सोचा कि शायद गुरु जी प्रश्न करे, किन्तु वे मौन बैठे रहे। बेनीमाधव ने आप ही आप फिर बात को आगे बढ़ाया, कहने लगे—"भोजन और कामसुख यह दो अनुभव ऐसे है कि जिन्हे मनुष्य क्या प्राणिमात्र बार-बार अनुभव करके भी जनम भर नही अघाता। जब यह इतना व्यापक सत्य है तब इसे नकारना क्या उचित है ?" अपने बेझिझकपन से बेनीमाधव स्वयं ही कुछ-कुछ भय स्तंभित होकर भी बडा हल्कापन अनुभव कर रहे थे। जो बात गुरू जी के सामने उनके मुख से कभी निकल ही न पाती थी वह आज अकस्मात् फूट पड़ी।

बाबा बोले—"मेरा यथार्थ तुम्हारे यथार्थ से भिन्न है। तुम गली मे खड़े होकर जहां तक देख पा रहे हो, मैं छत पर खड़े होकर उससे कही अधिक दूर तक देख रहा हूं। यह कहो कि तुम या तो कायर हो अथवा आलसी।"

बेनीमाधव का माथा फिर झुक गया, बोले—"मैं दोनो हूं। मैंने एक मिथ्या मान की चादर मे अपना मुह लपेटकर अपने-आप को अंधा भी बना लिया है गुरू जी। मैं महामूर्ख हू।"

बाबा ने स्नेहपूर्वक कहा—"यदि यह चेतना तुम्हारे भीतर व्यापक रूप से प्रकट हुई है तो तुमने कुछ नही गवाया। ''मैं जानता हूं कि तुम आजकल अपने से हार रहे हो, पर मैं नही चाहता कि तुम हारो। अपने को उठाओ। तनिक अपने विराट स्वरूप को देखो तो सही! वह अपने-आप मे ही एक ऐसा अनुभव है जिसे पाकर मनुष्य को और कुछ पाने की चाह नही रह जाती।" कुछ क्षण चुप रहकर वे फिर कहने लगे—"मैं जिन दिनो मानस रचना कर रहा था उन

दिनो वरावर इसी उत्साह मे रहा करता था कि यदि मैं निष्ठापूर्वक इस महाकाव्य को लिख गया तो राम जी मुझे निश्चय ही प्रत्यक्ष दर्शन देगे। काशी मे जब मेरी जाति-पाति को लेकर मिथ्या प्रचार वडे जोर से चला तो मुझे यह होता था कि अपने-आपको सत्ता, कुल अथवा धन के मद मे माता किए हुए जो लोग आज मेरी निन्दा मे व्यस्त है वे यही के यही रह जाएंगे और मैं राम सान्निध्य पा जाऊंगा। इस विचार ने मुझे कभी भी हीन वोध का अनुभव नही होने दिया। हीन-दीन जो कुछ था वह केवल अपने राम के सम्मुख था और किसीके आगे नही।"

गुरु जी की वातों से वेनीमाधव फिर अपनी पकड मे आ गए। भोला मन अब फिर से सधने लगा था। वोले—"उस ब्रह्महत्यारे को भोजन कराने के कारण आपको वहुत निन्दा सहनी पड़ी। पहले जब मै यहां रहता था तव कइयों से सुना था कि आप यह अस्सी घाट का स्थान छोडकर कही गुप्तवास करने लगे थे?"

तुलसी वोले—"यहा से उठकर भदैनी चला गया था।" ×, × ×

--तुलसी के लिए अस्सी घाट पर रहना दूभर हो गया था। उनके विरोधियों के द्वारा भेजे जानेवाले भाडे के निंदक दिन-रात उनकी कोठरी के आसपास मंडराया ही करते थे। निंदक ऐसे मजे हुए लोग थे कि टोडर के पहलवानः और हनुमान अखाडे के नौजवान ऐसा मौका खोजते ही रह गए जब वे लोग कोई उत्पात या गालीगलौज करे और यह लोग उनकी ठुकम्मस कर पाएं। किन्तु निंदा वडे भक्तिभाव के आडम्वर के साथ की जाती थी। ब्रह्महत्यारे के चरण पखार कर उसे भोजन कराने की वात ने इतना तूल पकड़ लिया था कि वहुत से भक्त भी तुलसीदास के ब्राह्मण होने मे थोड़ा-वहुत सन्देह करने लगे थे।

तुलसीदास ने वडे धैर्य और संयम से काम लिया, पर वे कहां तक एक ही वात को रांड के चरखे की तरह चलाते रहते। उनकी मानस रचना के काम मे व्याघात पडता था। अरण्यकाण्ड की रचना लगभग पूरी हो चुकी थी। सीताहरण की योजना मे रावण कपटमृग का जाल फैला चुका था, किन्तु यही आकर तुलसीदास की लेखनी स्तम्भित हो गई थी। न लिखने का अवकाश मिलता है, न सोचने का। एक दिन वे दुखी हो गए। वडी शांति वरतते हुए भी मन की खीझ आखिर उभर ही पडी। उन्होने अपने छद्म निन्दकों और प्रशंसकों की भीड से कहा—"भाई, अव इस प्रश्न को समाप्त कीजिए। समझ लीजिए कि न तो कोई मेरी जाति-पांति है और न मैं किसी की जाति-पाति से कोई प्रयोजन ही रखना चाहता हूं। न मैं किसीके काम का हूं और न कोई मेरे काम का है। मेरा लोक-परलोक सव कुछ रघुनाथ जी के हाथ है। उन्हीके नाम का भारी भरोसा है।"

वात चल ही रही थी कि एक शहद लिपटी हुई छुरी-सा प्रश्न फिर उनके कलेजे के आर-पार हुआ। एक व्यक्ति ने हाथ जोडकर सविनय कहा—"अरे महाराज, आपकी अटल राम भक्ति पर भला कौन सन्देह कर सकता है? और मैं समझता हूं कि यहा वैठे हुए किसी भी जन के मन मे आपके ब्राह्मण होने में भी सन्देह नही है। ब्राह्मण आप अवश्य है, वाकी रहा कुल-गोत्र वगैरा सो...."

निन्दा की नई चाल के इस जहर को तुलसी नीलकंठ की तरह पचाने का

प्रयत्न करते-करते भी बिफर ही पडे, बोले—"अरे आप बड़े नासमझ हैं। इत्ती-सी बात भी नही जानते कि गुलाम का गोत्र भी वही होता है जो उसके साहब का गोत्र होता है। पर अब दया करके मेरी भी एक विनय सुन लें, मैं साधु होऊं या असाधु, भला आदमी होऊं या बुरा आदमी, आपको इसकी चिन्ता क्यों सताती है ? क्या मैं किसीके द्वार पर जाके पड़ा हूं, जो यह प्रश्न पंवारे फैलाते ही चले जाते हैं। अरे मैं जैसा भी हूं अपने राम का हूं।"

उसी दिन शाम को संयोग से कैलासनाथ आ गए। टोडर भी बैठे हुए थे। तुलसी बोले—"कैलासनाथ, अब हम यहां से चले जाएंगे।"

"कहां ?"

"दो ही जगहें मन मे आ रही हैं, या अयोध्या जाऊंगा या फिर चित्रकूट। समझ मे नही आता कहां जाऊं।"

"परन्तु तुम यहां से जाना ही क्यो चाहते हो ? क्या नगर के कुत्तों की भौं-भौं से डर गए ?"

"डरा तो नही पर दुखी अवश्य हो गया हू। इन निंदकों और प्रशंसकों की चकल्लस में मेरा जप-तप-ध्यान-लेखन कार्य, सब कुछ चौपट हो रहा है। मन को चैन ही नही मिलता तो स्फूर्ति कैसे आए ?"

"महात्मा जी, आप कहे तो कपिलधारा पर आपके रहने का प्रबन्ध करा दू ?" टोडर ने कहा।

"वहा जाने से भी मुझे कोई लाभ न होगा। आसपास के गावो की भीड़ आएगी और इन चकल्लसियो को भी पहुचते देर न लगेगी। फिर तो जैसा अस्सी घाट वैसी ही कपिलधारा।"

"हम कहते हैं कि तुम मेघा भाई के साथ क्यो नही रहते ? भदैनी में जयराम साव की बगीची में रहो। और निश्चिन्त होकर अपना महाकाव्य रचो। वहां तुम्हे कोई सता नही सकेगा।"

कुछ देर तक विचार करने के बाद तुलसी ने कहा—"तुम्हारे इस प्रस्ताव मे दम है। मेरा लेखन कार्य वहा शांतिपूर्वक हो सकेगा। तब फिर तुम एक बार भदैनी चले जाओ कैलास, मेघा भाई से सही स्थिति बतलाना और कहना कि कल ब्राह्मवेला मे मैं भदैनी पहुंच जाऊगा। कोई यह जान भी न पाएगा कि तुलसी कहा गया।"

तुलसी के भदैनी आ जाने से मेघा भगत बड़े ही प्रसन्न हुए। ऐसा लगता था कि उनके आगमन की प्रतीक्षा मे वे रात भर नीद सो भी नही पाए थे। देखते ही बड़े उन्मत्त उल्लास से भगत जी ने उन्हे आलिंगनबद्ध कर लिया, फिर एकाएक फूट-फूटकर रो पड़े। उस रुदन में तुलसी को भगत जी के अन्तर्मन की शान्ति और आनन्द का अनुभव ही अधिक हुआ। उन्हे लगा जैसे लू-भरे मैदान मे कोसो चलकर वे ऐसी घनी अमराई मे आ गए हो जहा आम के बौरो की गंध से लदी शीतल बयार डोल रही है। आलिंगन मे बंधे-बंधे ही वे बोले—"राम जी ने इस बार कठिन परीक्षा ली मेघा भाई, परन्तु उन्हींकी कृपा से उबर भी गया।"

धीरे-धीरे आलिंगन मुक्त होकर अपने-आपको संयत करते-करते मेघा भाई फिर रो पड़े, कहा—"अरे अभी तेरी परीक्षाओं का अंत कहां आया है भैया, यही सोच-सोचकर तो दु:खी हो रहा हूं।"

तुलसी हंसे, बोले—"आपके इस दु:ख में भी सुख ही झलक रहा है भाई।"

सुनकर रोते-रोते ही मेघा हंस पड़े, कहा—"एक जगह पर अब मुझे दु:ख-सुख में अंतर नहीं दिखलाई पड़ता। वासना, बिंब-ध्वनि और उनका वहिप्रसार त्रिआयामी है, जितना गहन उतना ही विस्तृत और उतना ही उच्च। कहां भेद करूं। पहले तीनों अलग-अलग समझ पड़ते थे—अब सब एकाकार है।"

तुलसी गंभीर हो गए, कुछ क्षणों तक चुप रहकर कहा—"एक राम, एक कवि, एक रामबोला—तुलसीदास—परन्तु राम तुलसी तक आते-आते अनेक रूपरूपाय हो जाते हैं। मेरे जप-तप सारे साधन अभी तक आपके समान एकाकार नहीं हो सके। क्या करूं?" तुलसी के स्वर में उदासी छा गई।

"माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आए फल होय।" कहकर वे भीतर की ओर बढ़ चले। चौखट पर रुककर तुलसी के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"घास के फूल जल्दी विकसित हो जाते हैं, चंपक देर से खिलता है। इतिहास मेघा को कहां देख पाएगा रे? मेरा तुलसी तो राम बनकर घट-घट में रमेगा।...ना-ना, संकोच न करो भैया। अपने यथार्थ को पहचानो। तुम्हारे अहंकार की वहिचेंतना और तुम्हारा अतर्कवि दोनों ही राममय बनने की उत्कट लालसा में एक सिरे पर तप रहे हैं, और दूसरे सिरे पर तुम्हें अपनाने के हेतु स्वयं राम। तुम्हारे महाकाव्य की रचना के लिए यही अंतर्द्वन्द्व कदाचित आवश्यक है। तपे जाओ मेरे भैया, यही तो दु:ख में सुख है।" × × ×

'एक राम, एक कवि और एक रामबोला।' बेनीमाधव जी अपने भीतर इस गुरु वाक्य को धुनते रहे। असल में उनके राम और काम में ही द्वन्द्व है। उनका कवि और बेनीमाधव दोनों ही चाहते राम को हैं, वही तो महिमा की वस्तु है। लेकिन कामेच्छा राह में रोड़े डाल देती है। 'क्यों? तृप्ति पाई तो है फिर अतृप्ति क्यों? गुरू जी को भी ब्रह्मचर्य धारण करने के बाद वर्षों तक काम से संघर्ष करना पड़ा है। तब मैं क्यों डरता हूं? गुरू जी ने अपने भक्त और कवि के अन्तर्द्वन्द्व का भी सुन्दर निरूपण उस दिन मेरे सामने किया था। अयोध्याकाण्ड की रचना करते समय वे अपनी काव्यकला निपुणता के प्रति जितने निष्ठावान रहे उतने राम भक्ति में लय न रहे। उन्होंने अयोध्या में अपनी रचना के चुराए जानेवाले प्रसंग से यों अर्थबोध ग्रहण किया था। अपने काशी के अनुभवों में भी उनके लिए नियति से तीखी टकराहटें ही मिली। फिर भी वे अपने महाकाव्य की रचना में लगन के साथ लगे रहे। वह निष्ठा जो इनके मन को व्यर्थ संघर्षरत न बनाकर रचनात्मक कार्य में जुटाए रखती है मुझे क्यों नहीं मिलती? कैसे पाऊं?' बेनीमाधव का सरल बाल मन चन्द्रखिलौना पाने के लिए मचल रहा था। गुरुजी की बात पूरी हो जाने के बाद वे अपने ही गुताड़े में तल्लीन हो गए।

बाबा बोले—"अच्छा जाओ, बाहर देख आओ, स्नानादि का समय हुआ कि नहीं। कल फिर तुम्हें आगे की कथा सुनाऊंगा। तुम्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा।"

दूसरे दिन फिर वे अपनी कथा सुनाने लगे—"मैंने एक को ले लिया और उस एक के पीछे ही दीवाना बन गया। धन-वैभव-सत्ता आदि लोक में लुभाने वाला सब कुछ मेरे राम के पास था, और इतना था जितना कि मनुष्य की कल्पना में आने वाले कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों में किसी भी जीव के पास नहीं था। मैं उसे ठेठ भाषा में कहूं, वेनीमाधव, कि अपने आदर्श की ऊंचाई के आगे मुझे ये बादशाह, सिपहसालार, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार मिट्टी के खिलौनों के समान लगते थे। मेरे सृजनशील अहं को जो शक्तियां हीनता का बोध करा सकती थीं वे तुच्छ बन गईं। ऐसे ही कामादि वृत्ति रूपी असुर भी मेरे सृजनशील अहं को तुच्छ नहीं बना सकता था। मेरे कवि का साहब परम न्यायी और करुणानिधान है, फिर मैं भला लोक की रावणी व्यवस्था से क्यों घबराता? मुझे परस्पर विरोधों के बीच से चलकर अपना राममार्ग प्रशस्त बनाना था। इसके बिना मैं अपनी सृजनशीलता को जिस धरातल पर ढालना चाहता था वह ढल न पाती। मेरा कवि अपने साहब के प्रति निष्ठावान था और मेरा साहब घट-घट में रमा हुआ है इसलिए मैं मानवमन के दर्शन करने का योग ही जीवन-भर साधता रहा।"

वेनीमाधव बोले—"आपने क्या राम के प्रत्यक्ष दर्शन पाए गुरू जी?"

बाबा हंसे, कहा—"जानते हो, रामचरितमानस लिखते समय मुझे बराबर यही विश्वास होता था कि जिस महाकाव्य को स्वप्न में जगदम्बा जानकी, कपीश्वर और कवीश्वर की आज्ञा पाकर रच रहा हूं उसके पूरा होते ही राम जी मुझे अवश्य ही प्रत्यक्ष दर्शन देंगे। मुझे प्रत्यक्ष दर्शन मिले किन्तु जन-जन के रूप में। यों रामचरितमानस रचकर मेरे घट-घट व्यापी राम मुझे निश्चय ही मिल गए। मैंने उन्हें निराकार-साकार रूप में बहुत सीमा तक पहचान लिया। उनका पूर्ण रूप देखने की लालसा यों मुझमें अब भी शेष है। कदाचित् अंतिम सांस के साथ ही पूरी हो कि न हो। नहीं-नहीं, राम कृपा से होगी। इस कलिकाल में तुलसी जैसी लगन से प्रीति निभाने वाले अधिक नहीं हैं। मेरे साहब अब मुझे नेवाजेंगे।"

बाबा का अडिग-अगाध आत्म-विश्वास-भरा गौर मुख वेनीमाधव के मन में उत्साह का संचार करने लगा। कैसा साहसी है यह रणबांकुरा। भाव से उभ-चुभ होकर प्रश्न कर बैठे—"अरण्यकाण्ड तो आपने अस्सीघाट पर ही रच डाला था न गुरू जी?"

बाबा की स्मृति झनझना उठी, संघर्ष-भरे, रचना की लीला-भरे वे पुराने दिन वेनीमाधव को दिखाने के लिए उनकी वाणी पर शब्द चित्र बनकर संवरने लगे। × × ×

अरण्यकाण्ड अति संघर्ष के क्षणों में रचा गया। हनुमान फाटक और अस्सी पर विशेष रूप से ब्रह्महत्यारे को भोजन कराने के बाद उन्हें अत्यधिक त्रस्त

होना पड़ा। तुलसी आठो पहर सतर्क रहकर अपनी वीतरागता को सिद्ध करते रहते थे और इसके लिए अरण्यवासी तापस श्रीराम का ध्यान उन्हे बल देता था ··बल ही नही वे आनन्द और एक अवर्णनीय तरावट-सी पाते थे। उनके मानसरोवर मे बिम्ब शब्दो के कमल बनकर खिलने लगते थे और फिर वे लिखे बिना रह नही पाते थे। किन्तु कितने विघ्नो के झटके उन्हे लगते थे! लिखने का तार बार-बार टूटत' था। यहा भी तुलसी को अब तक अयोध्या से कुछ कम संघर्ष नही झेलना पडा था। अहंता पर चोटें-सी पड़ी। यह सचमुच रामकृपा ही थी कि अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रथम संघर्ष काल मे उन्हे महाकाव्य रचने की प्रेरणा मिली। अयोध्याकाण्ड फिर भी निर्बाध गति से लिखा, यद्यपि भक्ति से अधिक वे काव्यनिष्ठा से बंधे। काशी मे काव्य और भक्ति दोनो के प्रति वे अपनी निष्ठा को वैराग्य से संतुलित रखने मे सतत् जागरूक रहे, यह महाकाव्य तुलसी का होकर भी उसका नही था, स्वयं हनुमान जी उससे लिखा रहे है। वह जितने सुघढ ढंग से काम करेगा, जितनी सच्ची लगन से करेगा उतने ही उसके मालिक संतुष्ट होगे। जाति प्रपच, निन्दात्मक प्रचार आदि विरोधी पक्ष के तीखे से तीखे प्रहार तुलसी ऊपर से तो सफलतापूर्वक झेल जाते थे पर भीतर कही कचोट लगती थी, 'सद्चिन्ता विहीन शुद्ध दम्भयुक्त सत्ता या धन से मंडित दुश्चरित्र लोग मुझे नीचा कहे और मुझे सुनना पड़े! पीतल सोने को मुंह चिढाए और सोना चुप रह जाय, यह विडम्बना न्याययुक्त मानकर कैसे सही जाय? पर सहनी ही पड़ेगी। रामबोला, राम तेरी परीक्षा ले रहे है। इधर से वीतराग बन। महाकाव्य पूरा करते ही राम तुझे प्रत्यक्ष दर्शन देंगे। अपने को अभागा न समझ। ऊपरी मानापमान के चोचले छोडकर रामकथा-रस मे डूब —गहरे से गहरा डूब।'

भदैनी मे घायल गृद्धराज जटायु से राम की भेंट होने का प्रसंग उठाया। गृद्धराज के बहाने राम-वन्दना की ओर फिर वह चले। किष्किन्धाकाण्ड मे, रामकथा में हनुमान के प्रवेश करते ही तुलसी का कार्यभार मानो मन से हल्का हो गया। काव्य रचना मे उनकी तन्मयता और गति स्फूर्तिवत् हो उठी। सारा सुन्दरकाण्ड एकरस होकर लिखा। हनुमान जी इस काण्ड के नायक थे। काण्ड रचते समय जब स्वयं राम-सीता अथवा राम के भाइयों के प्रसंग आ जाते हैं, तब तो उन्हे समुद्री तैराक की तरह अधिक सचेत रहना पडता है परन्तु हनुमान तो निरे बचपन से ही उनके लिए गंगा के समान है। वे उनके बड़े भाई है, सखा हैं, आड़े समय के सहारे हैं इसलिए उनका शौर्य, और उनकी दूत-कर्म-कुशलता का बखान करते हुए उनका काव्य चातुर्य्य लगन-भरे चाकर की तरह उनकी हनुमद्भक्ति की सेवा मे ऐसा लीन रहा कि जैसा पहले कभी इतने दिनो तक नही हुआ था। यों घडी-दो घड़ी, अधिक से अधिक एकाध दिन तक ऐसी तल्लीन तरंगो के बहाव मे तो प्राय ही बहते रहे थे। सुन्दर काण्ड की रचना करते हुए उन्हे अपने प्रति नया विश्वास सिद्ध हुआ।

यों भी मेघा भगत से वे अपने लिए हनुमतवत् संकेत पाया ही करते थे। मेघा भगत ने उन्हे स्वच्छन्द जीवन बिताने के लिए व्यवस्था भी बहुत अच्छी

कर रखी थी। केवल सायंकाल को छोड़कर कोई उनसे मिलता न था। टोडर और कैलास नित्य, गंगाराम कभी-कभी और जयराम साव तीसरे-चौथे दिन एक चक्कर लगा जाया करते थे। सवेरे स्नान-पूजा से छुट्टी पाकर तुलसीदास एक बार मेघा भगत से मिलने के लिए अवश्य जाते थे। अशोक वाटिका मे हनुमान और जगदम्बा की भेंट का चित्रण करते हुए उन्हे एक गुप-चुप आनन्द यह रहा कि वे हनुमान जी की कृपा से जानकी मैया को देख रहे है। उनके मुख से राम जी की बातें सुन रहे है। जैसे-जैसे इस कथा प्रसंग का शब्दचित्र उभरता आता था वैसे-वैसे ही उनका आत्म-विश्वास अपनी सरल-भोली निष्ठा मे प्रबल और प्रौढ़ होता जा रहा था। भक्ति के क्षेत्र मे उन्होने पहली बार अपने-आपको वयस्क अनुभव किया। पहली बार रत्नावली के प्रति अपनी अनन्य चाह वे राम जी के बहाने सीता जी को अर्पित करके अपने भीतर की अतिरंजित झिझक तोड़कर मन के नातो मे सहज हुए। × × ×

४३

वेनीमाधव ने पूछा—"किसी जीवन-चरित्र को लिखते समय प्रत्येक पात्र या पात्री की कल्पना आप कैसे करते थे गुरू जी? मैं पहले अपना उदाहरण दू, मैं जिस जीवनचरित की रचना कर रहा हूं उसमे केवल आप ही नायक के रूप मे मेरे जाने-पहचाने है, किन्तु रामकथा रचते समय आपके पास एक भी ऐसा पात्र नही था जिसे आपने मेरे समान प्रत्यक्ष देखा और भोगा हो, फिर उनके भाव चित्रों को···।"

"क्या वचपने का प्रश्न करते हो वेनीमाधव, मैंने अपने राम को तुम्हारे तुलसी दास से कही अधिक प्रत्यक्ष देखा है। मानस रचते समय मैं जिस ललक के साथ अपने जीवन मूल्यो के पूर्ण समुच्चय स्वरूप श्रीराम की कल्पना के साथ आठों पहर तल्लीन रहता था, तुम अपने तुलसीदास मे क्या रह पाते हो! सभी पात्रो मे जीवन के देखे हुए अनेक चरित्र अपनी व्यक्तिगत छाप मेरे आग्रह से अवश्य ही छोड़ते थे। मंथरा के रूप मे मेरे वचपन की भिखारी वस्ती में रहनेवाली कुवड़ी भैंसिया की बहू वरवस अपनी चाल-ढाल के साथ उभरकर मेरी लेखनी पर आ जाती थी। कौशल्या के रूप में कही न कही पर सूकर खेत की वडी रानी का चरित्र मन मे आ जाता था। बेचारी वड़ी दयालु और वड़ी दानी थी। उनको और राजा साहव की रखैल को एक ही दिन और प्रायः आस ही पास के समय मे वालक हुए। रानी जी का लड़का पहले हुआ परन्तु दरवार मे रखैल की चतुराई से उसके वेटे के जन्म की खवर पहले पहुंची। राजा ने रखैल के वेटे को ही अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। रानी वेचारी जीवन-भर तपस्या ही करती रह गई। इसी प्रकार जीवन मे देखे-सुने अनेक दृश्य और चरित्र राम-चरित रचना में घुलमिल जाते थे।"

"भरत के चरित्र मे गुरू जी स्वयं आप हैं ?"

बाबा हंसे, कहने लगे—"अरे भइया, जहां राम-पद-वन्दन का छोटा-सा अवसर भी मिलता था मैं वही अपने-आपको रमा देता था। भरत मे, लक्ष्मण और हनुमान मे, अत्रि-जटायु-शिव-शबरी, प्रत्येक पात्र या पात्री के रामलीन क्षणो मे तुलसी अवश्य है। श्रीराम के अयोध्या त्याग के चित्रो की पृष्ठभूमि मे मेरे अपने गृहत्याग की पीडा भी कही पर समाई है। सीता के विरह मे, राम की मनोदशा के चित्रण मे, कही न कही तो मैं अपनी रत्नावली के साथ समा ही गया हूं। छोडो इसे, मेरे मन मे इस समय मेघा भगत के अंतिम दिनों की स्मृति उभर रही है। उस समय मैं लंकाकाण्ड की रचना कर रहा था।" × × ×

युद्ध-क्षेत्र मे लक्ष्मण मेघनाद लड रहे थे। तुलसीदास अपनी कुटी में बैठे इस प्रसंग को लिख रहे है। तभी एक सेवक दौडा हुआ आता है और सूचना देता है कि मेघा भगत बगीचे मे चबूतरे से अचानक लडखडाकर नीचे गिर गए। उनको सिर मे घाव लगा है, खून बह रहा है, वे अचेत है। तुलसीदास लिखना छोड़कर भागते है।

मेघा भगत को भीतर के कमरे में ले जाया गया। तुलसी पहुचते ही उनका सिर अपनी गोद मे लेकर घाव की धोवाधाई करने का काम नौकर के बजाय स्वयं करने लगते है। थोड़ी देर मे जयराम साहु, कैलास, दो-तीन वैद्य और भगत जी के कई भक्तो का जमाव जुट जाता है। औषधि उपचार होता है। किन्तु भगत जी की चेतना नही लौटती है। उन्हे तीव्र ज्वर चढ आया है। वैद्य जी जौनपुर के किसी वैद्य का पता बतलाते है। जयराम साहु के खर्चे पर कैलासनाथ उन्हे बुलाने के लिए जौनपुर भेजे जाते हैं।

यह दिन तुलसीदास के लिए अत्यन्त विकलता-भरे थे। उसी समय दुर्योग से उनकी बाईं बाह मे भी बादी का दर्द आरम्भ हो गया। बांह मे टीसें-सी उठती थी पर वे मेघा भगत को छोडकर स्वयं विश्राम नही करना चाहते थे।

रात का समय था। वैद्य की प्रतीक्षा मे व्याकुल तुलसी अचेत मेघा भगत के सिरहाने बैठे हुए उनकी बांह अपनी गोद मे रखे सहलाते हुए आंखे मूदे हुए युद्ध-क्षेत्र में राम की गोद मे अचेत पड़े लक्ष्मण को देख रहे थे। उनकी व्याकुलता राम के मुखारविन्द से काव्य बनकर फूटने लगी। × × ×

"लक्ष्मण के प्रति विलाप करते समय राम के वे भाव मेरे विकल क्षणों से ही उमंगे थे। श्रीलक्ष्मण के वैद्य को आना था, हनुमान जी की संजीवनी बूटी का प्रभाव उनपर होना था क्योंकि वह तो अवतारी पुरुषो की कथा थी, परन्तु मेरे मेघा भाई बच न सके। उसी अचेतावस्था मे वे दो दिन बाद रामलीन हो गए। मेरा रामचरितमानस उनके सामने पूरा नही हो सका, इसका मुझे दुःख है।

"संवत् १६३१ मे जेठ की तीज को रामचरितमानस का लेखन कार्य पूरा हुआ। उस दिन हमारे मन मे अपार सन्तोष था। तुमसे सत्य कहता हूं बेनीमाधव,

जव अन्तिम दोहा रचते समय मैंने प्रार्थना की कि—

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभहिं प्रिय जिमि दाम।
ऐसे ही रघुवंश महिं, प्रिय लागहु मोहि राम॥

" उस समय मुझे ऐसा लगा कि राम मेरे आगे ऐसे खड़े है जैसे प्रत्यक्ष आ गए हो। मैं भावाभिभूत होकर लेखनी-पोथी छोडकर उनके चरणो मे नत हुआ और ऐसा करते ही मेरे राम अन्तर्धान हो गए। काशी के भदैनी क्षेत्र मे वह कुटिया, जहां बैठकर मैंने रामायण पूरी की थी ऐसी दिव्य-भीनी सुगन्व से भर गई कि वर्षो वाद आज भी स्मरणमात्र से वह मेरे मन मे महक उठी है। पर उस स्वरूप-दर्शन की चाह, जो एक वार देखा था, अभी तक शेप वनी है। मेरे मरते-मरते राम एक वार अपना मुख दिखला दें। हे राम, आपके स्वभाव, गुण, शील, महिमा और प्रभाव को शिव, हनुमान, भरत और लखनलाल ने ही भलीभाति पहचाना था। मैंने भी आज पहचान लिया। तुम्हारे नाम के प्रताप से तुलसी ऐसा दीन-अभागा भी रामायण रचना का यह कार्य सम्पन्न कर सका। अव एक वार और उदार हो जाइए। मरते-मरते आखो मे आपकी दिव्य छवि भरकर जी छककर जाऊं, अपने लिए आपसे केवल यही माग करता हू।" वावा इतने भावभिभूति हो गए थे कि वेनीमाधव देखते ही रह गए। उन्हे स्पष्ट लग रहा था कि गुरूजी इस समय अपनी काया में नही है। उनका ध्यान सव ओर से निकलकर एक मे केन्द्रित है। वन्द आंखो से पहले तो आंसू निकलते रहे फिर शांति छा गई। वेनीमाधव को लगता था कि सामने कोई व्यक्ति नही वल्कि एक दिव्य प्रकाशपुज वैठा है।

उस समय फिर कोई वात न हो सकी। रात मे वावा के पैर दवाते समय संत वेनीमाधव ने उनसे प्रश्न किया—"गुरूजी, एक वात पूछू ?"

"पूछो।"

"रत्ना मैया फिर आपसे मिली थी ?"

तुलसीदास पल भर चुप रहे, फिर कहा—"हूं।"

"यही काशी में ?"

"हां।"

"क्या उस प्रसग के संवन्ध मे कुछ वतलाने की कृपा करेंगे ?"

वावा चुप रहे। उनके मौन को तोडने का साहस संत जी मे नही था। इसलिए मन मारकर गुरु-पद सेवा में तल्लीन हो गए।

थोड़ी देर के वाद अनायास ही वावा बोले—"आज भी सोचता हूं कि मैंने जीवन में एक महत् अपराध किया है। किन्तु उस समय ऐसा करने के लिए मैं विवश था।" × × ×

तुलसी अपनी कोठरी के आगे फुलवारी मे गम्भीर किन्तु सन्तोष-भरी मुद्रा में टहल रहे है। रह-रहकर उनका सिर उठकर कुछ देखने लगता है मानो उन्हे किसी की प्रतीक्षा है। वे कभी-कभी विकल होकर आकाश की ओर देखते हुए

गिडगिड़ाते है, मुखमुद्रा दीन बन जाती है। उनका चेहरा देखकर लगता है कि मन मे कुछ तरंगे मचल-मचलकर आपस मे मिलकर कोई भंवर-सी वना रही है। सहसा झाडी के पीछे किसी की पदचाप सुनाई दी। तुलसी के कान वावले होकर ऊचे उठे। झुरमुट के पीछे से एक मनुष्याकार आता हुआ दिखलाई दिया। आंखों की चमक झलक देखते ही मंद पड़ गई। मुंह से हल्की निराशा के साथ आप ही आप निकल पड़ा—"अरे यह तो टोडर है।" पीछे और भी लोग थे।

जयराम साहु पंडित गगाराम और टोडर साथ-साथ आए थे। नमस्कार, प्रणाम, आशीर्वाद आदि की क्रिया सम्पन्न हो जाने पर टोडर बोले—"हम एक प्रस्ताव लेकर आपकी सेवा मे आए है।"

"क्या प्रस्ताव है ?"

इस वार गगाराम बोले—"तुमने रामचरितमानस ऐसा महाकाव्य रचने मे सचमुच अथक परिश्रम किया है और राम जी की कृपा से रससिद्ध हुए हो। अव हमारा यह विचार हे कि तुम्हे कुछ विश्राम भी मिलना चाहिए।"

तुलसी हसे, कहा—"इन वीते चार वर्षो मे मानस रचना के क्षण ही मेरे खरे विश्राम के क्षण रहे है। मेरा मन इस समय हरा-भरा है गंगाराम।"

जयराम वोले—"फिर भी विश्राम तो आपको अवश्य ही करना चाहिए महराज। आपने हमसे इन दिनो मे कोई सेवा नही ली, केवल फलाहार और दुग्धपान करके ही रहे। मै समझता हूं कि अव तो आपको अन्न ग्रहण करना चाहिए। थोडी सेवा भी स्वीकार करनी चाहिए।"

"अरे, तव तो मैं मोटा जाऊगा। मेरा तप ही मेरा आनन्द है भाई, उसे मुझसे क्यो छीनते हो ? ना-ना, यह सब वाते छोड़िए। अव चातुर्मास लगनेवाला है। मैं सद्गृहस्थो के वीच मे कही मानस कथा सुनाना चाहता हूं। उसीमे मुझे आनन्द आएगा।"

टोडर बोले—"मै जो प्रस्ताव लेकर आया हू, उसके पीछे आपकी रामायण कथा वाली वात मूल रूप से मेरे मन मे है, महात्मा जी।"

"तुम्हारा प्रस्ताव क्या है ?"

टोडर सावधान होकर कहने लगे—"वात यह है कि' '(पडित गंगाराम की ओर देखकर) आप ही वतलाएं ज्योतिषी जी।"

तुलसीदास बोले—"ऐसी क्या बात है भाई? कहने मे इतना सकोच क्यो?"

गगाराम वोले—"सकोच इसलिए है कि तुम कदाचित् प्रस्ताव सुनकर बिगड़ न जाओ। पर हम लोगो ने जब वात को हर तरह से मथ लिया है, तभी कहने आए हैं। वात ये है कि लोलार्क कुण्ड पर एक वैष्णव मठ है, मठ क्या है, हमारे टोडर की एक नातेदार वुढ़िया थी, वह एक गोसाईं जी को अपना घर पुन्न कर गई थी। गोसाईं जी वड़े भक्त और विद्वान पुरुष थे। उन्होने चार-पाच शिष्यो को भी रख छोडा था। अव वे तो गोलोकवासी हो चुके है। मठ मे गोस्वामी पद के लिए झगड़ा है। वहा जो कुछ पैसा आता है वह प्राय. टोडर की विरादरी वालों से आता है। वे गोसाईं जी के शिष्यो मे किसीको उस पद के योग्य नही समझते। अब या तो मठ वन्द कर दिया जाए या फिर किसी योग्य व्यक्ति को उस पद

पर विठलाया जाए।"

"तो तुम लोगों ने मुझे चुना ? मैं राम कृपा से गोस्वामी वन तो रहा हूं किन्तु अभी इस पद को सिद्ध नही कर पाया। अतः तुम्हारा प्रस्ताव मुझे अमान्य है।"

जयराम बोले—"देखिए, महराज, अपने मन से आप चाहे वहा तक पहुचे हो या न पहुचे हो, पर काशी के लोग आपको पुराने जमाने के वडे-वडे ऋषि-मुनियों के समान ही मानते हैं। टोडरराम जी ने तो औचक मे आपका नाम अपनी विरादरी वालो के सामने ले दिया, पर सबके-सब तब से इनके पीछे पड गए है। लोलार्क कुण्ड महल्ले मे यह खबर फैल चुकी है कि आप आ रहे हैं। और क्या छोटा, क्या वडा, महराज, सबके मनो मे इस समाचार से वड़ी खुशी छा गई है।"

"यह सब ठीक है किन्तु मैं इस प्रपंच मे नही पड़ूंगा। मठ मे मन्दिर भी होगा ?"

"हां, महात्मा जी।"

"स्वाभाविक रूप से कृष्ण मन्दिर होगा।"

"हां, टोडर के मन में भी यह संकोच आया था और इन्होने मेरे सामने यह प्रश्न उठाया भी था, पर मैंने कहा कि तुम्हारे मन मे राम-कृष्ण का भेद-भाव नही है। तुम कृष्ण-पूजन कराके भी रामभक्त वने रह सकते हो।"

"तुमने ठीक कहा गगाराम, परन्तु···"

"देखो तुलसी, दीन-दुखी जन समाज मे तुम्हारा महत्त्व अवश्य वढ गया, पर यहा का प्रतिष्ठित नागरिक वर्ग यहा के दुष्टो के प्रचार के कारण अभी तुम्हारे सम्पर्क मे आने से सकोच करता है। देखो बुरा न मानना तुलसी, भद्रवर्गीय दृष्टि से तुम अभी प्रतिष्ठित नहीं हो।"

सुनकर तुलसी उखड़े, कुछ-कुछ तीखे स्वर मे कहा—"तो ? मुझे भला उसकी चिन्ता है ? राम करे तुम सब लोग, यहा का सारा भद्र समाज धन और पदो का ऐश्वर्य भोगता हुआ चिर प्रतिष्ठित रहे। पर तुलसी भी क्या किसी से कम है ? तीन गाठ कौपीन मे विन भाजी विन लौन। तुलसी मन सतोष जो इन्द्र बापुरो कौन ?"

तुलसीदास के चेहरे की तमक देख टोडर हाथ जोडकर बोले—"देखिए महात्मा जी, प्रश्न आपका नही, आपके रचे इस महाकाव्य का है। दुष्टो के कुप्रचार से इसकी प्रतिष्ठा को आच नही आनी चाहिए।"

"तो क्या चाहते हो तुम लोग ? मैं गोसाईं वन जाऊं ?"

"हा महाराज।" जयराम बोले।

"देखिए महात्मा जी, शंकराचार्य महाराज ने भी, सुना है, मठ स्थापित किए थे। उनकी परंपरा के शंकराचार्य सन्यासी होकर भी सोने के सिंहासन पर विराजते हैं। सोने की खडाऊं पहनते हैं। इससे लोक पर उचित प्रभाव पडता है।"

गगाराम बोले—"हमारा कहना मान लो तुलसी, तुम इस मठ के गुसाईं वन जाव। गोसाईं तुलसी की रामायण का प्रभाव सन्त तुलसीदास की रामायण से अधिक अच्छा पडेगा।"

तुलसीदास सिर झुकाकर चुप हो गए, मन बोला—'भाग तुलसी, यहा से

भाग।'

गंगाराम बोले—"सामाजिक प्रतिष्ठा नितात आवश्यक है तुलसीदास। किसी लोकधर्मी व्यक्ति को उसकी अवहेलना नही करनी चाहिए। नीति यही कहती है।"

तुलसी चुप।

टोडर बोले—"साल मे लगभग छः-सात हजार रुपये की चढत वहां हो ही जाती है। आपके पहुंचने से निश्चय ही उस स्थान की महिमा बढ़ेगी। आप मठ के धन का कोई सुन्दर उपयोग कर सकेंगे।"

जयराम बोले—"अरे, मैं और मेरे कई नातेदार आपकी यहा नियमित रूप से सेवा करेंगे। काशी मे और भी लोग राजी हो जाएंगे। हम सबकी ही अरदास है महराज कि आप यह पद स्वीकार कर लें।" कुछ रुककर जयराम ने फिर कहा—"इससे पाखंडियो के विरुद्ध मोर्चा लेने मे हम सभी को बड़ी मदद मिलेगी। काशी से अब यह पापलीला तो समाप्त होनी ही चाहिए महराज।"

गम्भीर स्वर मे तुलसीदास बोले—"भाई, मैं अब भी अपने मन मे स्पष्ट नही हो पा रहा हू कि मुझे यह पद स्वीकार करना चाहिए या नही। एक मन हां कहता है और दूसरा ना। ऊपर से आग्रह ऐसे लोग कर रहे हैं जो मेरे श्रेष्ठतम शुभचिन्तक है। राम करैं सो होय। मैं तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार करता हूं। इसका भला-बुरा परिणाम जो कुछ भी होगा, आगे आ ही जाएगा।"

तीनों सज्जनो के चेहरे आनन्द से खिल उठे। और चातुर्मास आरंभ होने से पहले ही एक शुभ तिथि पर महाकवि भक्त शिरोमणि तुलसी भगत गोस्वामी तुलसीदास हो गए। दाढी-मूंछें और सिर के लहराते केश मुंड़ गए।

४४

गोस्वामी जी लोलार्क कुण्ड के मठ मे भगवान श्रीकृष्ण की आरती करते हुए कृष्ण भक्ति का एक पद गा रहे है। मठ के आंगन मे सम्भ्रात भक्तों की भीड़ है। सभी उनके भजन पर मुग्ध है। आरती के बाद दर्शनार्थियो को गोस्वामी जी कृष्ण भक्ति का महत्त्व बतलाते है। सभी अवतारों के प्रति श्रद्धा प्रकट करते है। 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' वाली अपनी चौपाई का भाव अपने प्रवचन मे निरूपित करते है। शिव के गुणगान करते है। लोगो को समझाते है—"जैसे चुटकी मे डोर सधी होने पर पतग को, आकाश में चाहे कही भी विचरे, कोई बाधा नही पहुचती वैसे ही अपने इष्ट से सधकर भाव की डोर में बधी हुई मन पतंग को सारे आकाश मे उडाओ, सब देवो के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करो तो तुम्हारा इष्ट भी सर्वव्यापी और सर्वसामर्थ्यवान के रूप मे अपने-आपको प्रकट करेगा।"

भक्त गए, एकान्त हुवा। अपना प्रवचन आप ही खाने लगा, 'हे राम जी,

मैंने सब कुछ किया और कर रहा हूं। वेद, पुराण, शास्त्र और सन्तो की वाणी मे आप को पाने के लिए जो-जो साधन बतलाए गए है वह सब मैं बडी ललक के साथ करता हू, फिर भी आप मुझे प्रत्यक्ष दर्शन क्यों नही देते ? मेरे ध्यान मे जैसे कभी-कभी हनुमान जी प्रकट हो जाते है वैसे आप क्यो नही आते ? मैं प्रीति तो बढ़ाता चलता हूं पर प्रतीति क्यो नही होती ?' गोस्वामी तुलसीदास अपने-आप में उदास थे। अपने दुखमय जीवन के सारे क्षण संताप के झरने मे दृश्यधार बनकर तेजी से उतरते गए और उनके सामने सन्ताप को अधिक गहरा कर दिया।

एक शिष्य पूछने आया कि आज भगवान के भोग के लिए भोजन मे कौन-कौन व्यंजन बने। इस प्रश्न ने गोस्वामी जी को अधिक खिन्न बना दिया। कहा—"जो भगवान को रुचता हो वही बनवाओ।"

शिष्य बोला—"गोलोकवासी गोस्वामी जी बड़े कुशल पाकशास्त्री भी थे। वे स्वय अपने हाथ से नाना प्रकार के व्यंजन भगवान के लिए तैयार करते थे।"

"उन्होने निश्चय ही अपनी स्वाद शक्ति प्रभु की स्वाद शक्ति बना ली होगी। मेरी स्वाद रूपिणी गऊ अभी भडकती है। जाओ, जो रुचे सो बनाओ।"

शिष्य निश्चय ही कुछ खिन्न मन होकर चला गया। दालान मे मन्दिर की चौखट का टेका लगाकर वे राधा-मुरलीधर की मूर्तिया निहारने लगे, 'हे कृष्ण रूप राम जी, मेरा मन अभी सधा भी नही था कि आपने मुझे इस वैभव की भट्ठी मे डालकर और अधिक तपाना आरम्भ कर दिया है। हे हरि, मुझ दीन-दुर्बल की इतनी कठिन परीक्षा आप क्यो ले रहे है ! एक ओर तो दुनिया मुझे महामुनि और दूसरी ओर कपटी-कुचाली कहती है। केशव, यह दोनों परस्पर विरोधी विशेषताए तो मुझमे कदापि नही हो सकती। फिर भी लगता है कि मैं अति अधम प्राणी हूं तभी आप मुझे अपनी प्रतीति नही देते। मुझे एक बार भरोसा दिला दो राम जी। एक बार यह कक्ष तुम्हारे आश्वासन-भरे स्वर से गूज उठे, तुम कह दो कि तुलसी तू मेरा है, तो बस, फिर मुझे कुछ नही चाहिए। मुझे केवल आपका भरोसा, आपका सान्निध्य चाहिए।' इस प्रतीक्षा में कि भगवान अब अवश्य बोलेंगे, भोले भावुक गोस्वामी जी युगल मूर्ति की ओर टकटकी लगाकर भिखारी जैसी दीन मुद्रा में देखने लगे।

"विक्रमपुर से राजा भगत पधारे है।"

नाम सुनते ही तुलसीदास का उदास भाव तरोहित हो गया। प्रसन्न और उत्साहित होकर बोले—"कहां हैं राजा ?" कहकर वे मन्दिर वाले दालान से बाहर आए और आगन पार करते हुए फाटक की ओर तेजी से बढ चले। देहली की चौखट पर पैर रखते ही उत्साह ठिठक गया। राजा तो सामने थे ही, रत्नावली भी थी। उनका तपोपूत मुख पहले से अधिक दिव्य लग रहा था। रत्नावली ने एक बार पति की आंखो से आखे मिलाई। राजा भगत दाढी-केश विहीन तुलसीदास के नये रूप को चकित दृष्टि से देखते हुए हाथ फैलाकर आगे बढे—"अरे, भैया, तुम तो एकदम बदल गए।" परन्तु तुलसीदास का उत्साह अब ठंडा पड़ चुका था। औपचारिक आलिगन करके तुरन्त अपने-आपको मुक्त कर लिया;

किंचित् रूखे स्वर मे पूछा—"इन्हे क्यों लाए ?"

रत्नावली तब तक तेजी से आगे बढकर उनके पैरो मे गिर चुकी थी । तुलसीदास ने अपने पैरो पर रत्नावली की उगलियो का स्पर्श अनुभव किया । उस स्पर्श मे इतनी तृप्ति थी कि पल-भर के लिए मन से राम बिसर गये । रोष ठहर न पाया । मृदुल स्वर में राजा से कहा—"भीतर चलो, विश्राम करो, फिर बातें होगी । (शिष्य की ओर देखकर) प्रभुदत्त !"

"आज्ञा सरकार ।"

"अपनी माता जी को ऊपर के कक्ष मे पहुचा दो । भगत जी के रहने की व्यवस्था मेरी बगल वाली कोठरी मे करो । माता जी यदि गगा स्नान के लिए जाना चाहे तो किसी को उनके साथ भेज दो ।"

रत्नावली जी के चेहरे पर पति के इन शब्दो ने सन्तोष की आभा प्रदान कर दी ।

नहा-धोकर रत्नावली मठ मे लौट आई । राजा भगत गगा जी से ही अपने एक काशी स्थित नातेदार हिरदै अहिर से मिलने के लिए चले गए ।

मठ के सारे शिष्यो और सेवको को तब तक मालूम हो चुका था कि गोस्वामी जी की पत्नी आई है । सभी उनके प्रति अपना आदर प्रकट कर रहे थे । एक बार तुलसीदास ने किसी भृत्य से 'माता जी' के सम्बन्ध मे पूछा तो पता चला कि वे रसोईघर मे रसोइये को सहायता दे रही है । तुलसीदास के मन पर सन्तोष के भाव ने छाना चाहा पर छा न सका; लेकिन किसी प्रकार का असन्तोष भी मन मे न जागा । वे भागवत बाचते रहे ।

भोजन के समय रसोई मे वर्षों पूर्व नित्य मिलनेवाला स्वाद आज फिर मिला । सन्तोष हुआ । राजा से उन्होने गाव-जवार मे सबकी खैर-खबर पूछी । अपने रामायण रचने की बात, अयोध्या, मिथिला और सीतामढ़ी आदि यात्राओं की चर्चा भी उनसे की, पर रत्नावली के सम्बन्ध मे एक शब्द भी न पूछा ।

दूसरे दिन टोडर आए । तुलसीदास ने उनसे राजा भगत का परिचय कराया और पत्नी के आने की सूचना भी दी । तुलसीदास बोले—"गंगाराम को इस बात की सूचना दे देना । हम चाहेगे कि रत्नादेवी हमारे बाल मित्र की धर्मपत्नी के प्रति अपना आदर प्रकट करने जाए ।"

टोडर उल्लसित स्वर मे बोले—"हा, हा, वहा जाएंगी और मेरे यहां भी पधारेंगी । जिस दिन गठजोड़े से महात्मा जी की जूठन गिरने का सौभाग्य मेरे घर को मिलेगा, उस दिन मेरा जन्म सार्थक हो जाएगा ।"

दो-चार दिन बीत गए । इस बीच मे तुलसी और रत्ना का आमना-सामना एक बार भी न हुआ । तुलसी चाहते थे कि उन्हे हिरते-फिरते रत्नावली की सूरत देखने का मौका मिल जाय पर रत्नावली ने सतर्कतापूर्वक अपने-आपको उनकी दृष्टि से बचाया । हा, भोजन के समय उन्हे अपनी थाली मे हर व्यजन मे रत्नावली के हाथ का स्पर्श मालूम पड़ता था । वे थाली के सामने बैठकर बार-बार रत्नावली की छवि के साथ अपने मन मे बंध जाते थे ।

पण्डित गगाराम के यहा सूचना पहुची तो रत्नावली को लिवा जाने के लिए

तुरन्त उनके यहां से पालकी आ गई। रत्नावली प्रह्लाद घाट गई तो भोजन का वह स्वाद भी चला गया। रात के समय वे और राजा बैठे हुए धर्म चर्चा कर रहे थे। रसोइया दो गिलासों में दूध लेकर आया। तुलसीदास बोले—"अरे भाई, गोसाईं क्या बना हूं कि आठो पहर तर माल चाभते-चाभते दुखी हो गया हूं।" एक घूट पिया, मलाई चाभते हुए मुह बनाया, फिर मुस्कराए, कहा—"वाह रे राम जी, कहा तो एक वह दिन था कि कटोरी-भर छाछ पाने के लिए मैं ललाता था और कहां अब इस सोंधे दूध की मलाई को खाते भी खुनस लगती है।"

राजा बोले—"काहे खुनसाते हो भइया। तुम्हारी जिभ्या से भगवान जी स्वाद लेते हैं। गोसाइंयों मे हमे यही बात तो अच्छी लगती है कि गोसाईं लोग दुनिया का हर भोग राजी होकर ग्रहण करते हैं पर अपने स्वाद और सुख को वे भगवान का मान कर ही चलते है।"

गोस्वामी जी महाराज चुप रहे, दूध पीते रहे। बात मे उन्हे राजा के मन का हल्का-सा सकेत मिल गया था। उन्होंने तुरन्त ही राजा भगत की मनोधारा का मुहाना बन्द करने का निश्चय किया, कहा—"है तो यह ऊंची बात, पर खरा गोस्वामी ही इस पानी पर बिना पैर भिगोए चल सकता है। पूर्ण गोस्वामीत्व पाने के लिए मैं अभी तक राम जी की ड्योढी का भिखारी हू।"

राजा तुलसी का पैंतरा समझ गए। उन्होंने भी अपने पक्ष को दृढ़ता से प्रस्तुत करने की ठानी, कहने लगे—"दो तपसी जब मिल जाते है तब दोनो को एक-दूसरे से आगे बढ़ने का हौसला मिलता है। तुम्हारी तपस्या तो भइया सारा जग देख रहा है पर हम तो भौजी का तप देख-देखकर ही अपने मन को ठिकाने पर ला पाए हैं। इस कलिकाल मे ऐसा कठिन जोग साधनेवाली जोगिन मैंने नही देखी।"

तुलसी चुप रहे, रत्नावली की कठिन साधना के प्रति अपने मित्र के यह उद्गार सुनकर उन्हे भला लगा, उन्हे वैसा ही सन्तोष हुआ जैसाकि अपने सम्बन्ध मे सुनकर होता। और यह सन्तोष जिस तेजी से अपने चरम बिन्दु पर पहुचा उससे ही मन का परदा फड़फड़ाकर पलट भी गया। उन्होने अपने-आपको कस लिया। कुछ क्षणो के लिए भूला हुआ रामनाम फिर से घट मे गुजाना आरम्भ कर दिया। राजा कह रहे थे—"गांव मे तुम्हारी रुचि की रसोई बनाती रही और किसी भूखे कगले को खिलाती थी। आप बिना चुपडी, बिना सागभाजी के दो रोटी खाकर अपने दिन बिताती है। रोज तुम्हारी धोती धोना, तुम्हारी पूजा की सामग्री लगाना, तुम्हारे बैठके मे झाड़ू लगाना, तुम्हारी एक-एक चीज को सहेज-संभालकर रखना, कहा तक कहे भैया, भौजी जैसी तपसिन हमने देखी नही। तुम घर से निकल गए पर उन्होंने अपनी भक्ती से तुम्हे अभी तक घर मे ही बाध रखा है।"

मन का राम शब्द राजा की बातो से उपजे सन्तोष से बीच-बीच मे फिर बिसरने लगा। यहा आने पर रत्नावली की देखी हुई एक झलक उनके मन के दृश्य पट पर बार-बार आने लगी। परदा दर परदा मन मे यह इच्छा भी होने

लगी कि एक बार उन्हे फिर देखे, बाते करें। मन की इस गुदगुदाहट से राम शब्द फिर प्रबल हुआ। वे दूध का गिलास रखकर कुल्ला करने के बहाने उठ पड़े। एक मन कह रहा था, चेत! और दूसरा रत्नावली की मनोछवि निहारने में ही अटका हुआ था। कुल्ला करके दोनों जने जब फिर अपनी-अपनी चौकियो पर बैठे तो राजा ने कहा—"सीता जी के बिना राम जी कभी सुखी नही रह पाए। तुमसे अधिक भला और कौन समझ सकता है। तुमने तो सारी रामायन रच डाली है। जब रावना उन्हे हर ले गया तो भी, और जब उन्होने उन्हे धोबी की निन्दा के कारण बाल्मीकी मुनी के आसरम मे भेज दिया तब भी, राम जी सुखी न रह पाये। बाया अंग जब कट जाय तब दायां भला कैसे सुख पा सकता है?"

तुलसीदास को यह बाते कही पर अच्छी लग रही थी और कही वे इस ओर से उचटने का प्रयत्न भी कर रहे थे। थाली का बैंगन कभी इधर लुढकता और कभी उधर। तुलसी ने लेटकर चादर तानते हुए राजा की वाग्धारा को आगे बढने से रोकने के लिए कहा—"अच्छा, अब हम विश्राम करेगे।" लेट गए। चद्दर तान ली। करवट बदल ली, राम-राम भी जपना आरम्भ कर दिया, पर रत्नावली उनके मन से न हटी। इच्छा होने लगी कि रत्नावली उनके पास आए, उनसे अपना दुःख-सुख-कहे। 'मै राम के लिए तडपता हू वह मेरे लिए। राम जी कदाचित मुझे इसीलिए दर्शन नही दे रहे है कि मै रत्नावली से निठुराई बरत रहा हू। रख लू अपने पास! उसे सन्तोष मिलेगा तो कदाचित राम जी भी मेरे प्रति दयालु हो जाएगे।' तुलसी का मन कभी ऊहापोह मे रहता और कभी झटके के साथ उस मोह से अपने को उबारकर राम शब्द मे लीन होने का प्रयत्न करता। उन्हे रात मे अच्छी नीद न आई। सबेरे पण्डित गगाराम के यहां से न्योता आया, उन्होने कहला दिया कि वे नही आएगे। टोडर आए तो उन्होने भी अपना प्रस्ताव दोहराया, कहा—"महात्मा जी आप दोनो ही एक दिन मेरी कुटिया पर अवश्य पधारेंगे।"

तुलसीदास को लगा कि राम उनकी परीक्षा लेने के लिए ही यह प्रस्ताव टोडर के मुख से कर रहे है। वे बोले—"विरक्त अब फिर से राग के बन्धनो मे नही बध सकता।"

"आप उन्हे अब यही रहने दे महात्मा जी···"

बात पूरी भी न हो पाई थी कि गोस्वामी जी ने उसे झटके से काट दिया और उत्तेजित स्वर मे बोले—"क्या तुम चाहते हो कि मैं अपने अथवा अपनी पत्नी के सुख के लिए समाज की आस्था को अधर ही मे लटका दू? यह असंभव है टोडर।"

"क्षमा करे महात्मा जी, किन्तु इससे लोगो की आस्था क्यो बिखरेगी? वल्लभ गोस्वामी की घर-गृहस्थी उनके साथ रहती थी, फिर भी उन्होने मोक्ष लाभ किया।"

तुलसी ने मीठी झिडकी देते हुए कहा—"तुम समझते क्यो नही हो टोडर, आज का समय वल्लभाचार्य जी के दिनो जैसा नही है। कबीरदास जी वाला

समय भी बीत गया। यह घोर कलिकाल है। नैतिकता का इतना ह्रास हो गया है कि उसे यदि एक स्तर तक उठाए न रखा जाएगा तो फिर सारा संसार अनैतिकता की लपेट मे आए बिना कदापि न रह सकेगा।"

टोडर चुप हो गए। राजा भगत ने इस बार तुलसी-रत्नावली का मेल कराने के लिए पूरा षड्यन्त्र रचा था। उन्होने पंडित गगाराम, टोडर, यहां तक कि कैलास कवि को भी, अपने पक्ष मे कर लिया था। गंगाराम आए उन्होने कहा। कैलास आए उन्होने कहा। मठ मे रहनेवाले शिष्यो ने भी कहा—"माता जी परम विदुषी हैं, उनके यहा रहने से हमारे अध्ययन मे बड़ी सहायता मिलेगी।"

तुलसी सुनते, ऊपर से विरोध भी करते परन्तु उनका मन कहता कि रत्नावली को पास रखकर यदि अपना ध्यान साधो तो अधिक सुगम रहेगा। 'काम विकार कभी न कभी मुझे सता तो जाता ही है। उससे कही अच्छा है कि मेरा यह विकार धर्म सम्मत होकर ही शान्त रहे।' मन का हाला-डोला उन्हे तरह-तरह से मथित करने लगा।

एक दिन नाथू नाऊ जब उनके बाल बनाने आया तो उसी समय मठ के द्वार पर रत्नावली जी की पालकी भी आ लगी। रत्नावली जी पालकी से उतरकर ऊपर चली गई। नाथू गोसाई जी की सेवा मे पहुचा। उनके चरणो मे ढोका देकर उसने अपनी किस्वत से उस्तरा और पत्थर निकालकर उस्तरे को पैनाना शुरू किया। एक भृत्य ने आकर गोसाई जी को पंडित गंगाराम के घर से माता जी के लौट आने का समाचार दिया। तुलसीदास के चेहरे पर सन्तोष की आभा चमकी। बोले—"सरवन, उनसे बराबर पूछताछ करते रहना। उनकी सेवा मे कोई कमी न आए।"

भृत्य सरवन के 'अच्छा महराज जी,' कहकर जाते ही पानी की कटोरी लेकर गोस्वामी जी के पास आते हुए नाथू बोला—"माता जी आ गई सरकार, यह बडा सुभ भया।"

तुलसीदास चुप रहे। उन्हे भी उस समय सुख का अनुभव हो रहा था। गोसाई जी की ठोड़ी को पानी से तर करके मीजते हुए नाथू ने फिर अपना राग अलापा—"ये दुनिया वाले बडे कमीने होते हे महराज। कलजुग मे सबका मन काला हो गया है।"

तुलसी आखे मीचे मौन बैठे सुखानुभव करते रहे। नाथू ने बात को फिर आगे बढाया—"जब से माता जी कासी आई हैं तब से रोज लोग-बाग हमसे पूछते है कि नत्थू, माता जी अब क्या यही रहेगी? अब हम क्या कहे सरकार जी? अरे माता जी यहां रहे चाहे न रहे, पूछो, भला तुम्हारे बाप का क्या आता-जाता है? बड़ी हवेली के गोसाई महराज भी तो गिरहस्त है। पर नहीं, उनको कोई कुछ न कहेगा। आपके लिए लोग रोक-टोक करते है। कहते है, चार दिन की चादनी फिर अंधेरा पाख है। अब ये भी तपिस्या छोड़कर भोग-विलास मे…"

तुलसीदास के मन मे सन्तोष और सुख का महल बालू की दीवार-सा ढह पड़ा। वे उत्तेजित हो गए, बोले—"इस प्रसंग को अब यही पर समाप्त कर दो नत्थू।"

सयाना नाऊ गोस्वामी जी का रुख देखकर सहमकर चुपचाप अपने काम मे लग गया। तुलसीदास के मनोलोक में अंधड़ उठने लगे। कभी अपने ऊपर, कभी दुनिया पर और कभी रत्नावली तथा राजा पर क्रोध आता कि वे उनकी शांति भंग करने के लिए यहां क्यों आए।

हजामत बनती रही, सिर और गालो पर उस्तरा चलता रहा, बार-बार पानी मीजा जाता रहा पर तुलसीदास का मन इन सब बाहरी क्रियाओ से अलिप्त होकर अपनी करुणा से आप ही विगलित होने लगा। मन जब अपनी विकलता को सह न पाया तो अपनी आदत के अनुसार राम जी के चरणों मे शांति पाने के लिए दौड़ पड़ा—'हे दीनबन्धु सुखसिन्धु कृपाकर, कारुणीक रघुराई! सुनिए नाथ, मेरा मन त्रिविध ताप से जल रहा है। वह बौरा गया है। कभी योगाभ्यास करता है तो कभी वह शठ भोग-विलास मे फंस जाता है। वह कभी कठोर और कभी दयावान बन जाता है। कभी दीन, कभी मूर्ख-कंगाल और कभी घमण्डी राजा बन जाता है। वह कभी पाखण्डी बनता है और कभी ज्ञानी। हे देव, मेरे मन को यह संसार विविध प्रकार से सता रहा है। कभी धन का लालच सताता है, कभी शत्रुभय सताता है, और कभी जगत को नारीमय देखने लगता है। मैं अपने मन से बड़ा ही दुःखी हूं रघुनाथ। संयम जप, तप, नियम, धर्म, व्रत आदि सारी औषधिया करके हार चुका किन्तु वह मेरे क़ाबू मे नही आ रहा है। कृपा करके उसे निरोगी बनाइए। अपने चरणो की अटल भक्ति देकर उसे शांत कीजिए, नाथ। मैं अब बहुत-बहुत तप चुका हूं।' बन्द आंखों से आंसू टपकने लगे।

नाथू ने जो यह देखा तो अपना उस्तरा रोक दिया। उसके उस्तरे और हाथ का स्पर्श हटते ही तुलसीदास बाहरी होश मे आ गए। भरी हुई आंखें खोलकर एक बार देखा, फिर पास रखे हुए अंगौछे से आंखे पोछकर बोले—"तुम अपना काम करो नत्थू, मेरा मन तो राम बावला है, कभी हसता है कभी रोता है।"

नाथू जब अपना काम करके जाने लगा तो तुलसीदास बोले—"अब जो कोई तुमसे पूछे तो कह देना कि माता जी अपने मोहवश चार दिन के लिए आई है, शीघ्र ही चली जाएंगी।"

"काहे महराज, रहैं ना। दो ही दिनो मे मठ के सारे लोग उनकी बड़ाई करने लगे। गोसाईं लोग तो घिरस्तास्रमी होते ही हैं।"

"मैं दूसरे गोसाइयो की तरह अनीति की चाल पर कदापि नही चल सकता। मैंने गृहस्थाश्रम का त्याग किया सो किया।" उनके चेहरे पर हठ-भरी अहंता दमक उठी। थोड़ी देर के बाद ही उन्होंने नौकर को बुलाकर रत्नावली जी को कहलाया कि वे शीघ्र से शीघ्र राजापुर लौट जाएं।

रत्नावली ने उसी दास के द्वारा कहलाया कि वे उनसे मिलना चाहती हैं।

एक बार तुलसी का जी हुआ कि मना कर दें फिर कहते-कहते थम गए और कहा—"भेज दो। कोठरी का पर्दा गिरा दो और उनके बैठने के लिए बाहर आसन भी बिछा दो।"

रत्नावली आई। अपने और पतिदेव के बीच मे टंगे हुए पर्दे को देखा, सिर झुका खड़ी हो गईं; पल-भर बाद हल्के-से खखारा, धीमे स्वर मे कहा—"जै

सियाराम ।"

"जय सियाराम । बाहर आसन बिछा होगा, विराजो ।"

"मैं आपके दर्शन भी नही कर सकती ?"

तुलसी एकाएक उत्तर न दे सके, कुछ रुककर शांत स्वर मे कहा—"लोक धर्म बड़ा कठिन होता है देवी । व्यर्थ निंदा से बचने के लिए राम जी को जगदम्बा का त्याग करना पड़ा था ।...तुम घर कब लौट रही हो ?"

"मैं अब काशी मे ही रहना चाहती हूं ।"

"नही ।"

"मैं मठ मे नही रहूंगी । पंडित गंगाराम जी की गृहिणी ने मुझे..."

"गंगाराम या टोडर के यहा तुम्हारा रहना उचित नही होगा ।"

"मैं स्वय भी यह उचित नही समझती । अलग घर लेकर रहूंगी ।"

"नही ।"

रत्नावली का टूटता मन उनके चेहरे पर दिखलाई पड़ने लगा । गिडगिड़ाकर बोलीं—"मैं यहा आपको कष्ट देने के लिए कभी नही आऊंगी । कभी आपके सामने नही पड़ूंगी । आपके तप मे कोई बाधा न डालूगी ।"

"नही, तब भी नही ।"

"आप राम जी का सन्निध्य चाहते हैं, यदि वे भी इसी तरह आपसे ना कह दे तो ?"

सुनकर तुलसी एक बार निरुत्तर हो गए, मन लडखडाया, परन्तु तुरन्त ही उसे कसकर कहा—'श्री राम और इस अधम तुलसी मे अन्तर है । लोक का चरित्र गिरा हुआ है । उसे उठाने की कामना रखने वाले को कठिन त्याग करना होगा । लोक कल्याण के लिए तुम भी तपो, देवी । अब इस जन्म मे हमारा-तुम्हारा साथ नही हो सकता ।"

पर्दे के दोनो ओर कुछ देर तक चुप्पी रही । फिर रत्नावली ने रुंधे हुए स्वर में कहा—"जो आज्ञा । मैं कल ही चली जाऊंगी ।" पर्दे के उस पार फिर चुप्पी छा गई । कुछ पलो के बाद रत्नावली ने कहा—"जाने से पहले एक बार चरण-स्पर्श करने की ..."

"मेरा मन अभी दुर्बल है देवी ! तुम्हारे स्पर्श से मेरी तपस्या पर आच आ जाएगी ।"

"जो आज्ञा ।" गला रुंध गया । पर्दे के आगे झुककर धरती पर मस्तक टेक दिया । आसू उमड़ पडे । भीतर से तुलसीदास ने पूछा—"गई ?"

"जा रही हूं.. एक भीख मागती हू ।"

"बोलो ।"

"पडित गगाराम जी के घर पर मैंने आपके द्वारा रचित रामचरितमानस का पारायण किया था । मैने उसे वाल्मीकि जी की कृति से श्रेष्ठ भक्ति-प्रदायक ग्रन्थ पाया ।"

तुलसी को सुनकर सतोष हुआ । बोले —"आदिकवि के परम पावन ग्रन्थ से उसकी तुलना न करो, देवी । वैसे यह जानकर मैं सन्तुष्ट हुआ कि तुमने वह

ग्रन्थ पढ लिया।"

"रामचरितमानस की एक प्रति ··"

"शीघ्र ही तुम्हारे पास पहुच जाएगी। टोडर प्रतिलिपिया कराने की व्यवस्था कर रहे है।"

"एक बात और पूछना चाहती हूं। आज्ञा है ?"

"पूछो देवी।"

"महर्षि ने उत्तरकाड मे धोवी की निन्दा सुनकर श्रीराम के द्वारा सीता जी का त्याग कराया है। आपने मानस में वह प्रसंग क्यो नही उठाया ?"

तुलसीदास सुनकर चुप। चुप्पी लम्बी रही।

"यदि मेरा प्रश्न अनुचित हो तो क्षमा करें।"

"नही, तुम्हारा प्रश्न जितना सहज है मेरे लिए उसका उत्तर देना उतना सरल नही।"

"कोई बात नही, जाती हूं।"

"उत्तर सुन जाओ, देवी, मैं तुमसे कुछ न छिपाऊंगा। जो अन्याय मैं तुम्हारे प्रति कर सका, वह मेरे रामचन्द्र जगदम्बा के प्रति नही कर सकते थे।"

रत्नावली की आखे वरस पडी। कुछ देर रुककर तुलसी गोसाई ने पूछा—"गई ?"

रुदन कंपित स्वर मे रत्ना बोली—"जा रही हूं।"

"रो रही हो रत्ना ?"

"संतोष के आसू हैं।"

"अब न बहाओ, देवी, नही तो मेरे मन का धैर्य और संतोष बंट जायगा। सेवक का धर्म कठिन होता है।" कहकर गोसाई जी ने एक गहरी ठडी सास ढील दी।

"जाती हूं। एक भिक्षा और मांग लू ?"

"मागो।"

"मेरी मृत्यु से पहले एक वार मुझे अपना श्रीमुख दिखलाने की कृपा करे।"

"वचन देता हूं, आऊंगा।" × × ×

४५

"रत्ना चली गई। उसका जाना मुझसे शत्रुता रखनेवाले लोगो की रोपवृद्धि का एक और प्रवल कारण वन गया।"

"क्यो गुरू जी ?" वेनीमाधव ने पूछा।

"गृहस्थ गोस्वामियो को लगा कि ऐसा करके मैंने उनकी मान-प्रतिष्ठा को गिराया है।"

"उनके लिए यह सब सोचना कदाचित् स्वाभाविक ही था। पापी लोग पुण्य-

शील महात्माओं के नैसर्गिक शत्रु होते ही हैं। तो उन्होंने किस प्रकार से आपका विरोध किया गुरू जी ?"

"पहला विरोध मठ की अर्थव्यवस्था को भंग करने की चेष्टा के रूप मे हुआ।" × × ×

मठ के द्वार पर दो सण्ड-मुसण्ड वैरागी चौखट के दोनो ओर बैठे थे। उनमे से एक प्रात.काल दर्शन करने और प्रवचन सुनने के लिए आई हुई नर-नारियो की छोटी-सी भीड को बडे तेज के साथ सम्बोधित कर रहा था—"यहा कोई मत आओ। यह धर्म का नही वरन् अधर्म का मठ है। नये गोस्वामी के आगमन से यहा पापाचार बहुत अधिक बढ गया है।"

एक सम्भ्रान्त भक्त सविनय हाथ जोडकर सतेज स्वर में बोला—"यहा तो मैंने एक दिन भी पापाचार नही देखा गुसाई जी। महात्मा तुलसीदास जी पर आप जैसे पूज्य पुरुषो का मिथ्या दोष लगाना अच्छी बात नही है।"

कई अधेड-बूढी स्त्रियां प्राय: एक साथ ही चेंचा-मेची कर उठी—"अरे इत्ती अच्छी कथा सुनाते है। ऐसा भजन-भाव करते हैं। उनके मुह पर ऐसा तेज टपकता है कि बनारस-भर मे किसी साधु-महात्मा के मुंह पर वैसा तेज देखने को नही मिलता।"

युवक गोसाई उत्तेजनावश उठकर खडा हो गया, चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा—"उसके मुह पर तेज देखती हो ? तेल-फुलेल से अपना मुह चमका के ढोग रचानेवाला पापी जिसे तेजवान महात्मा दिखाई पडे वह मूर्ख है। जो ढोंगी हमारे इष्टदेव नन्दनन्दन गोपीवल्लभ राधारमण श्री कृष्ण परमात्मा को गौण बताकर अपने इष्टदेव को ऊचा बताए, उससे बड़ा ढोंगी और पापाचारी भला और कौन होगा ? भागवत् जैसे परम पवित्र ग्रन्थ को छोडकर वह यहां अपनी रची हुई रामायण सुनाएगा ! कहां तो महर्षि वेदव्यास रचित श्रीमद्भागवत्, जो अठारह पुराणो से भी श्रेष्ठ है और कहां एक ढोंगी तुक्कड़ की भ्रष्ट कविता ! न उसे मात्राओं का ज्ञान है न छन्द का। हम यहां अनशन-पाटी लेकर पड़ेंगे। हम अपने जीते-जी ऐसा पापाचार कदापि नही होने देंगे।"

उनके धरना देने से गोस्वामी तुलसीदास जी की क्रोधरूपी गौ भड़क उठी। उन्हे लगता था कि जैसे लंका पर चढ़ाई करने के लिए राम जी सेना सहित समुद्र के तट पर खड़े थे और समुद्र उन्हे जाने की राह नही दे रहा था वैसे ही यह दुष्ट उनके राम-कथा-प्रसार मे बाधक बने है। वे टोडर तक को मन्दिर के भीतर नही आने देते थे। एक दिन क्रोध को अपने वश में न रख सकने के कारण तुलसी बाहर निकल आए। टोडर से कहा—"कथा मैं अवश्य सुनाऊगा। तुम डुग्गी पिटवा दो कि कथा अब अस्सी घाट पर होगी।"

एक गोसाईं युवक उत्तेजित हो गया, बोला—"कथा तुम्हारे बाप-दादे भी नही सुना सकते। हमारे जीते जी काशी मे यह अनाचार नही होगा। अपनी रामायण को गंगा जी मे डुबा दो।"

"मेरी रामायण जन-जन की हृदय गंगा में तरी बनकर तैरेगी। राम कृपा

से यह कथा अवश्य होगी। शंकर भोलानाथ स्वयं मेरी कथा सुनेंगे।" × × ×

"डुग्गी पिटी। वैष्णवों और शैवों में कुटिल प्राणियों का प्रबल संगठन मेरे विरुद्ध बन गया। कहां तो वे लोग आपस मे एक-दूसरे को गालियां देते फिरा करते थे और कहां अब दोनों मिलकर मेरे विरुद्ध प्रचार करने लगे। मेरे पुराने विरोधी बटेश्वर मिश्र कुछ पण्डितों की ओर से यह निर्णय ले आए कि गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरितमानस एक अत्यन्त निकृष्ट काव्य है। इसमें धर्म, दर्शन तथा भक्ति का गलत निरूपण हुआ है। काव्य की दृष्टि से यह एकदम हीन और अशुद्ध है। इसे सुनने वाले को घोर रौरव नरक भोगना पड़ेगा। यमदूत उसके कानों में खौलता हुआ तेल डालकर उसे दण्डित करेंगे।···मेरे लिए वे दिन बड़े ही दुखदाई सिद्ध हुए, किन्तु गंगाराम तथा टोडर की दौड-धूप से काशी के पण्डितों का एक और निर्णय भी गली-गली में प्रचारित होने लगा। इन पण्डितों ने पहले प्रचारित किए निर्णय को भ्रामक बतलाया। कुछ पण्डितगण, जिन्होंने कि रामायण के थोड़े-बहुत अंश सुन रखे थे, यह कहने लगें कि यह तुलसी के प्रति मिथ्या प्रचार है। नगर का जनमत भी पहले वाले निर्णय के विरुद्ध था। स्वयं पण्डितों में ही विकट द्वन्द्व मचने लगा। उन दिनों काशी मे मेरा बाहर निकलना दूभर हो गया था। जिधर जाओ उधर ही निन्दक भी मिलते और प्रशंसक भी। मैंने सोचा कि रामकथा को लेकर ऐसा राग-द्वेष बढाना उचित नही। स्वामी मधुसूदन जी सरस्वती काशी के सभी पण्डितों को मान्य थे। मैंने उनसे जाकर निवेदन किया कि महाराज, आप रामचरितमानस सुने, यदि आपकी दृष्टि मे वह ग्रन्थ हीन सिद्ध हुआ तो मैं उसे तुरन्त जाकर गंगा जी मे प्रवाहित कर दूंगा। वे राजी हो गए।"

"यह सभा तो विश्वनाथ जी के मन्दिर मे हुई थी न गुरू जी ?"

"विश्वनाथ जी का यह मन्दिर उन दिनों निर्माणाधीन था किन्तु उसके पास ही यह पण्डित सभा जुड़ी। मैंने रामायण बांचना आरम्भ कर दिया। राम जी का ऐसा स्नेहवर्षण हुआ बेनीमाधव, कि ज्यों-ज्यों कथा आगे बढती जाती थी त्यों-त्यों पण्डित मण्डली पर उसका प्रभाव भी बढता जाता था। कथा के अन्तिम दिन··· × × ×

राम कथा गिरिजा मैं बरनी। कलि मल हरनि मनोमल हरनी।
संसृति रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहिं स्रुति भूरी॥

पंडित सभा में सभी के चेहरे मंत्रमुग्ध-से लग रहे थे। स्वर की मधुरता, शब्दों का जादू और भक्ति रस की अजस्र निर्मल धार काशी के प्रमुखतम शंकरमतानुयायी सर्वमान्य महापण्डित परम चरित्रवान संन्यासी मधुसूदन जी सरस्वती के रोम-रोम को आनन्दप्लावित कर रही थी। केवल बटेश्वर मिश्र और उनके जैसे कुछ लोग ही जले-भुने जा रहे थे। मधुसूदन सरस्वती से लेकर सभा मे बैठा हुआ प्रत्येक बोधवान संन्यासी और पण्डित का चेहरा उन्हे शत्रु-वत् लग रहा था। वे और उनके पक्ष के अन्ध शिवभक्त और कुटिल वैष्णव

एक-दूसरे को देख-देखकर आखें मिचमिचा रहे थे। खीझ, हार और क्रोध की चढ़ती-उतरती लहरें उनके चेहरो को विरूप बना रही थी।

कथा चलती रही। गोस्वामी जी ने अन्तिम दोहा पढ़ा और पढ़ते-पढ़ते राम के ध्यान मे वे ऐसे मग्न हो गए कि उन्हे अपने तन-वदन का होश तक न रहा। हाथ जोड़े बैठे हुए तुलसीदास की गौर काया संगमरमर की सजीव मूर्ति-सी लग रही थी। उनके मुख पर परम सन्तोष और अपार आनन्द छाया हुआ था।

कथा समाप्त हुई, मधुसूदन जी सरस्वती भी कुछ देर तक आंखें मूदे आनन्द-मग्न बैठे रहे, फिर धीरे-धीरे उनकी आखें खुलीं। वे बड़े प्रेम से ध्यानावस्थित तुलसीदास को देखने लगे, फिर अपने आसन से उठे, तुलसीदास के पास आए और बड़े स्नेह से उनके सिर पर हाथ फेरने लगे। तुलसीदास की आखें खुली, सिर उठाकर देखा, उन्हे लगा कि गंगा-चन्द्र-सर्पो और वाघाम्वर से विभूषित साक्षात् शिव उनके सिर पर हाथ फेर रहे है। जटाशंकरी गंगा की धारा उनके ग्रन्थ पर पड़ रही है। पृष्ठो की चौहद्दी अपना रूप परिवर्तित करके सात सीढियों वाले एक विशाल सरोवर के रूप मे वढती ही चली जा रही है। उसमे गंगा भरती ही चली जा रही है। धारा मे, सरोवर की उठती लहरो में, जहां देखो वही सियाराम की छवि ही दिखलाई पड़ रही है। तुलसी गद्गद हो उठे। मधुसूदन जी सरस्वती ने सभा को सम्वोधित करते हुए कहा—

"आनन्द कानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः।
कविता मंजरी यस्य रामभ्रमरभूषिता॥"

सभा मण्डप से निकलकर भीड़ गली के बाहर आ रही थी। रामचरित-मानस ग्रन्थ काठ की पेटी में वन्द था। टोडर पेटी को अपने हाथों में लेकर तुलसी और गंगाराम के पीछे-पीछे चल रहे थे। अनेक पण्डित तुलसीदास जी के साथ ही साथ चलते हुए उनकी प्रशंसा का सुमेरु भी खडा करते चल रहे थे। सभा मण्डप के बाहर पचास लठैत खडे थे। टोडर के पास पहुचते ही वे लठैत उनके आगे-पीछे, चारों ओर मजवूत दीवार वनकर चलने लगे। वटेश्वर मिश्र और उनकी दुष्ट मण्डली वडी तेजी के साथ लठैतो की भीड़ में धंसकर उन्हे विखेरने का प्रयत्न करने लगी किन्तु सफल न हो सकी। वटेश्वर के सामने पड़नेवाला अहिर उनके आगे वढने पर जव तनिक-सा भी इधर-उधर न हुआ तो लाल-लाल आंखें निकालकर वे वोले—"सरक उधर, रस्ता दे।"

लठैत वोला—"इत्ता तो रस्ता पड़ा है महराज, चले काहे नही जाते?"

बटेश्वर जी गरज उठे—"सरऊ, जानता है हम कौन है? मै अभी का अभी तुमको भस्म कर सकता हूं।"

अहिर युवक भी तेज पड़ा, वह भी आंखें निकालकर वोला—"ए वटेसुर महराज, जो तोहे आपन इज्जत प्यारी होय तो चुप्पे ते निकल जाओ। नाही तो ई जान लेव कि चाहे हमे वरहम हतिया का दोख लगे, चाहे जो हुइ जाय, हम तोहरी ई तंत्र-मंत्र-भरी खोपडिया एक ते दुइ वनाइ देव। समझ्यौ कि नाही!"

लड़ाई-झगड़े की आवाजो से तुलसीदास और उनके साथ चलने वाली भीड़

इधर देखने लगी। "क्या बात है, क्या बात है ?" की गुहार पड़ी। तुलसीदास के साथ वाली भीड़ गली में ज्योंही एक ओर सिमटी त्योंही रामायण की पेटी लिए टोडर ने अपने आगे के लठैत अहिर से कहा—"बढ़े चलो हिरदय, हम लोग रुकेंगे नही।"

लठैतों की अगली पंक्ति बढी तो पिछली स्वाभाविक रूप से अपने साथियों के पीछे चली। तुलसीदास के साथ वाले पण्डित उन्हे रास्ता देने के लिए गली में और सिमट आए। अब तुलसीदास और बटेश्वर आमने-सामने थे। बटेश्वर तुलसीदास को देखते ही क्रोध के मारे बौरा गए। लाल आखें दिखलाते हुए हाथ बढाकर वे गरजने लगे—"रे नीच नराधम, सम्मोहिनी मंत्र से मधुसूदन जी महाराज को तथा इन सारे पण्डितों को बांधकर तूने अपने दम्भ का जो जाल फैलाया है उसे मैं निश्चय ही तोड़-फोड़कर नष्ट-भ्रष्ट कर डालूगा। अरे नीच मैं तेरी हत्या कर डालूंगा।"

लठैतों की भीड़ पोथी लेकर आगे बढ गई थी। तुलसी हाथ जोड़कर बोले —"मिश्र जी, आप मुझसे बड़े है, गुरुभाई हैं, आपके इन वचनों को मैं प्रसाद के रूप में ग्रहण करता हूं।"

एक बूढ़े पण्डित बोले—"अरे बटेश्वर, मिथ्या क्रोध-और दम्भ को बढ़ाकर क्यों अपनी फजीहत करते हो ? सूर्य पर थूकोगे तो वह तुम्हारे ही ऊपर गिरेगा भैया।"

अपने साथ के कुछ लोगों के द्वारा शांत करके आगे बढ़ाए जाने पर बटेश्वर बढ़े तो अवश्य किन्तु तुलसीदास और गंगाराम के पास से गुजरते-गुजरते वे एक बार फिर भड़के बिना न रह सके। अपनी तर्जनी हिला-हिलाकर वे कहने लगे —"अरे, मैं पन्द्रह दिनों के भीतर ही तुमको, इस नीच गंगाराम को, टोडर को तुम्हारे सभी पक्षधरो से भरी सारी काशी का सत्यानाश कर डालूंगा।"

उन लोगों के आगे बढ जाने के बाद पण्डित घनश्याम शुक्ल ने कहा—"गोस्वामी जी, भाषा में काव्य रचने के लिए मैं अनेक वर्षो से अपने मन ही मन मे तडप रहा था। किन्तु साथी पण्डित सदा मुझे भाषा मे कविता लिखने से निरुत्साहित करते रहे। आपके मानस महाकाव्य से आज मुझे अपार मनोबल और स्फूर्ति मिली है। मैं भी अब भाषा मे काव्य रचूंगा।"

तुलसी बोले—"भैया,···

" का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साच।
काम जो आवे कामरी, का लै करै कुमाच ॥

" भाषा लाखो लोग समझते है। भाषा की शक्ति राम-शक्ति है।"

एक पण्डित ने पूछा—"अब तो आप काशी मे कही अवश्य ही जन-जनार्दन को पूरी रामायण सुनाएंगे ?"

"हा, विचार तो यही है।"

"परन्तु इस बार आपको कथा सुनाते समय लठैतों और धनुर्धरों की पूरी सेना ही अपनी और ग्रंथ की सुरक्षा के लिए रखनी होगी। काशी के अनेक धनी-मानी

सज्जन और उनके पिट्ठू, वहुत-से हाकिम-हुक्काम भी इन लोगों के साथ हैं। आपके द्वारा गली-गली में ये जो अखाडे खुलवाए गए है और युवको का दल जिस तरह आपके साथ सगठित हो रहा है उसे यह लोग फूटी आंखो से भी नही देख पा रहे।"

"हां महराज, सावधान रहिएगा, ये दुष्ट लोग जो न कर डालें सो थोड़ा है।"

"मैं सावधान हूं घनश्याम। सदा सावधान रहने के लिए ही मैं राम को अपने मन में समाए रखता हूं। चिन्ता न करो वन्धु, इस वार काशी मे मैं नये ढग से रामायण सुनाऊंगा।"

४६

मठ के अपने वाले दालान मे गोस्वामी तुलसीदास अपनी मित्रमंडली टोडर, कैलासनाथ और गंगाराम के साथ विराजमान है। तुलसीदास वात आरम्भ करते हुए वोले—"मैंने आपको आज एक विशेप कारण से वुलाया है। मैंने खूव दत्त-चित्त होके सोच-विचार कर एक निर्णय लिया है। मैं यह मठाधीशता अव छोड़ना चाहता हूं।"

टोडर वोलने की विकलता मे आगे वढ आए और अपने दोनो हाथ आगे की ओर वढाकर वोले—"कोई निर्णय लेने से पहले तनिक मेरी भी सुन लीजिए। यह माना कि गोसाइयो के प्रवल विरोध से इस मठ की आमदनी को धक्का पहुचा है पर आप चिन्तित न हों। चाहे इस मठ के सारे सहायक उन दुष्टो के वहकावे मे आकर सहायता देना वन्द कर दें, तव भी आपका यह सेवक अपने जीते-जी कुल खर्चा उठाने को तैयार है।"

कैलास वोले—"टोडर जी, जहा तक मैं समझता हूं, तुलसीदास का दृष्टिकोण आपके दृष्टिकोण से सर्वथा अलग है। इन्होने किसी दूसरे कारण से यह निर्णय लिया है। क्यो तुलसी, मैं गलत तो नही कह रहा हूं?"

तुलसी वोले—"जो कारण टोडर के ध्यान में आया है वह अंशतया ठीक है, पर, तुमने सही कहा, मूल कारण और है। मैं यह रजोगुणी परिवेश अव सह नही पाता गगाराम। यह मुझे आठो याम खलता है। टोडर, मैं अस्सी घाट पर तुम्हारे वनवाए हुए अपने उसी प्राचीन स्थान पर लौट जाना चाहता हू। वहा हर प्रकार का आदमी आठो याम मेरे पास स्वतन्त्रतापूर्वक आ सकेगा। मेरी वह गली-गली घूमने और नाम प्रचार करने की पुरानी परिपाटी जव फिर से आरम्भ होगी, तभी मुझे सुख मिलेगा।"

गंगाराम वोले—"टोडर, सूर्य को कोठरी मे वन्द नहीं किया जा सकता। यह जैसा जीवन विताना चाहते हैं वैसा ही विताने दो।"

कैलास वोले—"यह जव तक अपने घट-घट व्यापी राम से न मिलते रहे तव तक इनका योग पूरा नही होता। मैं इन्हे सदा से जानता हूं।"

तुलसीदास मुस्कराए, वोले—"कवि के साथ प्रारव्ध ने मुझे कथावाचक भी

बनाया है। मैं रामायण सुनाना चाहता हूं और नाम प्रचार करना चाहता हूं। आज के हारे-थके, हर तरह से टूटे-बुझे हुए जनजीवन को इस आस्था से भर देना चाहता हूं कि न्याय, धर्म, त्याग और शील आज भी इस जग मे विद्यमान हैं। कोई चिनगारी को छोटा न समझे, वह किसी भी समय अनुकूल परिस्थितिया पाकर निश्चय ही महाज्वाला बन जाएगी। राम थे, राम है, राम सदा रहेगे—और इस पृथ्वी पर एक दिन रामराज्य आकर रहेगा।"

टोडर, बोले—"आपकी इच्छा ही मेरे लिए वेद वाक्य है महात्मा जी, परन्तु मेरे सामने फिर वही की वही समस्या आ जाती है, इस मठ का गोस्वामी पद किसे प्रदान किया जाए ?"

गंगाराम बोले—"तुलसीदास, मैं जब-जब तुम्हारे इस मठ मे आया हूं, मुझे इस मठ का तुम्हारा वह शिष्य, जिसके छोटी-सी दाढी है, क्या नाम है उसका···"

"हरेकृष्णदास।" कहते हुए तुलसीदास की आखो मे चमक आ गई, कहा—"तुमने ठीक सोचा। मूल मथुरावासी है, शात-शिष्ट और भावुक है।"

टोडर बोले—"वह तो पहले भी था महात्मा जी, किन्तु लोग कहते है कि वह अभी बहुत युवक है।"

तुलसी हल्की झिड़की-सी देते हुए बोले—"यह बेकार का तर्क हैं। उसकी आयु पैंतीस-छत्तीस वर्ष से कम तो है नही। तुम चिन्ता न करो, मैं तुम्हारी बिरादरी वालों को समझा लूगा। मेरे जाने से कुछ लोग जो अन्य गोसाइयो के प्रभाव मे है, निश्चय ही संतुष्ट होंगे, और हरेकृष्णदास का नाम सहर्ष स्वीकार कर लेगे।" × × ×

"मैं फिर से अस्सी घाट पर आ गया। अखाड़े पर अब पहले से अधिक जमाव होता था। टोडर ने एक भवन मे मेरे लिए रहने की सुखद व्यवस्था कर दी। मैं जो पहुंचा तो पुराने लोग बड़े प्रसन्न हुए। नगर में अपने सभी पुराने परिचितों से स्वच्छन्दतापूर्वक घूम-घूमकर मिलना आरम्भ किया।" × × ×

विश्वनाथ मंदिर की गली मे तुलसीदास एक बर्तनवाले की दूकान पर बैठे है। गली मे आते-जाते लोगो की एक छोटी-सी भीड़ उनके आसपास खड़ी है। सब लोग बड़े प्रसन्न है। गोस्वामी जी हंसकर कह रहे है—"वन के पंछी को चाहे सोने के पिंजड़े मे क्यों न बिठला दो, हीरे-मोती-मानिक जड़ी कटोरियो में दाना-पानी क्यों न दो, पर उसे वह सुख नहीं मिलता जो डाल-डाल पर डोल-डालकर चहकने मे मिलता है।"

एक निर्धन, फटेहाल-सा आदमी, जो गली मे खड़ा हुआ था, बोला—"ठीक कहा, गुसाई जी, अरे नामी-ग्रामी बड़े-बड़े दिग्गजों मे एक आपै तो रहे जिन्हें हम अपना समझते रहे। और आप भी नालकी पालकी मे चढ़कर तुरही-नरसिंघे के साथ आने-जाने लगे तो हमारा, सच्ची मानो, मन का सारा मजा चौपट हुइ गया रहा गुसाई जी। अब हमें फिर से लगा कि नही जो हमारा है सो हमारा ही है। जियो महराज, जुग-जुग जियो महराज।"

दूसरा बोला—"महराज जी, अब कही अपनी वह रामायण बांचिए न, जिसके पीछे पंडितों मे इतने अखाड़े-दंगल हुए।" सभी ने एक साथ उल्लसित होकर 'हां, हां' कहा।

गोसाई जी बोले—"हम भी रामायण बांचना चाहते है। हमारे मन मे यह विचार हो रहा है कि इस कथा मे सभी लोग सम्मिलित हो। पूरे नगर मे यह कथा बांची जाए।"

जिनकी दूकान पर तुलसीदास जी विराजमान थे, वह लाला जी आश्चर्यचकित मुद्रा से गोस्वामी जी को देखते हुए बोले—"बडी अनोखी बात कह रहे हैं महराज जी। सारे नगर मे कथा कैसे बाचेंगे आप? आज यहां कल वहा?"

तुलसीदास हसे, कहा—"और क्या करेंगे·· हम रामचरितमानस सुनाने के साथ तुम लोगो को रामलीला भी दिखाएंगे। बोलिए, आज के समय मे पूरी रामलीला का खर्चा कौन उठाएगा भला?"

लाला जी गंभीर भाव से सिर हिलाकर बोले—"आप बिलकुल ठीक कहते है। आजकल बजार बहुत मंदा है। दिन-दिन-भर दुकान खोले बैठे रहते है, और किसी-किसी दिन तो गाहक भगवान के दर्शन भी नही होते है। क्या धनी, क्या निर्धन सभी एक-से दुखी है। और देखिए फिर अकाल पड़ रहा है। जब गांव में प्रलै आती है तो वहां की परजा सीधे शहरो की ओर ही दौड़ती है। और शहरों मे भी कोई कहां ते भीख-दे महराज? बुरे समय मे बड़े-बड़े लछमीवानो की लछमी भी लजवंती हो जाती है, बाहर नही निकलती।"

"इसीलिए तो हम बिन टके का महायज्ञ रचाएंगे। यह अकाल की स्थिति ही हमे इस समय विशेष रूप से रामलीला रचाने की प्रेरणा दे रही है। जन करुणा को करुणासागर राम की लीलाओ को देख-देखकर अपनी शक्ति की थाह मिलेगी। देखो, राम जी ने चाहा तो अगले पितृ पक्ष के बाद नवरात्र मे रामलीला प्रदर्शन के साथ-साथ तुम्हे रामचरितमानस सुनाई जाएगी।"

गली मे खड़ा हुआ एक बोला—"बात बहुत ऊंची कह रहे हो बाबा। नट-बाजीगरी तो बहुत होती है और भद्दे-भद्दे स्वाग भी गली-गली मे होते है। अच्छी लीला होगी तो अच्छा मन भी अच्छा बनेगा।"

"हां; यही बात है। देखो, राम ने चाहा तो उनकी लीला बड़े धूमधाम से होगी।" × × ×

बेनीमाधव जी बड़े ध्यानमग्न होकर बाबा के संस्मरण सुन रहे थे। एका-एक पूछा—"गुरू जी, ये आपकी सारी योजना बिना पैसे-कौडी के सफल कैसे हो सकी?"

"जो काम धनबल नही कर सकता वह जनबल से सहज सम्भव हो जाता है। हम नगर मे जहां-कही डोलते हुए पहुच जाते वही हमसे रामयण बाचने का आग्रह किया जाता। हम भी फिर अपनी जुगाड़ मे लग गए। ठठेरो-कसेरों से कहा··· × × ×

"चौघरी, अबकी नौरातों में हम रामलीला करना चाहते हैं।"

बनारसी चौधरी बोला—"यह तो बड़ी अच्छी बात है महराज। फिर हमारे लिए क्या अग्या होती है?"

"देखो चौधरी, जब लीला होगी तो राम जी, सीता जी, लछमन जी आदि देवी-देवताओं के लिए मुकुट होने चाहिए। रावण का दस सिर वाला मुखौटा होना चाहिए, और भी देवी-देवताओ-असुरो के मुखौटे होने चाहिए।"

"महराज जी, मुखौटे हम बनवा देंगे। सियाराम, लछिमन, चारों भइयों के तांबे के मुकुट हम बनाय देंगे। बाकी और सजावट का सामान आप गोटे-वालो से कहके बनवाइए। हम अपनी बिरादरी के हर आदमी को एक-एक मुखौटा बनाने का जिम्मा सौंप देंगे। जैसे आप कहेंगे वैसे बन जाएंगे, और किसी पर बोझ भी नही पड़ेगा। बर्तन बनाते भए पत्तरों की काट-तरास और छीजन मे ही आपके काम लायक-पीतल तांबा निकल आएगा।"

तुलसी बोले—"तुम्हारी बिरादरी मे जो लोग उत्साही हो उनको कहो कि लीला भी खेलें। धर्म का काम है, दूसरे अपना और सबका मन बहलेगा। ठीक कहता हू न चौधरी?"

चौधरी हाथ जोड़कर बोला—"अरे, हमरी बिरादरीवालो मे यह सुनके उमंग भर जाएगी। सोचेंगे हमे ही लीला भी करनी है। घबराइए नही, बड़ी जल्दी ही सबको इकट्ठा करके मैं ले आऊंगा।"

केवटो के चौधरी रामा से बाते करने के लिए जब गोसाईं जी नौका घाट पर पहुचे तो वहा बड़ा उत्पात मचा हुआ था। लड़के एक बजरे को घेरे खड़े थे और उसके बन्द कमरे के सामने ललकार रहे थे—"सीधी तरह निकल आओ, लाला, तो थोड़ा-सा दड देकर ही छोड़ देंगे। नही तो कुठरिया का दरवाजा तोड़के मारते-मारते तुम्हारा औ उस निगोड़ी झुनिया का कचूमर निकाल डालेंगे, जिसने हमारी बिरादरी की नाक कटा रखी है।"

तट के ऊपर बड़े-बूढ़े केवटो की भीड़ खड़ी चुपचाप तमाशा देख रही थी। गोस्वामी जी के पहुचते ही सब पैर छूने आगे बढ़े। उन्होने पूछा—"यह किस बात का उत्पात हो रहा है, भइया?"

रामा बोला—"क्या कहे महराज, कलिकाल है। झूरन साहु हम लोगो को कर्जा क्या देता है कि ब्याज मे हमारी आबरू भी लूटता है। इसी बस्ती की एक चुड़ैल है महराज, वही हर घर से उसके सिकार पकड़-पकड़कर लाती है। आज लड़कों ने पकड़ लिया है सो दंड दे रहे हैं।"

लड़के तब तक कोठरी का द्वार तोड़कर झूरन और झुनिया को अन्दर से बाहर घसीट लाए और उनकी मरम्मत करने लगे। तुलसी ने कहा—"अच्छा है, जब सेर पर सवा सेर पड़ता है तभी दुष्ट मानते हैं। जैसे कृष्ण ने नागनथैया की थी वैसे ही हमारे युवको को दुष्टो की नागनथैया भी करनी चाहिए।"

थोड़ी देर तक झूरन की धुनाई होती रही, फिर गोसाईं जी ने ही आगे बढ़कर उसे और झुनिया को कुछ युवकों के घेरे से मुक्त कराया। आदेश देकर सबको शान्त किया, फिर केवटों के चौधरी से कहा—"रामा भइया, हम राम-

लीला करवाना चाहते हैं।"

"यह कैसे होयगी गुसाईं जी ?"

"ये ऐसे होगी कि जब सियाराम जी, लछमन जी गंगा पार करके वन को जाएगे तो तुम्ही उन्हे पार उतारोगे और राम जी के चरण पखार के अपना जीवन सार्थक करोगे।"

"सच्ची महराज ?"

"हां, रामा, तुम यहां के केवटों के चौधरी हो, निषादराज से क्या कम हो ?"

"अरे, गोसाईं जी, हम औ हमारी सारी बिरादरी आपके साथ है। जैसे कहोगे वैसे करेंगे।"

हिरदै अहिर की गौशाला के तखत पर गोस्वामी जी विराजमान है। हिरदै तखत के नीचे सविनय बैठा हुआ कह रहा है—"इत्ती-सी बात कहने के लिए आप दौड़के आए ! अरे, हमे कहलाय दिया होता तो हम आपै आ जाते। बाकी हमारे जवान तो यह सुनते ही फड़क-फड़क उठेंगे महराज। स्वांग भरने का चाव किसे नही होता और फिर राम जी के बानर बनने की बात सुनकर तो लड़के ऐसे मगन होंगे कि कुछ न पूछिए।"

"उन्हे बानर तो बनना ही है हिरदै, बाकी यह है कि स्वरूपों की सुरक्षा के लिए भी तुम्हे कुछ लठैत देने होंगे। यहां कुछ लोग अकारण ही हमारे शत्रु हैं। हमारी रामायण की रक्षा के लिए भी टोडर ने तुम्ही लोगों को कष्ट दिया था।"

"कस्ट महराज ? अरे ई तौ हम पचो का सुख है, जो आपकी सेवा करने का औसर मिलेगा। आप निसाखातिर रहै। हमारी बिरादरी का एक-एक लठैत आपकी सेवा मे हाजिर रहेगा। जिसे चाहें बानर बनाय लें और जिसे चाहे पहरेदार। बाकी एक हमारी अरदास है। अज्ञा होय तो अरज करूं ?"

"कहो, कहो।"

"पहले इस बीच मे एकाध-दुइ छोटी-छोटी लीलाएं आप करवाय ले तो फिर बड़े काम में हाथ डालने पर और आनंद आएगा।"

तुलसीदास इस सुझाव से खिल उठे, बोले—"तुमने बहुत अच्छी बात कही है हिरदै। अच्छा, पहले दो छोटी-छोटी लीलाएं करेंगे, एक नागनथैया लीला और दूसरी नरसिंह लीला।" × × ×

"अन्यायी कालिय नाग और क्रूर हिरण्यकशिपु, दोनों ही के अत्याचारों का सामना नवयुवक ही करते है। एक मे कृष्ण की गोप मण्डली है, दूसरे में सत्यनिष्ठ प्रह्लाद। मेरी इन लीलाओ का नगर मे, विशेष रूप से युवको की टोली मे, बड़ा ही असर पड़ा बेनीमाधव। अब रामलीला के लिए हर वर्ग मे बडी उत्सुकता और उत्साह बढ गया था। एक दिन··· × × ×

टोडर के साथ अपने अस्सी घाट वाले स्थान पर गोसाईं जी बैठे बातें कर रहे है। वे कह रहे थे—"हमने हर बिरादरी मे और हर महल्ले में सबसे बात कर ली है टोडर। जिस महल्ले मे जो लीला होगी उसका खर्चा और प्रबंध

उसी महल्ले वाले करेंगे और रामायण मैं सुनाऊंगा।"

टोडर बोले—"महात्मा जी, आप जो चाहेंगे वह अवश्य होगा, लेकिन यह न भूलें कि इस नगर के कट्टर शैवपंथी, वल्लभ संप्रदाय वाले और उनके साथ ही साथ बटेसुर महराज जैसे प्रभावशाली दुर्जन लोग आपकी सभाओं में तरह-तरह से विघ्न डालने मे कोई कसर न उठा रखेंगे।"

गोसाईं जी शांत स्वर मे बोले—"टोडर, अबकी यह विघ्न डालेंगे तो राम जी की दया से सारा नगर इनके विरुद्ध जायगा। मैं इसीलिए रामलीला प्रदर्शन के साथ रामचरितमानस सुना रहा हूं। मेरे वानर सब प्रकार के असुरों को दण्ड देने के लिए तैयार रहेंगे।"

उसी समय घाट के एक अधेड़ व्यक्ति घबराए हुए तुलसीदास जी के पास आए, कहा—"अरे बड़ा गजब हुइ गया गुसाईं जी महराज। पूरा कलिकाल आ गया। चारो चरन टेक के कलजुग खड़ा होइ गवा है ससुरा। कुछ न पूछौ।"

"क्या हुआ श्रीधर ?"

"अरे एक कौनो सरवा बैरागी रहा, वह तांत्रिकी रहा, तौन किसी बड़े हाकिम की बड़ी पतुरिया को लैके भाग गवा। अब जित्ते छोटे-बड़े साधू-बैरागी हैं सब पकड़े जाय रहे है। भला बताओ इ कहां का न्याव है महराज ?"

"तो तान्त्रिकों को कौन पहिचनवा रहा है भाई ?"

"सब मिली भगत है, महराज। बटेसुअर मिसिर को किसीने नही पकड़ा महराज, उन्होंने सुना है कि पांच सौ रुपये रुसखत चटाय दी औ···"

मुंह की बात मुंह मे ही रह गई और आठ-दस सरकारी प्यादों को लेकर जमादार और एक ब्राह्मण युवक तुलसीदास की कोठरी के सामने आ पहुंचा। टोडर ने इस ब्राह्मण को बटेश्वर मिश्र के साथ कई बार देखा था। उनके कान ठनके। वह युवक वैसी ही शान और शेखी के साथ, जैसी केवल मूर्ख और दम्भी दिखला सकते है, आगे बढ़ा और चिल्लाकर बोला—"यही है तुलसीदास। इन्हे सम्मोहिनी विद्या सिद्ध है। बड़ी-बड़ी सुन्दर स्त्रियो को नित्य फंसाना ही इनका काम है। आज इस सठ के पाप का घड़ा भर गया सो आय फंसा है।" कहकर अपने कंधे पर लटकी हुई लाल झोली से एक काठ की डिबिया निकाली और जल्दी-जल्दी मंत्र बुदबुदाते हुए उसका सिंदूर बिजली की फुर्ती से तुलसीदास की छाती पर उछाल दिया। 'हे-हे-हे-ह' बकरे की मिमियाहट की तर्ज पर भैंस की डकराहट जैसी वह हंसी उस कायर-वीर के गले से निकलने लगी।

टोडर का हाथ अपनी तलवार की मूठ पर चला गया। तुलसीदास ने दृढ़ता-पूर्वक उनका हाथ पकड़ लिया। उनके चेहरे पर परम शांति विराज रही थी।

बटेश्वर का वह कायर-वीर शिष्य अपने इस भीषण तांत्रिक प्रहार के बाद भी अपने गुरू जी के गुरुभाई को वैसी ही शांत मुद्रा में देखकर कुछ-कुछ भय-भीत तो अवश्य हुआ पर दस सिपाहियों की शक्ति उसे अपने गुरू की तंत्र शक्ति से अधिक बल दे रही थी। हंसते हुए बोला—"हे:-हे:-हे:-हे:, हमारे गुरू जी से टक्कर लेने चला था! जाने ससुर कौन नीच जात, ठगहारी विद्या करके दो-चार मंत्रों के बल पर सच्चे गुरुओ से होड़ ले रहा था। जाओ बेटा, अब चक्की

पीसो हे:-हे:-हे:-हे: ।"

सिपाहियो में दो पठान तुलसीदास को अयोध्या की बाबरी मस्जिद के पास फकीरो के बीच में नित्य रात को देखा करते थे। उनसे बातें भी हुआ करती थी। उन दिनो यह दोनों पठान अपने सरदार के साथ अयोध्या की मस्जिद पर तैनात थे। दोनो ने आपस मे एक-दूसरे से बातें की और फिर एक ने तुलसीदास से पूछा—"खो बाबा, पहला तुम्हारा दाढ़ी-मुच्छा था ?"

तुलसीदास ने पठान को ध्यान से देखा, पूछा—"आप नूर खां पठान हैं और ये वली खां है। कैसे है ?"

तुलसीदास का स्वर इतना सहज और शात था कि जैसे यह सिपाही उन्हे पकड़ने नही वरन् साधारण आगन्तुको की तरह बोलने-बतियाने आए हैं। वली खा ने जमादार से कहा —"हुजूर, हम दोनो इनको अजुध्या से जानता है, ये बाबरी मस्जिद मे रोज हमारे फकीरो के साथ उठता-बैठता-सोता था। बहुत उम्दा गाता है हुजूर ! ऊपर वाले का सच्चा, दुनिया वाले का दोस्त है।"

जमादार ही नही, साथ आया हुआ हर सिपाही इस बात मे एक मत था कि अब तक जितने वैरागी पकड़े हैं उनमे यह निराला है। जमादार बोला—"इनके लिए खासतौर से कोतवाल साहब का हुक्म है। इस बरहमन के गुरू ने कोतवाल साहब की बेगम का कुछ काम किया था। उसकी पहुच थी, उसी ने इनका पता दिया है।"

"हू !" फिर तुलसी की ओर देखकर जमादार ने विनीत स्वर मे कहा—"साईं, हम खतावार नही, महज हुक्म के बन्दे है।"

तुलसीदास मुस्कराए, कहा—"चलिए-चलिए, आप अपना फर्ज अदा क़ीजिए और हमे भी अपने मालिक की मर्जी पूरी करने दीजिए।

" तुलसी जस भवितव्यता तैसी मिलै सहाइ।
आपुनु आवइ ताहि पै ताहि तहा लै जाइ।।"

जब कोतवाल के सामने तुलसीदास पेश किए गए तो उनकी बेगम साहबा भी पर्दे के पीछे मौजूद थी। कोतवाल ने उन्हे सर से पैर तक घूरकर देखा और पूछा—"सुना है, तुमने बहुत शोहरत हासिल की है। तुम बड़े-बड़े पण्डितो को भी अपने जादू से बाध लेते हो।"

तुलसीदास बोले—"मैं जादू-टोने नही करता, केवल रामनाम जपता हूं और इसीका प्रचार करता हूं।"

पर्दे के पीछे से बेगम साहबा ने कोतवाल साहब के कानो मे फरमाया—"मेरी बादी बतलाती है, यह बहुत बड़ा फकीर है। इससे कोई करिश्मा दिखलाने को कहिए।"

कोतवाल ने तुलसीदास से कहा—"हमें अपना कोई कमाल दिखला सकते हो ?"

तुलसीदास हसे, बोले—"कमाली तो एक ही है या फिर उसका सिपहसालार है।"

"कौन है उसका सिपहसालार ?"

"हनुमान बजरंगबली।" यह कहकर वे सहसा आवेश मे आ गए। ऊंचे सशक्त स्वर में उनके मुख से एक छप्पय सोते-सा उमड़कर बह चला; आखे सामने वाले खम्भे पर ऐसी सध गई जैसे वहा उनका हनुमान हठीला दृढ आस्था का स्तम्भ बनकर प्रत्यक्ष खड़ा हो। वे उसे ही अपना छप्पय सुना रहे थे—

सिंधु-तरन, सिय सोच-हरन, रवि बालबरन-तनु।
भुज विशाल, मूरति कराल कालहुको काल जनु॥
गहन-दहन-निरदहन-लंक निःसंक, बंक, भुव।
जातुधान-बलवान-मान-मद-दवन पवन सुव॥
कह तुलसिदास सेवत सुलभ, सेवक हित संतत निकट।
गुन गनत, नमत, सुमिरत, जपत, समन सकल-सकट विकट॥

नगर मे गोस्वामी तुलसीदास जी के पकड़ जाने की खबर बिजली-सी फैली। काशी की ऐसी कौन-सी गली थी, जिसे तुलसीदास ने अपना न बना लिया हो। शहर मे सैकड़ो ऐसे युवक थे जिन्होने उन्ही की प्रेरणा से हनुमान अखाड़े आयोजित किए थे। ब्राह्मण, राजपूत, गोप, अहिर, गोड, कहार, केवट, नाऊ, जुलाहे, छोटी कौमो के मुसलमान, तमोली, छोटे-छोटे सौदागर सभी तो रामबोला बाबा को अपना मानते थे। उनके पकड़े जाने के समाचार ने क्या छोटे, क्या बड़े सभी के मनो मे बड़ी कड़वाहट उत्पन्न कर दी। सारी काशी मे बटेश्वर मिश्र की थू-थू हो रही थी। टोडर ने भूख-प्यास सब बिसार कर दौड़-धूप आरंभ की। जयराम साहु बोले—"अबकी भिड़के ही दिखा दो टोडर। अकबर जैसे न्यायप्रिय बादशाह के राज्य मे भी ऐसी मनमानियां हो रही हैं। मिश्र जी जैसे घमण्डी-स्वार्थी आपसी ईर्ष्या-द्वेष में सारे नगर की नाक कटा रहे है। एक बार इनसे निबटे बिना निस्तार नही। आगे जो होगा सो भुगत लेगे।"

टोडर बोले—"हिरदै अहीर महात्मा जी का बड़ा भक्त है। अच्छे लडवैये ठाकुर समरसिंह भी दे देगे।"

जयराम बोले—"दो सौ लठैत मैं भी दूगा। ये कोतवाल बड़ा ही दुष्ट आदमी है, और ये बक्शी, जिसकी पतुरिया भागी है, एक नम्बर का धूर्त है। इन लोगो ने हमे दुखी कर रखा है।"

"ठीक है, अब आपकी सलाह मिल गई है तो आज रात तक हम भी कुछ कर दिखाएगे।"

टोडर हिरदै से मिले तो वह बोला—"भैया, कासी जी का अहिर खून उबल रहा है। जब आप सब लोग पीठ पर हो तो हम भी आज इन्हे ऐसा सबक सिखाएंगे की छठी का दूध याद आ जाएगा। हमारे गुसाई बाबा हमारे लडको को रामलीला मे बानर सेना बनाने वाले थे, सो आज कोतवाल की कोतवाली पर हमारी बानर सेना ही टूटेगी। देख लेना। पहली रामलीला बानर लीला से ही होयगी।"

टोडर बोले—"ठीक है, पर हमला खूब सोच-विचार के बड़े संगठित ढंग

से होना चाहिए, हिरदै। सिपाहियों पर ऐसे अचानक टूटो कि उनसे कुछ करते-धरते न बने। फिर कही पर अहिर टूटेंगे, कहीं पर केवट और कही पर ठाकुर भुंइहार धमकेंगे। और हिरदै, कल सबेरे काशी जी मे बटेश्वर मिश्र कही चलता-फिरता न दिखाई दे।"

"भैया, हम बरमहत्या न करेंगे। उस बरमराकस को हनुमान जी आप ही समझेंगे।"

रात पहर-भर भी न बीती थी कि छावनी मे हुल्लड़ मच गया। मुगल पठान सिपाही अचानक मे घिर गए। कइयो की मुश्कें कस गईं। सैकड़ो तुपकचिया विद्रोहियो के कब्जे मे आ गईं। लठैतों का आक्रमण इतना व्यापक और फुर्तीला था कि सिपाही बिना लड़े ही उनके जादू में बंधकर परास्त हो गए।

कोतवाली पर सारे शरीर मे सेंदुर लगाए लाल लंगोटेधारी अहिर युवा वानर टूट पड़े थे। हरम मे ऐसा हाय-तोबा मचा कि बेगम बादिया बेहोश हो-हो गई। अफीम की पिनक मे गाना सुनते और झूमते हुए कोतवाल साहब की दाढ़ी नुची। उन्होने कैदखाने के जमादार को बुलाके हुक्म दिया कि तुलसीदास को फौरन छोड दो। तुलसीदास बोले—"जब तक सब वैरागी नही छोड़े जाएंगे तब तक मैं बंदीगृह से नही निकलूंगा।"

सारे वैरागी छोड़े गए। नगर मे रात के तीसरे पहर सैकडो मशालों के साथ तुलसीबाबा और सारे वैरागियो का जुलूस निकला। पूरा नगर जाग पडा। एक विचित्र उत्साह काशी के जन-जन मे लहरा उठा था। तुलसीदास और काशी उस रात सदा के लिए एक हो गए।

टोडर की इच्छा भी पूरी हुई। बटेश्वर मिश्र नया सूर्योदय न देख पाया। कोतवाली के सिपाहियो ने अपनी इस अपमान-भरी पराजय का बदला लेने के लिए रात ही मे बटेश्वर मिश्र के घर जाकर उन्हें सोते से जगाया, बाहर बुलाया और कत्ल कर डाला।

४७

नगर मे इस विद्रोह से जहां युवकों में जान आई, वहा दूसरी ओर शासन तंत्र भी चूर-चूर हो गया। सभी आला हाकिम इस बात से चिन्तित थे कि आगरे के किले मे जब यह समाचार पहुचेगा तो बादशाह न जाने हमारी क्या दुर्गति करे। इस घबराहट मे बख्शी, दीवान, मीर अदल, कोतवाल, छोटे-बड़े सिपहसालार सब आपस मे एक-दूसरे को दोषी तथा अपने को सतर्क स्वामि-भक्त सेवक सिद्ध करने के लिए आगरे मे अपने पक्ष के आला हाकिमों के पास मूल्यवान भेंटें और सदेश भिजवाने लगे। अकबर के दरबार मे काशी के इस युवक विद्रोह की इतनी और इतनी प्रकार की सूचनाएं पहुची कि बादशाह ने काशी-जौनपुर सूबे के लिए पुराने सूबेदार का तबादला करके अब्दुर्रहीम खाने-

खाना को सूबेदार बनाकर व्यवस्था संभालने के लिए भेजा।

खानेखाना अभी आगरे से चल भी न पाए थे कि उनके आने की सूचना काशी मे पहुच गई। उस समय नगर में अकालग्रस्त जनसमूह मारा-मारा डोल रहा था। श्रमजीवी, किसान आदि सभी भिखारी बन गए थे। पेट भरने के लिए लोग अपने बेटे-बेटियो तक को बेच देते थे। भूतभावन भोलानाथ की नगरी करुणा से चीत्कार कर रही थी और प्रायः उसी समय राजा टोडरमल के पुत्र राजा गोवर्धनधारी काशी के पण्डित शिरोमणि नारायण भट्ट जी की प्रेरणा से विश्वनाथ जी का नया मन्दिर बनवाकर शिवलिंग की प्रतिष्ठा कराने आए थे।

मन्दिर मे बड़ी धूमधाम थी। पण्डित मण्डली में हर जगह राजा गोवर्धन-धारीदास टंडन की जै-जैकार हो रही थी। फकीरों को अन्न दिया जा रहा था। नगर मे सबको शांत किया जा रहा था। एक भिखारी बोला—"यहां सब बड़े-बड़े पण्डित दिखाई दिए पर हमारे रामबोलवा बाबा के दरसन नही भये।"

"अरे भइया, जो गरीबों का साथ दे उसे बडे लोग अपने बीच में नही बैठाते है। बाबा हमारे-तुम्हारे है कि इनके है।"

"सच्ची कहा मंगलू, बाबा हमारे है।"

"सुना है बिचारो की बांह मे गिल्टी निकल आई है। आज-कल वे बहुत पीड़ा पाय रहे है।"

तुलसीदास की कोठरी में टोडर आदि कई भक्तों की भीड़ जमा थी। तुलसी अपनी पीड़ा से विकल थे। बार-बार हनुमान को गोहराते थे—"हे हनुमान हठीले, तुमने पहाड उठाया, लंका जलाई, बड़े-बड़े बलशाली राक्षसो को चुटकी बजाते मसल डाला, मेरी यह जरा-सी पीर नही हरी जाती? मेरी ही सहायता करते समय क्या तुम बूढे हो गए हो? तुम्हारी शक्ति क्षीण हो गई है? आओ मेरे साहब, मेरा कष्ट हरो। बड़ा काम करने को पड़ा है। राम जी का काम है हनुमान हठीले, मेरी लाज रखो।"

एक सरकारी ओहदेदार के आने की सूचना मिली। टोडर उठकर बाहर गए। हाकिम को मुजरा इत्यादि करने के बाद उससे बाते करने पर टोडर ने जाना कि नये सूबेदार बनारस आये है और गोसाईं जी से मिलना चाहते हैं।

टोडर ने कहा—"हुजूर, भीतर चलकर महात्मा जी की हालत अपनी आखो से देख लें। इस समय तो गिल्टी मे बड़ी पीड़ा होने से वे कराह रहे है।"

हाकिम टोडर के साथ भीतर आया, सब लोग अदब से उठ खड़े हुए। हाकिम ने गोसाईं जी को झुककर सलाम की और कहा—"हुजूरेआली खाने-खाना साहब ने मुझे आपकी मिज़ाजपुर्सी के लिए भेजा है।"

"उनसे हमारा सलाम कहिएगा। उनके कुछ दोहे हमने सुने है। उन्हे हमारी सराहना की सूचना दीजिएगा और इस कृपा के लिए मेरा आभार भी प्रकट कीजिएगा।"

दूसरे दिन पैदलों और घुड़सवारो की सेना के साथ हाथी पर सूबेदार अब्दुर्रहीम खानेखाना गोस्वामी तुलसीदास जी के दर्शनार्थ पधारे। उनके आने

की सूचना पहले ही भेज दी गई थी। बड़ा सरकारी प्रबंध हुआ था। सूबेदार को देखने के लिए बाबा के निवास-स्थान के आस-पास बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी।

तुलसी और रहीम बड़े प्रेम से मिले। खानेखाना साधारण आसन पर बैठकर एक-दूसरे से बातें करने लगे। उनके बन्दी बनाए जाने के कारण रहीम ने क्षमा मांगी। उनके उपचार के लिए अपने खास हकीम को भिजवाने की बात भी कही। रहीम ने अकबर बादशाह के संबंध में कहा—"महाबली सब प्रकार के अन्यायियों को कुचल रहे हैं। वे ऐसे धर्म का प्रतिपादन करते हैं जो मानव-मात्र को एक कर सके।"

तुलसी बोले—"इसमें कोई संदेह नहीं कि अकबर शाह के काल में बड़ी व्यवस्था आई है। फिर भी समाज और शासन को और अधिक संगठित और न्यायशील होना चाहिए।"

"आपका कहना यथार्थ है गोस्वामी जी, अच्छा, तो अब आज्ञा लूंगा। स्वस्थ हो जायं तो एक दिन मुझे दर्शन देने की कृपा अवश्य करें। एक और निवेदन भी करना चाहता हूं। मेरी इच्छा है कि आप ऐसे महात्मा महाकवि को राज्य संरक्षण मिलना चाहिए। मैं यदि शाहंशाह सलामत को आपको कोई जागीर प्रदान करने के लिए लिखूं तो क्या आप उसे स्वीकार करेंगे?"

तुलसी हंसे, बोले—"आपकी बड़ी कृपा है खानखाना साहब, परन्तु ··

"हम चाकर रघुबीर के, पटो लिखो दरबार।
तुलसी अब का होहिंगे, नर के मनसबदार॥"

४८

काशी की अंधेरी गलियों दर गलियों का जाल अपने कुतरे जाने की आशंका से सहसा चौकन्ना हो उठा था और उसे कुतरने वाले थे चूहे। घरों, खंडहरों और मैदानों के अंधेरे बिलों से रेंगते-लड़खड़ाते चूहे निकलते, दो-चार डग भरते और मर जाते थे बिल्लियां तक अब उन्हें बिलों से देखकर नहीं झपटती थीं।

एक घर से एक लड़का मरा हुआ चूहा दुम से पकड़कर हिलाता हुआ बाहर निकला और घूरे पर छोड़ आया। लौटकर घर पहुंचा तो मां ने कहा—"अरे सिबुआ, तुम्हें बेटा एक बार और जाना पड़ेगा।"

"क्यों मां?"

"अरे बेटा, भंडारे वाली कोठरी के भीतर पांच-सात चूहे एक के पीछे एक लड़खड़ाते भए निकरे और मर-मर गए। ये क्या हुइ गया है राम?"

दूसरे दिन घर-घर में तेज बुखार फैल गया था। नगर के छोटे-बड़े किसी भी वैद्य-हकीम को दम मारने का अवकाश नहीं था। गिरजादत्त वैद्य के बैठके और चबूतरे पर भीड़ जमा थी। एक कह रहा था—"ये तो भगवान का कोप भया

है भैया।"

दूसरा बोला —"पण्डित गंगाराम ज्योतिषी हमारे लाला से कहते रहे, भैरो, कि ये रुद्र बीसी पडी है। जो न हुइ जाय सो थोडा है।"

तीसरे ने कुछ सोच-भरी मुद्रा मे कहा —"भाई, हमने तो इन दुइ-तीन दिनों में यह अजमाया कि जिस घर मे चूहे मरते है उसी घर मे ये जानलेवा जर आता है। हमारे पड़ोस मे एक बुढ़िया, उसकी बहुरिया और पोते-पोती, चारों के चारों पड़े है। चारो की बाहन से गिल्टिया निकली भई है। हमसे बिचारी का दुख न देखा गया सो दवा लेवँ आए है। यहां तो पानी देनेवाला भी कोई नही है।"

पहले ने चिन्तित-दुखी स्वर में कहा—"हमरी-घर मे से बुखार मे पड़ी है। अब हम भी जाने किसी दिन पड़ जायं। कौन ठिकाना।"

श्मशानों की ओर लाशे जा रही है। किसी के मुह से बोल नहीं निकलता। किसी भी गली मे घुसो, दो-चार घरो से आती रोने-चिल्लाने की आवाजें सुनने वाले के कलेजे पर आरियां चलाए बिना नही रहती। तुलसीदास रात के समय अकेले उदास गलियो से गुजरते हुए कही जा रहे है।

एक द्वार की कुण्डी खटखटाते है। एक तगड़ा-सा युवक कुप्पी लिए बाहर निकलता है।

गोस्वामी जी को देखते ही आश्चर्यचकित होकर जल्दी से कुप्पी चौखट पर रखकर चरण छूने को झुककर पूछता है—"अरे बाबा, आप इतनी रात मे ?"

"जटा शंकर, मैं तुमसे एक भिक्षा मांगने आया हूं।"

"पहले भीतर तो चलें। हुकुम करें बाबा।"

"मैं बैठने नही, तुम्हे उठाने के लिए आया हूं पुत्र। काशी मे राम कृपा से अब हनुमान् अखाडो की कमी नही रही।"

"नही बाबा, अरे पचास से ऊपर अखाडे वालों को तो मै जानता हूं। इनके सारे दगल मैं ही कराता हू। तभी··"

गोसाई जी ने बातो की जटा बढ़ाने वाले जटाशंकर को बीच मे ही टोककर कहा—"बेटा, इस शंकरशहर सरोवर के नर-नारी रूपी मच्छ-मछलिया इस समय बड़े ही व्याकुल है। जैसे नदी के जीवो मे माजा की बीमारी पडती है न, और उनके शव उतरा-उतरा कर तट पर ढेर के ढेर आकर बिछ जाते है, वैसी ही दशा है।"

"हा बाबा, बचपन में अपने गांव के तलाब मे देखा था। आज वही हाल काशी के नर-नारियो का है, आपने ठीक कहा।"

"पुत्र, व्यायामप्रिय युवकों के एक बहुत बड़े दल को तुम जानते हो। इसलिए मैं तुम्हारे पास आया हूं।"

"आज्ञा करे, बाबा।"

"क्या कहूं जटाशंकर। अपनी इस परम पावन पुरी की दशा तो देख ही रहे हो। घूरो पर चूहो के ढेर पड़े है। कहने को तो महामारी का आज दसवा दिन है पर नगर मे ऐसे कितने ही घर है जहा मरे हुए शवों की सद्गति करनेवाला

भी कोई नही बचा है। बेटा, तुम हनुमान अखाड़े के युवा लोग इस समय यदि राम जी की सेवा करोगे तो तुम्हे अपार पुण्य मिलेगा। बोलो, हनुमान जी के नाम की लाज रखोगे ? है तुममे राम सेवा करने का साहस ?"

हट्टा-कट्टा पहलवान जटाशंकर यह सुनकर एक बार तो सिर से पांव तक सिहर उठा, परन्तु दूसरे ही क्षण वह सिहरन स्फूर्ति बनने लगी, बोला—"यो तो बाबा, यह काम आग से खेलने जैसा है। पर जब आपकी आज्ञा है तो फिर कुछ सोचने का सवाल ही नही उठता।"

"जीते रहो पुत्र, राम तुम्हारा सब विधि भला करेगे। मैं आठो पहर रामरक्षा कवच मंत्र का पाठ करता रहूंगा। हनुमान जी की कृपा से कोई भी युवक इस ज्वर से पीड़ित नही हो पाएगा।"

जटाशंकर बोला—"हम तो आपका नाम लेके आग मे भी कूद पड़ेगे। बाकी औरो के जी की बात मैं कैसे कहूं। दो-चार लोगों से बातें करके बताऊंगा।"

"मैं देखा चाहता हूं कि परम योगेश्वर महामृत्युंजय की इस नगरी मे अभी कितना पुण्य शेष है।"

"अरे बाबा, यो कहने को तो राम-राम शिव-शिव सभी जपते है पर आप जैसी भक्ती न हम जवानों मे है और न बूढ़ो में। बाकी, मैं आपकी सेवा मे हाजिर हूं।"

"हा, यहा तो ऊचे-नीचे, बीच के धनिक, रंक, राजा, राय सब श्रेणियों के लोगों को एक करके मैंने इतने दिनों मे देख लिया। जब पीड़ा देखते हैं तो पीठ फेर लेते है। देखना चाहता हूं कि इन पीड़ितों की सहायता करने का उत्साह तुम्हारे समान और कितनों लोगों के मनो में उमंगता है।"

जटाशंकर बोला—"अच्छा तो ठहरिए, मैं घर मे अम्मां से कह आऊं कि द्वार बन्द कर लें। आपको लेके कुछ अखाड़ों के गुरुओं के यहां चलूंगा। पहले एक बालक सरदार के यहां चलूंगा। आपके प्रभाव से लोगों को राजी करने मे सुभीता होगा।" जटाशंकर कुप्पी लिए अपने घर की दहलीज तक गया और जोर से आवाज दी—"अम्मां, कुण्डी लगवाय लेव। हम गुसाई बाबा के साथ एक काम से जाय रहे हैं।" कहकर वह उल्टे पांव लौट आया। बाहर से किवाड़े उढ़का दिए और गुसाई जी के साथ तीन-चार छोटी-छोटी गलियो को पार करके एक घर के सामने पहुचा और जोर से आवाज लगाई "ए रामू ! रामचन्द्र ! ओ रामचन्द्र !"

तुलसीदास का मन मुदित हुआ। जब जटाशंकर के सहायक रामचन्द्र हैं तो काम बना समझो।

उसी समय भीतर से किसी पुरुष का स्वर आता है—"अरे कौन है ?"

"हम है बाबा, जटाशंकर, जरा रामू को जगाय दीजैं।"

अन्दर से खासते हुए पुरुष स्वर ने कहा—"अच्छा।"

इतनी देर मे जटाशकर गोसाई जी से कहने लगा—"है तो बाबा यह रामू चौदह-पंद्रह बरस का लडका ही पर ऐसा तेज और फुर्तीला है कि जब आपके सामने आवेगा तो आप भी कहेगे कि वाह जटाशंकर क्या ततैया भिड़ छाट के लाए है।"

गोसाई जी ततैया भिड़ की उपमा सुनकर हंस पड़े।

जटाशंकर बोला—"आपके चरणों की सौ बाबा, मैं झूठ नहीं कहता। ये लड़का दस-बारह टोलों के लड़कों का मुखिया है समझ लीजिए। यदि यह हिम्मत दिखा जाए तो…"

कुण्डी खुली, एक कसरती बदन का चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु का बालक मिट्टी की ढिबरी लिए एक हाथ से आखें मीजते हुए आया।

"जै बजरंग दादा, अरे! अरे! अऽरे!!" कहकर ढिबरी वहीं पर रखकर दो सीढियां उतरने के बजाय सीधे गली में ही कूद पड़ा और गोसाईं जी के चरणों मे साष्टांग प्रणाम किया।

झुककर उसे उठाते हुए, गोसाईं जी बोले—"राम-राम! आयुष्मान निष्ठावान हो। सुखी हो। अरे बस-बस, अब उठो बेटा। अभी जाड़ा गया नही, तुम उघाड़े बदन हो। गली ठंडी है।"

गोसाईं जी के पीठ थपथपाकर उठने का आदेश देने से जिस समय रामू उठ रहा था, उसी समय जटाशंकर हसकर कहने लगा—"आपके सामने विनय दिखा रहा है, हमको भी मानता है पर ऐसा विकट है कि जिससे भिड़ जाय…"

"जाओ दादा, पर गोसाईं बाबा हमारे घर आए! कैसा अचम्भा-सा लग रहा है। भी-भीतर पधारें महाराज। घर में हमारे बाबा को छोड़कर और कोई नही है।" कहकर वह चौखट से ढिबरी उठाकर मुस्तैदी से खड़ा हो गया। उन्हे प्रकाश दिखाते हुए भीतर एक अंधेरे दालान को पार कर एक कोठरी में ले गया। वहां दिया जल रहा था और एक दमे का रोगी अंधा वृद्ध बैठा दोनों हाथो से अपनी छाती दबाए हुए धीरे-धीरे हांफ रहा था।

रामू बोला—"बाबा, गोसाईं जी महाराज पधारे हैं।"

"कौन गुसाईं, रामू? हम दीन-दरिद्रन के यहां तो बस एक गोसाईं धोखे से आय सकते है।"

जटाशंकर ने पूछा—"कौन से गोसाईं आ सकते हैं बाबा?"

रामू ने तब तक चटाई बिछा दी थी और गोसाईं जी को जब बैठने का सविनय संकेत कर रहा था तभी अंधे बाबा अपने दम को बांधकर धीरे-धीरे बोले—"हम दीन-दुखियन का गुसाईं तो एकै है भइया, रामायण वाला।"

रामू सोत्साह बोला—"वही आए है बाबा।"

उत्साह के आवेग में जब कलेजे में हलचल मची तो अंधे बाबा का दम फूल गया। वे खटिया से उठने का उपक्रम कर रहे थे कि तुलसीदास उनके पास पहुंच गए। एक हाथ पीठ और एक उनकी छाती पर रखकर धीरे-धीरे सहलाते हुए वे बोले—"आप आयु में मुझसे बड़े है, ब्राह्मण है, बैठे-बैठे मेरा प्रणाम स्वीकार करें।…बस-बस, आपको आनन्द अवश्य हुआ है, यह माना, पर उसे रोग का कारण न बनाएं। शांत हो जाइए। मेरे लिए तो सबका घर अपना ही घर है। सहज रूप से सबके घर पहुच जाता हूं। इसमे आश्चर्य की क्या बात है।"

बुड्ढा रो पड़ा, उनके हाथ पर अपने दोनों हाथ रखकर बोला—"जैसा सुना था वैसा ही आपको पाया। सुना है गंगा आपके सहपाठी रहे!"

"हां", महाराज।"

"तनिक दूर के नाते से वे हमारे भाई लगते हैं।"

"यह जानकर प्रसन्न हुआ। मैं आपसे आज एक भिक्षा मांगने आया हूं। मुझे घर दिखाने के लिए जटाशंकर मिल गए हैं। उन्हींके साथ यहां तक आ सका।"

"अरे महाराज, मैं निर्धन ब्राह्मण, अंधा अभागा। भला आपको क्या दे सकता हूं? पुत्र-पतोहू नौका से गंगा पार कर रहे थे सो गंगा जी मे ही समा गए। उसके छह महीने बाद ही मैं अन्धा हो गया। यह पौत्र है, इसे थोड़ा-बहुत पढाता हूं। यह मेरी सेवा करके फिर श्याम जी शास्त्री के यहा वेद पढने जाता है। बस यही मेरा धन है, बल है, सहारा है।"

"मैं इसी बालक को आपसे मांगने आया हूं।"

अंधे बाबा चौंके, कहा—"काहे के लिए महाराज?"

"राम जी की सेवा कराने के लिए। आज्ञा है? आपकी सेवा के समय यह सदा आपके पास रहेगा। या आप चाहें तो मेरे साथ अस्सी घाट चलें, वहीं रहें, मैं स्वयं आपकी सेवा करूंगा।" कहकर तुलसीदास बाबा की खाट पर ही बैठ गए।

बाबा गद्गद हो गए, बोले—"आपकी मैं क्या बडाई करूं गोसाईं जी महाराज, आप ऐसा प्रस्ताव लेकर इस समय पधारे हैं कि मेरी वाणी बोल करके भी भीतर से गूगी हो गई है। पहले मैं अपने मन की बात आपसे कहना चाहता हूं?"

"आप बड़े हैं महाराज, कहिए-कहिए।"

"पिछले एक पखवारे से मेरा मन मुझे सचेत कर रहा है कि मेरा अन्तकाल अब निकट है। अपने जाने की चिन्ता नहीं किन्तु तब से रामू की चिन्ता मुझे अवश्य सता रही है। यही मेरे वंश का एकमात्र आशा दीप है।"

सुनकर तुलसीदास गंभीर हो गए, फिर उनके घुटने पर टिका हाथ अपने दोनों हाथों मे दबाकर उन्होंने कहा—"पण्डित जी, हानि-लाभ जीवन-मरण यश-अपयश विधि हाथ, फिर भी मैं वचन देता हूं कि ऐसी स्थिति मे यह बालक मेरे पास रहेगा और मैं स्वयं इसे पढाऊंगा।"

कृतज्ञता के भावावेश में वुड्ढा बैठे ही बैठे उनके घुटने पर झुक के रो पड़ा, कहने लगा—"साक्षात् परमात्मा ही मेरी चिन्ता हरने के लिए आ गए है। बस अब मुझे कुछ नही कहना है। रामू, इधर आ पूत।"

रामू आगे बढा, उनके घुटने पर हाथ रखकर कहा—"हां बाबा।"

उसका हाथ तुलसीदास के हाथ मे रखते हुए गद्गद वाणी में वृद्ध बोला—"अब आज से यही तेरे माता-पिता-गुरु सभी कुछ हैं। मैं नही जानता कि यह तुझे अपने किस काम के लिए मुझसे मांगने आए, पर अब तू इन्हींका है। अब चाहे जितने दिन जिऊं मुझे चिन्ता नही है।"

जिन क्षेत्रों में ताऊन की महामारी फैली हुई थी उनमे लगभग पांच सौ लड़के काम कर रहे थे। उनमें से अधिकांश बारह से पंद्रह वर्ष तक की आयु के थे। घूरे साफ हो रहे हैं। नीम के काढे से रोगियो का उपचार हो रहा है। शव उठाए जा रहे हैं। लड़के बारी-बारी से परिश्रम कर रहे हैं; बड़ी लगन से सेवा कर रहे हैं। इस समय सभी का डेरा अस्सी के पास खुले मैदान में झोपड़ियो मे

पड़ा है। नियम से सबके व्यायाम, विश्राम और खाने का प्रबन्ध स्वयं गोस्वामी जी की देख-रेख मे उनके बरसो पहले गंगाराम के द्वारा जमा करवाए गए धन से हो रहा है। टोडर और जयराम साहु प्रबंधक है। बालकों के पुण्य ने नगर के अधबुझे पुण्यशीलों के भीतर भी उत्साह जगाया और तभी एकाएक गली-गली मे अफवाह उडी···

"अरे, मोहना, कुछ सुना ?"

"क्या भया भगेलू ?"

"हमने सुना है किसी जादूगर ने अपने कुछ चेले छोड़े है। वो भैया, कुप्पो मे भरकर कोई रसायन अपने साथ लाते है और जहां छोड़ा नही, वही चूहे मरने लगे। औ बस बीमारी फैलती चली जाती है।"

"अरे, नही भगेलू, किसीकी उड़ाई हुई बात है।"

"उडाई हुई ? अरे, मै अपने आखो देखी कह रहा हू। मेरे सामने चार कुप्पे वाले पकड़े गए। उन्होने सब कबूल दिया।"

"क्या कबूला ?"

"यही कि हमारे जादूगर-उस्ताद ने कहा है कि बनारस-भर में ये दवा छिड़क आओ, जिससे वहा के सब लोग मर जाएं और उनके घरो का रुपया-टका माल-मता आसानी से लूट ले।"

"अरे नही, गप्प है।"

"गप्प ! अच्छा तो गप्प ही सही। नाई-नाई बाल कितने कि जिजमान आगे आएंगे। दो-चार दिनो मे आपही देख लेना। अब किसी की जिन्दगी का कोई भरोसा नही है।"

सामने से एक खोमचेवाले को जाते देखकर भगेलू ने आवाज लगाई—"अरे ओ कचौड़ी वाले, यहा आना भाई। कौन जाने कल जियै कि मरै, आज कचौड़ी तो खा ही ले।"

जादूगर के कुप्पो की अफवाह काशी मे बड़ी तेजी से फैली। गली-गली मे घबराहट फैल गई। महल्ले-महल्ले मे रातो मे पहरे बैठने लगे। दिन और रात मे पचासो बार जहा-तहा 'वो आए' की भेड़िया-गुहार मच जाती थी। बेचारे कई निरपराधी लोग जादूगर के शिष्य माने जाकर पीटे गए। नगर मे एक आतंक-सा छा गया।

तुलसीदास ने सुना, वे उत्तेजित हो गए। कहा—"यह निश्चय ही किसी दुष्ट बुद्धि के द्वारा उपजी हुई बात है। अपने क्रूर विनोद से वह इन बेचारे मरे हुओ को मार रहा है।" लोगो का भयातंक देखकर तुलसी विचार मे पड़े। जन-जन की असीम निराशाजनित घोर अनास्था का उचित उपचार होना ही चाहिए। आस्थाहीन मनुष्य का जीवन ही उसका असह्य बोझ बन जाता है। यह स्थिति भयावह है। गोस्वामी जी ने टोडर और जयराम साहु को बुलाकर कहा—"मै अब इस महामारी को बाधूंगा। काशी की दसो दिशाओ मे सकट-मोचन हनुमान जी की मूर्तिया स्थापित करूंगा। इसके निमित्त भी धन चाहिए। कैसे जोगाड़ होगा साव जी ?"

"यह चिन्ता हमारी है महराज। आप तो बस आज्ञा-भर दें, काम हो जाएगा। मेरा धन और किस दिन काम आएगा! वैसे आपके रुपयों मे भी बडी राशि बाकी है।"

मित्रों से आश्वासन पाकर तुलसीदास उत्साह मे आ गए। उन्होने एक नये उत्साह की धूम बाध दी। जगह-जगह हनुमान जी के मन्दिरो की प्रतिष्ठा होती। पूजा-पाठ से वहा के लोगों मे उत्साह आता और तुलसी कहते—"घबराओ मत, हनुमान जी हर दिशा के पहरेदार बने बैठे है। वे हर जादूगर भूत-प्रेत-यक्षादि को मार डालेंगे। राम जी ने हनुमान जी को अब तुम्हारी सेवा के लिए यहा नियुक्त कर दिया है। घबराओ मत।"

मानसिक यंत्रणाओं से जडीभूत पागलो को होश मे लाने वाला यह आस्था का महायज्ञ रचने मे तुलसीदास स्वयं अपना आपा खोकर रमे हुए थे।

एक दिन टोडर और गंगाराम दोनों ने उनसे विनय की। गंगाराम ने कहा—"तुलसीदास, तुम निश्चय ही सिद्ध महात्मा हो, किन्तु तुम और तुम्हारा यह हनुमान दल जो इतना अधिक परिश्रम कर रहा है वह यदि···"

मुस्कराते हुए तुलसी ने बात काटकर कहा—"ज्योतिपाचार्य जी, तनिक प्रश्न कुण्डली बनाकर देख लो न। अरे यह राम का काम है। मेरी तो छोड़ दो, इन बच्चों का भी बाल बांका न होगा। श्रद्धा और विश्वास ऐसी संजीवन बूटी है कि जो एक बार घोलकर पी लेता है वह चाहने पर मृत्यु को भी पीछे ढकेल देता है। फिर भी देखते हो मैं कितना सतर्क हू, मैंने केवल उन्ही बालको और युवाओ को लिया है जो कसरत करते है। जब तक रक्त शुद्ध है तब तक कोई रोग छू नही सकता। यह भी देख रहे हो कि मैं नीम के काढ़े और पत्ती का कितना उपयोग करता हूं।"

टोडर बोले—"राम जाने यह महामारी कब तक चलेगी। अभी तो इसका अंत नही दीखता।"

"अरे, चार दिन मे गर्मी की ऋतु आते ही यह महामारी अपने-आप चली जाएगी और हनुमान जी की कृपा मानकर नर-नारियों का श्रद्धा और विश्वास बढेगा। राम रूपी नैतिकता का झण्डा भूत भावन की इस परम पावन नगरी से ही एक बार आसेतु हिमाचल फिर फहराएगा। देख लेना।" × × ×

बेनीमाधव गद्गद होकर बोले—"प० गंगाराम जी ने स्वयं एक बार आपकी उस समय की भविष्यवाणी मुझे बतलाई थी। सचमुच शिव की काशी से ही इस बार राम की ज्योति जागी है।"

"बस, अब कोई विशेष बात तो हमारे जीवन मे कहने को रह नही जाती पुत्र, फिर तो स्वय तुम लोगो के देखते ही देखते जो तुलसी भाग से भी भोंडा था वह रामनाम के प्रताप से गोस्वामी तुलसीदास बनकर पुज रहा है। चलो, आज मैं तुमसे भी उऋण हुआ। हमारी जीवनी कदाचित् तुम्हे आस्था के संघर्ष की कथा बनकर प्रेरित करे। तुम्हारा उपकार होगा। किन्तु एक बात ज्योतिषी तुलसीदास की भी गांठ में बाध लो।"

"वह क्या गुरू जी ?"

"कालातर मे तुम्हारा ग्रन्थ मेरे भक्तों के द्वारा वह न रह जाएगा जो तुम लिखोगे। वह कुछ का कुछ हो जाएगा। हां तुम अवश्य अमर हो जाओगे।"

गुरू जी के चरणो मे श्रद्धापूर्वक मस्तक नवाकर वेनीमाधव बोले—"अमरता मिलेगी तो मैं देखने नही आऊगा महाराज, किन्तु इस जीवन मे आपके इस आस्था के महायज्ञ से प्रेरणा लेकर मै अपने मन की काली छायाओ से मुक्त हो सका तो अपना अहोभाग्य मानूगा। मैं एक बार अपने भीतर वह मन देखने के लिए तडप रहा हू गुरू जी जिसकी निर्मलता से परम ज्योति आभासित होती है। आशीर्वाद दे कि इस जन्म मे यदि उस दिव्य ज्योति को न देख पाऊ तो भी मेरा मन निर्मल हो जाय। मेरे आस्था दुर्ग की नीव आपके चरणों के प्रताप से दृढ हो जाय।"

सन्त जी के माथे पर हाथ फेरते हुए बावा ने स्नेहपूर्वक कहा—"होगा, अवश्य होगा। जैसे ठग साहूकार के पीछे पडता है न, वैसे ही तुम राम जी के पीछे लग जाओ वेनीमाधव। उनका प्रसाद तुम्हे अवश्य मिलेगा। सत्य, आस्था और लगन जीवन सिद्धि के मूल है।"

"आपके कथा प्रसग मे केवल एक जिज्ञासा और है गुरू जी, आपके मित्र टोडर जी का क्या हुआ ?"

प्रश्न सुनते ही बावा की आखे भर आई। कुछ क्षणो के लिए वे भावविगलित हो गए। फिर एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए 'राम' कहा और कुछ रुककर फिर बोले—"महामारी-शात होने के वाद मै कुछ समय के लिए मथुरा चला गया था। लौटकर जाना कि कुचाली गोस्वामियो ने मेरे उपकारी को दण्ड देने के लिए धोखा देकर उसका वध कर डाला था। टोडर ऐसा परोपकारी मनुष्य इस कलिकाल मे कम ही देखने मे आता है। टोडर के स्मरणमात्र से ही मैं अब भी अपने आंसू नही रोक पाता भैया!" बावा की आखे फिर छलछला उठीं।

४९

गोस्वामी तुलसीदास जी रोग-शैया पर पड़े है। उनके सारे शरीर मे फुसियां ही फुसियां निकल आई है। मवाद की कीलें-सी पड़ जाती है। शरीर-भर से निकलती है। आज चार दिन हो गए, न रातो की नीद आती है और न दिन को चैन पड़ता है। बीच-बीच मे मूर्च्छित हो जाते हैं। राजा, गगाराम, कैलास, जयराम साहु, स्व० टोडर के पुत्र और पौत्र तथा काशी के दो नामी वैद्य कोठरी के भीतर उन्हे घेरकर बैठे है। रामू नीम के उबाले पानी से उनके घाव धोता और एक लेप लगाता चल रहा है। झोपड़ी के वाहर दर्शनार्थियो की भीड़ खडी है। लोग उत्सुकतावश मना किए जाने पर भी दरवाजे से झाक-झाककर गोस्वामी

जी के दर्शन करते है। कभी-कभी वे जोर से कराहकर राम-राम कह उठते है, फिर पीडा शात होने पर मुस्कराकर कहते है—"सुख से दु ख भला जो राम को याद तो कराता रहता है।"

दरवाजे से झाकते कई दर्शनार्थियों की आंखो से आंसू वह रहे थे। बावा उन्हे मुस्कराकर देखने लगे, कुछ देर तक टकटकी बांधकर देखते रहे फिर गर्दन घुमाकर दीवार पर बनी सीताराम की छवि को देखते हुए हाथ बढाकर कहते है—"यह भी इनकी असीम करुणा है···

"असन-बसन हीन विषम-विषाद-लीन,
देखि दीन दूवरो करै न हाय-हाय को ?
तुलसी अनाथ सो सनाथ रघुनाथ कियो,
दियो फल सील सिंधु आपने सुभाय को ॥
नीच यहि बीच पति पाइ भरुहाइगो,
विहाय प्रभु-भजन बचन मन काय को।
तातें तनु पेखियत घोर वरतोर मिस,
फूटि-फूटि निकसत लोन राम राय को।"

कैलास फड़क उठे, बोले—"मित्र, तुम महात्मा तो हो ही पर खरे कवि पहले हो। वाह-वाह-वाह।"

तुलसी मुस्कराए, कहा—"कविर्मनीषी परिभू स्वयंभू। अब तो दो होकर भी दो नही रहा कैलास।" कहते-कहते फिर एकाएक टीस उठी। आगे कुछ और कहने जा रहे थे कि एकाएक कराह कर राम-राम पुकार उठे और फिर अचेत हो गए।

आखो मे आसू भरकर राजा भगत ने गगाराम से कहा—"हमे लगता है कि अब तो भैया का दरसन मेला ही रह गया हैं।"

गगाराम ने कुछ न कहकर एक गहरी निसास ढील दी। राजा बोले—"भौजी गई, इनके बेटे को भी अपने हाथो से ही मसान मे ले गया था और अब ये भी जा रहे है।" कहकर वे रोने लगे।

गगाराम ने उन्हे सान्त्वना देते हुए कहा—"अपने हृदय मे मेरा भी हृदय देखो राजा। क्या किया जाय। कल सन्ध्या तक इनका मारकेश और है। वह समय बीत जाय तो फिर सब मंगल होगा।"

राजा टूटे हुए स्वर मे बोले—"हा, वैसे तो जब तक सासा तब तक आसा। बाकी·· क्या कहे ?"

रात मे प्राय. सन्नाटा हो चुका था। सावन का महीना था, बादल गरज रहे थे। राजा, कैलास, बेनीमाधव और गगाराम चुपचाप दीवार से टेका लगाए थके-हारे बैठे थे। रामू अपने प्रभु जी की चौकी के पास बैठा टकटकी लगाकर उन्हे देख रहा था।

और·· ···

तुलसीदास स्वप्न देख रहे थे। हाथ मे अरजी का लम्बा कागज लिए तुलसी-

दास राम जी के महलों की ओर जा रहे है। पहले गणेश जी मिलते हैं, उन्हें प्रणाम करते है; फिर क्रमश सूर्य, शिव-पार्वती, गंगा-यमुना, काशी, चित्रकूट आदि की झलकिया एक के बाद एक खुलती ही चली जाती हैं। भीतर की ड्योढी पर खास दरवार के आगे हनुमान जी खडे है। तुलसी उन्हे देखकर प्रसन्न होते है और अपनी अर्जी का कागज उनकी ओर बढाते हुए कहते है— "इसे राम जी तक पहुचा दीजिए।"

हनुमान जी मुस्कराकर लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की ओर इशारा करके कहते है—"इनकी स्तुति करो। जगदम्बा को प्रणाम करो। उन्ही की चिरौरी करने से तुम्हारी विनयपत्रिका साहव की सेवा मे पहुंच सकती है।"

तुलसी तीनों भाइयों की वन्दना करते है। मा के चरणो मे नत होते है। सीता जी प्रसन्न होकर मुस्कराती है। हनुमान का मन और भरत का रुख देखकर लक्ष्मण तुलसीदास के हाथ से विनयपत्रिका ले लेते है और राम जी के सम्मुख उसे सविनय बढाकर कहते है—"हे नाथ, इस कलिकाल मे भी आपके एक अकिंचन सेवक ने आपके नाम के प्रति, अपनी प्रीति और प्रतीति को निबाहा है। गरीब-निवाज, अब इसपर कृपा करें।" भगवान रामचन्द्र विनीत भाव से हाथ बाव खड़े हुए तुलसीदास को बड़े स्नेह से देखकर कहते है—"हा, मेरे भी ध्यान मे यह बात आई है।" यह कहकर राम जी हाथ बढाते हैं। लक्ष्मण जी उन्हे कलम-दवात देते हैं, राम जी अपने हाथ से कलम लेकर तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' पर सही कर देते है।

उसी समय आकाश मे बादल गड़गडा उठते है, मानो रामकिकर तुलसीदास का जयघोप कर रहे हों। विजली बार-वार कड़क उठती है। मानो राम की भक्ति माया के अन्धकार को मिटा रही हो। पानी ऐसे वरसता है कि जैसे भक्त के मन मे अविरल राम-रस-धारा बहती है।"

राम के पत्रिका पर सही करते ही स्वप्न भंग हो गया। वादलों की गड़-गड़ाहट से तुलसीदास की आंखे खुल गई—"रामू!"

"हां प्रभु जी!

"आज कौन तिथि है?"

गगाराम मित्र को बाते करते देखकर तुरन्त वोल उठे—"श्रावण कृष्ण तीज। अब तो ब्राह्म वेला आ गई।"

तुलसीदास एक क्षण चुप रहे, फिर कहा—"पिछले वर्ष रत्नावली आज ही के दिन गई थी।"

राजा पास आ गए। उनके हाथ पर पोले से अपना हाथ रखकर कहा—"अब कैसा जी है भइया?"

"निर्मल गंगा जल जैसा। गाने को जी चाहता है, रामू।"

"जी, प्रभु जी!"

"आज स्वप्न में मैंने 'विनयपत्रिका' के अन्तिम छन्द को दृश्य रूप मे देखा है। मेरी काव्य स्फूर्ति अन्तिम वार उसे अंकित करने को ललक रही है। ·· एक बार मुझे सब जने सहारा देकर बैठा तो दो।" झटपट सहारा दिया गया।

रामू तत्पर बैठ गया। बाबा धीरे-धीरे गाने लगे—

"मारुति-मन, रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहु नाथ, नाम सो प्रतीति-प्रीति—
एक किंकर की निवही है ॥१॥

सकल सभा सुनि लै उठी, जानी रीति रही है।
कृपा गरीब निवाज की, देखत,
गरीब को साहब बाँह गही है ॥२॥

बिहँसि राम कह्यो, 'सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।'
मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की,
परी रघुनाथ-हाथ सही है ॥३॥

अंतिम पंक्ति उन्होंने स्वर खींचकर गाई, उसके पूरी होते ही गर्दन ढीली हो गई। रामू उनके सिर को सहारा देने के लिए लपका। बेनीमाधव तलवे सहलाने लगे। कैलास ने नाड़ी पर हाथ रखा। बोले—"इन्हें लो भगत जी, जल्दी करो। मेरा यार चला।" कहते हुए उनका गला उसी भाव में फिर कहा—

"राम नाम जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अबही तुलसी सोन ॥"

रामू ने जल्दी-जल्दी धरती पर कोने में पहले ही से रखा हुआ कर लीपा। गोस्वामी जी धरती पर ले लिए गए। तुलसी दल, स गंगा जल उनके घरघराते कण्ठ में डाला गया। सब लोग मौन होकर ओर दृष्टि लगाए बैठे थे। गले की घरघराहट में भी मानो राम शब्द रहा था। आँखें एकाएक खुल गईं, सबके चेहरों को देखा, दीवार पर हनुमान और सियाराम के चित्रों की ओर देखा। देखते ही रहे···देखते गए। बाहर ऐसी बिजली चमकी कि उसकी कौंध भीतर तक आ पहुंची जोर से बरस रहा था। सबकी आँखें भी वैसी ही बरस रही थीं।

श्री रामनवमी, गुरुवार
२३ मार्च, १९७२ ई०
रात्रि ९-३४

मुद्रक · गोपसन्स पेपर्स प्रा. लि., ए-28, सेक्टर-9 नौएडा.

रामू तत्पर बैठ गया। बाबा धीरे-धीरे गाने लगे—

"मारुति-मन, रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहु नाथ, नाम सों प्रतीति-प्रीति—
एक किंकर की निवही है ॥१॥

सकल सभा सुनि लै उठी, जानी रीति रही है।
कृपा गरीब निवाज की, देखत
गरीब को साहब बाँह गही है ॥२॥

बिहँसि राम कह्यो, 'सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।'
मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की,
परी रघुनाथ-हाथ सही है ॥३॥

अंतिम पंक्ति उन्होंने स्वर खींचकर गाई, उसके पूरी होते ही गर्दन निढाल हो गई। रामू उनके सिर को सहारा देने के लिए लपका। बेनीमाधव पैर के तलवे सहलाने लगे। कैलास ने नाड़ी पर हाथ रखा। बोले—"इन्हें धरती पर लो भगत जी, जल्दी करो। मेरा यार चला।" कहते हुए उनका गला भर आया। उसी भाव में फिर कहा—

"राम नाम जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अबही तुलसी सोन ॥"

रामू ने जल्दी-जल्दी धरती पर कोने में पहले ही से रखा हुआ गोबर उठा कर लीपा। गोस्वामी जी धरती पर ले लिए गए। तुलसी दल, सोना और गंगा जल उनके घरघराते कण्ठ में डाला गया। सब लोग मौन होकर उन्हीं की ओर दृष्टि लगाए बैठे थे। गले की घरघराहट में भी मानो राम शब्द ही गूंज रहा था। आंखें एकाएक खुल गईं, सबके चेहरों को देखा, दीवार पर अंकित हनुमान और सियाराम के चित्रों की ओर देखा। देखते ही रहे···देखते ही रह गए। बाहर ऐसी बिजली चमकी कि उसकी कौंध भीतर तक आ पहुंची। पानी जोर से बरस रहा था। सबकी आखें भी वैसी ही बरस रही थीं।

श्री रामनवमी, गुरुवार
२३ मार्च, १९७२ ई०
रात्रि ९-३४

मुद्रक : गोपसन्स पेपर्स प्रा. लि., ए-28, सेक्टर-9 नौएडा.